# कविता-कौमुदी

# विषय-सूची

**कौमुदी-कुञ्ज**

# कविता-कौमुदी

पहला भाग

0152,1x
1446.1
2657/05

# भूमिका

काव्य साहित्य का उत्तम अग है। काव्य से मनुष्य को जैसा अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है वैसा और किसी प्रकार के साहित्य से नही। काव्य का एक छोटा-सा पद श्रोताओ मे इतना अधिक प्रभाव उत्पन्न कर सकता है, जितना किसी वाग्मीवर का लम्बा-चौडा व्याख्यान नही। काव्य से आनन्द और उपदेश दोनो प्राप्त होते है। काव्य के रूप मे नीति के वचन जितना आकर्षण उत्पन्न करते है, उतना तत्वज्ञान के रूप मे नही। आख्यायिकाओ द्वारा दिये गए उपदेश मे भी वह माधुर्य नही जो काव्य के उपदेश मे है। काव्य कवि के हृदय का गान है, उसकी बुद्धि का सौन्दर्य है। जिस कवि का हृदय जितना सुन्दर होता है, वह उतना ही मधुर गान कर सकता है। वह गान भक्तो के मुख से सुनकर भगवान् रीझ जाते है। भगवान् कहते है—

नाह वसामि वैकुण्ठे योगिना हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद। श्रीमद्भागवत।

काव्यशास्त्र के आचार्यों ने काव्य के भिन्न-भिन्न लक्षण बतलाये है। किसी ने रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है, किसी ने चमत्कारयुक्त उक्ति को काव्य माना है, किसी ने मनोहर अर्थ उत्पन्न करनेवाले शब्दो को काव्य कहा है, और किसी ने शब्द और अर्थ दोनो को काव्य कहा है। यह तो ठीक है कि शब्द और अर्थ परस्पर अभिन्न है, इसलिए शब्द और अर्थ दोनो मिलकर ही काव्य कहलाता है। पर शब्द और अर्थ काव्य का शरीर मात्र है, काव्य की आत्मा तो रस है। चाहे गद्य हो या पद्य, जिस सदर्भ में रस प्रवाहित हो, वर्णन इतना सुन्दर हो कि पढते ही मन उसमे तल्लीन होकर एक प्रकार के अलौकिक आनन्द का अनुभव करने लगे, वह काव्य है। काव्य मे शब्द-चमत्कार और अर्थ-चमत्कार

दोनो होने चाहिये। किन्तु अर्थ-चमत्कार प्रधान है, शब्द-चमत्कार गौण केवल शब्द के आडम्बर से काव्य नही बन सकता। छद उत्तम हो शब्द-सगठन ललित हो, अनुप्रास कर्णप्रिय हो, पर रस का अभाव हो तो वह रचना काव्य नही केवल पद्य है। वह कान को प्रिय लग सकती है, हृदय को नही, काव्य तो हृदय की वस्तु है।

रस क्या वस्तु है ? रस का साधारण अर्थ है स्वाद। पाठक या श्रोता के हृदय मे वासना रूप से स्थित हर्ष, शोक, भय, विस्मय, हास आदि जब कवि की चमत्कारयुक्त वाणी से जागृत होते है, तब उसे एक अपूर्व आनन्द का अनुभव होने लगता है। वह आनन्द ऐसा अद्भुत होता है कि मन उस समय उसी मे लीन हो जाता है, उसे अपने अन्य सब व्यापार भूल जाते है। जैसे योगी समाधि मे ब्रह्मानन्द-सुधा के पान मे तन्मय हो जाता है, और अन्य विषय-व्यापार भूल जाता है, वैसा ही आनन्द काव्य से सहृदय मनुष्य के हृदय मे उत्पन्न होता है। उसी अलौकिक आनन्द को रस कहते है। जब विभाव, अनुभाव और सचारी भाव से स्थायीभाव व्यक्त होता है, तब रस की उत्पत्ति होती है।

जिससे भावना स्पष्ट हो वह विभाव कहलाता है। विभाव दो प्रकार का होता है, आलम्बन और उद्दीपन। जिसके आश्रय से रस की स्थिति हो, उसे आलम्बन, और जिससे रस का उद्दीपन होता है उसे उद्दीपन विभाव कहते है। जिन चिह्नो के द्वारा रस का अनुभव होता है, उन्हे अनुभाव कहते है। अनुभाव भाव का कार्यरूप है। हास्य, मधुर सभाषण और स्नेहयुक्त दृष्टिनिक्षेप आदि अनुभाव कहलाते है। जो भाव रसो मे सचार करते है, वे सचारी भाव कहलाते है, और जो भाव रसोमे स्थिर रहते है, स्थायी वे भाव कहलाते है। रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, ग्लानि, आश्चर्य और निर्वेद ये नौ स्थायी भाव है। इन्ही से क्रमश शृगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त ये नौ रस उत्पन्न होते है। प्रत्येक रस के उत्पन्न होने मे विभाव, अनुभाव और सचारी का स्थायीभाव के साथ रहना

आवश्यक है। सचारी भाव को व्यभिचारी भाव भी कहते है। व्यभिचारी भाव के ३३ भेद है। यथा—निर्वेद, ग्लानि, शका, असूया, श्रम, मद, धृति, आलस्य, विषाद, मति, चिता, मोह, स्वप्न, विबोध, स्मृति, अमर्ष, गर्व, उत्सुकता, अवहित्थ, दीनता, हर्ष, व्रीडा, उग्रता, निद्रा, व्याधि, मरण, अपस्मार, आवेग, त्रास, उन्माद, जडता, चपलता, और वितर्क। ये स्थायीभाव रूपी समुद्र मे छोटी-बडी लहरो के समान उठते और नष्ट होते रहते है। इनका प्रभाव चिरस्थायी नही होता। हृदय-हीन जड़ पुरुष के हृदय मे काव्य से रस उत्पन्न नही होता।

रस के साथ ही काव्य मे गुण की भी आवश्यकता है। शब्द और अर्थ गुणयुक्त होने चाहिये। गुण रस से पृथक् नही रह सकता। गुण रस का धर्म है। गुण के तीन भेद है—माधुर्य, ओज और प्रसाद। अनुस्वारयुक्त वर्णो का अधिक प्रयोग, टवर्ग का बिल्कुल अभाव और समास की न्यूनता कविता का माधुर्यगुण है। संयुक्ताक्षर, रेफ और टवर्ग का अधिक प्रयोग, दीर्घ समासयुक्त उद्धत रचना मे कविता का ओजगुण कहा जाता है। और जो शब्द-योजना और समास मनोहर हो और सुनते ही जिनका अर्थ समझ मे आ जाय, उनमे प्रसादगुण कहा जाता है।

काव्य की भाषा सदा अर्थ का अनुसरण करती हुई होनी चाहिये। शृङ्गार, करुण, हास्य और शात रस के वर्णन मे माधुर्य-गुण-युक्त भाषा का और अद्भुत, वीर, रौद्र, भयानक और वीभत्स रस मे ओज गुण-युक्त भाषा का प्रयोग करना चाहिये। चन्द और भूषण की कविता मे ओज गुण की अच्छी बहार देखने को मिल सकती है। प्रसाद की आवश्यकता तो सब रसो मे रहती है। प्रसाद-गुण से रहित काव्य को तो काव्य कहना ही न चाहिये।

काव्य का माधुर्य देखना हो तो जयदेव-रचित गीत-गोविन्द मे देखिये—

उन्मदमदनमनोरथ पथिकवधूजनजनितविलापे ।
अलिकुलसंकुलकुसुमसमूहनिराकुलवकुलकलापे ॥

* * *

पतति पतत्रे विचलित पत्रे शङ्कित भवदुपयानम् ।
रचयति शयन सचकित नयन पश्यति तव पन्थानम् ॥

कितनी मधुर शब्द-योजना है ! कितना सरल प्रवाह है । हिन्दी-कविता मे भी माधुर्य गुण खूब है । देखिये—

कङ्कन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि ।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥

* * *

कबहुँक हौ इहि रहनि रहौगो ।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेम निबहौगो ॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
विगत मान सम सीतल मन परगुन अवगुन न कहौगो ॥
परिहरि देह जनित चिंता दुख सुख समबुद्धि सहौगो ।
तुलसिदास प्रभु इहि पथ रहि अविचल हरि भक्ति लहौगो ॥

* * *

यह तो गुणो की बात हुई । काव्य मे दोष का भी विचार बहुत आवश्यक है । शब्द-दोष, अर्थ-दोष, रस-दोष आदि कई प्रकार के दोष है । श्रुतिकटुत्व, अश्लीलता, ग्राम्यता, अप्रसिद्धता, सदिग्धता, क्लिष्टता, पुनरुक्ति, छदोभग, यतिभग आदि दोषो से बचना चाहिये ।

काव्य मे अलङ्कार की भी आवश्यकता है। केशवदास ने कहा है—

भूषण बिना न सोहई, कविता वनिता मित्र ।

गुण और अलङ्कार मे भेद है। गुण रस के विना नही रहते, पर अलङ्कार रस के विना भी रह सकते है । अलङ्कार रस के सहायक होते है । शब्द और अर्थ में उत्कर्ष प्रदान कर वे रस की वृद्धि करते है । पर जहा रस नही, वहा केवल अलङ्कार भी उक्ति मे वैचित्र्य उत्पन्न कर देते है ।

रस के सहायक छद भी है। मदाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, शिखरिणी और मालिनी छंद मे शृङ्गार, शात और करुण रस अधिक मनोहर हो जाते है। भुजङ्गप्रयात, वशस्थ और शार्दूलविक्रीडित मे वीर, रौद्र और भयानक रस विशेष प्रभावोत्पादक हो जाते है। हिन्दी छन्दो में सवैया और बरवै मे शृङ्गार, करुण और शात रस, छप्पय मे वीर, रौद्र और भयानक रस, घनाक्षरी, दोहा, चौपाई और सोरठा मे प्राय सभी रस उद्दीप्त होते है। सवैया और बरवै मे वीररस का काव्य नीरस हो जायगा। काव्य मे विरोधी और सहायक रसो का भी ध्यान रखना चाहिये। वीर या रौद्ररस के वर्णन मे शृङ्गार, हास्य और करुण रस की उपस्थिति से रस की सिद्धि नही हो सकती। हास्यरस से शृङ्गाररस वृद्धि पाता है, पर वीभत्स, भयानक और करुण रस से उसकी सिद्धि मे बाधा पहुचती है। हास्यरस करुणरस का घातक है। कवि ही नही, अच्छे वक्ता भी रसो के शत्रुओ और मित्रो की जानकारी से अपने विषय को बहुत प्रभावोत्पादक बना लेते है।

आगे के कोष्ठक मे यह विषय अधिक स्पष्ट कर दिया जाता है—

| सख्या | रस | रस के मित्र | रस के शत्रु |
|---|---|---|---|
| १ | शृङ्गार, | हास्य, अद्भुत। | करुणि, वीभत्स, रौद्र, वीर, भयानक। |
| २ | हास्य, | शृङ्गार, अद्भुत। | भयानक, करुण, वीर। |
| ३ | अद्भुत, | भयानक। | रौद्र। |
| ४ | शात, | करुण। | वीर, शृङ्गार, रौद्र, हास्य, भयानक। |
| ५ | रौद्र, | भयानक। | हास्य, शृङ्गार, अद्भुत। |
| ६ | वीर, | रौद्र। | शात, शृङ्गार। |
| ७ | करुण, | शात। | हास्य, शृङ्गार। |
| ८ | भयानक, | अद्भुत, रौद्र, वीर। | शृङ्गार, हास्य, शात। |
| ९ | वीभत्स। | + | शृङ्गार। |

कवि कौन है ? कवि सृष्टि के सौन्दर्य का मर्मज्ञ है। वह एक ऐसा यन्त्र है, जिसके द्वारा सृष्टि का सौन्दर्य देखा जाता है। कवि सौन्दर्य

का उपभोग करता है, और जब उन्मत्त होजाता है, तब उसके प्रलाप रूप मे उसकी उन्मत्तता का कुल प्रसाद सहृदय-जनो को मिल जाता है। वह प्रलाप ही काव्य है। तत्ववेत्ता और कवि मे अन्तर है। तत्ववेत्ता मस्तिष्क का निवासी है और कवि हृदय का। हृदय त्रिगुणात्मक सृष्टि का केन्द्र है। कवि उसी केन्द्र मे स्थित होकर सृष्टि का निरीक्षण करता है। हृदय मनुष्य मात्र के है। पर कुछ तो हृदय के मर्म समझते ही नही, कुछ समझते तो है, पर उनकी वाणी मे इतनी शक्ति नही होती कि वे उसे प्रकट कर सके। कवि हृदय की बाते समझता भी है और उसे कह भी सकता है। साधारण जन और कवि मे यही अन्तर है।

कवीना मानस नौमि तरन्ति प्रतिभाम्भसि।
यत्र हसवयासीव भुवनानि चतुर्दश ॥

अर्थात् कवि के हृदयरूपी मानसरोवर को मै नमस्कार करता हू; जिसके प्रतिभारूपी जल मे चौदहो भुवन हस की तरह तैरा करते है।

अग्रेज कवि शेक्सपियर ने कहा है—

The lunatic, the lover and the poet,
Are of imagination all compact

अर्थात् पागल, प्रेमी और कवि, इनकी कल्पनाए एक-सी होती है।

कवि जब एक अलौकिक आनन्द की दशा मे जागृत होता है, तब लोग उसे पागल कहते है। प्रेमी की भी ऐसी ही दशा होती है। पर प्रेमी अपने आनन्द को प्रकट नही कर सकता, वह एकान्त मे अकेले आनन्द का अनुभव करना पसन्द करता है। और कवि स्वय अनुभव करके दूसरो को बॉटता भी है। दोनो मे यही अन्तर है। दोनो का अन्तर इस शेर से और भी साफ हो जाता है—

इश्क कहता है कि आलम से जुदा हो जाओ।
हुस्न कहता है जिधर जाओ नया आलम है ॥

प्रेमी इश्क का उपासक होता है और कवि हुस्न का।

कवि की कोई बात सौन्दर्यहीन नही होती, सब मे कुछ-न-कुछ

चमत्कार होता है। उसकी दृष्टि साधारण लोगो की दृष्टि से भिन्न होती है। उसका कथन निराले ढग का होता है। ससार की तुच्छ-से-तुच्छ बातो में भी वह सौन्दर्य ढूँढ निकालता है। गढो मे बरसात का पानी जमा होकर जब सूख जाता है तब उसमे कीचड शेष रह जाती है। जब कीचड का पानी भी सूख जाता है तब उसमे दरारे पड जाती है। यह ससार की ऐसी साधारण-सी घटना है कि गढे के पास से आने-जाने वाले लोग कभी इस घटना पर ध्यान भी नही देते। किन्तु कवि की दृष्टि से वह कहाँ छूट सकता है? तुलसीदास ने कीचड ऐसे तुच्छ पदार्थ को और उस पर बीती हुई प्रकृति की एक अत्यन्त साधारण घटना को सौन्दर्य से चमत्कृत कर दिया। वे कहते है—

हृदय न विदरेउ पक जिमि, बिछुरत प्रीतम नीर।
जानत हौ मोहि दीन्ह विधि, यह जातना-सरीर॥

अर्थात्, प्रियतम जल के बिछुडते ही कीचड का हृदय फट गया, किन्तु मेरा नही फटा। इससे जान पडता है कि विधाता ने मुझे यातना भोगने के लिए ही यह शरीर दिया है।

कीचड के मन की वेदना कवि के सिवा साधारण जन कैसे समझ सकते है?

ससार मे कौन मनुष्य नही रोया? मनुष्य-जीवन मे रोना सब से पहला काम है। रोने के साथ आँखो से आँसुओ की धारा बहती है। आँसू किसने नही देखा? पर कवि की दृष्टि से सब नही देखते। आँसुओ के साथ रहीम ने एक अद्भुत रहस्य खोज निकाला है।

"रहिमन" अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेय।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देय॥

जिसे हम घर से निकाल देगे, वह घर का भेद अवश्य प्रकट कर देगा। जैसे आँसुओ ने निकल कर हृदय का दुःख बता दिया।

कवि सौन्दर्य देखता है। चाहे वह सौन्दर्य बहिर्जगत् का हो, चाहे अन्तर्जगत् का। जो केवल बाहरी सौन्दर्य का ही वर्णन करता है, वह

कवि है, पर जो मनुष्य के मन के सौन्दर्य का भी वर्णन करता है वह महाकवि है । भीतरी सौन्दर्य के वर्णन करने मे ही कवि की कवित्व-शक्ति का पता चल सकता है । देखिये तुलसीदास ने वाहरी और भीतरी दोनों सौन्दर्यो का एक साथ कितना सुन्दर वर्णन कर दिया है—

विष्णु कहा अस विहँसि तव, वोलि सकल द्विजराज ।
बिलग बिलग होइ चलहु सव, निज निज सहित समाज ।।
वर अनुहारि वरात न भाई । हँसी करइहउ परपुर जाई ।।
विष्णु वचन सुनि सुर मुसकाने । निजनिज सेन सहित विलगाने ।।
मन ही मन महेस मुसुकाही । हरि के व्यङ्ग्य वचन नहि जाही ।।

"मन ही मन महेस मुसुकाही" लिखकर तुलसीदास ने कवित्वशक्ति का अद्भुत परिचय दिया है । शकर के मन मे विष्णु के लिए अगाध प्रेम है । उस प्रेम के समुद्र को तुलसीदास ने इस चौपाई के एक चरण रूपी नन्हे से बूंद मे भर कर रख दिया है ।

वाहरी सौन्दर्य तो सुचतुर चित्रकार के चित्र मे भी देखने को मिल सकता है, पर मन का सौन्दर्य महाकवि की वाणी ही मे मिलता है । चित्रकार विम्बोष्ठी, चारुनेत्रा, हिमकरवदना, कान्तकुन्तला, पृथुलजघना कामिनी का ऐसा मनोहर चित्र बना सकता है कि सभव है वैसा चित्र कवि अपनी कविता मे न खीच सके । पर चित्रकार उस रमणी के हृदय को कैसे दिखला सकता है ? वह सेनापति के इस छद का भाव कैसे चित्रित कर सकता है ?

फूलन सो बाल की बनाइ गुही बेनी लाल
भाल दीन्ही बेदी मृगमद की असित है ।
अग अग भूषन बनाइ ब्रजभूषन जू
बीरी निज कर तै खवाई अति हित है ।।
ह्वै कै रसबस जब दीबे को महावर के
सेनापति स्याम गह्यो चरन ललित है ।।

चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आखिन सो
कही, प्रानपति ! यह अति अनुचित है ।।

"यह अति अनुचित है" बताकर कवि ने जो स्त्री के हृदय की छटा दिखलाई है, वह चित्रकार नही दिखला सकता ।

कवि की कविता का प्रभाव स्वय कवि के हृदय पर नही पडता । वह शृगार रस की मनोहर कविता लिखता है । कितने ही युवक-युवती उसकी कविता पढकर प्रेमोन्मत्त हो जाते है । पर स्वय कवि उस कविता के लिख चुकने पर निश्चिन्त-सा होकर अपने मामूली काम मे लग जाता है । वह वीर-रस की कविता लिखता है । सभव है, उसकी कविता पढकर कोई व्यक्ति युद्ध मे निर्भयता से प्राण दे दे । पर कवि महाशय तो उस कविता की रचना करने के बाद शायद नहाने-धोने और खाने-पीने मे लग जाया करते है । वे कविता पढते-पढते युद्ध-क्षेत्र की ओर दौडते हुए नही दिखाई पडेगे । उनकी करुण और शातिरस की कविता पढकर कोई सहृदय चाहे ससार से विरक्त, राग-द्वेष से रहित हो जाय । पर कवि महाराज अपना शरीर सजाने मे शायद ही कभी त्रुटि करे । इन बातो के लिखने का अभिप्राय यह है कि कवि का हृदय जल मे कमलपत्र की तरह निर्लेप होता है । उसपर उसकी ही कल्पना या रचना का कोई प्रभाव नही पडता । सस्कृत के एक पडित ने इस पर कवि का गूढ परिहास करते हुए यह लिखा है—

कवि करोति काव्यानि स्वादु जानन्ति पण्डिता ।
सुन्दर्या अपि लावण्य पतिर्जानाति नो पिता ।।

कवि काव्य रचता है, पर स्वाद पण्डित जानते है । जैसे, सुन्दरी स्त्री के लावण्य को उसका पति जानता है, (उत्पन्न करनेवाला) पिता नही ।

कवि अपने लिए कविता नही रचता, दूसरो के लिए रचता है । एकान्त स्थान मे बैठकर, इन्द्रियासक्ति परित्याग करके वह सहृदय रसिकजनो के लिए काव्य रचता है । कवि के समान परोपकारी कौन है ?

कवि कैसी ही हीन-दशा मे क्यो न हो, वह स्वभाव मे राजा और उदारता मे हरिश्चन्द्र से कम नही होता। किसी राजा को एक बडा देश विजय करने मे उतना आनन्द नही होता, जितना कवि को एक शब्द किसी स्थान पर ठीक बैठा देने मे होता है। शब्द ही उसकी सम्पत्ति है, वही उसकी सेना है। शब्दो से वह विश्व का हृदय जीतने की शक्ति रखता है। जब वह काव्य रचने बैठता है, तब उसके ब्रह्माड मे शब्दो के समूह-के-समूह चक्कर लगाते है। कवि उनमे से पकड-पकड़कर उन्हे उपयुक्त स्थानो पर सजा देता है। कभी-कभी कौडी के मोल के शब्द को वह ऐसे स्थान पर जड देता है, जहा वह हीरे की तरह चमक उठता है। "कहु" (कही) एक साधारण शब्द है। पर श्रीधर पाठक ने उसके हाथ मे सुधा-भवन की चाबी ही सौप दी है।

यही स्वर्ग सुरलोक यही सुरकानन सुन्दर।
यहि अमरन कौ ओक यही कहु बसत पुरन्दर ॥ 'काश्मीर सुखमा'

"यही कहु बसत पुरन्दर" मे "कहु" पुरन्दर से भी अधिक प्रभावशाली बन गया है। काश्मीर मे पाठकजी को पुरन्दर के मिलने से कितना आनन्द होता, इसका अनुभव अकेले पाठकजी ही कर सकते है। पर "कहु" सहृदय रसिक पाठको को घर बैठे इन्द्र-मिलन से भी अधिक आनन्द प्रदान कर रहा है। कवि और शब्द की विचित्र महिमा है। शब्द कवि को अमर बना देते है और कवि शब्द को भाग्यवान्।

कवि दो प्रकार के होते है। एक कवि केवल अपनी कथा कहता है। अर्थात् अपनी प्रतिभा द्वारा केवल अपने हृदय के सुख-दु ख, कल्पना और अनुभव को कविता रूप मे प्रकट करता है। वर्तमान काल मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर इसी श्रेणी के कवि है। दूसरे प्रकार का कवि समस्त देश, समग्र जाति या युग की कथा कहता है। वह कवि केवल निमित्त मात्र होता है, उसके द्वारा समग्र जाति की सरस्वती बोलती है। उसकी रचना किसी व्यक्ति विशेष की रचना नही रह जाती। उसकी रचना सम्पूर्ण समाज की मिलकियत हो जाती है। तुलसीदास एक व्यक्ति का नाम था।

एक जनसमूह की सरस्वती उनके द्वारा प्रकट हुई। उन्होने उस जनसमूह के हृदय की बात कही। वह जनसमूह तुलसीदास के कथन को अपनी सम्पत्ति समझता है। इसीसे वह कथन अजर और अमर होगया कितने ही ऐसे अपढ और ग्रामीण मनुष्यो के मुख से भी कभी-कभी—

होइ है वहि जो राम रचि राखा।

* * *

जाकर जापर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु सदेहू ॥

आदि सुन पडता है, जो तुलसीदास को जानते भी नही। इसका कारण यह है कि वे अपनी वस्तु का उपयोग करते है। तुलसीदास के लिए उनको केवल इसीलिए कृतज्ञ होना चाहिये कि तुलसीदास ने उनके हृदय की बातो को पद्य-रूप मे करके बोलने मे आसान बना दिया। तुलसीदास अपनी रचना मे व्याप्त होकर अदृष्य हो गये। लोग उनके वचन को अपना-सा मानकर बोलते है। यही कवि की व्यापकता है। जो कवि व्यापक नही, उसकी कविता जब कभी उदाहरण रूप मे उपस्थित होती है, तब उसके साथ उसका नाम भी लगा रहता है। पर तुलसीदास के वचनो के साथ उनके नाम की आवश्यकता नही पडती, क्योकि तुलसीदास दूध और शक्कर की तरह समाज मे घुल-मिल गये है। यही उनका अमरत्व है, यही उनका महा-कवित्व है। आज उनकी अमर-वाणी से धार्मिक हिन्दुओ के मन्दिर, घर, मुख और श्रवण गूज रहे है। इसीप्रकार हिन्दी के और भी कितने ही अमर कवि है, जैसे कबीर, सूर, मीराबाई आदि, जो हिन्दू-समाज मे अपने लिए खास स्थान रखते है। वह कैसी शुभ घडी थी, जब उनकी वाणी से या लेखनी से एक वाक्य निकल गया और वह हजारो मुखो से प्रतिध्वनित हो उठा। न जाने उनकी किस तपस्या के फल से, किस मत्र की साधना से उनको वाणी रूपी तागे का अन्त नही आता और अब तक उसमे सहस्रो हृदय-सुमन पिरोये जा रहे है।

कवि की योग्यता के सम्बन्ध में नारद ने "सगीत-मकरन्द" मे यह श्लोक लिखा है—

शुचिर्दक्ष शान्त सुजनविनत सूनृततर
कलावेदी विद्वानतिमृदुपद काव्यचतुर
रसज्ञो दैवज्ञ सरस हृदय सत्कुलभव
शुभाकारश्छन्दोगुणगणविवेकी स च कवि

इतने गुण जिस पुरुष मे हो, वह ससार मे कितना भाग्यशाला होगा ! कवि होना कैसे सौभाग्य की बात है !!

आजकल की हिन्दी-कविता की ओर जब हम ध्यान देते है, तब बहुत निराश होना पडता है। कोरी तुकबन्दी को कविता का नाम दिया जारहा है, बक को हस और कौवे को मोर बताया जारहा है। जिस पद्य मे न रस है, न माधुर्य, न प्रसाद और न अलङ्कार, उसे कविता को उपाधि से विभूषित किया जा रहा है। और उसके रचयिता को समाचार पत्रो के चाटुकार सम्पादक कविवर, कवि-केसरी, कवि सम्राट्,कवि-कुजर कवि-पुङ्गव, कवीन्द्र आदि कहकर उसकी रचना के द्वारा अपने पत्र की ग्राहक-सख्या बढाने के प्रयत्न मे है। यह कितने खेद की बात है ! कवि की जिम्मेदारी इतनी बडी है कि तुलसीदास भी कवि होने का दावा नही करते थे। किन्तु आजकल नीरस तुकबन्दी करने वाला भी कवि-सम्राट् कहकर आघोषित किया जाता है । ऐसा करके प्रशसक लोग अपनी काव्य-शास्त्र सम्बन्धी अनभिज्ञता की घोषणा करते है या पद्य-रचयिता की प्रशसा ! यह सोचने की बात है । प्रशसा तो वह है जो यथार्थ हो। असत्य प्रशसा तो निन्दा ही का एक रूप है।

लिखते-लिखते अन्त मे मै कुछ कडी बाते लिख गया। इसके लिए मुझे खेद है; पर मेरा उद्देश्य यह नही कि इससे किसी सम्पादक या कवि का जी दुखे। मै तो सिर्फ यह चाहता हूँ कि काव्य-शास्त्र का अच्छी तरह अध्ययन कर लेने के बाद लोग कविता रचने का श्रम करे। आज-कल की खडी बोली की कविता मे काव्य के गुण न होने से पढते समय ऐसा जान पडता है मानो जीभ के मैदान पर अक्षर लट्ठ चला रहे है। ऊपर काव्य और कवि के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा गया है, वह उत्ते-

जित करने के लिए एक सकेत मात्र है । हमारे युवक कविगण इधर ध्यान देंगे तो उनके द्वारा हिन्दी मे उत्तम कविता की सृष्टि होने की पूर्ण सम्भावना है । कविता-कौमुदी मे जो कवितायें सग्रह की गई है, उनमे काव्य के सभी गुण मिलेगे। काव्यशास्त्र का थोडा-बहुत भी ज्ञान रखने वाले को इन कविताओ मे अन्य पाठको की अपेक्षा अधिक आनद प्राप्त होगा। इसलिए मैंने यह विषय कुछ विस्तार से लिख दिया है।

यहाँ तक तो काव्य और कवि सम्बन्धी बातें हुईं । अब कविता-कौमुदी की चर्चा और रह गई। कविता-कौमुदी के चौथे सस्करण तक इसके प्रत्येक सस्करण मे कुछ न कुछ परिवर्तन और परिवर्द्धन होते आये है। जबतक मेरी तृप्ति नही हो गई, तब तक मै परिवर्तन को रोक नही सका। अब कविता-कौमुदी का यह रूप सदा के लिए निश्चित हो गया है। अब परिवर्तन की गुजाइश, मेरी राय मे, नही रह गई।

हिन्दी-ससार ने इस पुस्तक का बड़ा आदर किया। जहाँ इसे कलकत्ता, पटना और काशी के विश्वविद्यालयो ने एम० ए०, बी० ए० और एफ० ए० के कोर्स मे स्थान दिया, वहाँ हिन्दी-साहित्यिको ने इस ढग की पुस्तको मे इसे सर्वोच्च स्थान देकर आदर किया है । मै इसे अपनी आशातीत सफलता समझ कर उत्साहित होता हूँ।

इस पुस्तक के कवियो की कविताएँ चुनने मे मैंने किसी खास विषय को लक्ष्य मे नही रखा। जिस कविता मे मुझे कवि की प्रतिभा दिखाई पडी, मैंने उसे ही चुन लिया। कवि के हृदय को असली रूप मे पाठकों के सामने लाने में मैंने कोई बाधा नही पहुँचाई। इस कारण कुछ कविताएँ ऐसी भी आ गई है, जो अश्लील कही जा सकती है। किन्तु उनमे कवि का चमत्कार है, इससे विवश होकर उन्हे चुनना ही पडा। जो कवि जिस रस के लिए प्रसिद्ध है उसकी उसी रस की कविता अधिक सख्या मे दी गई है। इस कारण से यह पुस्तक साधु-सन्त, साहित्य-रसिक, हास्य-प्रिय, प्रेमी, शृगारी और नीति जानने की इच्छा वाले सभी श्रेणी के लोगो के लिए उपयोगी हो गई है । मुझे कितनी ही बार यात्रा मे

यह देखकर सुख हुआ है कि बहुत से पढे-लिखे यात्री इस पुस्तक को एक मित्र की भाँति यात्रा मे साथ रखते है।'

जहाँ तक मिल सके, कवियो के ग्रन्थो को मैंने स्वय अध्ययन करके यह पुस्तक लिखी है। फिर भी शिवसिंहसरोज, मिश्रबन्धुविनोद, सतबानी पुस्तकमाला, नागरी प्रचारिणी सभा की रिपोर्टें और लेख-मालाये तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की लेख-मालायें और अंग्रेजी में सर जॉर्ज ग्रियर्सन और श्री विसेन्ट स्मिथ की हिन्दी-साहित्य और भारतीय इतिहास सम्बन्धी पुस्तको से सहायता लेनी पडी है। मै हृदय से इन सब पुस्तकों के लेखको का कृतज्ञ हूँ।

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग।
श्रावण कृष्ण ५, १९८०

—रामनरेश त्रिपाठी

# प्रस्तावना

कविता सृष्टि का सौन्दर्य है, कविता ही सृष्टि का सुख है, और कविता ही सृष्टि का जीवन-प्राण है। परमाणु मे कविता है, विराट् रूप में कविता है, विन्दु मे कविता है, सागर मे कविता है, रेणु मे कविता है, पर्वत मे कविता है, वायु और अग्नि मे कविता है, जल और थल में कविता है, आकाश मे कविता है, प्रकाश मे कविता है, अन्धकार में भी कविता है, सूर्य, चन्द्र और तारागण मे कविता है, किरण और कौमुदी में कविता है, मनुष्य मे कविता है, पशु मे कविता है, पक्षी में कविता है, वृक्ष मे कविता है, जिधर देखो कविता ही का साम्राज्य है। प्रकृति काव्यमय है, सारा ब्रह्मांड एक अद्भुत महाकाव्य है। जिस मनुष्य ने इस सारगर्भित रसमयी कविता के आनन्द का स्वाद चखा, वह भाग्यवान् है। जिसने इस सरस्वती-मन्दिर मे कुछ शिक्षा ग्रहण की और मनन किया वही पण्डित है। जिसने इस पवित्र प्रवाह मे अपने को बहा दिया, वही विरक्त है। जिसने इस अमृत-प्रवाह मे डूबकर, दो-चार कलश भरकर, प्यासे थके हुए रोगी वा मृतप्राय यात्रियो को कुछ बूंदे पिलाकर उन्हे शक्ति दी और पुनर्जीवित किया, वही कवि है।

ईश्वरीय सौन्दर्य को—प्राकृतिक कविता को भाषा की छटा द्वारा ससार को दरसाना ही कवि का कर्त्तव्य है। जितना गहरा वह अपनी प्रतिभा द्वारा इस-सौन्दर्य-सागर में डूवता है, उतना ही अधिक वह अपने कर्त्तव्य मे सफल होता है। ससार के पदार्थो और घटनाओ को सभी देखते है, परन्तु जिन आँखो से उन्हे कवि देखता है वे निराली ही होती है। गँवार के लिए पहाडो के भीतर से आती हुई नदी एक नदी मा है; कवि के लिए उस श्वेतवस्त्रा शोभायुक्त लाजवती का नाचता हुआ

शरीर शृङ्गार की रङ्गभूमि है। आँख वही, पर चितवन मे भेद है। बिहारी ने यह तो सच कहा है—

अनियारे दीरघ नयन, किती न तरुनि समान ।
वह चितवन कछु और है, जिहि वस होत सुजान ॥

किन्तु बिहारी ने इस रसीले दोहे मे केवल बाहरी आँखो ही के रस का वर्णन किया—और वह भी अधूरा। वास्तव मे वश करनेवाली आँखों मे इतना भेद नही होता, जितना वश होनेवाली आँखो मे। हीरे की परख जौहरी की आँखे करती है, कुब्जा के सौन्दर्य्य की पहचान रस-प्रवीण कृष्ण ही को होती है, पदार्थ रूपी चित्रो मे चितेरे के हाथ की महिमा कवि की ही आँखे पहचानती है, प्राकृतिक दैवी सङ्गीत उसी के कान सुनते है। विज्ञानवेत्ता पदार्थों के बाहरी अङ्गो की छानबीन करता है, और उनके अवयवो का सम्बन्ध ढूँढता है, नीतिज्ञ उनसे मनुष्य-समाज के लिए परिणाम निकालता है, किन्तु उनके आन्तरिक सौन्दर्य्य की ओर कवि ही का लक्ष्य रहता है। वैज्ञानिक और नीतिज्ञ भी जैसे-जैसे अपने लक्ष्य की खोज मे गहरे डूबते है, वैसे-वैसे कवि के समीप पहुँचते जाते है। सभी विद्याओ और शास्त्रो का अन्त और उनकी सफलता कविता मे लीन होने ही मे है। कवि के सम्बन्धमे कहा है—

जानाते यन्न चन्द्रार्कौ जानन्ते यन्न योगिन ।
जानीते यन्न भर्गोपि तज्जानाति कवि स्वयम् ॥

यह कवि और कविता का आदर्श है, इसी आदर्श की ओर सच्चा कवि जाता है। जितना ही वह उसके समीप पहुँचता है, उतना ही वह प्रभावशाली और उसकी कविता स्थायी होती है। भाषा तो केवल एक पहनावा मात्र है। उसकी कविता वास्तव मे ससार के लाभ के लिए होती है, क्योकि कवि की सृष्टि मे सम्पूर्ण प्रजातन्त्र है, समष्टिवाद का शुद्ध व्यवहार है। यहाँ स्वतन्त्रता है, स्वच्छन्दता है, अपरिमित सम्पत्ति है। कोई रोकनेवाला नही, जितना चाहो उसमे से लेते जाओ, वह घटती नही। तुममे केवल इच्छा और शक्ति की आवश्यकता है।

हिन्दी बोलनेवालो का यह सौभाग्य है कि कविता के ऊचे आदर्श के समीप तक पहुचने वाले कई कवि ऐसे हुए है जिन्होने हिन्दी भाषा द्वारा अपनी अमूल्य वाणी से ससार का उपकार किया है। मनुष्य-जाति सदा उनकी ऋणी रहेगी। कबीर, सूर और तुलसी—अहा! इनके नामो का स्मरण करते ही किस दीप्यमान सौन्दर्य और पवित्र आनन्द की सृष्टि के द्वार खुल जाते है—इनके भावो को जिसने समझा, वह सच्चा पण्डित है, इनके मर्म को जिसने पाया, वह स्वय महात्मा है। ससार साहित्य की चर्चा करता है, काच को हीरा जानकर उसके पीछे दौड़ता है, खेल के गुड्डे को बालक समझकर उसका विवाह करता है; और अपनी करतूत पर अभिमानी बनता है। अनेक भाषाए अपने-अपने काच के टुकडो को सामने रख हीरे का दम भरती है, किन्तु जैसा कबीर जी ने कहा है--

सिहन के लहडे नही, हसन की नहि पात।
लालन की नहि बोरिया, साधु न चले जमात॥

कवियो के भी लहडे नही होते। वह काल, वह देश भाग्यवान् है जहा एक भी कवि उत्पन्न हो जाय। कबीर, सूर और तुलसी यह हिन्दी भाषा ही के नही, ससार-साहित्य के लाल है, परखनेवाले की आवश्यकता है। कबीर के दोहो और शब्दो की परख कौन करता है? सूर के पदो और तुलसी की चौपाइयो को कौन तोलता है? मात्रा और अक्षरो के गिननेवाले समालोचक? छि। परखने के लिए कुछ हृदय की सामग्री चाहिए, पुस्तको के आडम्बर की आवश्यकता नही। इन कवियो के हँसने और रोने का अर्थ कौन समझता है? इनके वाक्यो के मर्म तक कौन पहुचता है? स्वय कोई मस्त प्रेमी, कोई कविता का मतवाला, जो शुद्ध हृदय से, अभिमान छोड, इस सृष्टि के भीतर नम्रता-पूर्वक शिष्य बनकर आता है।

"ढाई अक्षर प्रेम का, पढे सो पण्डित होय।"

कुछ काच पहचाननेवाले समालोचक हिन्दी-भाषा मे साहित्य की

कभी देखते है । गाव का रहनेवाला, जिसने अपनी गाव की दुकान में रंग-बिरग के काच के टुकडे देखे है, नगर में आकर जब एक बडे जौहरी की दुकान मे जाता है तो अपने गांव की दुकान के समान रगीले काचो को न देखकर बहुमूल्य मणियो का तिरस्कार करता है, और कहता है— हमारे गाव की दुकान के समान यहा मणिया तो है ही नही । ठीक यही दशा इन समालोचको की है । "यह गाहक करबीन के, तुम लीनी कर बीन ।" यदि मणि की परख न हो तो मणि का दोष नही, परखनेवाले का दोष है । किन्तु काच का भी ससार मे काम है, ये भी चमकीले होते है, देखने मे अच्छे लगते है । कांच के टुकड़े भी धन्य है, उनमे भी सौन्दर्य है, वे आनन्द बढ़ाते है—किन्तु हीरो और लालो की बात कुछ और ही है ।

इस "कविता-कौमुदी" की छटा, संग्रह होने के कारण बादलो से छनकर आती है, तो भी अधकार दूर करने के लिए पर्याप्त है । इसमे अमूल्य मणियो की लड़िया है, साथ-साथ रगीले काच के टुकडो की बन्दनवारे भी है । बहुत से काच के टुकडे बहुमूल्य है, इनका भी शृगार शोभायमान है; और अपने-अपने स्थान पर सभी आदरणीय है ।

प्रयाग,
मार्गशीर्ष शुक्ल ३, सवत् १९७४

पुरुषोत्तमदास टण्डन

# हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास

## भाषा

हृदय एक पुष्प है, भाषा उसका विकास है और भाव गन्ध है।

हृदय एक वाद्य-यन्त्र है, रसना रीड है, इच्छा उंगली है और भाषा झंकार है।

भाषा विचार का साकार रूप है।

भाषा से देश जाना जाता है। हम देश के जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी और आकाश के संक्षिप्त रूप हैं। हम स्वयं देश हैं। भाषा हमारी कीर्ति है।

विचार भाषा का पुत्र है, कार्य पौत्र है, और सम्मति कन्या है, जो प्रदान की जाती है, और दूसरे घर मे जाकर वृद्धि पाती है।

प्रत्येक पूरी बात को वाक्य कहते हैं। प्रत्येक वाक्य शब्दो का समूह है। प्रत्येक शब्द एक सार्थक ध्वनि है। भाषा वाक्यो का समूह है।

चार पैर, पूंछ, सींग आदि अंगो से युक्त एक पशु विशेष का नाम हमने गाय रख लिया है। गाय शब्द और गाय पशु से कोई साक्षात् सम्बन्ध नही; परन्तु गाय शब्द के उच्चारण से गाय पशु का बोध तत्काल हो जाता है।

यदि हमने सब वस्तुओ और सब क्रियाओ का नाम रख लिया होता तो अपने मनोगत भावो के प्रकट करने में हमें बडी ही कठिनता पडती। हाथ मुंह आदि के संकेतो से हम अपने मनोभाव पूर्ण रूप से प्रकट ही न कर सकते। संसार के व्यवहार मे कभी उन्नति न होती।

साधारण रूप से भाषा के दो भेद किये जा सकते है। एक व्यक्त, दूसरा अव्यक्त। विचारो को पूर्ण रूप से प्रकट करनेवाली मनुष्य की भाषा

व्यक्त कहलाती है, और पशु-पक्षी की बोली अव्यक्त। पशु-पक्षी अपनी बोली से दु ख, सुख, भय आदि मनोविकारों को प्रकट करने के सिवाय कोई नई बात नही बतला सकते। जब हम सोचते है तब भीतर ही भीतर मन से हम एक प्रकार की बातचीत करते रहते है। यदि हम चाहे तो उसी बातचीत को एकत्र करके लिख ले सकते है। बहुत समय बीत जाने पर भी हम उस लेख को देखकर यह स्मरण कर सकते है कि किसी दिन हमने अपने मन से इस विषय पर बातचीत की थी। भाषा बिना यह सुगमता कैसे हो सकती है ?

व्यक्त भाषा के दो भाग है—कथित और लिखित। जब कोई मनुष्य हमारे सामने होता है, तब उसके लिए अपने विचार प्रकट करने मे हम कथित भाषा काम मे लाते है। और जब हमे अपने विचार किसी दूर वाले मनुष्य के पास भेजने पडते है, या भविष्य के लिए चिरस्थायी रखने पडते है, तब हम लिखित भाषा का उपयोग करते है।

हमारे पूर्वजो ने लिखित भाषा के लिए शब्द की एक-एक मूल ध्वनि का एक-एक चिन्ह नियत कर लिया है, जिन्हे अक्षर या वर्ण कहते है। पहले भाषा मे केवल कान ही काम देता था, वर्णों की रचना से आख भी भाषा के लिए उपयोगी हो गई।

पहले लोग कथित भाषा से ही काम लेते थे। बड़े-छोटे सब प्रकार के विचार केवल कथन द्वारा प्रकट किये जाते थे। जो विचार सुननेवाले को प्रिय लगते थे, उन्हे वह स्मरण रखता था; और अप्रिय विचारो को चाहे वे भविष्य मे उसके लिए लाभदायक ही हो, वह उपेक्षा के भाव से देखता था। इसका परिणाम यह होता था कि आगे चलकर उसे यदि पूर्वकाल के अप्रिय विचारो की ही आवश्यकता पड़ती थी तो फिर उसे सोचना पडता था। परन्तु अक्षर-लिपि की उत्पत्ति से यह असुविधा दूर हो गई। अब विचार चिरस्थायी किये जा सकते है। आज जो कुछ हम सोचते है उसे लिखित भाषा के रूप मे रख सकते है और हजारो वर्ष बीत जाने पर भी वे देखे जा सकते है। अक्षर-लिपि की ही सहायता से

तो हम आज वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और तुलसीदास के विचारो का इस प्रकार जान सकते है, मानो वे स्वय हमारे सामने आकर कर रहे हो।

भाषा सदा स्थिर नही रहती। उसमे परिवर्तन होता रहता है। हजारो वर्ष पहले जो भाषा बोली वा लिखी जाती थी, आज उसका वह रूप नही है। भाषा का नया और पुराना रूप मिलान कर देखने से यह बात आसानी से जानी जा सकती है कि परिवर्तन किस प्रकार से हुआ है। भाषा-तत्व के पडितो का कथन है कि जब भाषा मे परिवर्तन रुक जाता है तब उसकी उन्नति भी रुक जाती है। सभ्यता के साथ भाषा का घनिष्ट सम्बन्ध है। सभ्यता की वृद्धि के साथ भाषा की भी वृद्धि होती है। उसमे नये विचार और उन विचारो के द्योतक नये शब्द मिलते रहते है, और भाषा का भण्डार बढता रहता है। भाषा मे परिवर्तन कैसे होता है ? विचार करने से इसके ये कारण जान पडते है—स्थान, जल-वायु और सभ्यता का प्रभाव और उच्चारण का भेद। बहुत से शब्द जो एक देश के लोग बोल सकते है, दूसरे देश के लोग नही बोल सकते। शीत-प्रधान देशो मे ऐसे शब्दो का बहुत प्रयोग होता है, जिनसे मुख को अधिक खोलना न पडे, जैसे अग्रेजी भाषा के अधिकाश शब्द। उष्ण प्रधान देशों मे ऐसे शब्द अधिक बोले जाते है जिनसे मुख का अधिक भाग खोलना पडता है, जैसे भारतीय भाषाओ के शब्द। एक ही देश मे भी भिन्न-भिन्न जलवायु के कारण एक ही शब्द के उच्चारण मे कभी-कभी बडा अन्तर पाया जाता है। मरुस्थलो के निवासी कण्ठ से बोले जानेवाले शब्दो का अधिक प्रयोग करते है। बगाल के निवासी सस्कृत-शब्दो का भी विचित्र उच्चारण करते है।

कुछ विद्वानो का अनुमान है कि सृष्टि के आरम्भ काल मे सब मनुष्य एक ही स्थान—मध्य एशिया मे रहते थे और उस समय उनकी भाषा एक थी। कुछ विद्वानो का कथन है कि आर्य लोग पहले-पहल तिब्बत से भारतवर्ष मे उतरे। वही से वे काबुल होकर पश्चिम की ओर फैल गये। जो हो, जीविका की खोज में या अन्य किसी कारण से वे

भिन्न-भिन्न देशो में जा बसे। गंगा के किनारे से लेकर आइसलेंड तक, स्वीडन से क्रीट तक, आर्यों की शाखायें फैल गई थी। भारत का अधिकांश भाग, अफगानिस्तान, ईरान और आर्मिनिया इतना एशिया का भाग और तीन चौथाई भाग रूस का स्वीडन और नारवे का अधिकांश भाग और बास्क, हंगरी और तुर्किस्तान के अतिरिक्त यूरोप के अधिकांश भागों में आर्यों की भिन्न-भिन्न टोलियां जा बसी थीं।

जो लोग यह मानते है कि आर्य लोग मध्य एशिया से भारत में आये, उनके कथनानुसार आर्यावर्त्तमे पहले पहल आर्य लोग सिन्धु नदी के किनारे पर बसे। धीरे-धीरे वे सारे देश मे लंका, ब्रह्मा, कम्बोडिया और मलाया तक फैल गये। आर्यों की खास बस्ती होने के कारण विन्ध्याचल और हिमालय के बीच के प्रदेश का नाम आर्यावर्त पड़ गया। भिन्न-भिन्न देशों के जलवायु की भिन्नता के प्रभाव से आर्यों की आदिम एक भाषा के उच्चारण मे अन्तर पड़ता गया। नवीन देश मे आकर नवीन वस्तुओं के लिए और स्थिति के अनुसार नवीन प्रारम्भ किये हुए कार्यों के लिए उन्हे नवीन शब्दो की कल्पना करनी पडी, जिनसे उनकी आदिम भाषा को नवीन शब्दों से अलकृत नवीन रूप धारण करना पड़ा। परन्तु जब सब मनुष्य साथ ही रहते थे और उनकी भाषा भी एक थी, उस समय बोलचाल मे जो शब्द प्रचलित थे, उनमे से अधिकांश शब्द नवीन देश की नवीन भाषा में भी थोडे परिवर्तन के साथ ज्यो के त्यो रह गये। यहां हम भिन्न-भिन्न भाषाओं के कुछ समानार्थ शब्दो का संग्रह करके अपने कथन का खुलासा किये देते हैं—

| संस्कृत | मीडी | यूनानी | लैटिन | अंग्रेजी | फारसी | हिन्दी |
|---|---|---|---|---|---|---|
| पितृ | पतर | पाटेर | पेटर | फादर | पिदर | पिता |
| मातृ | मतर | माटेर | मेटर | मदर | मादर | माता |
| भ्रातृ | ब्रतर | फ्राटेर | फ्रेटर | ब्रदर | बिरादर | भ्राता |
| नाम | नाम | ओनोमा | नामेन | नेम | नाम | नाम |
| अस्मि | अह्मि | ऐमी | एम | ऐम | अम | हूं |

इत्यादि, इन शब्दो की समानता से यह प्रमाणित किया जाता है कि हम सब के पूर्वज कभी एक ही भाषा बोलते थे। आदिम स्थान से, जहा पर सब साथ ही साथ रहते थे, जो लोग पश्चिम को गये,उनसे ग्रीक, लैटिन, अंग्रेजी आदि भाषा बोलनेवाली जातियो की उत्पत्ति हुई। और जो लोग पूर्व को गये, उनके दो भाग हो गये। एक भाग फारस को गया और दूसरा कावुल होता हुआ भारतवर्ष पहुचा। पहले दल ने ईरान में मीडी भाषा के द्वारा फारसी भाषा की सृष्टि की, और दूसरे दल ने संस्कृत का प्रचार किया। सस्कृत का अर्थ है सुधरी हुई भाषा। संस्कृत के पहले जो भाषा वोली जाती थी, इसका नाम प्राकृत था। वेदो मे कुछ मत्र पहली प्राकृत म पाये जाते हैं। व्याकरण वन जाने पर उसी पहली प्राकृत का सुसस्कृत रूप "सस्कृत" नाम से प्रसिद्ध हुआ। सस्कृत को नियमित करने मे पाणिनि का व्याकरण सव से प्रसिद्ध है। सस्कृत से दूसरी प्राकृत का जन्म हुआ। और इसी दूसरी प्राकृत से ही हिन्दी आदि भाषाए निकली है।

आर्य भाषा के मुख्य दो विभाग है, एशिया खड की भाषाए और युरोप खड की भाषाए। यहा सक्षेप से आर्य, भाषा, उसकी शाखा-प्रशाखाओ और अन्य स्वतन्त्र भाषाओ का विवरण दिया जाता है—

एशिया-खड की भाषाये—

(१) हिन्दुस्तान की भाषाए—सस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रश।

देशी भाषाए—हिन्दी, बङ्गला, उडिया, मराठी, गुजराती, सिन्धी, पजाबी, जिप्सी लोगो की भाषा। जिप्सी लोग हिन्दुस्तान के मूल निवासी थे। उनका कोई खास निवास-स्थान नही, वे सदा भटकते फिरते है। बारहवी शताब्दी मे वे ईरान, आर्मिनिया, ग्रीस, रोमानिया, हगरी और वोहेमिया के मार्ग से युरोप मे घुसे।

(२) ईरान की भाषाएं—जेन्द-जरदस्त के अनुयायियो की प्राचीन भाषा। जेन्द-अवस्था नामक प्राचीन ग्रन्थ इसी भाषा मे है। दारा, जरक्सस और उसके वशजो के समय के लेखो की भाषा, (ई० पू० ५ वी शताब्दी )

पहलवी—ई० सन् २२६ से ६५१ तक।

फारसी—ईरान के पूर्वी भाग मे अधिकतर बोली जाती हुई भाषा, जब मुसलमानो ने ईरान पर विजय पाई, उस समय की भाषा।

आधुनिक फारसी—फिरदौसी के "शाहनामे" की भाषा। पुरानी और नई फारसी मे विशेष अन्तर नही है। आर्मीनियन, पश्तो, काकेशश, बुखार, ईरान, तुर्किस्तान और रूस की सरहद के पहाडी लोगो की भाषाये, जो सस्कृत या फारसी से मिलती है।

**(३) युरोप-खड की भाषाएं——**

१—टच्यूटानिक भाषाये—इसके तीन रूप है—

(१) लो जर्मन—अग्रेजी, डच, फ्लेमिश।

(२) हाई जर्मन—जर्मन।

(३) स्कैंडिनेवियन—आइस्लैंडिक, स्वीडिश, डेनिश, नार्वीजियन।

२—कैल्टिक भाषाये—ब्रिटेन, वेल्श, आयरिश, गेलिक ( स्काटलैंड के पहाडी देश की भाषा ), मैंक्स ( मेन द्वीप की भाषा )।

३—इटैलिक भाषाये— लेटिन, अस्कन, (दक्षिण इटली की प्राचीन भाषा), अब्रियन (इटली के ईशान कोण की प्राचीन भाषा), सेबाइन।

लेटिन से निकली हुई भाषाये—इटेलियन, फ्रेंच, प्रोवेन्कल, स्पेनिश, पोर्चुगीज, रीटोरोमेनिक (दक्षिण स्विट्जरलैंड की भाषा), बोलेचियन (तुर्किस्तान के उत्तरी प्रान्तवाले और मोल्डेविया की भाषा)।

४—हेलेनिक भाषाये—प्राचीन ग्रीक (इसमें अटिक, आयोनिक, डोरिक और इओलिक, बोलिया समाविष्ट है), आधुनिक ग्रीक।

५—स्लेवोनिक भाषाये—अग्निकोण की स्लेवोनिक—रशियन, इलिरिक (सर्वियन, क्रोयेटियन, करिन्थिया और स्टिरिआ की भाषायें)

पश्चिम की स्लेवोनिक—पोलिश, बोहोमियन, पोलेबियन, स्लेवेकियन और सर्वियन (ल्युसेटिअन बोलिया)।

६—लैटिक भाषाये—प्राचीन प्रशियन, लेटिशया लेवोनियन (कुरलड और लिवोनिया की भाषा)

लिथुएनियन (पूर्व प्रशिया और रूस के कोवनो और विलना प्रान्त की बोलिया)।

युरोप निवासियो मे यहूदी, फिन, लेप, हगेरियन और तुर्क लोग आर्य-भाषा नही बोलते।

७—सेमेटिक भाषाये—आर्य-भाषाओ के सिवाय ससार में और जो भाषायें बोली जाती है, वे सेमेटिक भाषायें कहलाती है। इनके ये भेद है—

(१) सिरिया की भाषा।

(२) असीरिया और बैबिलन की भाषा।

(३) हिब्रू, फिनिशियन, समेरिटन, प्यूनिक।

(४) अरबी, माल्टा और अबिसिनिया की भाषाये।

८—अन्य भाषाये—आर्य-भाषाओ और सेमेटिक-भाषाओ के अतिरिक्त पृथ्वी पर नीचे लिखी अन्य भाषाये भी बोली जाती है—

(१) यूराल और अलाई की भाषाये।

हगेरियन, फिनिश और लपिश, सोमाय की प्रान्तिक भाषायें, तुर्की, मगोलियन बोलिया, तुगुशियन बोलिया।

(२) द्रविड—तामिल, तेलुगू, मलयालम, कन्नड।

कोरिया, कमसकटका, क्यूराइल की भाषाये।

जापानी और लु-चु की बोली।

मलाया, मलक्का, जावा, सुमात्रा, मेलनीशिया की भाषाये।

काकेशिया की बोलिया।

(३) दक्षिण अफ्रिका की बोलिया।

(४) चीनी भाषा।

इण्डोचाइनीज भाषा (स्यामी, ब्रह्मी, आनामीज और कम्बोडियन भाषाये, तिब्बती।)

(५) बास्क।

उत्तर और दक्षिण अमेरिका के असली निवासियो की भाषा।

अब हम यह दिखलाना चाहते है कि उच्चारण-भेद से भाषाओ मे भिन्नता कैसे हो जाती है। प्रत्येक भाषा को विद्वान् और ग्रामीण मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकार से बोलते है। विद्वान् लोग शब्दो का शुद्ध उच्चारण करते है, ग्रामीण लोग उसे अपनी इच्छानुसार सुगम बना लेते है। इससे किसी प्रधान भाषा की बिगडते-बिगडते कई नई बोलिया बन जाती है। यहा हम कुछ ऐसे शब्द उपस्थित करते है, जिनका अर्थ एक है, परन्तु विद्वानो और ग्रामीणो के उच्चारण मे अन्तर है। जैसे—

| शुद्ध शब्द | उच्चारण-भेद | शुद्ध शब्द | उच्चारण भेद |
|---|---|---|---|
| भूमि | भूई | आकाश | अकास, आकास |
| पानीय | पानी | सूर्य | सूरज |
| शरीर | सरीर | श्वास | सांस |

विद्वानो और ग्रामीणो का यह उच्चारण-भेद नया नही है। रामायण के समय मे भी शिष्ट-समाज मे बोली जानेवाली भाषा भिन्न थी, और सर्वसाधारण के बोल-चाल की भाषा भिन्न। वाल्मीकि-रामायण सुन्दर काण्ड, सर्ग ३०, श्लोक १७, १९ मे अशोकवृक्ष पर हनुमानजी चिन्ता करते है—

> अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषत ।
> वाच चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह सस्कृताम् ॥
> यदि वाच प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् ।
> रावण मन्यमाना मा सीता भीता भविष्यति ॥
> अवश्यमेव वक्तव्य मानुष वाक्यमर्थवत् ।

अर्थात्, मै तो लघु शरीरी और वानर हू। पर यहा मनुष्यो की वाणी सस्कृत बोलूगा। यदि द्विजाति के समान संस्कृत बोलूगा तो सीता मुझे रावण समझकर डर जायगी। इसलिए मुझे अर्थयुक्त साधारण मनुष्यो की बोलचाल की भाषा बोलनी चाहिये।

इससे प्रकट होता है कि रामायण के समय मे साधारण मनुष्यो की भाषा देववाणी सस्कृत से भिन्न थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सस्कृत

बोलते थे और शूद्र सस्कृत शब्दो के अशुद्ध उच्चारणवाली कोई अन्य भाषा। अशोक के शिला-लेखो और पातञ्जलि के ग्रन्थो से भी पता चलता है कि आज से कोई बाईस सौ बरस पहले उत्तर भारत मे एक ऐसी भाषा प्रचलित थी, जो कई बोलियो से मिलकर बनी थी। सस्कृत-भाषा व्याकरण के नियमो से ऐसी जकडी हुई है कि उसके विकार-ग्रस्त होने की कोई सम्भावना नही है। स्त्री, बालक और शूद्र से संस्कृत भाषा का ठीक-ठीक उच्चारण नही बन सकने के कारण सस्कृत मे जब कुछ अशुद्ध शब्दो का प्रयोग होने लगा, तब उससे एक नवीन भाषा पाली का प्रादुर्भाव हुआ। पाली बौद्ध-धर्म की पवित्र भाषा है। बौद्ध-साहित्य प्रायः इसी भाषा में है। लका, श्याम और ब्रह्मदेश मे यह भाषा बोली जाती है। पाली मे २/५ शुद्ध संस्कृत शब्द है और ३/५ सस्कृत शब्दो के विकृत रूप। इसके बाद प्राकृत का नम्बर है। यह सस्कृत के विकृत शब्दो से लदी हुई भाषा है। प्राकृत शब्द "प्रकृत" से बना है, और उसका अर्थ है स्वाभाविक। सर्व-साधारण लोग अपने अशुद्ध उच्चारण के कारण कही सस्कृत भाषा का रूप विगाड़ न दे, इसलिए विद्वानो ने प्राकृत-भाषा का एक नया रूप स्वीकार किया और उसका व्याकरण बनाकर उसे एक स्वतन्त्र भाषा बनादी। प्राकृत का सबसे पुराना व्याकरण वररुचि का बनाया हुआ मिलता है। पाली की अपेक्षा प्राकृत मे सस्कृत के विकृत शब्द बहुत अधिक है। कालिदास ने शकुन्तला नाटक मे स्त्री और सेवकवर्ग के मुह से प्राय प्राकृत भाषा का ही प्रयोग कराया है। इससे अनुमान होता है कि कालिदास के समय मे स्त्रियो और साधारण श्रेणी के लोगो मे प्राकृत भाषा का ही विशेष प्रचार था। प्राकृत मे कई स्वतन्त्र काव्य भी लिखे गये है।

सस्कृत शब्दो का प्राकृत और हिन्दी मे कैसा रूप बन गया है इसे दिखाने के लिए कुछ शब्द प्रस्तुत किये जाते है—

| संस्कृत | प्राकृत | हिन्दी |
|---|---|---|
| विद्युत | विज्जु | बिजली |

| संस्कृत | प्राकृत | हिन्दी |
|---|---|---|
| श्मश्रु | मस्सू | मूछ |
| शय्या | सेज्जा | सेज्ज |
| कुष्ठ | कोट्ठ | कोढ |
| तैलम् | तेल्ल | तेल |
| कृष्ण | कन्हो | कान्ह (ब्रजभाषा) |
| पितृगृह | पिइघर | पीहर |
| कर्पट | कप्पडो | कपडा |
| शिथिल | सढिल | ढीला |
| एकादश | एआरह | ग्यारह |
| यज्ञोपवीत | जण्णेवइअ | जनेऊ |
| खदिर | खइर | खैर |
| वचन | वयण | बैन (ब्रजभाषा) |
| अश्रु | असु | आसू |
| सप्त | सत्त | सात |
| सर्प | सप्प | साप |
| स्तम्भ | थम्भ | खम्भ |
| कर्म | कम्म | काम |
| हस्त | हत्थ | हाथ |
| भगिनी | वहिनी | वहन |
| वार्त्ता | वत्त | बात |
| दुग्ध | दुद्ध | दूध |
| कर्ण | कन्न | कान |
| घृतम् | घिअम् | घी |
| मेघ | मेहो | मेह |
| गम्भीरम् | गहिरम् | गहरा, इत्यादि। |

ऊपर के प्रमाणो मे यह बात समझ में आ सकती है कि प्रत्येक प्रच-

लित भाषा मे नवीन भावो के द्योतक नवीन शब्द और उसी भाषा के अपभ्रश नित्य ही बढते रहते है । जब ऐसे शब्दो की अधिकता होती है तब वे सब अपभ्रश शब्द और कुछ उस प्रचलित भाषा के विशुद्ध शब्द मिलकर एक नई बोली का रूप धारण करते है, और फिर अपनी उन्नति का नवीन क्षेत्र तैयार कर लेते है ।

प्राकृत का विकास होते-होते उससे तीन शाखाये फूट निकली—मागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री । मागधी मगध देश वा बिहारकी भाषा थी । शौरसेनी शूरसेन प्रदेश अथवा मथुरा के आस-पास की और महाराष्ट्री महाराष्ट्र प्रान्त की भाषा थी । मागधी और शौरसेनी के मिश्रण से एक और भाषा का जन्म हुआ था, जिसे अर्द्ध-मागधी कहते थे । इस भाषा में जैन-धर्म के कुछ ग्रन्थ लिखे गये थे ।

विक्रम सवत् के लगभग आठ-नौ सौ बरस तक प्राकृत भाषा का प्रचार रहा । इसके बाद उसमे कुछ परिवर्तन प्रारम्भ हुआ । धीरे-धीरे वह यहा तक बढा कि उसमे से अपभ्रश नाम से एक नवीन भाषा का प्रादुर्भाव हुआ । "अपभ्रश" शब्द का अर्थ है—"बिगडी हुई भाषा" । प्राकृत के अन्तिम वैयाकरण हेमचन्द्र सूरि ने, जो बारहवी शताब्दी में हुए थे, अपने "सिद्ध हेम शब्दानुशासन" नामक व्याकरण-ग्रथ के आठवें अध्याय मे अपभ्रश भाषा का उल्लेख किया है, और उसका व्याकरण भी लिखा है । उन्होने उस समय के ग्रन्थो से चुनकर उदाहरणार्थ सैकड़ो पद्य भी लिख दिये है, जिससे उस समय की प्रचलित भाषा की खासी झलक दिखाई पडती है। उदाहरणार्थ अपभ्रश भाषा का एक पद्य हम यहा देते है—

भल्ला हुआ जु मारिया, बहिणि महारा कन्तु ।
लज्जेज्जतु वयसिअहु, जद भग्गा घर एन्तु ॥

अर्थात्, हे बहन ! अच्छा हुआ जो मेरा पति मारा गया । यदि भागा हुआ घर आता तो मै सखियो मे लज्जित होती ।

अपभ्रश भाषा उस समय केवल मामूली भेद के साथ भारत के बहुत से प्रदेशो मे बोली जाती थी । हेमचन्द्र के मरने के बाद, थोड़े ही

वर्षों मे, भारत मे राज्य-विप्लव हुआ । आपस की फूट से एक विशाल साम्राज्य टुकड़े-टुकडे हो गया । स्नेह-सम्बन्ध टूट गया । छोटे-छोटे सैकड़ों राज्य कायम हुए । एक राज्य के निवासी दूसरे राज्य के निवासियो को शत्रु समझने लगे । विदेशी विजेताओ के पैर जमे और भारत की फूट से वे लाभ उठाने लगे ।

इस राज्य-क्रान्ति का प्रभाव भाषा पर भी पड़ा । परस्पर ईर्ष्या-द्वेष के कारण व्यावहारिक सम्बन्ध सकुचित हुआ । उसी के साथ-साथ भाषा की एकरूपता मे भी अन्तर आने लगा । प्रदेशो का सम्बन्ध-विच्छेद होते ही उनमे व्यापक भाषा अपभ्रश भी प्रत्येक प्रान्त मे भिन्न-भिन्न रूप मे विकसित होने लगी । भिन्न-भिन्न प्रान्तो की प्राकृत का "अपभ्रश" रूप भिन्न-भिन्न हुआ । शौरसेनी का अपभ्रश "नागर" अपभ्रश कहलाता है । ब्रजभाषा शौरसेनी प्राकृत का रूपान्तर है । हमारी हिन्दी भाषा दो अप-भ्रंशो से मिलकर बनी है, एक नागर अपभ्रश, जिससे पश्चिमी हिन्दी और पंजाबी का जन्म हुआ; दूसरे अर्ध-मागधी का अपभ्रश, जिससे पूर्वी हिंदी निकली है जो अवध, बुन्देलखण्ड और छत्तीसगढ़ मे बोली जाती है ।

पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत और भी कई बोलिया है । जैसी, अवधो अवध मे, बुन्देली बुन्देलखण्ड मे, व्रजभाषा मथुरा के आसपास, कन्नौजी गङ्गा-यमुना के मध्य और उत्तर के प्रदेश मे और हिन्दुस्तानी दिल्ली और मेरठ के आसपास के प्रदेश मे बोली जाती है ।

अपभ्रश भाषा प्रकृत और प्रान्तीय भाषाओं के मध्य की भाषा है । प्राकृत के वाद अपभ्रंश और अपभ्रश के बाद प्रान्तीय भाषाओ की सृष्टि हुई है । अपभ्रश भाषा से पुरानी हिन्दी, ब्रजभाषा और गुजराती का बहुत अधिक सम्बन्ध है ।

प्रारम्भ में पश्चिमी हिन्दी का जो रूप था उससे राजस्थानी और गुजराती की उत्पत्ति हुई । डा० टोसीटोरी का मत है कि पन्द्रहवी शताब्दी तक पश्चिमी राजपूताना और गुजरात में एक ही भाषा बोली जाती थी,

इसे वे प्राचीन राजस्थानी भाषा कहते है । यही भाषा गुजराती और मारवाड़ी का मूल है।

अपभ्रश भाषाए ग्यारहवें शतक तक प्रचलित थी। इसके वाद इसकी भिन्न-भिन्न शाखाये निकली, और पन्द्रहवे शतक तक पहुँचते-पहुँचते वे अपने भिन्न-भिन्न वातावरण मे फूलने और फलने लगी । हिन्दी भाषा मुख्यत तीन प्रकार के शब्दो से बनी है, तत्सम, तद्भव और देशज । तत्सम वे शब्द कहलाते है, जो सीधे सस्कृत से आये हैं। सस्कृत मे उनका जो रूप है, देशी भाषाओ मे भी वही है। जैसे, बल, हल, बन, मन, घन, जन, दूर, सूर, नदी, शीत, वर्षा, समुद्र, वसन्त, साधु, सन्त, दिन, राजा, कवि, काम, क्रोध, दर्शन, मनुष्य । तद्भव वे शब्द है, जो मूल मे तो सस्कृत के शब्द है, पर वे अपभ्रश अर्थात् बिगडे हुए रूप मे प्रचलित है। जैसे, बच्चा (वत्स), राय (राजा), आग (अग्नि), कान (कर्ण), काज (कार्य), सूख (शुष्क), सुई (सूची), बरस (वर्ष), रात (रात्रि), सब (सर्व), माथा (मस्तक), सिर (शीर्ष), नेवला (नकुल), भात (भक्त), दूध (दुग्ध) आदि। देशज वे शब्द है जो या तो भारत के आदिम निवासियो की बोलियो से लिये गये है, या कार्य या पदार्थ के रूप या ध्वनि के अनुसार बना लिये गये है । देशज शब्द सस्कृत या प्राकृत से कोई सम्बन्ध नही रखते । देशज शब्द जैसे पगडी, रोड़ा, पेट, झाड़ झखाड़, गडेरी, धूमधाम, ओस, कढाई, टीला, होड, मामा, खिड़की, तथा, खडखड़ाहट, बडबडाना, चट, धडाम, ऊटपटाग, झिलमिल, चीचपड आदि।

सस्कृत भाषा हिन्दी, पजाबी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, उड़िया और बगला भाषाओ की मातृभाषा है। बगला, उडिया और मराठी मे तत्सम शब्द बहुत है। हिन्दी और गुजराती मे उससे थोडा कम और पजाबी और सिन्धी में तो सब से कम है । ऐतिहासिक दृष्टि से इसका कारण यह जान पड़ता है कि सिन्ध और पजाब मे विदेशियो के बार-बार आक्रमण होते रहे । इससे आर्य, विशेषकर ब्राह्मण उन प्रान्तो से पूरब की ओर हटते आये। उन प्रातो में खासकर अहीर, गूजर और जाटो के जत्थे रह गये।

अतएव स्वभावत उनकी भाषा से तत्सम शब्द कम होते गये और उनके स्थान मे तद्भव और देशज शब्द भरते गए । व्रजभाषा मे तत्सम की अपेक्षा तद्भव शब्द ही अधिक है ।

तत्सम, तद्भव और देशज शब्दो के सिवाय हिन्दी मे बहुत से विदेशी शब्द भी मिल गये है, और अब भी मिलते जा रहे है । हिन्दी का शब्द-भण्डार बराबर बढ़ता जा रहा है । मुसलमान जब इस देश मे आये, तब उनकी भाषा अरबी, तुर्की या फारसी के भी बहुत से शब्द हिन्दी मे मिल गए । पोर्चुगीज और अग्रेजो के आने पर भी शब्द-वृद्धि हुई, और अग्रेजी शब्दो का ताता तो अभी तक चला आ रहा है । विदेशी शब्दो के सिवाय अन्य प्रान्तीय भाषाओ के भी कुछ शब्द हिन्दी मे आ मिले है । सब के थोड़े-थोडे उदाहरण आगे दिये जाते है—

अरबी—अक्ल, इख़्त्यार, इम्तिहान, एतराज, औरत, हाल, सिफारिश, अदालत, मुकदमा, तारीख तनख़्वाह, हूबहू, इन्साफ, ऐब, उमदा, खबर, खर्च, तकरार, दलील, दुनिया, मज़कूर, मश्गूल, शरबत, सलाह, हुक्म आदि ।

फारसी—अजमायश, आदमी, उम्मीदवार, आबादी, ख़रीद, गुमाश्ता, बाग़, चश्मा, दूकान, चाकू, ताज़गी, गुज़रान तन्दुरुस्ती, दस्तावेज़, दरिया, प्याला, कमर, दाग, मोज़ा, गुलाब, साबुन, होशियार, हवा, हजार आदि।

तुर्की—तोप, लाश, बोतल आदि ।

पोर्चुगीज—अग्रेज, पिस्तोल, पलटन, कप्तान, कमरा, नीलाम, इजीनियर, चा, काफी, गोदाम, (गोडाउन), चाबी आदि ।

अग्रेजी—कोर्ट, अपील, टिकट, कलक्टर, डाक्टर, टेबल, पेंसिल, पेंशन, बूट, फार्म, बोर्डिंग, डिग्री, ग्लास, फ़ड, रेल, वारट, रसीद, रबर, लालटेन, पतलून, मील, इच, फुट, वास्कट, म्यूनिसिपैलिटी, सेविंग बैंक, सोडावाटर, होटल, हास्पिटल, बोतल, पास, रजिस्ट्री, नोटिस, समन, स्कूल, कमेटी, फीस, स्लेट, टीन, प्रेस, इन्स्पेक्टर, बैरिस्टर, मास्टर, कान्स्टेब्ल आदि ।

मराठी—प्रगति, लागू, बाजू, (तरफ) आदि ।

बगला —उपन्यास, प्राणपण, गल्प, डोगी आदि ।

इस समय हिन्दी-भाषा के तीन मुख्य रूप है । पहला विशुद्ध हिन्दी, जिसमे तत्सम और तद्भव शब्दो का ही बाहुल्य रहता है, अन्य भाषा के शब्द उसमे प्रवेश नही कर सकते । दूसरा हिन्दुस्तानी, जिसमे रोज-मर्रा की बोलचाल के सब शब्द चाहे वे किसी भाषा के क्यो न हो, आ सकते है । तीसरा उर्दू, जिसमे अरबी और फारसी शब्दो की बहुलता रहती है । उर्दू कोई भिन्न भाषा नही, वह हिन्दी का एक रूपान्तर मात्र है । "हिन्दुस्तानी" नाम अग्रेजो का रक्खा हुआ है, पर यह दिल्ली और उसके आसपास के जिलो मे बहुत प्राचीन-काल से बोली जाती है । मुसलमानो के ससर्ग से जैसे "उर्दू" नाम से हिन्दी का एक नया रूप अलग हो गया, वैसे ही यदि कोई बनाना चाहे तो अग्रेजी और हिन्दी के मिश्रण से भी एक नया रूप बन सकता है । आजकल कालेज, स्कूल और मीटिगो मे इस नये रूप का दर्शन होता है, पर अभी तक उसका नामकरण नही हुआ है । यदि मुसलमानो की तरह अग्रेज भी इस देश मे आकर बस जाय तो सम्भव है हिन्दी और अग्रेजी के मिश्रण से उनकी एक "बाजारी" बोली अलग बन जाय ।

## हिन्दी का पुराना नाम

हिन्दी का पुराना नाम हिन्दवी या हिन्दुई है, जिसका अर्थ है हिन्दुओ की भाषा । यहा हिन्दी के विषय मे कुछ कहने के पहले "हिन्दू" शब्द पर विचार कर लेना उचित जान पडता है ।

भारतवर्ष की आर्य-जाति का "हिन्दू" नाम क्यो और कब से पडा ? यह विचारणीय बात है । सस्कृत-साहित्य मे "हिन्दू" शब्द का कही उल्लेख नही । न तो वेदो मे, न उपनिषदो मे, न स्मृतियो मे और न पुराणो मे ही इस शब्द का कही पता है । फिर यह कहाँ से आया और इसमें कौन सा ऐसी विशेषता देखकर इतनी बडी एक सुसभ्य जाति ने इसे ग्रहण कर लिया ? इस प्रश्न का उत्तर देना सहज नही ।

मेरुतन्त्र मे एक स्थान पर "हिन्दू" शब्द आया है; इस सम्बन्ध के कुछ श्लोक हम यहाँ उद्धृत करते है—

पश्चिमाम्नाय मन्त्रास्तु प्रोक्ता पारस्य भाषया ।
अष्टोत्तर शताशीतिर्येषा ससाधनात्कलौ ॥
पञ्चखाना सप्तमीरा नवमाहा महाबला ।
हिन्दूधर्म प्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिनाः ॥
हीनञ्च दूषयेत्येव हिन्दूरित्युच्यते प्रिये ।
पूर्वाम्नाये नवशत षडशीति प्रकीर्तिता ॥
फिरङ्ग भाषया मन्त्रा येषा ससाधनात्कलौ ॥
अधिपा मण्डलानाञ्च सग्रामेष्वपराजिता ॥
इङ्गरेजा नव षट्पञ्च लण्डजाश्चापि भाविन ।

शिवरहस्य मे भी एक स्थान पर ऐसा कहा गया है—

हिन्दूधर्म प्रलोप्तारो भविष्यन्ति कलौयुगे ।

हमे मेरुतन्त्र और शिवरहस्य के ये श्लोक पीछे से मिलाये हुए जान पडते है । क्योकि पूर्वकाल मे यदि हिन्दू-धर्म कोई धर्म होता तो उसका उल्लेख स्मृति और पुराणो मे कही न कही अवश्य होता । अतएव हम इन श्लोको को किसी सुचतुर सस्कृतज्ञ की करामात समझकर अप्रामाणिक समझते है ।

हिन्दू शब्द हमे फारसी भाषा मे मिलता है । फारसी का एक पद्य सुनिये—

अगर आँ तुर्क शीराजी बदस्त आरदद दिले मारा ।
बखाले हिन्दुवश बखशम समरकन्दो बुखारारा ॥

यह आज से कोई साढे पॉच सौ बरस पहले का हाफिज शीराजी का शेर है, इसमे हिन्दू शब्द "काले" के अर्थ मे आया है । गयासुल्लोगात मे हिन्दू शब्द का अर्थ ऐसा लिखा है—

"हिन्दू दर महाविरे फारसियाँ बमानी दुज्द व राहजन मी आयद ।"

इसमे हिन्दू शब्द का अर्थ काफिर और डाकू किया गया है । यदि

हिन्दू शब्द का अर्थ काला, काफिर, चोर, गुलाम ही है तो उसे भारत-वासियो ने अपने उत्तम आर्य नाम के स्थान पर क्यो स्वीकार कर लिया ? हमे गयासुल्लोगात का अर्थ द्वेषवश लिखा जान पडता है। तो क्या फारसी के हिन्दू शब्द के काले अर्थ ही मे हमारा नाम हिन्दू पडा है ? नही; भिन्न-भिन्न भाषाओ मे एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ होते है। नीम शब्द ही को लीजिये। फारसी मे नीम का अर्थ आधा है और हिन्दी मे नीम एक वृक्ष का नाम है। "नीम हकीम" कहने से यह अर्थ नही लगा लेना लेना चाहिये कि नीम वृक्ष ही हकीम है। यदि हमारा नाम हिन्दू किसी अच्छे अर्थ मे रक्खा गया है तो किसी अन्य भाषा मे इस शब्द का अर्थ चोर, डाकू होने से हम चोर डाकू नही हो सकते। हाँ, यदि किसी ने चोर, डाकू और काले के ही अर्थ मे हमारा नाम हिन्दू रक्खा है और हमने उसे स्वीकार कर लिया है, तो हमारे लिए अवश्य कलङ्क की बात है। परन्तु हमारा हिन्दू नाम नया नही, आज से पाच हजार वर्ष पहले की पारसियो की मुख्य धर्म-पुस्तक दसातीर मे हमारे देश का नाम "हिन्दू" लिखा मिलता है। इसके प्रमाण मे उक्त पुस्तक से कुछ वाक्य हम यहाँ उद्धृत करते है—

अकनू बिरहमने व्यास नाम अज हिन्द आमक बसदाना के अकल चुनानस्त। ( ज़रतुश्त की ६५ वी आयत )

अर्थात् व्यास नाम का एक ब्राह्मण हिन्द से आया है जिसके समान कोई पण्डित नही।

चू व्यास हिन्दी बलख आमद। गस्तास्प ज़रतुश्तरा बख़वाद। (१६३वी आयत)

जब हिन्द का रहनेवाला व्यास बलख आया तब (ईरान के राजा) गस्तास्प ने जरतुश्त को बुलवाया।

आगे फिर लिखा है—

मन मरदे अम हिन्दी निज़ादे।

मैं हिन्द मे पैदा हुआ एक पुरुष हूँ।

वै हिन्द बाज़ गश्ते ।

फिर वह हिन्द को लौट गया ।

इन प्रमाणो से यह प्रकट होता है कि महर्षि व्यास के समय मे ईरान वाले इस देश को "हिन्द" कहते थे । व्यास ने स्वय अपने देश का नाम हिन्द और अपने को हिन्द का निवासी कहा है । यह वैसी ही बात है जैसे आजकल हम लोग अँग्रेजो को समझाने के लिए उनके सामने अपने देश का नाम इण्डिया और अपना नाम इण्डियन बतलाते है ।

अब प्रश्न यह है कि ईरान वाले इस देश को हिन्द क्यो कहते थे ? हमारी समझ मे हिन्द शब्द सिन्धु का अपभ्रश है । ईरानी भाषा मे 'स' का उच्चारण प्राय. 'ह' होता है । इससे सिन्धु का हिन्दु हो जाना असम्भव नही है । सम्भव है, उस समय वे लोग सिन्धु नद के इस पार के देश को हिन्द और यहाँ के निवासियो को हिन्दी या हिन्दू नाम से पुकारते रहे हो । ग्रीक भाषा मे सिन्धु का नाम इण्डस मिलता है, और इसी से इण्डिया शब्द की उत्पत्ति हुई जान पड़ती है । उच्चारण-भेद से सिन्धु का किसी ने हिन्द बना लिया, किसी ने इण्डस ।

मेरी राय मे अब इस बात मे सन्देह नही रह जाता कि हमारे देश का नाम हिन्द और हमारा नाम हिन्दू इस देश मे मुसलमानो के आने से बहुत पहले ही पड चुका था । मुसलमानो ने हमारा यह नाम नही रक्खा ।

सुप्रसिद्ध सर जार्ज ग्रियर्सन की भी "हिन्दू" शब्द के सम्बन्ध मे यही राय है । इग्लैण्ड से १६-६-१६ के भेजे हुए अपने पत्र मे वह लिखते है —

You are quite right in stating that हिन्द is a Persian word, and is the Persian equivalent of सिन्धु. The Persians called the whole of India by this name. The old form of "हिन्दू" was हिन्दी, which is derived form an older form हैन्दव, which is the equivalent of the Sanskrit सैन्धव,not of सिन्धु.

The word हिन्दी means a native of हिन्द, that is a native of India, an Indian, But, in Persian, हिन्दू or हिन्दी meant a person of the Hindu religion Thus Amir Khusro says of Sultan Firoz Shah Khilzi, in his "Ghurratul Kamal," "what ever like fell into the king's hands was pounded into bits under the feet of elephants. The Musalmans, who, were Hindis, had their lives spared" You will thus see that, when applied to a language. Hindi properly means any Indian language. Bengali and Marathi are just as much Hindi as the language we now call Hindi The use of the word Hindi in its modern sense, is quite late. Its proper name is हिन्दुई *i e*, the language of Hindus, as opposed to Urdu, the language of Musalmans

अब प्रश्न यह है कि इस शब्द का उल्लेख हमारे सस्कृत ग्रथो में क्यो नही मिलता। मेरी समझ मे इसका कारण यही जान पडता है कि हिन्दू शब्द सस्कृत भाषा का नही है, और हमने यह नाम स्वय नही रक्खा है, वल्कि विदेशी हमे इस नाम से पुकारते थे। जैसे अमेरिका, यूरोप आदि देशो के लोग हमे इडियन नाम से पुकारते है। परन्तु हम लोग अपनी पुस्तको मे अपने को हिन्दू ही लिखते है, इडियन नही लिखते। अब प्रश्न यह है कि विदेशियो का रक्खा हुआ "हिन्दू" नाम हमने स्वीकार क्यो कर लिया ? इसका उत्तर यही है कि पूर्वकाल मे भारत और ईरान मे घनिष्ट सम्वन्ध था, दोनो देशो की भाषा मे वहुत कुछ समानता थी, दोनो देशो के रीति-रस्म मे वहुत कुछ एकता थी, पुराण-ग्रथो मे दोनो देशो मे वैवाहिक सम्बन्ध तक की चर्चा पाई जाती है।

अतएव नित्य के ससर्ग से हमारे लिए उनके रक्खे हुए हिन्दू नाम को पहले हमने कौतूहल-वश स्वीकार किया, फिर धीरे-धीरे इस नाम ने हमारे उर्वर मस्तिष्क मे अपनी जड जमा ली। परन्तु हमने सस्कृत-ग्रथो मे अपना प्राचीन नाम ही कायम रक्खा, केवल बोलचाल मे हम अपने को हिन्दू कहने लगे।

कितनी ही विदेशी जातिया इस देश मे आई और मिल-जुलकर एक हो गई। इसी तरह यह हिन्दू नाम भी विदेश से आया और यहा हमारा हो गया। अतएव हिन्दू नाम को घृणा की दृष्टि से देखने का हमे कोई कारण प्रतीत नही होता। यह हिन्दू नाम हमारे और ईरानवासियो के प्राचीन सम्बन्ध की यादगार है।

हम ऊपर लिख आये है कि मुसलमानो ने हमारा नाम हिन्दू नही रक्खा, पृथ्वीराज रासो से भी यह प्रमाणित हो सकता है। चन्दवरदाई ने रासो के अनेक स्थलो पर हिन्दू और हिन्दुस्तान शब्द लिखे है। चन्दबरदाई से पहले मुसलमानो को इस देश मे आये ही कितने दिन हुए थे कि उनका रक्खा हुआ नाम एक विशाल जाति मे इतना प्रचार पा जाता कि एक वीर और स्वजात्याभिमानी कवि अपनी कविता मे उस नाम को स्थान देता? स्वदेश और स्वजाति के जिस नाम से समाज अच्छी तरह परिचित रहता है, कवि लोग उनके लिए प्राय वही नाम अपनी कविता मे लिखते है। आजकल भी हिन्दी-भाषा के कवि अपनी कविता मे आवश्यकता पडने पर अपने देश का नाम भारत या हिन्दुस्तान ही लिखते है, इडिया नही। अव यह वात ध्यान मे आ सकती है कि चन्दबरदाई से हजारो वर्ष पहले, जवकि पृथ्वी-मडल पर मुसलमानो का कही अस्तित्व भी नही था, हमारी आर्य-जाति हिन्दू, हिंदुस्तान नाम को अपना चुकी थी। इसी से चन्द कवि को इन शब्दो के बहुल प्रयोग मे कोई हिचकिचाहट नही हुई।

हमारे देश का नाम हिन्द, यहा के निवासियो का नाम हिन्दी या हिन्दू और हमारी भाषा का नाम हिन्दवी या हिन्दी वहुत पुराना है।

पहले देश का नाम, फिर निवासियो का नाम, फिर भाषा का नाम रक्खा गया ।

अमीर, खुसरो की एक पहेली मे हिन्दी शब्द आया है, वह यह है--

फारसी बोले आईना । तुरकी सोचे पाईना ।
हिन्दी बोलते आरसी आये । मुह देखे जो इसे बताये ।।

हिन्दी का एक पुराना नाम भाषा" भी है। महा महोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी स्वरचित गणक तरगिणी के ३३वे पृष्ठ पर भास्वती की भाषा-टीका का एक उदाहरण उद्धृत करते है । उसमे भाषा शब्द आया है । उसका एक वाक्य यह है--

"सो देख कै बनमाली शिष्यार्थ भाषा टीका कीन्ह"

यह टीका स० १४८५ की बनी है। तुलसीदास ने रामायण मे "भाषा "शब्द लिखा है--

भाषा निबद्धमति मजुलमातनोति ।
* * *
भाषा भनित मोरि मति थोरी ।

पर उन्होने अपने फारसी पचनामे मे हिन्दवी शब्द का प्रयोग किया है । स० १६८० मे लिखी हुई गोरा-बादल की कथा मे जटमल ने "हिंदवी" शब्द का प्रयोग किया है । आजकल भी बहुधा पुस्तको के नामो और टीकाओ मे हिन्दी के स्थान पर "भाषा" शब्द प्रयुक्त होता है, जैसे भाषा भास्कर, भाषा टीका आदि । पादरी आदम साहब लिखित उपदेश-कथा मे, जो स० १८९४ मे दूसरी बार छपी, इस भाषा का नाम "हिन्दुवी" लिखा है । "पदार्थ विद्यासार" नामक पुस्तक मे जो स० १९०३ मे छपी है, "हिन्दी भाषा" नाम आया है । मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी पद्मावत मे लिखा है--

तुरकी अरबी हिन्दवी, भाषा जेती आहि ।
जामे मारग प्रेम का, सबै सराहै ताहि ।।

मालूम होता है कि पहले हिन्दू लोग इस भाषा को "भाषा" और मुसलमान लोग "हिन्दुई" या "हिन्दुवी" कहते थे ।

सवत् १८६१ के बने हुए 'प्रेमसागर" मे लल्लूलालजी ने इस भाषा का नाम "खडी बोली" लिखा है। उन्होने ही एक जगह अपनी भाषा का नाम "रेख्ते की बोली" लिखा है। जान पडता है, भाषा का नाम "रेख्ता" उस समय रक्खा गया, जब इसमे अरबी, फारसी के शब्द भी मिलने लगे।

## हिन्दी-गद्य

हिन्दी-गद्य का प्राचीन उदाहरण नही मिलता। महाराज पृथ्वीराज के समय के दो एक पत्रो की प्रतिलिपि, महात्मा गोरखनाथ, गोस्वामी बिठ्ठलनाथ, गगा भाट, गोस्वामी गोकुलनाथ और नाभादासजी आदि की पुस्तको से गद्य के कुछ उदाहरण आगे दिये जांयगे; वे हिन्दी-गद्य के यथार्थ उदाहरण नही कहे जा सकते। क्योकि वे पत्र और पुस्तके भिन्न-भिन्न प्रदेशो की बोलियो मे लिखी गई है। हिन्दी-गद्य के उस रूप का, जो देहली के आस-पास विकास पा रहा था, जिसमे अमीर ख़ुसरो ने अपनी पहेलिया लिखी, जिसे व्रजभाषा ने दबा लिया था और जो पहले रेख्ता और आजकल खडी बोली के नाम से प्रसिद्ध है, कोई उदाहरण नही मिलता। अमीर ख़ुसरो का जन्म सवत १३१२ मे हुआ। उसने जो छद लिखे है, वे अवश्य ही उस समय की बोलचाल की भाषा मे लिखे गय है। उसके छन्दो के विषय ही ऐसे है, जो रोजमर्रा की बोलचाल मे ही लिखे जाते है। उदाहरण के लिए यहा उसके कुछ छद लिखे जाते है—

तरवर से एक तिरिया उतरी, उसने बहुत रिझाया।
बाप का उसके नाम जो पूछा, आधा नाम बताया।
आधा नाम पिता पर प्यारा, बूझ पहेली मोरी।
अमीर ख़ुसरो यो कहे, अपने नाम निबोरी।

* * *

बीसो का सिर काट लिया। ना मारा ना ख़ून किया॥

* * *

वह आवे तब शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय ।
मीठे लागे वाके बोल, ऐ सखि साजन ? ना सखि ढोल ।

* * *

"उसने बहुत रिझाया", "आधा नाम बताया", "बीसो का सिर काट लिया" आदि बिलकुल खडी बोली के वाक्य है । हिन्दी का यह रूप अमीर खुसरो के वक्त मे अवश्य रहा होगा । "उसने बहुत रिझाया" मे "ने" का प्रयोग भी ध्यान देने योग्य है । ब्रजभाषा की कविता मे "ने" का प्रयोग बहुत ही कम देखा जाता है । तुलसीदास के रामायण मे "ने" हई नही । किन्तु अमीर खुसरो ने "ने" का प्रयोग किया है । "मीठे लागे वाके बोल" ये ब्रजभाषा के शब्द है । इन उदाहरणो से प्रकट होता है कि ब्रजभाषा और हिन्दी दोनो का विकास साथ ही साथ हो रहा था । श्रीकृष्ण की जन्मभूमि की भाषा होने के कारण अपभ्रश शब्दो की बहु-लता से काव्य-रचना मे प्रयोग-सुलभ (सुगम) और कर्ण-मधुर होने के कारण वैष्णव कवियो और भक्तो ने ब्रजभाषा को ही प्रधानता दी । जितने काव्य लिखे गए, सब ब्रजभाषा मे । हिन्दी की तरफ किसी ने दृष्टि ही नही की । तो भी वह दिल्ली के आसपास के जिलो मे बोली जाती रही, और अब भी बोली जाती है ।

चन्दबरदाई हिन्दी का आदि कवि कहा जाता है । पर हिन्दी का जो रूप उसकी कविता मे दिखाई पडता है, उससे भी विशेष स्पष्ट रूप उस समय वर्तमान था । यह बात अमीर खुसरो की कविता से अच्छी तरह समझ मे आ जाती है । चन्दबरदाई और अमीर खुसरो के बीच मे सिर्फ ६४ वर्ष का अन्तर है । इतने थोडे अर्से मे चन्दबरदाई की हिन्दी इतना विकास नही पा सकती कि वह खुसरो की हिन्दी हो सके । खुसरो के थोडे ही दिन बाद कबीर हुए । कबीर की कविता भी खुसरो की हिन्दी मे मिलती है । कविता-कौमुदी मे कबीर की कविताए देखिये । कितने ही पद और पद्य ऐसे मिलेगे जो आजकल की हिन्दी मे कहे गए जान पडते है । इससे मालूम होता है कि हिन्दी का विकास स्वतन्त्र रूप से होता

आ रहा है। चन्दवरदाई के समय मे हिन्दी का एक अलग रूप था, जिसका प्रयोग उसने अपनी कविता मे कही-कही किया है। उसे हम हिन्दी का आदि कवि इसी से मानते है कि उसके समकालीन या पहले के और किसी कवि की हिन्दी-कविता उपलब्ध नही। किन्तु यह बात निस्सन्देह कही जा सकती है कि उस समय शुद्ध हिन्दी मे भी कविता होती थी, और देहली के आसपास आजकल की खडी बोली की तरह हिन्दी बोली जाती थी। कारक, वचन, लिग और पुरुष का प्रयोग खुसरो के समय मे भी वैसा ही होता था, जैसा आजकल है। खुसरो की भाषा हमे इस सन्देह मे डाल देती है कि क्या वास्तव मे हिन्दी का जन्म बारहवे शतक मे हुआ ? मेरी राय मे खुसरो की व्याकरणसम्मत हिन्दी के लिए उसका जन्मकाल कई सौ वरस पीछे हटाना पडेगा और यह मानना पडेगा कि हिन्दी का आदि कवि चद नही, बल्कि कोई और होगा, जिसका पता नही।

मुसलमानो ने अपने अरबी-फारसी के शब्दो को हिन्दी मे मिलाने का प्रयत्न भी किया। अमीर खुसरो ने इसी खयालसे खालिकबारी लिखी थी। वहुत से अरबी-फारसी के शब्द सस्कृत शब्दो के साथ, जहाज के पीछे छोटी नाव की तरह, जोड दिये गए, जो आज तक जुड़े ही चलते है। जैसे, कागज-पत्र शादी-व्याह, खत-पत्र, चिट्ठी-रसा आदि। शाहजहा के समय तक हिन्दी मे अरबी-फारसी के इतने शब्द आ चुके थे कि उर्दू के नाम से हिन्दी का एक नया रूपान्तर वन गया। उर्दू को वादशाही दरबार और कचहरियो मे जगह मिली। महावरो से उसकी नीव दृढ की गई और रसीली कविताओ से उसका शृङ्गार किया गया। वेचारी हिन्दी पहले तो व्रजभाषा की छाया मे पनप न सकी, फिर उर्दू ने उसका रास्ता रोका। सवत् १८६० मे व्रजभाषा से मिली-जुली आगरा के आसपास की वोली मे एक पुस्तक लिखी गई। उन्नीसवी शताव्दी के अन्त तक हिन्दी का विकास लल्लूलालजी के ही प्रारम्भ किये हुए रास्ते पर होता रहा। वीसवी शताव्दी के प्रारम्भ मे हिन्दी का रूप ही वदल गया और उसने एक नये युग मे प्रवेश किया। हिन्दी का मूल

जन्मस्थान दिल्ली के आसपास का प्रदेश है। व्रजभाषा तथा युक्तप्रात की कई बोलियो और उर्दू के कुञ्जो से निकलकर हिन्दी अब अपने असली रूप मे विकास पा रही है। अब हिन्दी व्याकरणसम्मत एक शुद्ध और सब प्रकार के शब्दो से पूर्ण भाषा है। हिन्दी-गद्य मे प्राय सब विषयो के ग्रथ तैयार हो चुके है और होते जाते है। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त के विद्वानो द्वारा यह भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकार की गई है। इसका साहित्य भण्डार जिस तेजी से बढ रहा है, उसे देखते हुए हम हर्ष से कहते है कि थोड़े ही वर्षो मे यह भारत की प्रातीय भाषाओ मे सर्वोत्तम साहित्यिक-स्थान ग्रहण करेगी।

गद्य-हिन्दी के क्रम-विकास का कोई उदाहरण हमे नही मिला। जो कुछ पुरानी पुस्तके हमे मिली है, वे हिन्दी मे नही, बल्कि उसके भिन्न-भिन्न रूपान्तरो मे लिखी हुई है। हिन्दी का वास्तविक विकास स० १९०० से होने लगा है। यहाँ हिन्दी के पुराने रूपान्तरो और वास्तविक हिन्दी, दोनो के कुछ उदाहरण दिये जाते है—

महाराज पृथ्वीराज के समय के कुछ पत्र मिले है, उनमे से दो की प्रतिलिपि यहाँ दी जाती है।

**श्रीहरा एकलिगो जयति**

श्री श्री चित्रकोट बाई साहब श्री पृथुकुवर बाई का वारण गाम मोई आचारज भाई रूसीकेसजी बाँचजो अपन श्री दली सुँ भाई लगरी राय जी आग्रा है जो श्रीदली सुँ श्री हजूर को बी खास रुका आयो है जो मारो भी पदारवा की सीखवी है नेदली काका जी षेद है जो कागद बाचत चला आवजो थानेमा आगे जाइगे पडेगा थाके वास्ते डाक बेठी है श्री हजूर बी हुक्म बेगीयो है जो थे ताकीद सुँ आवजो थारे मन्दर को व्याव कामारथ अवार करोगा दली सुँ आग्रा पाछे करोगा ओर थे सवेरे दन अठे आवसो स० ११४५ चैत सुदी १३। सही

यह विक्रम स० १२३५ का पत्र है, उस समय जो सवत् प्रचलित था वह विक्रम सवत् से ९० वर्ष कम है। ऊपर के पत्र का अर्थ यह है—

श्री हरि एकलिंगजी की जय हो। मोई ग्राम निवासी आचार्य भाई ऋषीकेशजी को चित्तौर से बाई साहब श्री पृथाकुँवरि बाई का सवाद बाँचना। आगे भाई श्री लगरीरायजी श्री दिल्ली से आये है और श्री दिल्ली से हुजूर का खास रुक्का भी आया है जिससे मुझको भी दिल्ली जाने की आज्ञा मिली है। काका जी अस्वस्थ है। सो कागज बाँचते चले आओ। तुमको हमसे पहले जाना पडेगा। तुम्हारे वास्ते डाक बैठाई गई है। श्री हुजूर(समरसिंह)ने भी आज्ञा दी है। सो ताकीद जानकर जल्दी आओ। जो तुम्हारे मन्दिर की स्थापना जल्दी स्थिर हुई है सो हम लोगो के दिल्ली से लौटने पर होगी। इतनी जल्दी आओ कि दिन का सबेरा, वहाँ हो तो शाम यहाँ हो। मिती चैत सुदी १३, सवत् ११४५।

### दूसरा पत्र—मेवाड की एक सनद, सं० १२२६

स्वस्ति श्री श्री चित्रकोट महाराजाधीराज तपे राजश्री श्री रावल जी श्री समरसी जो बचनातु दा अमा आचारज ठाकुर रुसीकेष कस्य थाने दली सु डायजे लाया अणी राज मे ओषद थारी लेवेगा ओषद ऊपरे मालकी थाकी है जो जनाना मे थारा बसरा टाला ओ दूजो जावेगा नही और थारी बैठक दली मे ही जी प्रमाण परधान वरोबर कारण होवेगा।

### भावार्थ

श्री चित्रकोट (चित्तौर) के महाराजाधिराज रावल समरसिंह की आज्ञा से आचार्य ऋषीकेश को—तुमको दिल्ली से दायजे मे लाया। राज्य मे तुम्हारी दवा ली जायगी, दवा पर तुम्हारा अधिकार है, और अन्त पुर मे तुम्हारे वशजो के सिवाय दूसरा नही जायगा, और दरबार मे तुमको प्रधान के बराबर आसन मिलेगा, जैसे दिल्ली मे था।

### सं० १४०७—महात्मा गोरखनाथ जी

स्वामी तुम्हे तो सतगुरु अम्हे तो सिष सबद एक पूछिवा, दया करि कहिवा, मन न करिवा रोस। पराधीन उपरान्ति बन्धन नाही, सु आधीन उपराति मुकुति नाही।

**सं० १६००—गोस्वामी बिट्ठलनाथ जी**

प्रथम की सखी कहत हैं, जो गोपीजन के चरण विषै सेवक की दासी करि जो इनके प्रेमामृत मे डूब के इनके मन्दहास्य ने जीते हैं अमृत समूह ता करि निकुज विषै शृगार रस श्रेष्ठ रसना कीनी सो पूर्ण होत भई।

**स० १६२६—गगा भाट (चंद छंद बरनन की महिमा से)**

इतनो सुन के पातशाह जी श्री अकबर शाहाजी आदसेर सोना नरहरदास चारन को दिया।

**स० १६४८—गोस्वामी गोकुलनाथ जी**

(चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवो की बार्ता से) श्री गुसाईं जी के सेवक एक पटेल की वार्ता। सो वह पटेल वैष्णवराज नागर मे रहे तो हतो। वा पटेल वैष्णव के दो बेटा हते और एक स्त्री हती।

**सं० १६६०—नाभादास जी**

अब श्री महाराज कुमार प्रथम वशिष्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भये।

**स० १६६६—गोस्वामी तुलसीदास**

स० १६६९ समये कुमार सुदी तेरसी बार शुभदीने लिषीत पत्र अनन्दराम तथा कन्हई के अस विभाग पूर्वसु जे आग्य दुनहु जने मागा जे आग्य मैशे प्रमान माना।

**सं० १६७०—बनारसीदास जी**

सम्यग् दृष्टी कहा सो सुनो। सशय, विमोह, विभ्रम ए तीन भाव जामै नाही सो सम्यग दृष्टी।

**सं० १६८०—जटमल (गोरा बादल की कथा से)**

हे बात कीसा चित्तौड गड के गोरा बादल हुआ है जीनकी वार्ता की किताब हीदवी मे बनाकर तैयार करी है। ये कथा सोल से अस्सी के साल मे फागुन सुदी पूनम के रोज बनाई।

**स० १७६७—सूरति मिश्र (कविप्रिया की टीका से)**

सीस फूल सुहाग अरु बेदा भाग ए दोऊ आये पावड़े सोहे सोने के कुसुम तिन पर पैर धरि आये है।

### स० १७८६—दास

वन पाये ते मूर्खहू बुद्धिवन्त ह्वैजातु है । और युवावस्था पाये ते नारी चतुर ह्वैजाति है । उपदेश शब्द लक्षणा सो मालूम होता है औ वाच्यहू मे प्रगट है ।

### स० १८६० —लल्लूलाल जी

निदान श्रीकृष्णचन्द्र के पास बैठा सुन-सुन घबडा कर अर्जुन बोला कि हे देवता तू किसके आगे यह बात कहै है और क्यो इतना खेद करै है।

### स० १८६०—सदल मिश्र (नासकेतोपाख्यान से)

कुड मे क्या अच्छा निर्मल पानी कि जिसमे कमल कमल के फूलो पर भौरे गूंज रहे थे, तिस पर हस सारस चक्रवाकादि पक्षी भी तीर तीर सोहावन शब्द बोलते, आसपास के गाछो पर कुहू कुहू कोकिलै कुहुक रहे थे जैसा बसतऋतु का घर ही होय ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् हिन्दी-गद्य का विकास बडी तेजी से हुआ । इससे पहले लोगो का ध्यान पद्य की ही ओर विशेष रहा, गद्य मे पुस्तके कम लिखी गई । किन्तु हरिश्चन्द्र के बाद गद्य लिखने की ओर विद्वानो की इतनी रुचि हुई, कि पद्य का स्थान पीछे पड़ गया । पद्य से गद्य की विशेष उन्नति हुई, पद्य पिछड गया और गद्य ने एक परिमार्जित रूप धारण कर लिया । यहाँ हम हिन्दी-गद्य के नये युग के क्रम-विकास के कुछ उदाहरण उपस्थित करते है—

### सं० १६११—राजा शिवप्रसाद

जब विपत के दिन आते है तो सारे सामान ऐसे ही बन्ध जाते है। निदान राजा नल ने चलते समय दमयन्ती की साडी काटकर आधी उसके बदन पर रहने दी।

### सं० १६२०—स्वामी दयानन्द

वह सत्य नही कहाता जो सत्य के स्थान मे असत्य और असत्य के स्थान मे सत्य का प्रकाश किया जाय, किन्तु जो पदार्थ जैसा है, वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है।

### स० १९२६—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

फिर महाराज अपव्यय ने खूब लूट मचाई। अदालत ने भी अच्छे हाथ साफ किये। फैशन ने तो बिल और टोटल के इतने गोले मारे कि बटाढार कर दिया, और शिफारिश ने भी खूब ही छकाया।

### पडित बालकृष्ण भट्ट

शब्द की आकर्षण-शक्ति न्यूटन की आकर्षण-शक्ति से लवमात्र भी कम नही कही जा सकती। बल्कि शब्द की इस शक्ति को न्यूटन की आकर्षण-शक्ति से विशेष कहना चाहिये। इसलिये कि जिस आकर्षण-शक्ति को न्यूटन ने प्रकट किया वह केवल प्रत्यक्ष मे काम दे सकती है।

### पडित महावीरप्रसाद द्विवेदी

उनके कथन का अवतरण देकर मल्लिनाथ ने उन्हे फटकार बताई है और लिखा है कि प्रसग भी देखते हो या मनमानी हाकते हो। तुम्हे इस प्रयोग को सही साबित ही करना है तो पाणिनि-व्याकरण के पीछे न पडकर और व्याकरण देखो। (किरातार्जुनीय)

अनाज महगा होने से किसानो ही पर आफत नही आती, किन्तु मेहनत मजदूरी करनेवाले और लोगो पर भी आती है, यही नही, सभी लोगो पर उसका असर पडता है। (सम्पत्तिशास्त्र)

### बाबू श्यामसुन्दरदास

इस गद्य की उत्पत्ति से यह तात्पर्य नही है कि पहले गद्य था ही नही, किसी न किसी रूप मे था। नही तो क्या लोग पद्य में बातचीत करते थे ? गद्य बोलचाल मे अवश्य था, पर भिन्न-भिन्न प्रान्तो और स्थानो मे भिन्न-भिन्न रूप मे था। जिन्हे हम आजकल बोलियो का नाम देते है, जैसे आगरे के निकट ब्रजभाषा बोली जाती है।

### बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन

ईश्वरीय सौन्दर्य को—प्राकृतिक कविता की भाषा की छटा द्वारा ससार को दरसाना ही कवि का कर्त्तव्य है। जितना ही गहरा वह अपनी

प्रतिभा द्वारा इस सौन्दर्य-सागर मे डूबता है, उतना ही अधिक वह अपने कर्त्तव्य मे सफल होता है।

**पं० पद्मसिंह शर्मा**

बिहारी की सखी का परिहास बड़ा ही लाजवाब है। रसिक मोहन सुनकर फडक ही गये होगे। इससे अच्छा साफ सच्चा सीधा और दिल मे गुदगुदी करनेवाला मीठा मजाक साहित्य-संसार मे शायद ही हो।

## हिन्दी-पद्य

हिन्दी-गद्य से पद्य मे विशेष उन्नति हुई है। पद्य के द्वारा थोडे समय और थोडे शब्दो मे अधिक प्रभावोत्पादक बाते कही जा सकती है। उसके कठस्थ रखने मे सुविधा होती है। अक्षरो, मात्राओ और पदो का नियमबद्ध सगठन होने से उसके पढ़ने मे भी आनन्द आता है। तथा पद्य का सम्बन्ध गान-विद्या से है और गान-विद्या मनुष्यमात्र को प्रिय है, यहा तक कि वह पशु-पक्षी तक का हृदय भी मोहित करने की शक्ति रखती है, इन कारणों से पद्य की ओर लोगो की स्वाभाविक रुचि बढती गई। गद्य मे उपर्युक्त गुण नही, इसी से पूर्वकाल मे उसका प्रचार भी कम हुआ। परन्तु उपर्युक्त गुण न रहने पर भी आजकल पद्य की अपेक्षा गद्य का प्रचार अधिक क्यो है ? इसका कारण यह है कि गद्य म ही ससार का प्रतिदिन का व्यवहार चलता है। बोलकर जो कुछ काम हम लोग करते कराते है, सबमे गद्य का उपयोग करते है। इसलिए थोड़े ही परिश्रम से अपने मानसिक भावो को गद्य द्वारा प्रकट करने की शक्ति मनुष्य मे आ सकती है। पद्य मे यह सुगमता नही। उसके लिए अधिक परिश्रम करना पडता है, नियम सीखने पडते है, मस्तिष्क के विचारो को पद्य के पेचीले रास्ते से घुमा फिराकर निकालना पडता है, इसी से उसमे अधिक समय लगता है। अधिक से अधिक परिश्रम करने पर भी मनुष्य पद्य मे इतनी पटुता नही प्राप्त कर सकता कि उसके द्वारा वह गद्य की तरह धाराप्रवाह रूप से बातचीत कर सके। पद्य के लिए

प्रतिभा है, पद्य-रचना के अधिकारी वे ही हैं । गद्य-रचना आसान है, क्योंकि वही प्रतिदिन की बोलचाल है। उसमें उन्नति करना सर्वसाधारण के लिए सुगम है।

गद्य की अपेक्षा पद्य मे जो विशेषताए है, सस्कृत-साहित्य मे भी उन पर विशेष ध्यान दिया गया है। हाथ-मुह धोने, दातुन करने, बाल सँवारने आदि साधारण कामो की बातें भी मनु आदि ने पद्य मे कही है । वही क्रम हिन्दी के आदि-काल मे भी ग्रहण किया गया। उस समय के प्रतिभा-सम्पन्न लोगो को जो कुछ कहना हुआ, उन्होने सब पद्य मे कहा। आजकल मनुष्यो के जीवन-चरित्र प्राय गद्य मे लिखे जाते है, पूर्वकाल मे पद्य मे लिखे जाते थे। इसमे सन्देह नही कि गद्य की अपेक्षा पद्य मे लिखा हुआ जीवन-चरित्र अधिक प्रभावशाली हो सकता है, परन्तु पद्य-रचना का कार्य उतना सुगम नही, जितना गद्य का।

हिन्दी-पद्य के विषय मे दो एक बाते और कहने की है । वे ये है कि सस्कृत-कविता मे जैसा वर्णवृत्तो का प्राधान्य है, वैसा हिन्दी मे नही। पुराने कवियो मे तो शायद ही किसी ने वर्णवृत्तो में कविता की हो । यदि किसी ने की भी है, तो वर्णवृत्त के नियम का उसने अच्छी तरह से पालन नही किया है । मात्रिक छन्दो में अपने भावो को सरलतापूर्वक वर्णन करने मे उसे जैसी सफलता मिलती है वैसी वर्णवृत्तो मे नही । पुराने कवियो के विषय मे एक यह बात भी ध्यान देने के योग्य है कि उनमें ऐसे कवियो की सख्या अधिक है जिन्होने अन्य छन्दो की अपेक्षा घनाक्षरी और सवैया छन्दो मे ही अधिक रचना की है। यो तो तुलसी ने दोहे चौपाई में ही सारी राम-कथा कह डाली है, बिहारी ने दोहो ही दोहो में रस भरा है, चन्द और केशव ने विविध छन्दो मे अपने मनोभाव प्रकट किये है, किन्तु घनाक्षरी और सवैया लिखने वाले कवियो की ही सख्या अधिक है । आजकल इन छन्दो की उतनी कदर नही रही। अब कितने ही नये छन्दो का प्रचार बढ रहा है। आजकल वर्णवृत्तो में भी कविता सफलता के साथ होने लगी है।

हिन्दी-पद्य-रचना के विषय मे एक बात विशेष उल्लेख के योग्य है कि इसमे प्रारम्भकाल से ही तुकबन्दी का प्रचार है। सस्कृत मे जैसे अतुकान्त कविता का बाहुल्य है, हिन्दी मे वैसा ही, वल्कि उससे भी विशेष, तुकबन्दी का प्राधान्य है। मात्रिक छन्दो मे तुकबन्दी के बिना भाषा का माधुर्य कम हो जाता है। हा, वर्णवृत्तो मे अतुकान्त रूप नही खटकता। पहले के कवि वर्णवृत्तो मे प्राय नही के बराबर ही कविता रचते थे, अत बेतुकी की ओर उनका ध्यान ही नही गया।

## हिन्दी और वैष्णव

वैष्णव सम्प्रदाय मे चार भेद है—विष्णु-सम्प्रदाय, रामानुज-सम्प्रदाय, मध्व-सम्प्रदाय और वल्लभ-सम्प्रदाय। इन चारो सम्प्रदायो के मुख्य आचार्य विष्णु, रामानुज, मध्व और वल्लभ थे। विष्णुस्वामी द्रविड देश के रहने वाले थे। इनका जन्म दिल्ली मे किसी राजा के मन्त्री के घर हुआ था। इन्होने शाङ्कर-मत का खडन किया है। रामानुज स्वामी भी द्रविड-देश-निवासी थे। इनके पिता का नाम "केशव" और माता का "मति" था। मध्वाचार्य का जन्म मदरास के रजतपीठ जि० कनारा मे स० १२५४ मे हुआ। इनके पिता का नाम मध्यगेह भट्ट था। वल्लभाचार्य का जन्म स० १५३५ मे आन्ध्रदेश ( दक्षिण ) मे हुआ। इन्होने भागवत दशमस्कध का पद्य मे अनुवाद किया है।

राम और कृष्ण वैष्णवो के प्रधान उपास्य-देव है। ये विष्णु के अवतार माने जाते है। चन्दबरदायी ने रासो के पहले ही छद मे गुरु को नमस्कार कर साकार लक्ष्मीश विष्णु को स्मरण किया है। आगे चलकर उसने दस अवतारो की कथा अलग-अलग लिखी है। इससे मालूम होता है कि उसके चित्त पर वैष्णव धर्म का विशेष प्रभाव था। और हिन्दी का आदि कवि भी वही माना जाता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि वैष्णवो ही ने हिन्दी का उसके जन्मकाल से लालन-पालन किया है। हिन्दी के साथ वैष्णवो का अधिक सम्बन्ध होने का एक

कारण और भी है। वह यह है कि हिन्दी उस प्रदेश की भाषा है, जहा वैष्णवो के आराध्यदेव राम और कृष्ण ने अवतार धारण किया था। जिस स्थान पर उन्होने लीला की, उस स्थान, वहा के निवासियो और उनकी भाषा से वैष्णवो का प्रेम होना स्वाभाविक ही है। राम और कृष्ण का कीर्तन करने मे वैष्णव कवियो का एक ताता-सा बँध गया। हिन्दी मे आज तक शायद ही ऐसा कोई कवि हुआ हो जिसने किसी न किसी रूप मे राम-कृष्ण का गुण-गान न किया हो।

पन्द्रहवी शताब्दी मे स्वामी रामानन्द हुए। उन्होने मानो हिन्दी-भाषा मे वैष्णव धर्म की नीव दृढ कर दी। उनके पश्चात् ही भक्त-शिरोमणि सूरदास ने स० १५४० मे जन्म लिया। सूरदास ने अपनी कविता के द्वारा हिन्दी का गौरव मुसलमान सम्राट् अकबर के दरबार तक फैला दिया। इसी शताब्दी मे दक्षिण देश से आकर स्वामी वल्लभाचार्य ने कृष्णभक्ति को और भी चमत्कृत कर दिया। सूरदास और वल्लभाचार्य की सयुक्त शक्ति ने वैष्णव-सम्प्रदाय में कृष्ण-भक्ति की एक बाढ-सी ला दी। इसी अवसर मे स्वामी हरिदास, हितहरिवश और नन्ददास की मधुर ध्वनि गूँजने लगी। वैष्णवदल मे एक से एक प्रतिभाशाली कवियो ने जन्म लेकर हिन्दी-भाषा द्वारा-जनता का मन ऐसा खीच लिया कि देश मे चारो ओर हिन्दी कविता सहस्र धारा होकर उमड चली। अभी लोग इस आनन्द-लहरी मे स्नान करके तृप्त हो ही रहे थे कि हिन्दी-कवियो के शिरोमणि तुलसीदास आ पहुँचे। इनकी कलम ने हिन्दी में वैष्णव-धर्म को अजर अमर बना दिया। आज इनके समान प्रतिभाशाली कवि हिन्दी मे कोई नही। आज अपढ सपढ सब मे तुलसीदास वैष्णव-धर्म की चर्चा करते हुए पाये जाते है। तुलसीदास के समान आज भारतवर्ष भर मे किसी हिन्दी-कवि का आदर नही।

वैष्णव कवियो की कविता का रस चखकर मलिक मुहम्मद जायसी और रहीम ऐसे कितने ही मुसलमान कवि अपनी कविता द्वारा वैष्णव-

धर्म का प्रचार करने लगे । और रसखान तो जाति-पाँति सब छोड़कर स्वय वैष्णव हो गये ।

सूर और तुलसी के पीछे हिन्दी के जितने कवि हुए, सब राम और कृष्ण के कीर्तन मे उत्तरोत्तर वृद्धि करते चले आये । ग्रामीण कवियो ने अपनी रोज की बोलचाल मे भी कविता रची । उसके द्वारा गाव के अपढ लोगों मे वैष्णव-धर्म का खूब प्रचार हुआ । एक उदाहरण देखिये—

हरे हरे केसवा हरु रे कलेसवा तोरा के रटत महेसवा रे ।
तोरे नाम जपत बा पुजत बा सबसे प्रथम गनेसवा रे ॥
जल बरसैला धान सरसैला सुख उपजैला मघवा रे ।
प्रागदास प्रहलदवा के कारन रघवा ह्वै गैलें बघवा रे ॥

* * *

गाँव के लोग अपनी रोजमर्रा की बोलचाल की कविता को बड़े ध्यान से सुनते और खूब समझते है । तात्पर्य यह कि हिन्दी-भाषा द्वारा वैष्णव-धर्म का सम्मान बढा और वैष्णव-धर्मके साथ हिन्दीका प्रचार हुआ।

## हिन्दी और जैन

जैन-साहित्य मे हिन्दी का रूप सोलहवी शताब्दी से स्पष्ट होने लगा है । उसके पहले वह प्राकृत और अपभ्रश मे ऐसी गुँथी थी कि हम उसे हिन्दी नही कह सकते । स० १५८० मे ठकुरसी नामक एक कवि ने "कृपण-चरित्र" नामक एक छोटी-सी कविता-पुस्तक लिखी । उसमे से एक छप्पय हम यहा उद्धृत करते है—

कृपण कहै रे मीत मज्झु घरि नारि सतावै ।
जात चालि धणु खरचि कहै जो मोह न भावै ॥
तिहि कारण दुब्बलौ रयण दिन भूख न लागै ।
मीत मरणु आइयौ गुज्झु आखौ तू आगे ॥
ता कृपण कहैरे कृपण सुनि मीत न कर मन माहि दुखु ।
पीहरि पठाइ दै पापिणी ज्यो को दिण तू होइ सुखु ॥

* * *

इस छन्द मे हिन्दी भाषा की एक स्पष्ट मूर्ति निकल आने मे बहुत थोड़ी कसर दिखाई पडती है।

सत्रहवीं शताब्दी मे सुप्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदास हुए। इनका जन्म सं० १६४३ मे, जौनपुर नगर मे हुआ। इन्होने अपनी कविता में हिन्दी का रूप स्पष्ट कर दिया। इनके रचे चार ग्रन्थ, बनारसीविलास, नाटक समय-सार, अर्द्धकथानक, और नाममाला (कोष) प्रसिद्ध है। अर्द्धकथानक इनका सबसे अच्छा ग्रन्थ है। इसमे इन्होने अपना ५५ वर्ष का आत्म-चरित लिखा है। इस ग्रन्थ से इनकी कविता की थोडी-सी बानगी आगे दिखलाते है।

स० १६७३ मे आगरे मे प्लेग का प्रकोप हुआ। उसका वर्णन इन्होने ऐसा किया है—

इस ही समय ईति बिस्तरी, परी आगरे पहिली मरी।
जहा तहा सब भागे लोग, परगट भया गाठ का रोग॥
निकसै गाठि मरै छिन माहि,काहू की बसाय कछु नाहि।
चूहे मरै वैद्य मर जाहि, भयसो लोग अन्न नहि खाहि॥

* * *

जब अकबर बादशाह के मरने का समाचार जौनपुर पहुचा, उस समय वहा के निवासियो की क्या दशा हुई, उसका वर्णन सुनिये—

इसही बीच नगर मे सोर। भयो उदगल चारिहु ओर॥
घर घर दर दर दिये कपाट। हटवानी नहि बैठे हाट॥
भले वस्त्र अरु भूषण भले। ते सब गाडे धरती तले॥
घर घर सबनि बिसाहे सम्त्र। लोगन पहिरे मोटे वस्त्र॥
ठाढौ कम्बल अथवा खेस। नारिन पहिरे मोटे वेस॥

* * *

ऊच नीच कोऊ न पहिचान। धनी दरिद्री भये समान।
चोरी धारि दिसै कहुं नाहि। योही अपभय लोग डराहि॥

* * *

एक बार बनारसीदास परदेश मे अपने साथियो के सहित कही ठहरे, इतने मे पानी बरसने लगा। तब सब भागकर सराय मे गये, वहा जगह नही थी। बाजार मे कही खड़े होने का स्थान नही था। सबके किवाड बन्द थे। उस समय का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

फिरत फिरत फावा भये, बैठो कहै न कोइ।
तलै कीच सो पग भरे, ऊपर बरसत तोइ॥
अधकार रजनी विषै, हिमरितु अगहन मास।
नारि एक बैठन कह्यो, पुरुष उठ्यो लै बास॥

* * *

बनारसीदास प्रतिभावान् कवि थे। इनके पश्चात् भूधरदास आदि और भी कई अच्छे कवि हुए, जिन्होने हिन्दी-भाषा मे बडी ललित कविताए रची है। जैन विद्वानो ने पूर्वकाल से ही हिन्दी की उन्नति और उसके प्रचार मे हाथ बटाया है। आज भी हिन्दी के लिए उनका उद्योग कम नही।

## हिन्दी और सिक्ख

सिक्खो के आदि गुरु नानकदेव ने हिन्दी का बहुत प्रचार किया। उन्होने यात्राए भी बड़ी दूर-दूर की की थी। सिक्ख विद्वानो का कथन है कि वे जहा-जहा जाते थे वहा हिन्दी ही मे धर्मोपदेश करते थे। उनके कहे हुए वचन सब हिन्दी ही मे है। सिक्खो के पाचवे गुरु अर्जुनदेवजी हिन्दी के एक प्रसिद्ध लेखक थे। अपने से पहले हुए गुरुओ की वाणी का सग्रह करके "गुरु ग्रथ साहब" की रचना उन्होने ही की है। यह सिक्खो का धर्म-ग्रन्थ है, और अब तक करतारपुर मे मौजूद है। गुरु तेगबहादुर ने औरगजेब को हिन्दी ही मे ससार की असारता का उपदेश दिया था।

सिक्ख-सम्प्रदाय मे हिन्दी का सबसे अधिक सम्मान गुरु गोविन्दसिह के समय मे हुआ। गुरु गोविन्दसिह का वर्णन कविता-कौमुदी मे आ गया है। ये स्वय हिन्दी के अच्छे कवि थे। हिन्दी में शिक्षा देने के लिए

इन्होने कई पाठशालाए खोली थी। इनके सिवा भाई सन्तोषसिह ने भी हिन्दी का बहुत कुछ हित-साधन किया है। ये सिक्खो मे हिन्दी के महाकवि कहे जाते है। इनके रचे "सूर्यप्रकाश" नामक ग्रन्थ को सिक्ख लोग बडे चाव से पढते है।

काशी मे शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरु गोविन्दसिह के भेजे हुए सन्त गुलाबसिह ने भी हिंदी की बडी सेवा की है। इनके लिखे हुए चार ग्रन्थ आजकल उपलब्ध होते है। सब हिन्दी मे है, और वेदान्त-प्रेमी सिक्खो मे उनका बडा आदर है।

वर्तमानकाल मे भी सिक्ख-सम्प्रदाय मे ज्ञानी ज्ञानसिह द्वारा हिन्दी का अच्छा प्रचार हो रहा है। इन्होने हिन्दी कविता मे "ग्रन्थप्रकाश" नामक ग्रथ की रचना की है।

## हिन्दी और गुजराती

गुजराती का हिन्दी के साथ बहुत निकट का सम्बन्ध है। अच्छी हिन्दी जाननेवाला थोडे ही परिश्रम से गुजराती सीख सकता है।

गुजरात मे गुजराती भाषा के साहित्य का जन्म नरसी मेहता और मीराबाई के समय से हुआ। मीराबाई की जीवनी और कुछ कविताए कविता-कौमुदी मे दी हुई है। उससे यह साफ प्रकट होता है कि मीराबाई की कविता की भाषा कैसी है। कही-कही मारवाडी और गुजराती बोलचाल के शब्द आ गए है, नही तो वह विशुद्ध हिन्दी ही है। यहा हम नरसी मेहता का एक पद लिखते है। उससे पाठक आसानी से समझ लेगे कि गुजराती और हिन्दी मे कितना अन्तर है।

> वैष्णव जन तो तेने कहिए जो पीड पराई जाणे रे।
> परदु खे उपकार करे तोए, मन अभिमान न आणे रे॥
> सकल लोकमा सहुने वन्दे, निन्दा न करे केनी रे।
> वाच, काछ, मन निश्चल राखे धन धन जननी तेनी रे॥
> समदृष्टी ने तृष्णा त्यागी पर स्त्री जेने मात रे।
> जिह्वा थकी असत्य न बोले परधन नव झाले हाथ रे॥

मोह माया व्यापे नहि जेने दृढ वैराग्य जेना मनमा रे।
रामनामशू ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनमा रे॥
वणलोभी ने पटरहित छे काम क्रोध निवारचा रे।
भणे नरसैयो तेनु दर्शन करतां कुल एकोतेर तारचा रे॥

बहुत थोडे शब्द इसमें ऐसे है, जो हिन्दीवाले न समझ सकते हों; परन्तु भाव तो सब समझ लेगे।

नरसी मेहता के पहले गुजरात मे गुजराती भाषा बोली तो जाती थी; किन्तु उसका कोई साहित्य नही था। ब्रजभाषा की कविता को ही विद्वान् और कवि लोग पढते और लिखते थे। गुजराती मे ब्रजभाषा का आधिक्य है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि वल्लभ-सम्प्रदाय का आदर गुजरात मे बहुत है। वल्लभ-सम्प्रदाय का भक्ति-साहित्य ब्रजभाषा मे बहुत है। इससे गुजरात मे धार्मिक-भाव के साथ ब्रजभाषा का भी प्रभाव बढ गया।

गुजराती कवियो ने हिन्दी के बहुत-से छन्दो को अपनाया है और उनमे रचनाए की है।

हिन्दी मे जैसे तुलसीदास की चौपाई, सूरदास के पद और गिरधर की कुण्डलिया प्रसिद्ध है, वैसे ही गुजराती मे नरसी मेहता की प्रभाती, मीराबाई के भजन, सामल के छप्पय, दयाराम की गरभिया, और नर्मदाशकर के रोला छन्द की महिमा है। सुप्रसिद्ध कवि दयाराम की कविता तो हिंदी से बहुत ही मिलती-जुलती है। लीजिए, एक उदाहरण देखिये—

हरदम कृष्ण कहे श्रीकृष्ण कहे तू जबा मेरी।
यही मतलब खातर करता हू खुशामद मैं तेरी॥
दही और दूध शक्कर रोज खिलाता हू तुझे।
तो भी हर रोज हरनाम न सुनाती मुझे॥
खोई जिन्दगानी सारी सोइ गुनाह माफ तेरा।
दया मत भूले प्रभुनाम आखिर वक्त मेरा॥

बगला और मराठी की अपेक्षा गुजराती का हिन्दी से अधिक सम्बन्ध है। इस समय भी गुजराती साहित्य मे हिन्दी की बहुत छाया वर्तमान है।

## हिन्दी और मुसलमान

मुसलमान जब से इस देश मे आये, तभी से हिन्दी के साथ उनका घनिष्ट सम्बन्ध रहा। राज्य का सब कामकाज हिन्दी में ही होता था। मुहम्मद कासिम, महमूद गजनवी और शहाबुद्दीन गोरी ने हिन्दुस्तान मे अपना दफ्तर हिन्दी मे ही रक्खा था। उनकी तवारीखो से इन बातो का साफ-साफ पता चलता है। हसन गागू ब्राह्मणी ने अपने हिसाब का दफ्तर गांगू ब्राह्मण को सौंपा था।

अमीर खुसरो ने हिन्दी में बहुत से दोहे, पहेलिया, गीत, दो अर्थी, अनमिल और मुकरनी आदि लिखे। अमीर खुसरो का जन्म स० १३१२ और मरण स० १३८२ मे हुआ। दिल्ली मे अब तक उनकी कब्र है और उस पर मेला भी लगा करता है। उन्होने खालकबारी नामक एक पुस्तक लिखी, जिसमे अरबी, फारसी, तुर्की शब्दो के पर्यायवाची हिन्दी शब्द पद्य मे बताये गये है। हिन्दुओ को मुसलमानो की भाषा से और मुसलमानो को हिन्दुओ की भाषा से परिचित कराने का खुसरो ने यह सब से पहला प्रयत्न किया था। खुसरो ने जिस हिन्दी में छन्द रचे है, वह अवश्य ही उनके समय की बोलचाल की भाषा होगी। और किसी कवि की कविता उस हिन्दी मे नही मिलती। यहा खुसरो की कविता के कुछ नमूने दिये जाते है—

### खालकबारी

बया बिरादर आवरे भाई। बनशान मादर बैठ री माई।
मुश्क काफूर अस्त कस्तूरी कपूर। हिन्दवी आनन्द शादा और सरूर।
मूश चूहा गुर्ब बिल्ली मार नाग। सोजनो रिश्त बहिन्दी सुई ताग॥

* * *

### आंखो का एक नुसखा

लोध फिटकरी मुर्दासङ्ग । हल्दी, जीरा एक-एक टङ्ग ।।
अफीम चनाभर मिर्च चार । उरद बराबर थोथा डार ।
पोस्त के पानी पोटली करे । तुरत पीर नैनो की हरे ।।

* * *

### पहेलियां

तरवर से एक तिरिया उतरी उसने बहुत रिझाया ।
बाप का उसके नाम जो पूछा आधा नाम बताया ।
आधा नाम पिता पर प्यारा बूझ पहेली मोरी ।
"अमीर खुसरो" यो कहे अपने नाम "न बोली" ।। "निबोरी" ।

फारसी बोले आईना । तुरकी सोचे पाईना ।
हिन्दी बोलते आरसी आये । मुह देखे जो इसे बताये ।।
"आईना" ।

बीसो का सिर काट लिया । ना मारा ना खून किया ।।
"नाखून" ।

जलकर उपजे जल मे रहे । आखो देखा "खुसरो" कहे ।।
"काजल" ।

आदि कटे ते सब को पारै । मध्य कटे ते सब को मारै ।
अन्त कटे ते सब को मीठा । सो "खुसरो" मै आखो दीठा ।
"काजल" ।।

पहेलियो के सिवा खुसरो ने स्त्रियो के गाने के लिए बहुत से गीत भी लिखे थे । नमूने के तौर पर उनका एक गीत यहा दिया जाता है—

अम्मा, मेरे बाबा को भेजो जी, कि सावन आया ।
बेटी, तेरा बाबा तो बुड्ढा री, कि सावन आया ।।
अम्मा, मेरे भाई को भेजो जी, कि सावन आया ।
बेटी, तेरा भाई तो बाला री, कि सावन आया ।।

अम्मा, मेरे मामू को भेजो जी, कि सावन आया ।
बेटी, तेरा मामू तो बाका री, कि सावन आया ।

खुसरो की "मुकरनिया" भी बहुत मशहूर है ।

मुकरनी--

सिगरी रैन मोहि सग जागा ।
भोर भई तब बिछुडन लागा ।।
उसके बिछुडे फाटत हिया ।
क्यो सखि, साजन ? ना सखि, "दिया" ।। १ ।।
सरब सलोना सब गुन नीका ।
वा बिन सब जग लागे फीका ।
वाके सर पर होवे कौन ।
ऐ सखि, साजन ? ना सखि, "लौन" ।। २ ।।
वह आवे तब शादी होय ।
उस बिन दूजा और न कोय ।
मीठे लागे वाके बोल ।
ऐ सखि, साजन ? ना सखि, ढोल ।। ३ ।।

एक दिन खुसरो राह मे चले जारहे थे । चलते-चलते प्यास लगी । एक पनघट पर पहुचे । चार पनिहारिने पानी भर रही थी । खुसरो ने पानी मागा । उनमे से एक इन्हे पहचानती थी । उसने अपनी सहेलियों से कहा कि देख खुसरो यही है, जिसके गीत गाये जाते है । उनमे से एक ने खुसरो से कहा, मुझे खीर की कविता सुनाओ, तब पानी पिलाऊगी । दूसरी ने चरखे पर, तीसरी ने ढोल पर और चौथी ने कुत्ते पर कविता सुननी चाही । खुसरो ने चारो का उत्तर एक ही छन्द मे दिया—

खीर पकाई जतन से चरखा दिया जला ।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा ।। ला, पानी पिला ।।

इस तरह के बेसिर-पैर के छन्द का नाम अनमिल है । खुसरो कभी-कभी "ढकोसला" भी कहा करते थे । एक ढकोसला यह है ।—

भादों पक्की पीपली, चू चू पड़े कपास ।

बी महतरानी दाल पकाओगी, या नङ्गा ही सो रहूं ।।

खुसरो ने "दो सखुने" भी बहुत से कहे है । कुछ ये है—

गोश्त क्यो न खाया—डोम क्यों न गाया ? गला न था ।

जूता क्यो न पहना—समोसा क्यो न खाया ? तला न था ।

अनार क्यो न चखा—वजीर क्यो न रखा ? दाना न था ।

पण्डित क्यों पियासा—गदहा क्यो उदासा ? लोटा न था ।

पण्डित क्यों न नहाया—धोबिन क्यो मारी गई ? धोती न थी ।

सौदागर रा च मे बायद—बूचे को क्या चाहिये ? दोकान ।

तिश्ना रा श मे बायद—मिलाप को क्या चाहिये ? चाह ।

शिकार बचा मे बायद करद—कूबते मगज़ को क्या चाहिये ? बादाम ।

खुसरो के मुहल्ले मे चम्मो नाम की एक बुढिया की दूकान थी । वह लागो को भाग और चरस पिलाया करती थी । भगेडियो और गजेडियो का एक खास जमघट उसके यहा लगा रहता था । खुसरो उसी रास्ते से दरबार आते-जाते और टहलने निकला करते करते थे । बुढिया कभी-कभी हुक्का भरकर सामने खडी होजाती । खुसरो यह खयाल करके कि बुढिया का दिल दुखाना ठीक नही, कभी-कभी एक-दो फूक ले लेते थे । एक दिन उसने कहा, "आप कवि है । हजारो गीत, गजल, राग, रागिनी लिखा करते है, कोई चीज इस दासी के नाम से भी बना दीजिये । आपकी कृपा से इस दासी का भी नाम रह जायगा ।" इसके बाद वह तकाजे पर तकाजे पर करने लगी । एक दिन खुसरो ने उसके नाम से यह कह ही डाला—

औरो की चौपहरी बाजे चिम्मो की अठपहरी ।

बाहर का कोई आये नाही आयें सारे शहरी ।।

साफसूफकर आगे राखे जिसमे नाही तूसल ।।

औरो के जह सीक समावे चिम्मो के तह मूसल ।।

अर्थात्, बादशाहो के यहा तो सिर्फ चार पहर ही नौबत बजती है, इसके यहा आठो पहर कूडी, सोटा बजता रहता है । बाहर का कोई आता

नही, शहर ही के सफेदपोश आते है। भङ्ग को साफ-सूफ करके यह आगे रखती है, जिसमे जरा भी कूडा-करकट नही होता। ऐसी गाढी भाग छनती है कि औरो की भाग मे जहा सीक खडी हो सकती है, वहा चिम्मो की भाग मे मूसल खड़ा होजाता है।

कहना नही होगा कि खुसरो की बदौलत चिम्मो का भी नाम रह गया। खुसरो ने फारसी और हिन्दी की मिलावट के छन्द भी लिखे है। उनमें एक यह है --

ज़े हाल मिसकी मकुन तगाफुल दुराय नैना बनाय बतिया ॥
कि ताबे हिजरा न दामे ऐ जा ! न लेहु काहे लगाय छतिया ॥
शबाने हिजरा दराज़ चू ज़ुल्फ व रोज़े वसलत चु उम्र कोतह।
सखी पिया को जो मैं न देखू तो कैसे काटू अधेरी रतिया ॥

खुसरो ने एक मौके पर यह दोहा कितना सुन्दर कहा है—

गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहु देश ॥

* * *

अकबर के समय मे तो हिन्दी का महत्व बहुत बढ गया था। अकबर का जन्म स० १५९९ मे अमरकोट मे हुआ। १६६२ वि० तक उसने राज किया। वह विशेष पढ़ा-लिखा न था, पर प्रतिभाशाली और सत्सगी था। उसके दरबार मे हिन्दी के अच्छे-अच्छे कवि, पण्डित और गवैये रहते थे। उसका समय हिन्दी का स्वर्ण-युग कहा जा सकता है। कुछ छन्द यहा लिखे जाते है, जो अकबर के बनाये हुए कहे जाते है —

( १ )

जाको जस है जगत मे, जगत सराहै जाहि।
ताको जीवन सफल है, कहत अकब्बर साहि ॥

( २ )

साहि अकब्बर एक समै चले कान्ह विनोद बिलोकन बालहि।
आहट ते अबला निरख्यो चकि चौकि चली करि आतुर चालहि ॥

स्यो बलि बेनी सुधारि धरी सु भई छवि यो ललना अरु लालहिं ।
चम्पक चारु कमान चढावत काम ज्यो हाथ लिये अहि बालहिं ॥

( ३ )

केलि करै विपरीत रमै सु अकब्बर क्यो ,स इतो सुख पावै ।
कामिनी को कटि किंकिनि कान किधौ गनि पीतम के गुन गावै ॥
बिन्दु छुटो तन मे सु लालट ते यो लट मे लटको लगि आवै ।
साहि मनोज मनो चित मै छवि चद लये चकडोर खिलावै ॥

अपने बेटे जहागीर को भी अकबर ने हिन्दी सिखाई,और अपने पोते खुसरो को तो छ वर्ष की अवस्था ही मे हिन्दी सीखने के लिए भूदत्त भट्टाचार्य के सुपुर्द कर दिया था । शाहजहा अपनी मातृभाषा के समान हिन्दी-भाषण मे अधिकार रखता था । शाहजहा के दरबार मे हिन्दी-कवियो का अच्छा सम्मान था । उसका बड़ा लड़का दारा तो हिन्दी और सस्कृत मे अपने बाप-दादो से भी बढकर निकला । उसने उपनिषदो का फ़ारसी भाषा मे उल्था किया । औरङ्गजेब यद्यपि हिन्दुओ से बडा द्वेष रखता था, हिन्दी से विमुख वह भी नही था । एक बार शाहज़ादा मुहम्मद आजम ने कुछ आम औरङ्गजेब के पास भेजे और प्रार्थना की कि इनके नाम रख दो । औरङ्गजेब ने बेटे को लिखा—"तुम स्वय विद्वान् होकर बूढे बाप को क्यो कष्ट देते हो ? खैर, तुम्हारी प्रसन्नता के लिए आमो का नाम मैने 'सुधारस' और 'रसना-विलास' रक्खा है"—

शाही दरबारो मे हिन्दी-गवैयो का भी बड़ा आदर था । तानसेन को अकबर ने पहले ही मुजरे मे एक करोड का इनाम दिया था । बैरमखा खानखाना ने बावा रामदास को एक लाख रुपये एक ही दिन दे डाले थे । शाहजहा ने महापात्र जगन्नाथराय त्रिशूली के बराबर रुपये तौल दिये थे । उसी ने कलावन्त लाल खॉ को गुणनिधि की उपाधि दी थी । हिन्दी का इतना आदर था कि मुसलमान गवैये भी हिन्दी की राग-रानिया गाते थे । हिन्दू गवैयो का तो कहना ही क्या है, मुसलमान गवैये अब तक भी हिन्दी राग-रागनिया गाते है ।

मुसलमानी राजत्वकाल का इतिहास और हिन्दी का इतिहास यदि मिलाकर देखा जाय तो यह देखकर बडा आश्चर्य होता है कि मुसलमानो की उन्नति के साथ हिन्दी की उन्नति हुई है और उनके अध पतन के साथ एक बार हिन्दी का भी रग फीका पड गया है। जब मुसलमानी शासन का सूर्य उन्नति पर था, हिन्दी के बडे-बडे प्रतिभाशाली कवि उसी समय मे हुए थे। मुसलमानो की उन्नति के समय हिन्दी इस तरह फूली फली कि उसके सुमधुर सुगन्ध और स्वाद से आजकल हम लोग बहुत आनन्द पा रहे है। हिन्दी के इस नाते से मुसलमानो की ओर हमारा प्रेम बढ जाता है। हिन्दी की इस उन्नति से मुसलमानो को गर्व होना चाहिए।

बहुत से मुसलमान कवियो ने हिन्दी मे कविता की है। उनमे से कुछ के नाम नीचे लिखे जाते है। साथ ही यह भी लिख दिया जाता है कि उनके रचे हुए कौन-कौन से ग्रथ उपलब्ध है—

| कवि | ग्रन्थ |
| --- | --- |
| १—अमीर खुसरो | फुटकर |
| २—मलिक मुहम्मद जायसी | कविता-कौमुदी मे वर्णन देखिये। |
| ३—अकबर | फुटकर |
| ४—कादिरबख्श | ,, |
| ५—अब्दुलर्रहीम खानखाना | कविता-कौमुदी मे वर्णन देखिये। |
| ६—उसमान | ,, ,, मे देखिये। |
| ७—सैयद इब्राहीम (रसखान) | ,, ,, ,, |
| ८—मुबारक | ,, ,, मे देखिये। |
| ९—अहमद | वेदान्त कविता |
| १०—वहाब | बारहमासा |
| ११—अब्दुर्रहमान | यमक शतक |
| १२—जलील | फुटकर |
| १३—याकूब खाँ | रसिक-प्रिया की टीका |
| १४—जुल्फिकार | सतसई का टीका |

| कवि | ग्रन्थ |
|---|---|
| १५—अनवर खाँ | अनवर चंद्रिका |
| १६—प्रेमी यमन | अनेकार्थ नाम माला |
| १७—आजम | नखशिख |
| १८—सैयद गुलाम नवी | रसप्रवोध, अङ्गदर्पण |
| १९—तालिब अली | नखशिख |
| २०—नवी | फुटकर |
| २१—आलम | कविता-कौमुदी देखिये । |

किसी-किसी मुसलमान कवि न तो हिन्दी मे ऐसी अच्छी कविता की है, कि उसके एक-एक पद पर कितने ही हिन्दू कवियो की कविता न्योछावर कर दी जा सकती है । अत मे बड़े साहस और सतोष के साथ हम यह कह सकते है कि पिछले सहृदय मुसलमान वादशाहो और कवियो ने हिन्दी की जो सेवा की है वह कभी न कभी अवश्य हिन्दू-मुसलमानो के भाषा विषयक विरोध को दूर करने मे समर्थ होगी ।

## हिन्दी और उर्दू

उर्दू कोई स्वतन्त्र भाषा नही, वह हिन्दी का एक रूपान्तर मात्र है। हिन्दी में अरबी, फारसी और तुर्की के कुछ शब्दो के आजाने से वह कोई नई भाषा नही कहला सकती । और जब हिन्दी उर्दू का व्याकरण एक है तो वह अलग स्वतन्त्र भाषा कैसे कहला सकती है ? इसी तरह आजकल कालेजो मे अग्रेजी शब्दो से लसी हुई जो हिन्दी बोली जाती है, वह कोई नई भाषा नही कहला सकती । हिन्दी और उर्दू मे सिर्फ इतना ही अतर है कि हिन्दी देवनागरी लिपि मे लिखी जाती है और सस्कृत शब्दो की उसमें बहुलता रहती है, उर्दू फारसी लिपि मे लिखी जाती है और उसमें अरबी और फारसी के शब्दो की अधिकता रहती है । गुजराती भाषा के भी दो रूप है, एक पारसियो की गुजराती, दूसरी गुजरातियो की गुजराती । पारसियो की गुजराती मे अरबी, फारसी के शब्द अधिक

होते है और गुजरातियो की गुजराती मे सस्कृत और अपभ्रश के शब्द। पर गुजराती भाषा के अलग-अलग नाम नही । दोनो रूपो का एक ही नाम है। ऐसा ही सम्बन्ध हिन्दी और उर्दू का है।

मुसलमानो के आने के पहले ही से अरबी, फारसी और तुर्की के शब्द यहा भी भाषा मे प्रचलित थे। यह बात चदबरदाई की कविता से स्पष्ट मालूम होती है। जब मुसलमानो का ससर्ग इस देश में बढा, तब उनकी भाषा के बहुत से शब्द भी हमारी बोलचाल मे बढ गए। बोल-चाल समझने के सुभीते के लिए हिन्दू-मुसलमान दोनो ने हिन्दी मे अरबी फारसी के शब्दो को मिलने दिया । शाहजहा के वक्त में इस मिश्रित भाषा का नाम उर्दू पड गया । "उर्दू" नाम होने के पहले ही कबीर, सूर और तुलसी की कविता में अरबी फारसी के बहुत से शब्द व्यवहृत हुए है । तुर्की में उर्दू शब्द का अर्थ है "लश्कर का बाजार"। यह मिली-जुली बोली लश्कर के बाजार मे, जहाँ मुल्क-मुल्क और शहर-शहर के आदमी जमा होते थे, बोली जाती थी । वही से इस बाजारू हिन्दी का नाम उर्दू हुआ । इसका एक पुराना नाम "रेखता" भी है। कबीर साहब ने कुछ "रेखते" लिखे है, पर वहाँ "रेखता" उनके एक खास छन्द का नाम है, बोली का नही। यद्यपि उनके रेखतो की भाषा "रेखता" ही है ।

शम्सुलउलमा मौलवी मुहम्मद हुसेन साहब आजाद ने "आबेहयात" के छठे पृष्ठ पर जो यह लिखा है कि "इतनी बात हर शख्स जानता है कि हमारी उर्दू जबान ब्रजभाषा से निकली है" (पृष्ठ ६), "सस्कृत और ब्रजभाषा की मिट्टी से उर्दू का पुतला बना है" (पृष्ठ ३४) वह ठीक नही है। उर्दू ब्रजभाषा से नही निकली, बल्कि हिन्दी ही का नाम उर्दू रख लिया गया है। अमीर खुसरो की पहेलियो और कबीर के रेखतो से स्पष्ट मालूम होता है कि हिन्दी चन्दबरदाई के पहले से स्वतन्त्र रूप से बोली जाती रही है, और उसी मे अरबी फारसी के शब्द जगह पाकर घुस बैठे। जिस भाषा का नाम शाहजहाँ के वक्त में "उर्दू" पडा, वह

उसके बहुत पहले से बोली जाती रही है। वह ब्रजभाषा के समान ही पुरानी भाषा है। हम उर्दू को ब्रजभाषा से निकली हुई नही मानते, वह हिन्दी है; सिर्फ उसका नाम नया रक्खा गया है। यह एक बडी दिलचस्प बात है कि अरबी फारसी के शब्दो को मजबूर होकर हिन्दुस्तानी ढाँचे मे ढल जाना पडा है। उन्होने अपने को हिन्दी-व्याकरण के हवाले कर दिया, जिसने उनके तन पर अपना जामा पहना दिया। कुछ ऐसे उदाहरण दिये जाते है।

प्राय सभी शब्दो का बहुवचन हिन्दी व्याकरण के नियमानुसार है। जैसे,

| | | | |
|---|---|---|---|
| आदमी का | आदमियो— | | |
| मेवा का | मेवो | न कि | मेवाजात |
| निशान का | निशानो | न कि | निशानात |
| मुश्किल का | मुश्किलो | न कि | मुश्किलात |
| दफा का | दफाओ | न कि | दफात |
| औरत का | औरतो, औरते | न कि | मस्तूरात |
| मजदूर का | मजदूरो | न कि | मजदूरान |

इत्यादि, अब कुछ लोग उर्दू मे अरबी फारसी के शब्दो का असली बहुवचन लिखने लगे है। पर ऐसा करके वे भाषा को और भी कठिन बना रहे है और उसकी सीमा सकुचित कर रहे है। मामूली बोलचाल मे उन शब्दों का हिन्दी-रूप ही प्रचलित है और रहेगा।

फारसी शब्दो से बहुत सी क्रियाए भी हिन्दी के ढग पर बन गई है। जैसे—

| | |
|---|---|
| शरम से | शरमाना |
| गुजर से | गुजरना |
| फरमान से | फरमाना |
| कबूल से | कबूलना |
| बदल से | बदलना |
| बख्श से | बख्शना |

काहिली से कहलाना
मुनकिर से मुकरना इत्यादि ।

कुछ क्रियाए करना, होना आदि शब्दो के सयोग से बन गई ह । जैसे, खुश होना, ज़िक्र करना, रवाना होना, दिल लगाना इत्यादि ।

कुछ शब्द ऐसे है, जिनका धड तो हिन्दुस्तानी है और सिर फारसी। जैसे, समझदार, गाडीखाना, पानदान, पीकदान, मोदीख़ाना, हाथीवान इत्यादि ।

कुछ ऐसी-ऐसी चीजे भी, जो इस मुल्क मे बाहर से आई, अपना नाम साथ लाई । जैसे, साबुन, शीशा, मशक, काज़ी, हुक्का, चिलम, नैचा, कुर्ता, चोगा, आस्तीन, पायजामा, इजार, रुमाल, शाल, दुशाला, तकिया, बुरका, चपाती, पुलाव, अचार, बेदमुश्क, रकाबी, तश्तरी, चमचा, किश्ती, चाय आदि ।

बहुत से अरबी फारसी के शब्दो का इतना प्रयोग बढ गया है कि अब उनके स्थान पर सस्कृत या प्राकृत के पर्यायवाची शब्द ढूढकर रक्खे जाय तो या तो कुछ अर्थ ही न निकलेगा या भाषा इतनी कठिन हो जायगी कि सर्वसाधारण तो क्या, शिक्षित हिन्दू भी कठिनता से समझ सकेगे । जैसे—

मज़दूर, वकील, कलम, दवात, स्याही, मसख़रा, नसीहत, चादर, सूरत, तोता, पर, जुलाब, गुलाब, तग, जीन, रकाब, नाल, कोतल, जहाज, मस्तूल, परदा, दालान, तनख्वाह, मल्लाह, ताजा, गलत, सही, रसद, कारीगर, तराजू, शतरज । शतरज ख़ास हिन्दुस्तान की चीज है । पर अब इसके असली नाम "चतुरग" से शायद ही कुछ लोग परिचित हो । ऊपर के शब्दो के पर्यायवाची शब्द सस्कृत मे अवश्य है, पर हिन्दी मे उनका प्रयोग बन्द हो गया । अब पाटल के स्थान पर गुलाब ने अधिकार जमा लिया है ।

हिन्दी के इस नये रूपान्तर मे कवियो ने कमाल का हाथ दिखाया । उन्होने उर्दू को खूब सवारा, महावरो के आभूषण से खूब सजाया, ईरान

का शोखी, नजाकत और चुलबुलापन सिखाया। सब तरह से सज-धज-कर वह रसिको के गले का हार हो गई। उर्दू कवियो से अपनी रचना का विषय हिन्दुस्तान से नही, बल्कि ईरान से लिया। सस्कृत और हिन्दी मे जितने स्त्री-पुरुष के प्रेम सम्बन्धी काव्य लिखे गये हैं, उन सब मे स्त्री पुरुष पर आसक्त दिखाई गई। रामायण मे सीता के हृदय मे राम से पहले प्रेमाकुरित हुआ है। भागवत मे रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण के पास अपना प्रणय-सदेश पहले भेजा। इसी तरह दमयन्ती नल पर सयोगिता पृथ्वीराज पर आसक्त दिखाई गई है। अग्रेजा कवियो का मार्ग इससे जरा सा जुदा है। वहॉ स्त्री पर पुरुष आसक्त होता है। वह अपना प्रणय पहले प्रकट करता है। यही उनके देश की प्रथा भी है। पर उर्दू-कवियो ने बिलकुल ही उलटा और अप्राकृतिक मार्ग पसन्द किया है। उन्होने पुरुष पर पुरुष को आसक्त दिखाया, और उसी नीव पर अपना महल खड़ा किया है। उनके महल की नीव की ईटे हिन्दुस्तान से नही, बल्कि ईरान से ली गईं। उर्दू ने फारसी से यह सभ्यता सीखी। इसके सिवा विषय भी नया चुना गया। हिन्दी को मनुष्य-समाज से बाहर जाने का बहुत कम मौका मिलता है। चन्द्रोदय, सूर्योदय, वन, पर्वत, नदी, निर्झर देखने का अवकाश उसे बहुत कम है। प्रेम,विरह, भक्ति,-नीति और हास-परिहास ही से उसे फुरसत नही। वसन्त का विकास होनेपर वह हृदय को नवीन-प्रेम, नवीन-भक्ति और नवीन-आनन्द से सजा लेती है। विरहावस्था मे ही वह कोयल और पपीहे के स्वर से कुछ वेदना अनुभव करती है; नही तो सदा वह समाज का आनन्द अनुभव करने मे निमग्न रहती है। आवश्यकता पडने पर वह वीरो को वीररस से उन्मत्त कर देती है। समय पडने पर नीति के उत्तम उपदेश देती है। मौके पर मनोविनोद से भी नही चूकती। ज्ञान, वैराग्य, भक्ति तो उसके जीवन का लक्ष्य ही मालूम होता है। पर उर्दू का ढग निराला होता है। वह हमेशा बाग मे डेरा डाले रहती है। कभी-कभी वह यार के कूचे मे हो आती है, पर बहुत-सा वक्त वह बुलबुल की फरियाद सुनने, उसकी ओर से वकालत करने

और सैयाद को बुरा-भला कहने ही मे व्यतीत करती है। और वह बुल-बुल भी यहा का नही, ईरान का है। हिन्दुस्तान मे बैठे ईरान के बुलबुल का पक्ष समर्थन करना, उसकी ओर से बकझक करना, कल्पना से अपनी और उसकी दशा का मिलान करना, ध्यान के नेत्र से उसके उजडे हुए घोसले को देखकर आह भरना, यह सब उर्दू के चमत्कार के काम है। वह सास नही लेती, आह भरती है। बल्कि यह कहना चाहिए कि आह भरने के लिए ही वह सास लेती है। वस्ल का मौका उसे बहुत ही कम मिलता है। हिज्र की पीडा से रात-दिन वह तडपा करती है। तडपना ही उसके जीवन का लक्ष्य है। इश्क, वफा, दाम, बुलबुल घोसला, सैयाद, चमन, गुल, बहार, खिज़ा, वस्ल, हिज्र, कफन, कब्र, जनाजा, आह, दिल, जिगर, कमर, बागबा, शिकवा, ख्वाब, बोसा, जुल्फ, तीर, चश्म, तडप, खून, मौत, सितम, सनम, और नाला शिकवा ही मे उसने अपनी उम्र के सैकडो बरस बिता दिये। इनके आगे कदम रखने की उसे फुरसत ही न मिली। उसने अपने प्यारो को दुनिया के काम का न रक्खा। उन्हें खीचकर उसने इश्क की आग मे डाल दिया, जहा वे हमेशा तडपते रहे। इश्क की दीमक उनके दिलो को जिन्दगी भर चाटती रही।

एक ने अपना यह अनुभव बयान किया है—

इश्क का मनसब लिखा जिस दिन मेरी तकदीर मे।
आह की नकदी मिली सहरा मिला जागीर मे॥

* * *

वे कल्पित हिज्र ही मे सदा आह भरते रहते है। वस्ल से उन्हे हिज्र मे मजा भी ज्यादा आता है। एक ने कहा—

वस्ल मे हिज्र का गम हिज्र मे मिलने की खुशी।
कौन कहता है जुदाई से विसाल अच्छा है॥

* * *

उर्दू के कवि उडान मे कभी-कभी हिन्दी-कवियो से बहुत ऊँचे जाते है, इसमे सन्देह नही। हिन्दी मे एक बिहारी ही ऐसे कवि हुए है, जो

दूर की कौडी लाने मे उर्दू-कवियो से मोरचा ले सकते है। नही तो सब सीधे-सादे, प्रेमी, भक्त और नीतिज्ञ हैं। हवा मे महल खड़ा करना वे बहुत कम जानते है। उर्दू के कवि मरकर भी देखते रहते है कि यार उनके जनाज़े के साथ है कि नही। कब्र मे गडे रहकर भी वे यार के कदमो की आवाज पहचानते रहते है कि वह कब्र पर फूल चढाने आया कि नही। यार के हाथो अपना कत्ल कराते हैं और उसकी तलवार के स्पर्श का सुख अनुभव करते है। कभी-कभी वे इसीलिए भी मर जाते है कि बहुत दिनो से विरक्त उनका यार उनकी मृत्यु का समाचार सुन कर उनके घर आये। ये सब करामात की बाते गरीब हिन्दी-कवियो मे नही।

फारसी मे इश्क की दो सूरते है, इश्क हकीकी और इश्क मजाज़ी। उर्दू मे इश्क मजाज़ी ही का अधिक चलन है। इश्क हकीकी के रसिक बहुत थोडे कवि हुए है। किन्तु उन्होने जो कुछ कहा है, वह अद्भुत है, अनुपम है। आसी इसी श्रेणी के कवि है। गालिब को हम उर्दू-साहित्य का सम्राट् मानते है। ऐसा प्रतिभाशाली कवि उर्दू मे कोई नही हुआ। क्या भाषा, क्या भाव, क्या प्रभाव, गालिब सब पर गालिब है। वे यद्यपि उर्दू के विषय की सीमा से बाहर बहुत कम आये, पर तो भी जो कुछ कहा, वह लासानी है। सुन्दर मजी हुई भाषा, रत्न की तरह झलकते हुए भाव, मद का-सा प्रभाव और किसी की कविता मे नही। एक-एक शेर लाखो की कीमत का है।

अब उर्दू के कवियो ने रास्ता बदला है। जुल्फो की लपेट से नजात पाकर, आह-ऊह का धधा छोडकर अब वे मुल्क और क़ौम की ओर झुके है। इस रास्ते के रहबर हाली को समझना चाहिए। आज़ाद, चकबस्त, हसरत और अकबर ने इस रास्ते को खूब आरास्ता कर दिया है। अकबर को मरे अभी थोडे दिन हुए, किन्तु अपने समय मे वह लासानी थे। न हिन्दी मे कोई वैसा कवि था, न उर्दू में। उनकी साफ सुथरी उर्दू भाषा, मजेदार महावरे, कहने का अनोखा ढग कुछ निराला ही है।

यहा तक तो विषय की बाते हुई । अब भाषा की ओर आइये। हिन्दी-कवियो की अपेक्षा उर्दू-कवि भाषा की स्वच्छता पर बहुत ध्यान देते है । उनके यहा महावरो का बहुत खयाल किया जाता है । उर्दू तो महावरो ही की भाषा है । थोडे ही मे शब्द ऐसे है, जिनके प्रयोग मे लखनऊ और दिल्ली वालो मे मतभेद है, बाकी सब मजा-मजाया दुरुस्त है। पहले-पहल उर्दू पर ब्रजभाषा का प्रभाव पड रहा था। उसके पुराने कवि "से" की जगह "सो" लिखते थ । पर धीरे-धीरे सब कट-छटकर विशुद्ध खडी बोली का रूप रह गया ।

स्थानाभाव से इस विषय को हम यही समाप्त करते है । अब आगे उर्दू के कवियो के कुछ चुने हुए शेर हम अपने पाठको की सेवा मे उपस्थित करते है। आइये, उर्दू कवियो की लच्छेदार बाते सुनिये, उनकी ऊँची उड़ान देखिये, चुभ जाने वाले खयालात का मुलाहजा फरमाइये, दिल मे गुदगुदी पैदा करने वाले शेरो की करामात देखिये और अनुभव कीजिये कितना आनन्द है ! कितना माधुर्य है ! हिन्दी का यह उद्यान कितना विकसित हो रहा है !

काबा बुतखाना कलेसा सौमेआ,
फिरते है दर-दर कि तेरा घर मिले।
कुछ न पूछो कैसी नफरत हम से है,
हम है जब तक वह हमे क्यो कर मिले ? — आसी।

बस कि दुश्वार है हर काम का आसा होना ।
आदमी को भी मुअस्सर नही इन्साँ होना ।। — गालिब।

कह सके कौन कि यह जलवह गरी किसकी है ?
परदह छोडा है वह उसने कि उठाये न बने ।।
इश्क पर जोर नही, है यह वह आतिश "गालिब"।
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने ।।
इशरते कतरा है दरिया मे फना हो जाना।
दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना ।।

मेहरबा होके बुलालो मुझे चाहो जिस वक्त ।
मै गया वक्त नही हू कि फिर आ भी न सकू ।।
इस सादगी पै कौन न मर जाय ऐ ख़ुदा ।
लड़ते है और हाथ मे तलवार भी नही ।।
शब को किसी के ख्वाब मे आया न हो कही ।
दुखते है आज उस बुते नाजुक बदन के पाव ।।
रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहा कोई न हो ।
हमसख़ुन कोई न हो और हमज़बा कोई न हो ।।
बे दरो दीवार सा इक घर बनाना चाहिये ।
कोई हमसाया न हो और पासबा कोई न हो ।।
पडिये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार ।
औ' अगर मर जाइये तो नौहे ख्वा कोई न हो ।।
उनको देखे से जो आ जाती है मुह पर रौनक ।
वे समझते है कि बीमार का हाल अच्छा है ।।
मुनहसर मरने पै हो जिसकी उम्मीद ।
नाउम्मेदी उसकी देखा चाहिये ।।
मुहब्बत मे नही है फर्क जीने और मरने का ।
उसीको देखकर जीते है जिस काफिर पे दम निकले ।।
हमको मालूम है जिन्नत की हकीकत लेकिन ।।
दिल के ख़ुश रखने को "गालिब" यह खयाल अच्छा है ।।

गालिब ।

दिल के फफोले जल उठे सीने के दाग से ।
इस घर को आग लग गई घर के चिरागसे । एक लडका ।

शाम ही से बुझा-सा रहता है ।
दिल हुआ है चिराग मुफलिस का ।।
सुबह गुज़री शाम होने आई "मीर"
तू न चेता औ बहुत दिन कम रहा ।।

सख्त काफिर था जिसने पहले "मीर"
मज़हबे इश्क इख्तियार किया।
सनम सुनते है तेरे भी कमर है।
कहा है ! किस तरफको है ? किधर है ? जुरअत।

मैं गो कि हुस्न मे ज़ाहिर मे मिस्ल माह नही।
हजार शुक्र कि बातिन मेरा सियाह नही ॥ नासिख।

सियहबख्ती मे कब कोई किसी का साथ देता है ?
कि तारीकी मे साया भी जुदा होता है इन्सा से। नासिर अली।

तिरछी नज़रो से न देखो आशिके दिलगीर को।
कैसे तीरदाज हो सीधा तो कर लो तीर को ॥ नासिख।

आखे नही चेहरा पर तेरे फकीर के,
दो ठीकरे है भीखके दीदार के लिये ॥ आतिश।

यह मजनू है, नही आहू है लैला।
पहनकर पोसती निकला है घर से ॥
जिसे तू सीग समझे है, यह है खार।
लगे है पाव मे, निकले है सर से ॥ नसीर।

उम्र सारी तो कटी इश्क बूतों मे "मोमिन"।
आखिरी वक्त मे क्या खाक मुसल्मा होगे ? मोमिन।

तुम मेरे पास होते हो गोया।
जब कोई दूसरा नही होता ॥ मोमिन।

लाई हयात आये, कजा ले चली, चले।
अपनी खुशी न आये न अपनी खुशी चले।
लोग घबरा के यह कहते है कि मर जायेगे।
मर के गर चैन न पाया तो किधर जायेगे। ज़ौक।

नशये इश्क का गर जौक दिया था मुझको।
उम्र का तग न पैमाना बनाया होता ॥ ज़ौक।

ज़िन्दगी ज़िन्दादिली का नाम है।
मुर्दा दिल खाक जिया करते है।।
हाय, क्या चीज़ गरीबुल्वतनी होती है।
बैठ जाता हू जहा छाव घनी होती है। हफीज़।
समुन्दर कर दिया नाम उसका नाहक सबने कह-कहकर।
हुये थे जमा कुछ आसू मेरी आखो से वह-वहकर।। सौदा।
बद होजाती है सायारो की आखे खोफ से।
फेकता हू जब मै दिल से आहे आतिशवार को।। नासिख।
तारे तो ये नही मेरी आहो से रात की।
सूराख़ पड गये है तमाम आसमान मे।। मीरतकी।
न करता ज़ब्त मै नाला तो फिर ऐसा धुवा होता।
कि नीचे आसमा के एक नया और आसमा होता। ज़ौक़।
यही सोजे दिल है, तो महशर मे जलकर।
जहन्नुम उगल देगा मुझको निगलकर।। अमीर मीनाई।
अफसुर्दा दिल के वास्ते क्या चादनी का लुत्फ।
लिपटा पडा है मुर्दा सा गोया कफन के साथ।। ज़ौक।
दिल के आईने मे है तसवीरे-यार।
जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली।।
लटो मे कभी दिल को लटका दिया।
कभी साथ बालों के झटका दिया।। मीरहसन।
ज़माना होगया अकबर तेरी सीधी निगाहो से।
खुदा न खास्ता तिरछी नज़र होती तो क्या होता।। अकबर।
सोहबत तुझे रकीब से मै अपने घर मे दाग।
कीधर पतग, शमग्र कहा अजुमन कुजा।। सौदा।
खुलता नही दिल बद ही रहता है हमेशा।
क्या जाने कि आ जाता है तू इसमे किधर से।। ज़ौक़।

जग मे आकर इधर उधर देखा ।
तू ही आया नज़र जिधर देखा ॥ मीरदर्द ।
यो नज़ाकत से गरा सुर्मा है चश्मे यार को ।
जिस तरह हो रात भारी मर्दुमे बीमार को ॥ नासिख ।
शक्ल तो देखो मुसब्बिर खीचेगा तसवीरे-यार ।
आप ही तसवीर उसको देखकर हो जायगा ॥ ज़ौक ।
न हो महसूस जो पै किस तरह नकशे मे ठीक उतरे ।
शबीहे यार खिचवाई कमर बिगडी, दहन बिगडा ॥ मसहफी ।
नाजुक है,न खिचवाऊगा तस्वीर मै उसकी ।
चेहरा न कही अक्स के बदले उतर आये ॥ अर्शद देहलवी ।
दिल ! क्योकर मै उस रुखसारे-रोशन के मुकाबिल हू ।
जिसे खुरशीदे-महशर देखकर कहता है मै तिल हू ॥ अकबर ।
नातवानी ने बचाई जान मेरी हिज्र मे ।
कोने-कोने ढूढती फिरती कज़ा थी मै न था ॥ ज़फर ।
इन्तहाये-लागरी से जब नजर आया न मै ।
हँसके वो कहने लगे बिस्तर को झाडा चाहिये ॥ नासिख ।
मुझ ज़ुल्फ के मारे को न जज़ीर पिन्हाओ ।
काफी है मेरी कैद को एक मकडी का जाला ॥
नज़ीर अकबराबादी ।
छूट जाये गम के हाथो से जो निकले दम कही ।
खाक ऐसी ज़िन्दगी पर तुम कही और हम कही ॥ ज़ौक ।
कौन होता है बुरे वक्त की हालत का शरीक ।
मरते दम आख को देखा है कि फिर जाती है ॥ कोई ।
क्या नज़ाकत है कि आरिज उनके नीले पड गये ।
हमने तो बोसा लिया था ख्वाब में तसवीर का ॥ कोई ।
न था कुछ तो खुदा था कुछ न होता तो खुदा होता ।
डुबोया मुझको होने ने न होता मै तो क्या होता ॥

हुई मुद्दत कि "गालिब" मर गया पर याद आता है।
वह हर एक वात पर कहना कि यो होता तो क्या होता ॥ ग़ालिब
इन आवलो से पाव के घवरा गया था मै।
जी खुश हुआ है राह को पुरखार देखकर ॥ गालिब।
मरता हू इस आवाज पर हरचद सर उड़ जाय।
जल्लाद को लेकिन वह कहे जाय कि "हा और" ॥ ग़ालिब।
कर्ज की पीते थे मै, लेकिन समझते थे कि हा।
रङ्ग लायेगी हमारी फाकामस्ती एक दिन ॥ ग़ालिब।
चल ऐ वादे सवा आहिस्ता चल, वेदार होता है।
मना कर कलियों को चटखे न मेरा यार सोता है ॥ कोई।
वहा पहुच के यह कहना सवा सलाम के वाद।
कि तेरे नाम की रट है खुदा के नाम के वाद ॥ आसी।
समझो हमारे इश्क की हद अपने हुस्न से।
आईनादार हालते वुलवुल है रूय गुल ॥ आसी।
हाय, इक चाद के टुकडे ने सितारो की तरह।
मुद्दतो शाम से ता सुवह जगाया हमको ॥ आसी।
घट गई वस्ल मे फुरकत मे वढी थी जितनी।
रात आशिक की कभी दिन के वरावर न हुई ॥ आसी।
इश्क कहता है कि आलम से जुदा हो जाओ।
हुस्न कहता है जिधर जाओ नया आलम है ॥ आसी।
वेखुदी ले गई कहा हमको।
देर से इन्तजार है अपना ॥ आसी।
शिकस्ता दिले इश्क की जान क्या।
नजर तुमने फेरी कि वह मर गया ॥ आसी।
सब्र मुश्किल है आरजू बेकार।
क्या करें आशिकी मे क्या न करे ॥ हसरत।
हैफ उस चार गिरह कपडे की किस्मत "गालिब"।

जिसकी किस्मत मे हो आशिक का गरेबा होना ॥ गालिब ।

खजर को चूस-चूस के कहते है मेरे ज़ख्म ।
ज़ालिम मज़े भरे हुए तुझ मे कहा के है ॥ अमीर मीनाई ।

चद तसवीरे बुता चन्द हसीनो के खतूत ।
बाद मरने के मेरे घर से यह सामा निकला ॥ दर्द ।

आखे न जीने देंगी तेरी बेवफा मुझे ।
इन खिडकियो से झाक रही है कज़ा मुझे ॥ बहर लखनवी ।

कही ऐसा न हो तुझ पर भी कोई वार चल जाये ।
अजल हटजा कि झुझलाया हुआ इस वक्त कातिल है ॥ अमीर

वो शब को मेरी कब्र पै क्या चाल चल गये ।
सदहा चिराग नक्श कफे पा से जल गये ॥
कमसिनी है तो ज़िदे भी है निराली उनकी ।
इस पै मचले है कि हम दर्दे जिगर देखेगे ॥ फसाहत

रुखे रोशन के आगे शमा रखकर वह यह कहते है ।
उधर जाता है देखे या इधर परवाना आता है ॥ दाग ।

वो निहायत हमे मगरूर नज़र आते है ।
पास बैठे है मगर दूर नज़र आते है ॥ दाग ।

पडे है सूरते नक्शे कदम न छेडो हमे ।
हम और खाक मे मिल जायेगे उठाने से ॥ आसी ।

अल्लाह रे ज़ालिम तेरे कानून की बन्दिश ।
लबबन्द, ज़बाबन्द, दहनबद, नज़रबद ॥
अब्दुलमजीद ख्वाजा, अलीगढ ।

न अब दिन है मेरे अपने न राते है मेरी अपनी ।
वह यह क्या कर गये अल्लाह शब भर मेहमा होकर ॥
आरिफ, देहलवी ।

## हाली के अशआर

जहा मे "हाली" किसी पै अपने सिवा भरोसा न कीजियेगा।
यह भेद है अपनी ज़िन्दगी का बस इसका चर्चा न कीजियेगा ॥
होगी न कद्र जान की कुरबा किये बगैर ॥
ऐब यह है कि करो ऐब हुनर दिखलाओ।
वर्ना या ऐब तो सब फर्दे बशर करते है ॥
बादे सबा गई फूक क्या जाने कान मे क्या ?
फूले नही समाते गुन्चे जो पैरहन मे ॥
पिघलते है साचे मे ढलने की ख़ातिर।
लगाते है गोता उछलने की खातिर ॥
ठहरते है दम लेके चलने की खातिर।
वह खाते है ठोकर सभलने की ख़ातिर ॥
सबब को मरज़ से समझते है पहले।
उलझते है पीछे सुलझते है पहले ॥
न राहत तलब है न मुहलत तलब वह।
लगे रहते है काम में रोजो शब वह ॥
नही लेते है दम एकदम बे सबब वह।
बहुत जाग लेते है सोते है तब वह ॥
वह थकते है और चैन पाती है दुनिया।
कमाते है वह और खाती है दुनिया ॥ हाली।

## अकबर के अशआर

बुतो की मदह से कुल शायरी उर्दू की ममलू है।
शिकस्त उर्दू जो पायेगी तो मै समझूगा बुत टूटा ॥
इश्क नाज़ुक मिजाज है बेहद।
अक्ल का बोझ उठा नही सकता ॥
कोई मरे तो पूछ कि क्या ले गया वह साथ।
बिल्कुल फ़ज़ूल बहस है वह छोड क्या गया ॥

पाकर खिताब नाच का भी जौक हो गया।
सर हो गये तो बाल का भी शौक हो गया॥
तग दुनिया से दिल इस दौरे फलक मे आ गया।
जिस जगह मैने बनाया घर सडक मे आ गया॥
एक दिन और कयामत खिसक आयेगी इधर।
और क्या अर्ज करू आप से कल क्या होगा॥
कहा है हममे अब ऐसे सालिक की राह ढूढी कदम उठाया।
जो है तो ऐसे ही रह गये है किताब देखी कलम उठाया॥
हँसके दुनिया मे मरा कोई कोई रोके मरा।
जिन्दगी पाई मगर उसने जो कुछ हो के मरा॥
जी उठा मरने से वह जिसकी खुदा पर थी नजर।
जिसने दुनिया.ही को पाया था वह सब खो के मरा॥
मौलवी गो कि है शमसुलउल्माय फिर भी है सुस्त।
रेगते फिरते है परवानये बे शब की तरह॥
पादरी से मिले पहले तो क्या शेख को उज्र।
देखिये पीर का नम्बर तो है इतवार के बाद॥
मै अपने आप मे उन शायरो मे फर्क पाता हू।
सखुन उनसे सवरता है सखुन से मै सवरता हू॥
हम उर्दू को अरबी क्यो न करे उर्दू को वह भाषा क्यो न करे?
बहसो के लिये अखबारो मे मजमून तराशा क्यो न करे?
आपस मे अदावत कुछ भी नही लेकिन इक अखाड़ा कायम है।
जब इससे फलक का दिल बहले हम लोग तमाशा क्यो न करे?
तुझे हम शायरो मे क्यो न अकबर मुतखब समझे।
बया ऐसा कि दिल माने ज़बा ऐसा कि सब समझे॥
बागे उमीद के फल होते है रोज़ ज़ाया।
हमको खुदा बचाये औलादे डारविन से॥

डारविन साहब हक़ीकत से निहायत दूर थे।
मै न मानूगा कि मूरिस आपके लगूर थे ॥
बेपरद नज़र आईं कल जो चद बीबिया।
अकबर ज़मी मे ग़ैरते कौमी से गड गया ॥
पूछा जो उनसे आपका परदा वह क्या हुआ।
कहने लगी कि अक्ल पै मरदो के पड गया ॥
अपने मसूबे तरक्की के हुये सब पायमाल।
बीज जो मगरिबने बोया वह उगा और फल गया ॥
बूट डासन ने बनाया हमने इक मजमू लिखा।
मुल्क मे मज़मू न फैला और जूता चल गया ॥
रक़ीबो ने रपट लिखवाई है जा जा के थाने मे।
कि अकबर जिक्र करता है ख़ुदा का इस जमाने मे ॥
दुनिया मे हू दुनिया का तलबगार नही हू।
बाज़ार से गुज़रा हू ख़रीदार नही हू ॥
ज़िन्दा हू मगर ज़ीस्त की लज्जत नही बाकी।
हरचद कि हू होश मे हुशियार नही हू ॥
वह गुल हू ख़िजा ने जिसे बरबाद किया है।
उलझू किसी दामन से मै वह ख़ार नही हू ॥
चर्ख़ ने पेशे कमीशन कह दिया इज़हार मे।
कौम कालिज में और उसकी ज़िन्दगी अख़बार में ॥
लोग कहते है कि है आप निहायत काबिल।
मै इसी सोच मे रहता हू कि किस काबिल हू ॥
तालिब-इल्मो को ले जावो कमेटी मे न तुम।
कही ऐसा न हो यह कौम प आशिक हो जाय ॥
बाकी नही वह रग गुलिस्तान हिन्द में।
मिहनत का है अब काम कृलिस्तान हिन्द मे ॥
मुद्दत से होश मे हूं नज़रे दिले ज़बा हू।

लेकिन खुला न अब तक मै कौन हू, कहा हू ?
जैसा मौसिम हो मुताबिक उसके मै दीवाना हू ।
मार्च मे बुलबुल हू जौलाई मे परवाना हू ।।
फरमा गये है यह खूब भाई घूरन ।
दुनिया रोटी है और मज़हब चूरन ।।
खिलवते नाज़ मे क्या शान खुद आराई है ।
हुस्न खुद आलिमे हैरत मे तमाशाई है ।।
अनार आते जो काबुल के तो पडते सबके हिस्से मे ।
अमीर आये तो हमको क्या मजे है लार्ड मिन्टो के ।।
खीचो न कमानो को न तलवार निकालो ।
जब तोप मुकाबिल है तो अखबार निकालो ।।
शेखजी के दोनो बेटे बाहुनर पैदा हुये ।
एक है खुफिया पुलिस मे एक फासी पा गय ।।
पेट मसरूफ है कलर्की मे ।
दिल है ईरान और टर्की मे ।।
बिरगिड के मौलवी को क्या पूछते हो क्या है ?
मगरिब की पालिसी का अरबी मे तरजुमा है ।।
कदरदानो की तबीअत का अजब रग है आज ।
बुलबुलो को है यह हसरत कि वह उल्लू न हुये ।।
मेरा टट्टू भी जियादा मशरकी है शेख साहब से ।
कि वह मोटर में चढते है यह मोटर से भडकता है ।।
दिलेरी सिखाते है हमको यह कहकर ।
जहन्नुम से डरना बडी बुज़दिली है ।।
फिरगी से कहा पेशन भी लेकर बस यही रहिये ।
कहा, जीने को आये है यहा मरने नही आये ।।
काफी है अमीरो को कवानीन गवर्मेंट ।
मजहब की ज़रूरत तो गरीबो के लिये है ।।

मेम ने शेख़ को डाटा तो पुकारा वह गरीब ।
देखिये तोप ने लाठी को दबा रक्खा है ॥
तुम्हारे हुस्न मे सायस का भी दिल उलझता है ।
कमर को देखकर वह खते उकलैदिस समझता है ॥
कौम के गम मे डिनर खाते है, हुक्काम के साथ ।
रज लीडर को वहुत है मगर आराम के साथ ॥
ख़ुदा की राह मे पहले बसर करते थे सख्ती से ।
महल मे बैठकर अब इश्के कौमी मे तडपते है ॥
सनद कैसी ? जमाल इनमे अगर है, होगा खुद ज़ाहिर ।
कोई सार्टीफिकट से ख़ूबसूरत हो नही सकता ॥
जो अस्ल व नकल से वाकिफ है उसने दिल को है रोका ।
मुबारिक हो तुम्ही को चाटना लड्डू ये फोटो का ॥
हम ऐसी कुल किताबे काबिले जब्ती समझते है ।
कि जिनको पढके लडके बाप को खब्ती समझते है ॥
क्या गनीमत नही यह आजादी ।
सास लेते है बात करते है ।।
अगराज बढ गया है आराम घट गया है ।
ख़िदमत मे है वह लेजी और नाचने को रेडी ॥
तालीम की खराबी से होगई बिल आखिर ।
शौहर परस्त बीबी पब्लिक पसद लेडी ॥
तोप खिसकी, प्रोफेसर पहुचे ।
जब बसूला हटा, तो रदा है ॥
मेहरबानी से मुझे गोदाम की कुञ्जी तो दी ।
लेकिन अब गेहू नही बाकी फकत घुन क्या करे ?

**इकबाल की एक ग़ज़ल**

सारे जहा से अच्छा हिन्दोस्ता हमारा ।
हम बुलबुले है इसकी यह गुलिस्ता हमारा ॥

गुरबत मे हम अगर हैं रहता है दिल वतन मे।
समझो वही हमे भी दिल हो जहा हमारा ॥
परबत जो सब से ऊचा हमसाया आसमा का।
वह सन्तरी हमारा वह पासबा हमारा ॥
गोदी मे खेलती है, जिसकी हज़ारो नदिया।
गुलशन है जिसके दम से रश्के जिना हमारा ॥
ऐ आबरूद गगा, वह दिन है याद तुझको।
उतरा तेरे किनारे जब कारवा हमारा ॥
मज़हब नही सिखाता आपस मे बैर रखना।
हिन्दी है हम वतन है हिन्दोस्ता हमारा ॥
यूनान मिस्र रोमा सब मिट गये जहा से।
बाकी मगर है अब तक नामो निशा हमारा ॥
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नही हमारी।
सदियो रहा है दुश्मन दौरे जमा हमारा ॥
'इकबाल' कोई महरम अपना नही जहा मे।
मालूम क्या किसी को दरदे पिन्हा हमारा ॥

* * *

यह उर्दू कविता का दिग्दर्शनमात्र है। इसमे पुराने और नये दोनो ढग के नमूने आ गए। नये रग-ढग देखकर पाठक समझ जायेगे कि उर्दू अब गुलशन से निकल कर शहर-समाज मे आरही है।

यहा तक तो उर्दू शायरी की बाते हुई। उर्दू-गद्य का भी भण्डार बहुत बडा है। उसमे प्रायः सभी विषयो के कुछ-न-कुछ ग्रन्थ लिखे जा चुके है। सरकारी दफ्तरो मे, और कई रियासतो मे उर्दू का ही बोल-बाला है। उर्दू के बडे-बडे मशायरे होते है और उसका साहित्य बढाने के उपाय सोचे जाते है। इधर हिन्दी का प्रभाव बढता हुआ देखकर कुछ अदूर-दर्शी लोग हिन्दी-उर्दू का प्रश्न उठाकर हिन्दू-मुसलमानो में वैमनस्य फैलाने की कोशिश कर रहे है। यह बडे खेद की बात है।

हिन्दू और मुसलमान इस देश की दो आखे है। एक दूसरे की अवहेलना करेगा तो कब तक निर्वाह होगा। शिक्षित मुसलमान जानते है कि हिन्दुओ की कलम से ही उर्दू आज इस दरजे को पहुची है। भला हिन्दू अब उसपर कुठाराघात क्यो करेगे? इसी तरह मुसलमान कवियो ने हिन्दी की जो कुछ सेवा की है, वैसी सेवा हिन्दी के कितने कवियो ने की है? रहीम और रसखान की तुलना हम हिन्दू कवियो मे किससे करे? मुसलमानो को अपने पूर्वज हिन्दी-सेवी मुसलमानो की कृतियो पर गर्व होना चाहिये। विरोध की क्या बात है! जब हिन्दू-मुसलमानो का चोली-दामन का साथ है तब एक को दूसरे की भाषा वेष-भूषा से नफरत क्यो होनी चाहिये? प्रत्येक हिन्दू को उर्दू सीखनी चाहिये और प्रत्येक मुसलमान को हिन्दी। मेरी तो दृढ धारणा है कि उर्दू जाने बिना कोई भी व्यक्ति हिन्दी का सुलेखक नही हो सकता। अबतक उर्दू की भाषा-शैली हिन्दी से कई अशो मे बढकर है। उर्दू मे मुहावरो का जैसा सुन्दर प्रयोग होता है, वैसा प्रयोग हिन्दी मे वे ही लेखक कर सकते है, जिन्हे उर्दू का ज्ञान है। आपस के विरोध को छोडकर हिन्दू और मुसलमान दोनो को चाहिये कि वे जहा तक कर सके, चाहे हिन्दी के चाहे उर्दू के साहित्य की वृद्धि करे। मनुष्य सुगमता और सरलता का स्वभाव से ही पक्षपाती है। हिन्दी बोलने और लिखने मे उसे सुभीता दिखाई पडेगा तो मुसलमानो के हजार विरोध करने पर भी हिन्दी की उन्नति रुक नही सकती। इसी तरह उर्दू मे उसे आसानी होगी तो हिन्दुओ के हजार सिर पटकने पर भी उसका उरूज बन्द नही हो सकता। अरबी, फारसी और तुर्की के जितने शब्द हिन्दी मे आ चुके है, हिन्दुओ को उन्हे अपनालेना चाहिये, उनसे काम लेना चाहिये। इसी तरह मुसलमानो को सस्कृत के प्राचीन शब्दो से कोई परहेज न होना चाहिये। ऐसे सद्विचार से हम आपस में सद्व्यवहार कायम रख सकेगे, और वाक्शक्ति ऐसी पवित्र वस्तु को हम परस्पर विद्वेष ऐसे कुत्सित कार्य का कारण न बनने देगे।

# हिंदी–कविता

हिन्दी का उत्पत्तिकाल विक्रम की आठवी शताब्दी के लगभग माना जाता है। तब से आज तक हिन्दी-साहित्य के स्थूल रूप से पाच भाग किये जा सकते है—

१—उत्पत्तिकाल—८०० वि० से १२०० वि० तक

२—प्रारम्भकाल—१२०० वि० से १५०० तक

३—प्रौढकाल—१५०० वि० से १७५० तक

४—उत्तरकाल—१७५० से १९०० तक

५—वर्त्तमानकाल—१९०० से

उत्पत्तिकाल के मुख्य कवि—चद, जल्ह, जगनिक।

प्रारम्भकाल के मुख्य कवि—विद्यापति, अमीर खुसरो, कबीर, नानक आदि।

प्रौढकाल के मुख्य कवि—सूर, तुलसी, मीराबाई, हितहरिवश, दादू-दयाल, गग, रहीम, केशवदास, रसखान, सेनापति, सुन्दरदास, बिहारी, भूषण, मतिराम, लाल, घन आनन्द, देव, वृन्द।

उत्तरकाल के मुख्य कवि—दास, दूलह, गिरिधर, ठाकुर, पदमाकर, ग्वाल, दीनदयाल, रघुराज, द्विजदेव, लक्ष्मणसिंह, गिरधरदास।

मुख्य लेखक—लल्लूलाल, सदलमिश्र, राजा लक्ष्मणसिंह।

वर्त्तमानकाल के मुख्य कवि—हरिश्चद्र, बदरी नारायण चौधरी, विनायक राव, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, लाला सीताराम, नाथूराम 'शङ्कर' शर्मा जगन्नाथप्रसाद 'भानु', श्रीधर पाठक, सुधाकर द्विवेदी, महावीरप्रसाद द्विवेदी, राधाकृष्णदास, बालमुकुन्द गुप्त, अयोध्या-सिंह उपाध्याय, लाला भगवानदीन, जगन्नाथदास 'रत्नाकर', राय देवी-प्रसाद 'पूर्ण', सैयद अमीर अली, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, कामताप्रसाद गुरु, रामचरित उपाध्याय, मिश्रबन्धु, किशोरीलाल गोस्वामी, गिरिधर शर्मा, माधव शुक्ल, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', रूपनारायण पाण्डेय,

सत्यनारायण, मन्नन द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, लोचनप्रसाद पाण्डेय, लक्ष्मीधर वाजपेयी, बदरीनाथ भट्ट, माखनलाल चतुर्वेदी, रामचन्द्र शुक्ल आदि। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से हिन्दी का नया युग प्रारम्भ होता है। हरिश्चन्द्र ने कविता का विषय भी बदला और भाषा-शैली मे भी कुछ नवीनता सन्निविष्ट की। उसी समय से खडीबोली की कविता को भी प्रोत्साहन मिला और उसमे भी भावोद्दीपन होने लगा।

हिन्दी-साहित्य का आकाश अगणित उज्ज्वल नक्षत्रो से देदीप्यमान होरहा है। हिन्दी-साहित्य का उपवन अनेक मनोमोहक सुरभित सुमनो से सुशोभित है। हिन्दी-साहित्य का अमृत-प्रवाह असख्य स्रोतो से प्रवाहित होकर रसिको के हृदय की भूमि को सुधा-सलिल से सीचकर उसमे नवजीवन का सचार कर रहा है। हिन्दी-साहित्य का मधुरनाद एक-एक कण्ठ से निकलकर सहस्र-सहस्र कण्ठ से प्रतिध्वनित होरहा है। आइये एक बार हिन्दी-साहित्य की थोडी-सी माधुरी का मजा चखिये।

हिन्दी मे भक्त-प्रेमी और शृगारी कवियो की सख्या सबसे अधिक है। भक्त और प्रेमी कवियो मे कबीर, नानक, सूरदास, तुलसीदास, मीरा दादू और रसखान का स्थान बहुत ऊचा है। कबीर ने जो कुछ कहा है, उसमे अनुभव की मात्रा अधिक है, कल्पना की बहुत कम। कबीर ने जो कुछ कहा, स्पष्ट, सत्य और निष्पक्ष कहा है। कबीर कहते है—

सुख के माथे सिलि परै, जो नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, जो पल-पल नाम रटाय॥

सच्चा भक्त, सच्चा प्रेमी ही सासारिक सुखो को लात मारकर दुःख को गले लगा सकता है।

ईश्वर-स्मरण के विषय मे कबीर कहते है—

माला तो कर मे फिरै, जीभ फिरै मुख माहि।
मनुवा तो दहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहि॥

प्रेम के विषय मे कबीर कहते है—

प्रेम न बाडी ऊपजै, प्रेम न हाट विकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय॥
प्रेम-प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्है कोइ।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोइ॥
प्रेम छिपाया ना छिपै, जा घट परगट होय।
जा पै मुख बोलै नही, नैन देत है रोय॥
कबिरा प्याला प्रेम का, अन्तर लिया लगाय।
रोम रोम मे रम रहा, और अमल क्या खाय॥
नैनो की करि कोठरी, पुतली पलग बिछाय।
पलको की चिक डारिकै, पियको लिया रिझाय॥
प्रीतम को पतिया लिखू, जो कहु होय बिदेस।
तन मे मन मे नैन मे, ताको कहा सँदेस॥
गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गभीर।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर॥
सुन्न मडल मे घर किया, बाजै सबद रसाल।
रोम रोम दीपक भया, प्रकटे दीनदयाल॥

प्रेम की कैसी विषद् महिमा है! कैसा स्वाभाविक वर्णन है! हिन्दी कवियो ने विशुद्ध प्रेम का जैसा उज्ज्वल वर्णन किया है, वैसा अन्य भाषा मे बहुत कम है।

विद्यापति कहते है—

सेई परित अनुराग बखनइत तिले तिले नूतुन होइ।

अर्थात्, वही प्रीति, वही अनुराग प्रशसा के योग्य है जो तिल-तिल नवीन होता जाय।

आगे विद्यापति असीम अनुराग का अनुभव करते है—

जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल।
सेहो मधुर बोल स्रवनहि सूनल स्रुति पथे परस न गेल॥

अर्थात्, जन्म-भर हमने (अपने प्रिय का) रूप देखा; किन्तु आखे

तृप्त न हुई। जन्म-भर हमने वही मधुर वाणी सुनी, पर सुनने की इच्छा बनी ही रही। प्रेम का यह कितना सुन्दर वर्णन है!

अब आगे बढिये, हिन्दी-साहित्य की लम्बी सडक सघन छाया से आच्छादित है। जगह-जगह पर पथिकाश्रम है, उपवन है, कुञ्ज है, सर, सरिता, निर्झर के मनोरम दृश्य है, रसिक पथिको को सब प्रकार का आराम देने के लिए सुकविसमुदाय प्रत्येक समय उपस्थित रहता है। मार्ग-भर में न कही उजाड है, न ऊसर, न बन, न बयाबान। जिस पथिक की जैसी रुचि हो, वह वैसा ही सुखोपभोग कर सकता है। आइये, कुछ दूर तक इस मार्ग पर हम लोग भी चले।

यह सूरदास जी हाथ मे तम्बूरा लिये अपने आश्रम के द्वार पर विराजमान है। ये श्रीकृष्ण के बालचरित और गोपियो के विरह की बाते सुना रहे है।

मैया मेरी मै नहिं माखन खायो।
भोर भयो गैयन के पाछे मधुबन मोहिं पठायो।
चार पहर बंशीबट भटक्यो साझ परे घर आयो॥
मै बालक बहियन को छोटो छीको किस विध पायो।
ग्वाल बाल सब बैर परे है बरबस मुख लपटायो॥
तू जननी मन की अति भोरी इनके कहे पतियायो।
जिय तेरे कछु भेद उपज है जान परायो जायो॥
यह ले अपनी लकुट कमरिया बहुतहि नाच नचायो।
सूरदास तब बिहसि जसोदा ले उर कठ लगायो॥

कितना सुन्दर वर्णन है, कितनी स्वाभाविकता, कितना सौन्दर्य है! श्रीकृष्ण के विरह मे गोपिया व्याकुल होकर आपस मे कहती हैं—

जब तें पनिघट जाऊ सखीरी वा जमुना के तीर।
भरि भरि जमुना उमडि चलत है इन नैनन के नीर॥

श्रीकृष्ण के चले जाने पर पनघट का वह हास-विलास कहा? अब तो आंसुओ से जमुना उमड आती है।

सूरदास प्रीति करनेवालो से कहते है—

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो ।

*    *    *

जिन कोउ काहू के वश होहि ॥

फिर वही प्रेम की महिमा इस प्रकार गाते है—

देखो करनी कमल की, कीनो जल सो हेत ।
प्रान तज्यो प्रेम न तज्यो, सूख्यो सरहि समेत ॥
दीपक पीर न जानई, पावक परत पतग ।
तनु तो तिहि ज्वाला जर्यो, चित न भयो रस भग ॥
सब रस को रस प्रेम है ।

विरह ही प्रेम का प्राण है । विरह न हो तो प्रेम का आनन्द आ ही नही सकता है । माता यशोदा श्रीकृष्ण के विरह मे कह रही है—

मेरे कुवर कान्ह बिनु सब कुछ वैसहि धर्यो रहै ।

सारा ब्रज श्रीकृष्ण के विरह मे व्याकुल, श्रीकृष्ण ब्रज के विरह मे बेचैन ।

आगे हढिये । बीच-बीच मे ये बहुत-से काव्य-कुटीर है, जिनमे से अनेको प्रकार के मधुर नाद निकलकर दिशाओ मे गूज रहे है । सब जगह थोडा-थोडा ठहरने से बहुत देर होगी । लीजिये, यह मीराबाई का आश्रम है । मीरा कहती है—

घायल सी घूमत फिरू रे मेरा दरद न जाने कोय ।

सच है, "घायल की गति घायल जानै" दूसरा कौन जान सकता है !

'बाबल बैद बुलाइया रे पकड दिखाई म्हारी बाह ।
मूरख बैद मरम नहि जानै करक करेजे माह ॥
जाओ बैद घर आपने रे म्हारो नाव न लेय ।
मैं तो दाधी विरह की रे काहे कू औषद देय ॥
खिन मन्दिर खिन आगने रे खिन खिन ठाढी होय ।
घायल ज्यो घूमू खडी रे म्हारी बिथा न बूझै कोय ॥

काढि कलेजा मै धरू रे कौआ तू ले जाय।
ज्या देस्या म्हारो पिव बसै रे वै देखत तू खाय॥

विरह का कैसा मार्मिक वर्णन है। प्रेम का कितना सुन्दर रूप है। आगे बढिये। यह कविशिरोमणि तुलसीदास का आश्रम आ गया। तुलसी रामभजन मे मग्न है। ससार मे सर्वत्र उन्हे राम ही राम दिखाई पड रहे है। मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, वृक्ष, देवता, राक्षस सब मे उनको अपने राम की मूर्ति दिखाई पड रही है। इनका आश्रम सबसे बडा है। इनके पास राजा, रक, फकीर सब आते है। इनका दरबार बहुत बडा है। ये कहते है—

जेहिके जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु सदेहू।
परहित बस जिनके मनमाही। तिनकह जग दुर्लभ कछु नाही॥

ये व्यग और हास-परिहास मे भी बडे पटु है। श्रीराम से कहते है—

गर्व करहु रघुनन्दन जनि मन माह।
आपन रूप निहारहु सियकै छाह॥

अर्थात्, हे राम अपने रूप का घमड न कीजिए, जरा अपने रूप का सीता की छाया से मिलान तो कीजिये। सीता की तुलना आप क्या कर सकते है?

सीता के अग-रग का वर्णन करते हुए तुलसी कहते है—

चपक हरवा अग मिलि अधिक सुहाइ।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाइ॥
सिअ तुव अङ्ग रग मिलि अधिक उदोत।
हार वेलि पहिरावौ चपक होत॥

सीता जब राम के साथ वन को चली, उस समय सीता की मृदुता का वर्णन करने मे तुलसी ने अप्रतिम पटुता दिखाई है।

पुरते निकसी रघुवीर वधू धरि धीर दये मग मे डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जलकी पट सूखि गये मधुराधर वै॥

फिर बूझति हैं चलनोऽब कितो पिय पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै ।
तिय की लखि आतुरता पिय की अखिया अति चारु चली जल च्वै ।।

कितना सीधा-सादा वर्णन है ! कितना मर्मभेदी भाव है !

आगे चलिये । यह रसखान का आश्रम है । रसखान प्रेम मे मस्त हैं । इनका आलाप सुनिये—

मानस हौ तो वही रसखान बसौ ब्रज गोकुल गाव के ग्वारन ।
जौ पसु हौ तो कहा बस मेरो चरो नित नद की धेनु मझारन ।।
पाहन हौ तो वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर धारन ।
जो खग हौ तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदब की डारन ।।

* * *

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहू पुर को तजि डारौ ।
आठहु सिद्धि नवौ निधि को सुख नद की गाय चराय बिसारौ ।।
रसखानि कबौ इन आखिन सो ब्रज के बन बाग तडाग निहारौ ।
कोटिन हू कलधौत के धाम करीर के कुजन ऊपर वारौ ।।

सच्चा प्रेमी ही ससार के वैभव को इस तरह लात मारता है ।

यह मार्ग बहुत लम्बा है । आइये, एक सुगम मार्ग से चले । इस मार्ग मे बडे-बडे कुज है । आइये, पहले सतकुज मे थोडा विश्राम ले ले । यहा सब सत कवि जमा है । कबीर, रैदास, धर्मदास, नानक, दादू, मलूक, सुन्दरदास, चरनदास, पलटू, धरनी, बुल्ला, भीखा, दरिया आदि सत यहा अपने-अपने ध्यान मे मस्त है । प्रत्येक के मुह से उसका अनुभव निकलता जा रहा है । सुनिये—

जब मै था तब हरि नही, अब हरि है मै नाहि ।
प्रेमगली अति साकरी, तामे दो न समाहि ।। कबीर ।

प्रभु जी तुम दीपक हम बाती । जाकी जोति बरै दिनराती ।। रैदास ।

झरि लागै महलिया, गगन घहराय ।
खन गरजै खन बिजुली चमकै, लहर उठे सोभा बरनि न जाय ।।
धर्मदास ।

काहे रे बन खोजन जाई।
पुष्प मध्य ज्यो बास बसत है मुकुर माहि जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर घटही खोजो भाई॥ नानक।

सरग नरक ससै नही, जियन मरन भय नाहि।
राम बिमुख जे दिन गये, सो सालै मन माहि॥ दादू।

दाया करै धरम मन राखै, घर मे रहै उदासी।
अपना सा दुख सब का जानै, ताहि मिलै अबिनासी॥ मलूक।

तौ सही चतुर तू जान परबीन अति परै जनि पीजरे मोह कूवा।
पाइ उत्तम जनम, लाइलै चपल मन, गाइ गोबिन्द गुन जीत जूवा॥
सुन्दर।

चरनदास यो कहत है, सुनियो सत सुजान।
मुक्ति मूल आधीनता, नरक मूल अभिमान॥ चरनदास।

सुनि लो पलटू भेद यह, हसि बोले भगवान।
दुख के भीतर मुक्ति है, सुख मे नरक निदान॥ पलटू।

इसी सत-कुञ्ज में हम दो देवियो को भी बैठे देखते है। ये कह रही है—

सीस कान मुख नासिका, ऊचे ऊचे नांव।
"सहजो" नीचे कारने, सब कोउ पूजै पाव॥ सहजोबाई।

बौरी ह्वै चितवत फिरू, हरि आवे केहि ओर।
छिन उट्ठू छिन गिरि परू, राम दुखी मन मोर॥ दयाबाई।

अब आगे बढिये। यह प्रेम-कुञ्ज है। यहा कौन-कौन है ? देखिये, यहा घन आनन्द, आलम और शेख, सीतल, ठाकुर और बोधा प्रेम में मतवाले, इश्क मे चूर, बैठे-बैठे प्रेम की लहर ले रहे है। हर एक के मुह से उसका अनुभव फूटा पडता है।

पर कारज देह को धारे फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधिनीर सुधा के समान करौ सब ही बिधि सज्जनता सरसौ॥

"घन आनद" जीवन दायक हो कछू मोरियौ पीर हिये परसौ ।
कवहू वा बिसासी सुजान के आगन मो असुवान को लै बरसौ ॥

घन आनद ।

मन की अटक तहा रूप को विचार कहा,
रीझिब की पैडो और बूझि कछु न्यारी है ।

आलम ।

पैडो सम सूघो बैड़ो कठिन किवार द्वार द्वारपाल नही तहा सबल अगति है । सेख भनि तहा मेरे त्रिभुवन राय है जु दीनबन्धु स्वामी सुर-पतिन को पति है ॥ बैरी को न बैर बरिआई को न परबेस हीने को हटक नाही छीनै को सकति है । हाथी की हकार पल पाछे पहुचन पावै चीटी की चिघार पहले ही पहुचति है ।

सेख ।

हम खूब तरह से जान गये जैसा आनद का कद किया ।
सब रूप सील गुन तेज पुन्ज तेरे ही तन मे बद किया ॥
तुझ हुस्न प्रभा की बाकी ले फिर विधि ने यह फरफद किया ।
चम्पकदल, सोनजुही, नरगिस, चामीकर, चपला, चद किया ॥

सीतल ।

यह प्रेम कथा कहिये किहि सो सौ कहे सो कहा कोऊ मानत है ।
पर ऊपरी धीर बधायो चहै तन रोग न वा पहिचानत है ॥
कहि ठाकुर जाहि लगी कसकै सु तो को कसकै उर आनत है ।
बिन आपने पाय बिवाय गये कोऊ पीर पराई न जानत है ॥

ठाकुर ।

लोक क लाज और साक प्रलोक को वारिये प्रीति के ऊपर दोऊ ॥
गाव को गेह को देह को नातो सनेह म हा तो करै पुनि सोऊ ॥
बोधा सुनीति निवाह करै घर ऊपर जाके नही सिर होऊ ॥
लोक की भीति डरात जो मीत तौ प्रीति के पैडे परे जनि कोऊ ॥

बोधा ।

और आगे बढिये। यह नीत-निकुञ्ज है। इसमे आप को राजनीति और लोक-व्यवहार के पडित मिलेगे। न ये प्रेमी है,न विरही,न शृङ्गारी है, न वीर। ये, मनुष्य को ससार मे किस ढग से रहना चाहिए, इस बात की शिक्षा दे रहे है। इनमे मुख्य-मुख्य नीति-निपुणो के नाम ये है—

नरहरि, रहीम, वृन्द, बैताल, घाघ और गिरिधर। जरा देर के लिए ठहर जाइये और इनके उपदेश सुन लीजिये।

ज्ञानवान हठ करै निधन परिवार बढावै।
बधुवा करै गुमान धनी सेवक ह्वै धावै॥
पडित किरिया हीन राड दुरबुद्धि प्रमाने।
धनी न समझै धर्म नारि मरजाद न माने॥
कुलवत पुरुष कुल विधि तजै, बधु न मानै बधु-हित।
सन्यास धारि धन संग्रहै, ये जग मे मूरख विदित॥ नरहरि।

रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेय।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देय॥ रहीम।

सब सो आगे होय कै, कबहु न करिये बात।
सुधरे काज समाज फल, बिगरे गारी खात॥ वृन्द।

मरै बैल गरियार मरै वह अडियल टट्टू।
मरै करकसा नारि मरै वह खसम निखट्टू॥
बाँभन सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै।
पूत वही मरि जाय जो कुल मे दाग लगावै॥
अरु बेनियाव राजा मरै तबै नीद भरि सोइये।
बैताल कहै बिक्रम सुनो एते मरे न रोइये॥ बैताल।

भुइयाँ खेडे हर ह्वै चार। घर ह्वै गिहिथिन गऊ दुधार॥
अरहर की दाल जडहन का भात। गागल निबुआ औ घिउ तात॥
सह रस खड दही जो होय। बाँके नैन परोसै जोय॥
कहे घाघ तब सबही झूठा। उहा छाँडि, इहवै बैकुठा॥
घाघ।

जाकी धन धरती हरी ताहि न लीजै सग।
जो सग राखै ही बनै तो करि राखु अपग ।।
तौ करि राखु अपग फ़ेरि फरकै सु न कीजै।
कपट रूप बतराय ताहि को मन हरि लीजै ।।
कह गिरिधर कविराय खुटक जैहै नहिं ताकी।
कोटि दिलासा देउ लई धन धरती जाकी ।। गिरिधर

अब आगे एक वन मिलेगा। इसका नाम है, वीरबन। इसमें केवल दो ही चार झोपडे नजर आते है। दो तो सामने है, एक भूषण का, दूसरा लाल का। बाकी टूटी-फूटी हालत मे है। वीरो को फुरसत कहाँ कि वे शाति से बैठने के लिए कुज-निकुज की रचना करे। दोनो वीर अपनी-अपनी कुटी के सामने टहल-टहलकर कुछ कह रहे है। सुनिये—

बिना चतुरग सग बानरन लैकै,
बाँधि बारिधि को लक रघुनन्दन जराई है।
पारथ अकेले द्रोन भीषम सो लाख भट,
जीति लीन्ही नगरी विराट मे बडाई है ।।
भूषन भनत ह्वै गुसलखाने मे खुमान,
अवरग साहिबी हथ्याय हरि लाई है।
तौ कहा अचभो महाराज शिवराज सदा,
बीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है ।। भूषण।

उद्यम ते सम्पति घर आवै। उद्यम करै सपूत कहावै ।।
उद्यम करै सग सब लागै। उद्यम ते जग मे जस जागै ।।
समुद उतरि उद्यम ते जैये। उद्यम ते परमेश्वर पैये ।। लाल।

इस वीरबन मे आपको विशेष आनन्द न आया होगा। लीजिये, सामने एक बहुत बडा उद्यान है। वहाँ चलकर विश्राम कीजिये।

इस उद्यान का नाम है, शृगारोद्यान। इसके दो भाग है, एक भाग में सूरदास, नंददास, परमानददास, कृष्णदास, कुभनदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास, हितहरिवश, हरिदास, विट्ठल विपुल, रसिक

गोविन्द, भगवतरसिक, 'विहारीदास, ध्रुवदास, हठी, सीतलदास, सहचरिशरण, किशोरीअलि, अलबेली अली, श्रीभट्ट, गदाधर भट्ट, व्यासजी, नागरीदास, हितवृन्दावनदास, आनदघन, रसखान, सूरदास मदनमोहन, नारायण स्वामी, ललित माधुरा और ललित किशोरी के प्रेम-निकेतन अलग-अलग बने हुए है, किन्तु सबके रग-ढग, रहन-सहन, विषय-वृत्त एक-से है।

चलिये, पहले इस प्रेम-निकेतन की सैर कर ले। यहाँ विशुद्ध-प्रेम की चर्चा है। सात्विक-शृगार का आनद है। सब राधाकृष्ण के सौन्दर्य, राधाकृष्ण की क्रीडा का वर्णन करने मे निमग्न है। यहाँ मन पर सासारिक विषयो का प्रभाव नही। यहाँ प्रेम है, भक्ति है, सौन्दर्योपासन है, और हृदय की निर्मलता का उज्ज्वल विकास है। यहाँ की प्रेमकथा मनुष्य के चरित्र को कलुषित नही करती, किन्तु उज्ज्वल, पावन और निष्कलक करती है।

यहाँ—या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यो-ज्यो डूबै स्यामरँग, त्यो-त्यो उज्ज्वल होय॥

यहाँ के एक-एक प्रेमी का, एक-एक सौन्दर्योपासक का रहस्य समझने के लिए एक-एक जन्म चाहिए। यहाँ प्रेम है, आनद है, सच्चा सुख और सच्ची शाति है। यहाँ का स्वर, यहाँ का राग, यहाँ का गान, यहा की तान सुनकर हृदय रखनेवाला मनुष्य यहाँ ही का होकर रहता है। आइये, शृगारोद्यान के दूसरे भाग की सैर करे।

यहाँ केशव, बिहारी, मतिराम, देव, पद्माकर, ग्वाल, पजनेस और द्विजदेव के बडे-बडे रंग बिरगे सजे-सजाये महल है। छोटे-बडे और भी सैकडो सुन्दर घर इधर-उधर दिखाई पड रहे है। स्त्री यहाँ की अधिष्ठात्री देवी है। यहाँ सासारिक विषय-वासना का ही साम्राज्य है। यहाँ मनुष्य-जीवन का लक्ष्य स्त्री-सुखोपभोग ही माना जाता है। यहाँ स्त्रियो के हाव-भाव और कटाक्ष से घायल विरहियो का जमघट है। दूती और कुटनियो का बाजार गर्म है। नायक और नायिकाओ की अनेक जातियाँ

यहाँ विद्यमान है। अभिसार-स्थानो की भरमार है। कुलवधुओ से लुक-छिपकर बाते करना, उन्हे उडा लाना अविवाहिता नववयस्काओ से दूषित प्रेम करना, हर मौसम और हर अवस्था के लिए तैयार किये हुए नुसखो के अनुसार विषय-विलास करना, रात-दिन चोटी से लेकर अँगूठे तक स्त्री के अगो की चर्चा में निमग्न रहना, यही यहाँ का धधा है, यही यहाँ का जीवन है। इस उद्यान के कवियो ने हिन्दी-ससार मे विषयानुराग की मात्रा खूब बढा दी, व्यभिचार की वृद्धि की, निकम्मेपन की जड जमाई, वैवाहिक-पवित्रता पर आक्रमण किया। मै यह केवल परिणाम की बाते कहता हूँ! उन कवियो के राग सुन्दर, वर्णन करने के ढग मनोहर और स्त्री-पुरुषो के मनोभावो को व्यक्त करने की उनकी क्षमता प्रशसनीय है। यदि मन पर विषयवासना का बुरा असर पडने का भय न हो तो मनोविनोद के लिए उनकी वाणी अनमोल चीज है। आइये, कुछ श्रवण कीजिये। केशव को एक बडा दुख है। वह क्या ?

केसव केसनि अस करी, जस अरिहूँ न कराहि।
चद्रबदनि मृगलोचनी, बाबा कहि-कहि जाहि॥

बिहारी को मार्ग मे चलते-चलते रति-क्रीडा का स्मरण आ रहा है—

नाक चढै सीवी करै, जितै छबीली छैल।
फिरि-फिरि भूलि उहै गहै, पिय कँकरीली गैल॥

मतिराम, नेह की आग से जल रहे है—

नैन जोरि मुख मोरि हँसि, नैसुक नेह जनाय।
आग लेन आई हिये, मेरे गई लगाय॥

देव का तो कहना ही क्या है। ये तो सिर से पैर तक प्रेम के रग मे रगे हुए, आजन्म विषय-सिन्धु में गोता खाते रहे। इन्होने बडे अनुभव से कहा है—

जोगहू से कठिन सयोग पर नारी को।

पद्माकर इनमे से किसी से कम नही। इनका एक नुसखा सुनिये।

गुलगुली गिलमै गलीचा हैं, गुनाजन है,
चादनी हैं, चिक है, चिरागन की माला है ।
कहै पदमाकर है गजक गिजाहू सजी,
सय्या है, सुरा है औ सुराही है सुप्याला है ॥
सिसिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्है,
जिनके अधीन एते उदित मसाला है ।
तान तुक ताला है, विनोद के रसाला है,
सुबाला है दुसाला औ बिसाला चित्रसाला है ॥

किसी गरीब को यह सुख-सामग्री दुर्लभ है । पदमाकर ने सर्दी का इलाज बताया । अब ग्वाल से गर्मी की दवा सुन लीजिय ।

जेठ को न त्रास जाके पास ये विलास होय,
खस के मवास पै गुलाब उछरयो करै ।
बिही के मुरब्बे डब्बे चादी के वरक भरे,
पेठे, पाग केवरे मे बरफ परयो करै ॥
ग्वाल कवि चन्दन चहल मे कपूर चूर,
चदन अतन तन बसन खरयो करै ।
कजमुखी, कजनैनी, कज के बिछौनन पै,
कजन की पखी करकज ते करयो करै ॥

वाह वा, क्या सुन्दर सुख-स्वप्न है ! गरीबो को यहा भी गुजाइश नही । आइये पजनेस का काव्यामृत पान कीजिये । इनकी प्राणप्यारी के उरोज कैसे हैं, सुनिये ।

उरज उठौना चक्रवाकन के छौना कैधो,
मदन खिलौना ये सलौना प्रानप्यारी के ।

द्विजदेव की तो बात ही निराली है । ये राजा महाराजा है । सुख की सब सामग्री से इनका महल खूब सुसज्जित है । इनकी व्यथा सुनिये—

वह मन्द चले किन मेरी भटू पग लाखन की अखिया अटका ।

इसी विषयी समाज के एक सदस्य ने एक स्त्री को सलाह दी है—

बावरी जो पै कलक लग्यो तो निसक ह्वै क्यो नहि अङ्क लगावति ।।

अब इन्हे छोडिये । उर्दू शायरो की महफिल के रग-ढग की ही यह मडली है । वहा भी जीते जी मौत है, यहा भी वैसी ही आह-ऊह है । अन्तर इतना ही है कि वहा अप्राकृतिक प्रेम की चर्चा है । यहा प्रकृति की सीमा के भीतर ही सब आमोद-प्रमोद है ।

आगे आइये । उद्यान के दोनो भागो के बीच मे यह किसका महल है ? इसके द्वार पर लिखा है—

परम प्रेमनिधि रसिकवर, अति उदार गुन खान ।<br>
जग-जन रजन आसु कवि, को हरिचन्द समान ।।<br>
जग जिन तन समकरि तज्यो, अपने प्रेम प्रभाव ।<br>
करि गुलाब सो आचमन, लीजत वाको नाव ।।

यह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का बगला है । ये उद्यान के दोनो भागो की सैर किया करते है । ये बडे प्रेमी, बडे रसिक, बडे उदार और विलासी पुरुष है । इन्होने उद्यान के बीचो-बीच से एक नई सडक निकलवाई है । उस पर अनेक कवियो ने अपने बगले बनवाये है । कुछ के नाम ये है—प्रतापनारायण मिश्र, नाथूराम शकर शर्मा, श्रीधर पाठक, अयोध्या-सिह उपाध्याय, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', मैथिलीशरण गुप्त आदि । ये सब अपनी-अपनी मौज मे मस्त है । अभी तक इनके बगलो मे शोभा सजावट का नाम नही । नये ढग से सजाने का प्रयास किया जा रहा है । कुछ समय लगेगा । इनका कोई कुज नही, जहा सबसे एक साथ मिला जाय । हा, एक क्लब जरूर है, जहा कभी-कभी दो-चार जमा हुआ करते है, और भारत विषयक नीरस चर्चा करके कालयापन कर जाते है । हरिश्चद्र की पहुच दोनो ओर थी, इसलिए उनके बगले मे नया और पुराना दोनो प्रकार का सौन्दर्य विकसित हो उठा है । आइये, प्रत्येक से अलग-अलग मिलकर कुछ वार्तालाप कीजिये ।

हरिश्चन्द्र कहते है—

जिय पै जु होव अधिकार तौ बिचार कीजै,
लोकलाज भलो बुरो भले निरधारिये ।
नैन, स्रौन कर, पग सबै परबस भये,
उतै चलिजात इन्हे कैसे कै सभारिये ॥
हरीचद भई सब भाति सो पराई हम,
इन्हैं ज्ञान कहि कहो कैसे कै निवारिये ।
मन मे रहै जो ताहि दीजिये बिसारि,
मन आपै बसै जामे ताहि कैसे कै बिसारिये ॥

एक दूसरे ढग का सुनिये—

सीखत कोउ न कला उदर भरि जीवत केवल ।
पसु समान सब अन्न खात पीवत गगाजल ॥
धन बिदेश चलि जात तऊ जिय होत न चंचल ।
जड समान ह्वै रहत अकलहत रचि न सकत कल ॥
जीवत बिदेश की बस्तु लै, ता बिन कछु नहि करि सकत ।
जागो जागो अब सावरे, सब कोउ रुख तुमरो तकत ॥

यहा से अब हम नई सडक पर चल रहे है ।

तब लखिहौ जह रह्यो एक दिन कचन बरसत ।
तह चौथाई जन रूखी रोटिहु कह तरसत ॥
जह आमन की गुठली अरु बिरछन की छालै ।
ज्वार चून मह मेलि लोग परिवारहि पालै ॥
नौन तेल लकरी घासहु पर टिकस लगै जह ।
चना चिरौजी मोल मिलै जह दीन प्रजा कह ॥

प्रतापनारायण मिश्र ।

शकर के सेवक दुलारे सब लोगन के
नीति के निकेत निगमागम पढत है ।

जीवन के चारो फल चाखन की चाह कर
उन्नति की ओर निसिबासर बढत है ॥
भारती के भूषण प्रतापशील पूषण से
जिनकी कृपा से पर दूषण कढत है ।
ऐसे नर नागर तरेगे भवसागर को
प्यारे परमारथ के पोत पै चढत है ॥

नाथूराम शकर शर्मा ।

वदनीय वह देश, जहा के देशी निज अभिमानी हो ।
बाधवता मे बधे परस्पर परता के अज्ञानी हो ॥
निन्दनीय वह देश जहा के देशी निज अज्ञानी हो ।
सब प्रकार परतन्त्र पराई प्रभुता के अभिमानी हो ॥

श्रीधर पाठक ।

आशा की है अमित महिमा, धन्य है देवि आशा ।
जो छूके है मृतक बनते प्राणियो को जिलाती ॥

अयोध्यासिह उपाध्याय ।

लक्ष्मी दीजै, लोक मे मान दीजै । विद्या दीजै, सभ्य सतान दीजै ॥
हे हे स्वामी, प्रार्थना कान कीजै । कीजै कीजै, देश कल्याण कीजै ॥

देवीप्रसाद पूर्ण ।

जिसकी रज मे लोट-लोटकर वडे हुये है ।
घुटनो के बल सरक-सरक कर खडे हुये है ॥
परमहस सम बाल्यकाल मे सब सुख पाये ।
जिसके कारण धूल भरे हीरे कहलाये ॥
हम खेले कूदे हर्षयुत, जिसकी प्यारी गोद मे !
हे मातृभूमि ! तुझको निरख मग्न क्यो न हो मोद मे !

मैथिलीशरण गुप्त ।

अब यही ठहरिये । यह मार्ग अभी बन रहा है । रास्ते मे ककड-पत्थरो के ढेर लगे है । न छाया है, न पानी का कही ठिकाना है । यही

से लौट चलिये । फिर कभी इस मार्ग की सैर की जायगी।

आइये, एक कुज मे बैठकर इस बात पर गौर करे कि हमने क्या देखा और कैसा देखा।

ऊपर हिन्दी-साहित्य की एक हलकी-सी झलक दिखा दी गई। शृगारी-कवियो मे सात्विक प्रेमी वृन्दावनवासी कृष्ण-भक्तों की रचनाओ के उदाहरण नही दिये गये। जिन्हे विस्तृत रूप से देखना हो, कविता-कौमुदी मे देख सकते है। अन्य कवियो के भी काव्य की छटा कौमदी मे देखने को मिलेगी। इसी से उदाहरण बहुत थोडे दिये गये। अब स्थूल-रूप से हिन्दी-साहित्य पर दृष्टि डालिये।

हिन्दी-कविता के दो रूप है, एक ब्रजभाषा का, दूसरा हिन्दी का, जिसे "खड़ीबोली" भी कहते है। ब्रजभापा का भडार खडीबोली के भडार से बहुत बढा-चढा है। ब्रजभाषा के कवियो के टक्कर का एक भी कवि अभी तक खडी बोली मे नही हुआ है। किन्तु खडीबोली की कविता की ओर लोगो की रुचि जिस तेजी से बढ रही है, उसे देखकर यह कहना पडता है कि यह खड़ीबोली के किसी महाकवि के शीघ्र आविर्भूत होने की शुभ सूचना है। सैकडो हजारो सोते निकल रहे है, शीघ्र ही वे महानद के रूप मे परिणत हो जायगे। नन्ही-नन्ही लकडिया प्रज्वलित हो रही है, शीघ्र ही किसी बडे कुन्दे मे अग्नि का अवतार होने वाला है। प्रकाश फैल जायगा, दिशा उज्ज्वल हो जायगी, फिर इस बात को कोई कभी याद भी न करेगा कि इस कुन्दे के सुलगाने मे कितनी चैलियो ने आत्मत्याग किया था।

ब्रजभाषा के कवियो को भाषा के सम्बन्ध मे जितनी स्वतन्त्रता थी, हिन्दी के कवियो को उसकी चौथाई भी नही। ब्रजभाषा का कवि अपनी आवश्यकता के अनुसार शब्दो को तोड-मरोडकर सडक तैयार कर लेता है। आवश्यकतानुसार ककड-पत्थर को काट-छाटकर वह सहज मे ही उन्हे जमा देता है। उसपर उसके भावो से लदा हुआ छकडा आसानी से चल निकलता है। वह आनन्द को आनद, अनन्द और अनन्दा कर

सकता है। तुलसीदास ने गरीबनेवाज को गरीबनेवाजू करके पराई चीज को भी अपने साँचे में ढाल लिया। वह खाता है को खात, गाता है को गावत और अक को आक, नि शक को निसाक और बक को बाक कर सकता है। कारको का प्रयोग भी वह मनमाना कर लिया करता है। उसे बडी स्वतन्त्रता है। किन्तु हिन्दी-कवि को ऐसा सौभाग्य नही प्राप्त है। उसके सामने बडा बन्धन है। जो रोडा जैसा है, उसे वैसा ही— बिना काट-छाट किये, जमाना पडता है। उसे जरा-भर भी तराश-खराश करने का अधिकार नही। वह आनन्द को आनँद भी नही कर सकता, जाओगे को जावगे भी नही बना सकता। उसके आस-पास की जमीन ऊबड-खाबड है। उसी मे से होकर उसका सँकरा रास्ता है। इससे वह अपने छकडे पर थोड़ा-थोडा माल लादकर लाता है। बताइये, कैसी मुसीबत है। जितना माल ब्रजभाषा का कवि एक बार मे लाता है, हिन्दी का कवि उसे चार बार मे। ग्राहको को उसके लिए बहुत देर तक इन्तजार करना पडता है। उर्दू-कवियो ने इस तकलीफ को समझा है, उन्होने कुछ उद्दडता से काम भी लिया है। आवश्यकता पडने दर उन्होने अपना नियमित मार्ग छोडकर इधर-उधर भी हाथ-पैर फैला दिये है। वे अपना काम निकालना जानते है, किसी का कुछ बिगडे, इसकी उन्हे परवा नही। उर्दू का एक शेर सुनिये—

खुलता नहीं दिल बन्द ही रहता है हमेशा।
क्या जाने कि आजाता है तू इसमे किधर से।। (जौक)

इस शेर मे "है", "जाने", 'जाता है" और "इसमे", इन बेचारो का ढाचा तो देखने मे पूरा है, पर जान अधूरी है। "है", "ने", "ता", और "मे" का रूप देखने मे तो दीर्घ है, किन्तु उच्चारण मे वे ह्रस्व है। हिन्दीवाले बेचारो का इतनी स्वतन्त्रता भी प्राप्त नही। उर्दू वाले और को "औ" और "पर" को "प" लिखकर भी अपना भाव प्रकट कर सकते है, किन्तु हिन्दी मे यह गुनाह माना जाता है। हिन्दी मे शब्दो के रूप और उच्चारण मे अतर नही होना चाहिए। नियमित सकरे रास्ते

ही से चलना चाहिए, किन्तु हर एक बार माल पूरा आना चाहिए, थोडे माल से ग्राहको का जी नही भर सकता। ऐसा करने के लिए हिन्दी के कुछ कवि उर्दू वालो का ही रास्ता पकड़ना चाहते है। वर्तमान कवियो मे इस मत के पोषक पडित अयोध्यासिह उपाध्याय कहे जा सकते है। दूसरा दल कहता है कि नही, रास्ता सकरा है तो क्या, मर्यादा का उल्लघन करना ठीक नही, रास्ते ही पर चलो, माल थोडा आवे तो ग्राहको को उतने ही मे सतुष्ट होने का अभ्यास बढ़ाना चाहिए। इस दल के मुखियो मे बाबू मैथिलीशरण जी गुप्त का नाम लिया जा सकता है। तीसरा एक दल और है। वह कहता है कि ब्रजभाषा और खडीबोली दोनो के रास्ते के बीच से चलो। क्रिया तो खडीबोली ही की रखो, किन्तु थोडे-से ब्रजभाषा के सज्ञा शब्द और क्रियाविशेषणो को भी मिला लो। इस दल के अगुआ राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' और पण्डित नाथूराम 'शङ्कर' शर्मा है। 'पूर्ण' तो अपनी मानवलीला पूर्ण कर गये। 'शङ्करजी' उस मार्ग पर खडे होकर लोगो को उसकी सुगमता सुझा रहे है।[१] किन्तु अधिक सख्या दूसरे दलवालो की है। वे गद्य-पद्य दोनो का मार्ग एक करना चाहते है। मार्ग सकरा है, इसकी उन्हे चिन्ता नही। वे कहते है कि सस्कृतवालो को देखो, उन्होने मर्यादा के भीतर रहकर कैसा कमाल किया है, कैसा कठिन व्रत निभाया है। हम लोग अभी ऐसा नही कर सकते, इसमे रास्ते के सकरेपनका दोष नही। अभी हम लोगो मे प्रतिभा ही नही जागृत हुई। प्रतिभाशाली के लिए सीधे-टेढे किसी रास्ते मे भी रुकावट नही।

यह तो रास्ते की बात हुई। अब यह देखना है कि ब्रजभाषा और हिन्दी दोनो मे कैसा माल आ चुका है और अब कैसा आरहा है।

हिन्दी-कविता मे प्रारम्भ से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक मुख्यत चार-पाच विषयो ही का प्राधान्य रहा है—भक्ति, प्रेम, शृङ्गार, वीर और नीति। इनमें सबसे बडा समुद्र शृङ्गार का हुआ। कितने ही कवि तो उसमे आजीवन डूबे रहे, कुछ बीच में उतराये भी तो आगे तैरने की

[१] आपका स्वर्गवास हो चुका है।

उनमे शक्ति ही न रही, और कितने उसके किनारे ही पर नहाते-धोते और खेलते रह गये ।

भक्त कवियो ने अपने अनुभव की बात कही है । वे प्रेमी थे, ज्ञानी थे और सदाचारप्रिय थे । हिन्दू-समाज की जीवनशक्ति को उन्होने बल-प्रदान किया है । हिन्दुओ मे जो कुछ ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और सदाचार की चर्चा है, उसमे से अधिकाश हिन्दी-कवियो की सम्पत्ति है । कौन कह सकता है कि हिन्दुओ के दैनिक व्यवहार मे तुलसी, सूर और कबीर की प्रेरणा नही है ! हिन्दी का भक्ति-साहित्य बडा उज्ज्वल, बडा सुन्दर और बडा मधुर है । उसमे प्राणो को आराम, मन को आनन्द और आत्मा को शान्ति मिलती है ।

वीर रस की कविता हिन्दी मे अधिक नही । जो कुछ है, उसका सम्बन्ध हृदय से कम, शरीर से अधिक है ।

नीति की कविता वीर रस की कविता से अधिक है । और समाज मे उसका प्रचार भी है । हिन्दी की यह सम्पदा अवश्य देखने की चीज है ।

शृगार के विषय मे मुझे कुछ अधिक कहना है, इसी से मैंने उसे सब के अत मे चुना है । हिन्दी-कवियो मे शृगारी कवियो की सख्या सब से अधिक है । इनमें कुछ तो बहुत उच्च-कोटि के है, उन्होने हृदय के सौन्दर्य पर बडी ललित कविता की है । भक्त कवियो ने जहा कही प्रसगवश शृगार का वर्णन किया है, उसमे विशुद्ध प्रेम और मानव-स्वभाव की सच्ची झलक दिखाई पडती है । वे सदाचार की सीमा के बाहर नही गये है । किन्तु सिर से पैर तक शृगार मे डूबे हुए कवियो ने सदाचार को लात मारी है । उन्होने नायक-नायिका-भेद को कविता का सब से प्रधान अग बना डाला है । नायिकाओ को पता ही नही, किन्तु कवियो ने उनके सैकडो भेद कर डाले । सबकी अलग-अलग भाषा, सब के अलग-अलग भाव, वेष, भूषा और चाल, बिलकुल नया ससार ही रच दिया । इस ससार मे सदाचार की गध नही । अभिसार-स्थान की सजावट है, दूतियो की दौड है, वाक्यविलास है, विरहोच्छ्वास और

बेकली है। कोकिल और पपीहो के हजारो अपराध गिनाये जा रहे है, उन्हे लाखो गालिया दी जा रही है। उन बेचारो को इसका पता भी नही। विरह के वर्णन मे तो और गजब ढाया गया है। एक विरहिणी पार्वती की पूजा करने गई थी। जैसे ही उसने हाथ मे माला लेकर पार्वती के गले मे डालना चाहा, वैसे ही, हाथ लगते ही माला राख हो गई। तब उस विभूति को शिवजी को चढाकर वह वापस आई। विरह की आच हृदय ही मे होती है, किन्तु कवियो को वही तक उसे रखने मे सन्तोष नही हुआ। उन्होने हाथ मे भी उसकी दाहक शक्ति पहुचा दी। एक विरहिणी पनघट पर जल लाने गई। घडा भरकर सिर पर रखने ही वह विरह की आच से सूख जाता था। फिर उतारकर फिर भरती और सिर पर रखते ही वह फिर सूख जाता। दिनभर इसी चढाव उतार मे लगी रही।

बिहारी ने एक विरहिणी का वर्णन इस प्रकार किया है—

इत आवत चलि जाति उत, चली छ सातिक हाथ।
चढी हिडोरे सी रहै, लगी उसासिन साथ॥

अर्थात्, विरह के मारे वह इतनी कमजोर हो गई है कि सास लेने और छोडने के साथ वह छ-सात हाथ आगे-पीछे आती-जाती रहती है। सास रूपी हिडोले पर चढी हुई इधर से उधर झूलती रहती है।

ऐसा तो उस नायिका का हाल था। अब यह बात यहा समझ मे नही आती कि जब वह हवा से भी इतनी हलकी होगई थी तो तितली का पख लगाकर अपने प्रियतम के पास क्यो न उडकर चली गई ?

ग्वाल कवि ने एक विरहिणी का हाल ऐसा लिखा है—

तादुर ले आई तिया आगन मे ठाढी रही,
कर के पसारबे मे भात हाथ मे भयो।

इस देश मे जब से अग्रेजी राज आया तब से विरही-विरहिणियो की सख्या तो बढ गई, किन्तु पहले जैसी घटनाए अब नही होती। लाखो विरही तो रोज रेल पर चढे फिरते है, बीसो हजार कालेजो मे भरे पडे

है, डाक और तार का भी पूरा प्रबन्ध है फिर भी किसी विरही के घर से यह खबर नही आती कि उसकी विरहिणी की आह से उसका घर जल गया या किसी कोयल या पपीहे की बोली से उसकी स्त्री मर गई। मालूम होता है, इस बला को पुराने कवि अपने साथ ही स्वर्ग ले गये।

दूसरा नम्बर नख-शिख वर्णन करनेवाले कवियो का है। इन्होने नायिका के जिस अग को छुआ है उसे अन्तिम सीमा तक पहुचा दिया है। चितवन से किसी को घायल होते सुना हो तो उसे वज्र और बिजली बना डाला। बीच मे जरा-सी उठी हुई नाक अच्छी लगी तो उसे इतना झुकाया कि तोते की-सी नाक बनाकर तब दम लिया, चाहे वे अपनी स्त्री की तोते ऐसी टेढी नाक को स्वय पसन्द न करे। स्तनो की कठोरता अच्छी लगी तो उसे पहाड बना डाला, नायिका दबकर मर जाय तो मरे, इनका क्या बिगडा। नायिका की कमर पतली होने मे कुछ सुभीता समझ पडा तो उसके पीछे पड गये। ससार की पतली-से पतली चीजे याद की गई और कमर को उनसे भी पतली कहा गया। पतलेपन की दौड यहाँ तक बढी कि केशवदास ने उसका अस्तित्व ही मिटा दिया। बस, अब आगे कहाँ जाओगे ? जो चीज ही नही, उससे अधिक पतली और क्या हो सकती है। केशवदास ने कहा है—

सूम कैसो दान महामूढ कैसो ज्ञान

*  *  *

यह तेरी कटि निपट कपट कैसो हितु है।

चलो छुट्टी हुई। इस प्रकार के कविगण प्रतिदिन नितम्ब और स्तनो के बीच मे, नाभि के पास, कटिप्रदेश देखते रहे है, फिर भी कहते है कि कटि हुई नही। इस झुठाई का भी कुछ ठिकाना है ! कल्पना के पीछे ये लोग ऐसे उडे कि असली वस्तु ही को भूल गए। अत्युक्ति और उत्प्रेक्षा को इतना महत्त्व दिया कि स्वाभाविकता ही से हाथ धो बैठे।

उर्दू के सौदा कवि ने एक शेर मे कहा—

समुन्दर कर दिया नाम उसका नाहक सब ने कह-कहकर।

हुये थे जमा कुछ आँसू मेरी आँखो से बह-बहकर ॥

यह झूठ की अन्तिम सीमा है। इससे आगे कोई बढ नही सकता। एक ही पिनक मे चले जाते हुए इन कवियो को देख कर कोई-कोई कवि इनकी दिल्लगी भी उडाने लगे। एक कवि कहता है—

मास की गरेथी कुच कचन कलस कहै,
मुख चन्द्रमा जो असलेषमा को घर है।
दोऊ कर कमल मृनाल नाभी कूप कहै,
हाड ही को जघा ताहि कहै रम्भा तर है।
हाड को दसन ताहि हीरा मूगा मोती कहै,
चाम को अधर ताहि कहै बिम्बा फर है।
एती झूठी जुगती बनावै औ कहावै कवि,
तापर कहत हमे सारदा को बर है॥

उर्दू-कवियो की मिथ्यावादिता से मौलाना हाली भी नाराज हुए थे। वे कहते है—

बुरा शेर कहने की गर कुछ सजा है,
अबस झूठ बकना अगर ना रवा है।
तो वह महकमा जिसका काजी खुदा है,
मुकर्रर जहाँ नेक व बद की जजा है।
गुनहगार वाँ छूट जावेगे सारे,
जहन्नुम को भर देगे शायर हमारे।

शृङ्गारी-कवि-मडल के सब से अन्तिम कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे। शृङ्गार मे जो कुछ कहना-सुनना बाकी था, उसे उन्होने कहकर समाप्त किया। इसके सिवाय उन्होने कुछ और भी कहा। उसे देखकर नये कवियो ने अपना रुख बदलना प्रारम्भ किया। वह रुख यहाँ तक बदला कि अब शृगार का कोई नाम भी नही लेता। आजकल के कवि हाथ धोकर भारत के पीछे पड गए हैं, कोई भारत को कायर बनाता है, कोई अभागा कहता है, कोई उसे पुरानी कहानी सुनाकर उठाना चाहता है,

और कोई उसकी जी भर कर भर्त्सना करता है। कविता मे कुछ दम नही, किन्तु जय, जय की इतनी भरमार है कि ऐसी आशङ्का होती है कि इतने जयजयकार के भय से कही भारत यह देश छोडकर भाग न जाय। भारत के पीछे रो-धोकर यह भेडियाधसान किसी और तरफ चलेगी, तब उसे भी अन्तिम सीमा तक खदेडकर दूसरे को पकडेगी। हिन्दी-कवियो मे यह विशेषता देखी जाती है कि वे जिधर पिल पडे, उधर से वे तब तक नही मुडते, जब तक उसमे कुछ अम्तित्व रहता है।

खडीबोली की कविता को सबसे अधिक प्रोत्साहन पडित महावीर प्रसादजी द्विवेदी से मिला है। द्विवेदीजी ही के उद्योग से आज खडी-बोली की कविता का एक रूप देखने को मिल रहा है। सरस्वती ने इस क्षेत्र मे बडा काम किया है। अब भविष्य मे, बहुत आशा है कि विशुद्ध खडीबोली मे भी ब्रजभाषा के समान भावपूर्ण कविता होने लगेगी। अभी तो खडीबोली की कविता मे भावो का चमत्कार देखने को बहुत ही कम मिलता है।

## हिन्दी की वर्तमान दशा

हिन्दी की वर्तमान दशा बहुत ही आशापूर्ण है। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक हिन्दी के लिए अनुराग जागृत हुआ है। प्रत्येक प्रान्त के प्रमुख नेताओ और विद्वानो ने एक स्वर से हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया है। सुलेखको और सुकवियो की सख्या दिन-प्रति-दिन बढती जा रही है। नये-नये समाचार-पत्र निकल रहे है। हिन्दी के पुस्तकालयो की सख्या बडी तेजी से बढ रही है। बडे-बडे नगरो मे हिन्दी से सम्बन्ध रखने वाली सस्थाए खुलती जारही है। पुस्तक-प्रकाशकगण, अच्छे लेखको से मौलिक ग्रन्थ लिखवाकर, अन्य भाषाओ के उत्तम ग्रन्थो का अनुवाद कराके और उन्हे आवश्यकतानुसार सचित्र सजिल्द तैयार कराके हिन्दी-साहित्य का कलेवर बढाते जा रहे है। हिन्दू लोग तो हिन्दी की ओर खिचते ही आ रहे है, मुसलमानो मे भी हिन्दी के लिए बडी रुचि उत्पन्न हुई है। देशभक्त मुसलमान हिन्दी सीखने का उद्योग करते पाये जाते है।

इस समय देश मे हिन्दी की दो बडी सस्थाए काम कर रही है — एक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और दूसरे नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी।

हिन्दी-साहित्य सम्मेलन सार्वदेशिक सस्था है। उसका प्रधान कार्यालय प्रयाग मे है। वह मद्रास मे हिन्दी-प्रचार के लिए हजारो रुपये मासिक व्यय कर रहा है और सफलता भी प्राप्त कर रहा है।[1] प्रतिवर्ष सर्वोत्तम ग्रन्थकार को वह बडे सम्मान के साथ बारह सौ रुपये पुरस्कार के देता है। भारत के कई प्रान्तो मे उससे सम्बद्ध प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के कार्यालय है, जो सम्मेलन के उद्देश्यो की पूर्ति मे तत्पर रहते है। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से पुरानी है। हिन्दी और नागरी लिपि के लिए खासकर युक्तप्रान्त वालो मे अनुराग उत्पन्न करने का श्रेय इस सभा ही को है। सभा ने हिन्दी की प्राचीन पुस्तको की खोज का बहुत ही उपयोगी काम किया है। पुराने काव्य-ग्रथो का अनुसधान, उत्तमोत्तम ग्रथो का सम्पादन और प्रकाशन, हिन्दी के एक वृहत् कोष की रचना, ये सब काम सभा का गौरव बहुत ऊचा करते है। सभा जन्म से ही हिन्दी-साहित्य की बहुमूल्य सेवा कर रही है।

मासिक पत्रिकाओ मे सरस्वती, माधुरी, प्रभा और श्रीशारदा सब से अच्छी है। इनका मूल भी दृढ है और क्षेत्र भी विस्तृत है। साप्ताहिक पत्रो मे प्रताप, अभ्युदय, कर्मवीर का प्रभाव और प्रचार अधिक है। दैनिक-पत्रो मे दैनिक-भारतमित्र, स्वतत्र, आज और कलकत्ता समाचार हिन्दी जानने वाली जनता की बहुमूल्य राजनीतिक सेवा कर रहे है। विद्यार्थियो के लिए विद्यार्थी और बालसखा आदि पत्र निकल रहे है। स्त्रियो के लिए स्त्रीदर्पण, गृहलक्ष्मी और ज्योति आदि मासिक पत्र-पत्रिकाए विशेष उल्लेखनीय है।[2]

**[1]अब सम्मेलन का इस सस्था से सबध नहीं रहा है। सम्मेलन वर्धा में 'राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति' नामक एक नई सस्था का अहिन्दी भाषी प्रांतों में हिन्दी-प्रचार के लिए संचालन कर रहा है।**

**[2]मासिक साप्ताहिक व दैनिक पत्रो की स्थिति में भी बहुत परिवर्तन**

हिन्दी के वर्तमान सुकवियों में 'पंडित नाथूराम शंकर शर्मा, पंडित श्रीधर पाठक, पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय, लाला भगवान दीन, बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर, प० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, पंडित कामताप्रसाद, पंडित रामचरित उपाध्याय, मिश्रबन्धु, पंडित गिरिधर शर्मा, पंडित माधव शुक्ल, पंडित गयाप्रसाद शुक्ल सनेही', पंडित रूपनारायण पांडेय, बाबू मैथिलीशरण गुप्त, बाबू जयशङ्कर, प्रसाद, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, पंडित लोचनप्रसाद पाण्डेय, पंडित लक्ष्मीधर बाजपेयी, पंडित बदरीनाथ भट्ट, पंडित माखनलाल चतुर्वेदी, ठाकुर गोपालशरण सिंह, पांडेय मुकुट-धर शर्मा, बाबू सियारामशरण गुप्त, बाबू गोविन्ददास, पण्डित हरिप्रसाद द्विवेदी ( वियोगी हरि ) आदि की कृतियों में हिन्दी-साहित्य का उपवन सुरभित हो चला है। सुलेखकों में पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी, पंडित पद्मसिंह शर्मा, पण्डित अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी, पण्डित गौरीशंकर हीरा-चन्द ओझा, बाबू श्यामसुन्दर दास, बाबू गणेशशङ्कर विद्यार्थी, बाबू ब्रज-नन्दन सहाय, श्रीयुत प्रेमचन्द, पण्डित रामजी लाल शर्मा, पण्डित चन्द्र-शेखर शास्त्री, पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी, पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी, पण्डित माधव राव सप्रे, प० किशोरीलाल गोस्वामी, बाबू रामदास गौड़ बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, पण्डित कृष्णाकांत मालवीय, पण्डित लक्ष्मण-नारायण गर्दे, बाबू रामचन्द्र वर्मा और श्रीयुत नाथूराम प्रेमी आदि का स्थान बहुत ऊंचा है। सुकवियों में प्रायः सभी सुलेखक हैं। भिन्न भाषा-भाषी प्रान्तों में भी हिन्दी के अच्छे ज्ञाताओं की संख्या बढ़ती जा रही है। इस समय बङ्गाल, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र मद्रास आदि भारत के प्रायः सभी प्रान्तों के लोगों में हिन्दी के जानकार या लेखक मिलेंगे।

इस तरह हिन्दी-साहित्य का बढ़ता हुआ वटवृक्ष एक दिन कैलास से कन्याकुमारी तक, अटक से कटक तक अपनी सुखद शीतल छाया से तैंतीस

हो चुका है। पुराने कई पत्र बन्द हो गये हैं और कई नये अच्छे पत्र निकलने लगे हैं।

'इनमें कई महानुभाव स्वर्गीय हो चुके हैं।

कोटि भारतवासियो को शांति और सुख प्रदान करेगा । सारे देश मे एक भाषा के प्रचार से हम मे एक राष्ट्रीयता जागृत होगी, पारस्परिक प्रेम, ऐक्य और बन्धुत्व की वृद्धि होगी और घनिष्टता और सहानभूति का भाव पुष्ट होगा ।

हिन्दी जीती-जागती भाषा है । उसकी ग्राहिका-शक्ति बडी प्रबल है । उसने अरबी, फारसी और तुर्की भाषाओ के हजारो शब्द हजम कर लिये, अब अंग्रेजी भाषा के शब्दो को वह चुनचूनकर अपनाती जाती है । विदेशी भाषाओ के जो शब्द अपनी भाषा मे खप गये, वे सब हिन्दी की मिलकियत होगए । अच्छे लेखक उन शब्दो से बराबर काम लेने लगे है। नये-नये महावरो का भी रोज-रोज समावेश होता जाता है। एक दिन सर्वांगसुन्दर हिन्दी-भाषा भारत की भाषाओ मे प्रधान पद को सुशो-भित करेगी ।

# कविता-कौमुदी

## पहला भाग

## चन्दबरदाई

चन्दबरदाई का नाम राजपूताने मे बहुत प्रसिद्ध है। वह भारतवर्ष के अन्तिम हिन्दू सम्राट् महाराज पृथ्वीराज चौहान का राजकवि, मित्र और सामन्त था। वह भट्ट जाति के जगात (वर्तमान राव) नामक गोत्र का था। उसके पूर्वज पजाब के रहनेवाले थे, और उनकी यजमानी अजमेर के चौहानो के यहा थी।

चन्द का जन्म लाहौर मे हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि चद और पृथ्वीराज का जन्म एक ही तिथि को हुआ था और एक ही तिथि को दोनो ने शरीर भी छोडा। पृथ्वीराज का जन्म सवत् १२०५ मे और मृत्यु १२४८ मे हुई। अतएव चद के भी जन्म-मरण का समय यही समझना चाहिए।

चन्द के पिता का नाम राववेण और विद्या-गुरु का नाम गुरुप्रसाद था। वह षट्भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, ज्योतिष, वैद्यक, मन्त्र-शास्त्र, पुराण, नाटक और गान आदि विद्याओ मे बडा निपुण था। वह जालन्धरी (जालपा) देवी का उपासक था।

चद ने दो विवाह किये थे। उसकी पहली स्त्री का नाम कमला उपनाम मेवा और दूसरी का गौरी उपनाम राजोरा था। उसके ग्यारह सन्तति हुई, दस लडके और एक लडकी। लडकी का नाम राजबाई था। चद के दसो पुत्रो मे जल्ह बडा योग्य था। पृथ्वीराज की बहन पृथाबाई का विवाह, 'रासो' के अनुसार, चित्तौर के रावल समरसिंह के साथ

हुआ था। पृथाबाई के साथ जल्ह भी रावल जी का दहेज में दिया गया था। । जब शहाबुद्दीन के साथ पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध मे रावल समरसिह जी मारे गए तब उनके साथ पृथाबाई सती हुई थी। सती होने के पहले पृथाबाई ने अपने पुत्र को एक पत्र लिखा था। जिसमे सूचना दी थी कि श्री हुजूर समर में मारे गये और उनके सग ऋषिकेशजी भी बैकुण्ठ को पधारे है। ऋषिकेशजी उन चार लोगो मे से है जो दिल्ली से मेरे सग दहेज में आये थे, इसलिए इनके वशजो की खातिरी रखना। "ने पाछे मारा च्यारी गराँ का मनषाँ की षात्री राखजो। ई मारा जीव का चाकर हे जो थासु कदी हरामषोर नीवेगा"। यह पत्र माघ सुदी १२, संवत् १२४८ विक्रम का लिखा हुआ है। इससे प्रकट है कि जल्ह पृथाबाई के साथ चित्तौर गया था।

चंद ने पृथ्वीराज का चरित्र जन्म से लेकर अन्तिम युद्ध तक "पृथ्वीराज रासो" नामक महाकाव्य मे वर्णन किया है। अन्तिम लडाई के समय चद पृथ्वीराज के साथ उपस्थित नही था, वह देवी के एक मन्दिर मे बैठकर "रासो" को पूरा कर रहा था। इसलिए अन्तिम लडाई का वृत्तान्त वह नही लिख सका। पीछे से उसके पुत्र जल्ह ने उस युद्ध का वृत्तान्त लिखा। रासो मे लिखा है कि पृथ्वीराज को शहाबुद्दीन ने पकड लिया था। वह उन्हे गजनी ले गया और उनकी दोनो आखे फोडवा कर उसने उन्हे कैदखाने मे डाल दिया। "रासो" लिखकर चद अपने घर आया और उसे जल्ह को देकर वह गजनी गया। वहा गोरी को प्रसन्न करके वह पृथ्वीराज से मिला। उसने कौशल से पृथ्वीराज के हाथ से शहाबुद्दीन को मरवा डाला। फिर राजा और कवि दोनो ने कटार से अपना-अपना प्राणात वही किया। पृथ्वीराज के साथ चद का जीवन-चरित्र ऐसा मिला हुआ है कि उससे वह किसी तरह अलग नही किया जा सकता। चद पृथ्वीराज का लंगोटिया मित्र था। वह सदा पृथ्वीराज के साथ रहता था। इसलिए जो-जो घटनाए उसने लिखी है, उनमे सत्य का अश वहुत अधिक है। उसने आखो-देखी बातें लिखी है।

चद महाकवि था। उसका बनाया हुआ "पृथ्वीराज रासो" हिन्दी में एक अपूर्व ग्रन्थ है। उसमे स्थान-स्थान पर कविता के नवो रसो का वर्णन बड़ी मार्मिकता से किया गया है। चद ने पृथ्वीराज का सम्पूर्ण चरित्र अपनी स्त्री गौरी से कहा है। जिस प्रकार तुलसीदास की चौपाई, सूरदास के पद, बिहारी के दोहे, गिरधर की कुण्डलिया और पद्माकर के घनाक्षरी छन्द प्रसिद्ध है, उसी प्रकार चद ने छप्पय लिखने मे बड़ा नाम पाया है।

"रासो" की कविता मे सयुक्ताक्षरो की खूब भरमार है। पढते समय ऐसा मालूम होता है कि जीभ को खूब ऊबड-खाबड रास्ता तै करना पड़ रहा है। पर उस रास्ते मे जो काव्य-रस के मनोहर पुष्प खिले हुए है उनकी सुगन्ध से मन मुग्ध हो जाता है। "रासो" में वीर और शृङ्गार-रस की कविता बहुत है। उनमे बडा चमत्कार और बडी मनोमोहकता है।

चन्द की कविता की भाषा अच्छी तरह वे ही लोग समझ सकते है जिन्हे सस्कृत और राजपूताने की बोली का अच्छा ज्ञान हो। साधारण हिन्दी जानने वालो की समझ में वह अच्छी तरह नही आ सकती।

"रासो" बहुत बडा ग्रन्थ है। समय-समय पर चद जो कविताए रचता था, उसे वह कण्ठस्थ रखता था, या कागज पर लिख लेता होगा। उन्हे पुस्तकाकार उसने ६० दिनो मे किया। रासो मे कुल ६९ अध्याय है। प्रत्येक अध्याय किसी न किसी ऐतिहासिक घटना को लेकर लिखा गया है। पृथ्वीराज ने अपने जीवन मे बहुत-सी लडाइया लडी थी और उन्होने विवाह भी कई किये थे। रासो मे सब का विस्तार-पूर्वक वर्णन है। आजकल के ऐतिहासिक विद्वान् रासो मे वर्णित पृथ्वीराज और मुहम्मदगौरी-सम्बन्धी कई लडाइयो को सत्य नही मानते।

चद का जन्म लाहौर मे हुआ था और वहा मुसलमानो का अधिक ससर्ग था इसलिए चद की कविता मे अरबी, फारसी के भी बहुत-से शब्द आ गए है।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने "रासो" को प्रकाशित किया है। अभी इससे भी अधिक शुद्ध-सस्करण के प्रकाशित होने की आवश्यकता है।

आगे हम चद की कविता के कुछ नमूने उद्धृत करते है—

## पद्मावती समय

### दूहा

पूरब दिस गढ गढन पति, समुद शिखर अति दुग्ग ।
तह सु विजय सुरराज पति, जादू कुलह अभग्ग ॥ १ ॥
हसम हयग्गय देस अति, पति सायर म्रज्जाद ।
पबल भूप सेवहि सकल, धुनि निसान बहु साद ॥ २ ॥

### कबित्त

धुनि निसान बहु साद नाद सुरपच बजत दिन ।
दस हजार हय चढत हेम नग जटित साज तिन ।
गज असख गजपतिय मुहर सेना तिय सखह ।
इन नायक कर धरी पिनाक धरभर रज रख्खह ।
दस पुत्र पुत्रिय एक सम रथ सुरग उम्मर डमर ।
भडार लछिय अगनित पदम सो पदमसेन कूवर सुघर ॥ ३ ॥

### दूहा

पदमसेन कूवर सुघर, ता घर नारि सुजान ।
ता उर इक पुत्री प्रकट, मनहु कला ससि भान ॥ ४ ॥

### कबित्त

मनहु कला ससि भान कला सोलह सो बन्निय ।
वाल वेस ससिता समीग अमृत रस पिन्निय ।
बिगसि कमल मृग भ्रमर बैन खजन मृग लुट्टिया ।
हार कीर अरु बिम्ब मोति नख सिख अहि घुट्टिया ।
छत्रपति गयद हरि हस गति विह बनाय सचै सचिय ।
पदमिनिय रूप पद्मावतिय मनहु काम कामिनि रचिय ॥ ५ ॥

दूहा

मनहु काम कामिनि रचिय, रचिय रूप की रास।
पशु पछी सब मोहिनी, सुर नर मुनियर पास ॥ ६ ॥
सामुद्रिक लच्छन सकल, चौसठ कला सुजान।
जानि चतुरदस अग षट, रति बसत परमान ॥ ७ ॥
सखियन सग खेलत फिरत, महलनि बाग निवास।
कीर इक्क दिष्पिय नयन, तब मन भयौ हुलास ॥ ८ ॥

कबित्त

मन अति भयौ हुलास बिगसि जनु कोक किरन रवि।
अरुन अधर तिय सधर बिम्ब फल जानि कीर छवि।
यह चाहत चख चकृत उह जु तक्किय झरप्पि झर।
चच चहुट्टिय लोभ लियौ तब गहित अप्प कर।
हरषत अनन्द मन महि हुलस लै जु महल भीतर गई।
पजर अनूप नग मनि जटित सो तिहि मह रष्षत भई ॥ ९ ॥

दूहा

तिहि महल रष्षत भई, गई खेल सब भुल्ल।
चित्त चहुट्टयो कीर सो, राम पढावत फुल्ल ॥ १० ॥
कीर कुँवरि तन निरखि दिखि, नख सिख लौं यह रूप।
करता करी करी बनाय कै, यह पदमिनी सरूप ॥ ११ ॥

कवित्त

कुट्टिल केस सुदेश पौह परचियत पिक्क सद।
कमल गध वय सध हस गति चलत मद मंद।
सेत बस्त्र सोहै सरीर नख स्वाति बुन्द जस।
भमर भवहि भुल्लहि सुभाव मकरंद वास रस।
नैन निरखि सुख पाय सदिन मूरति रचिय।
उमा प्रसाद हर हेरियत मिलहि राज प्रथिराज जिय ॥ १२ ॥

दूहा

सुक समीप मन कुवरि को, लग्यो बचन कै हेत ।
अति विचित्र पडित सुआ, कथत जु कथा अमेत ॥ १३ ॥

गाथा

पुच्छत बयन सु बाले उच्चरिय कीर सच्च सच्चाये ।
कवन नाम तुम देस कवन यद करय परवेस ॥ १४ ॥
उच्चरिय कीर सुनि बयन हिन्दवान दिल्ली गढ अयन ।
तहा इन्द्र अवतार चहुआन तह प्रथिराजह सूर सुभार ॥ १५ ॥

पद्धरी

पदमावतीहि कुवरी सघत्त,
दुज कथा कहत सुनि सुनि सुवत्त ॥ १६ ॥
हिंदवान थान उत्तम सुदेस,
तह उदित द्रुग्ग दिल्ली सुदेस ॥ १७ ॥
सभरि नरेस चहुआन थान,
प्रथिराज तहा राजत भान ॥ १८ ॥
बैसह बरीस षोडस नरिंद,
आजान बाहु भुअ लोक यन्द ॥ १९ ॥
सभरि नरेस सोमेस पूत,
देवत रुप अवतार धूत ॥ २० ॥
सामत सूर सब्बे अपार,
भूजान भीम जिम सार भार ॥ २१ ॥
जिहि पकरि साह साहाब लीन,
तिहुँ बेर करिय पानीप हीन ॥ २२ ॥
सिंगिनि सुसद्द गुन चढि जजीर,
चुक्कै न सबद बेधत तार ॥ २३ ॥
बल बैन करन जिमि दान पान,
सतसहस सील हरिचद समान ॥ २४ ॥

साहस सुक्रम विक्रम जुं वीर,
दानव सुमत्त अवतार धीर ॥ २५ ॥
दिस च्यार जानि सब कला भूप,
कद्रप्प जानि अवतार रूप ॥ २६ ॥

दूहा

कामदेव अवतार हुअ, सुअ सोमेसर नन्द ।
सहस किरन झलहल कमल, रिपि समीप वर विन्द ॥२७॥
सुनत श्रवन प्रथिराज जस, उमग बाल विधि अङ्ग ।
तन मन चित्त चहुवाँन पर, बस्यो सु रत्तह रङ्ग ॥२८॥
बेस बिती ससिता सकल, आगम कियो बसत ।
मान पिता चिंता भई, सोधि जुगति को कत ॥२९॥

कवित्त

सोधि जुगति को कत कियौ तब चित्त चहो दिस ।
लयौ विप्र गुर बोल कही समझाय बात तस ।
नर नरिंद नरपती बडे गढ द्रुग्ग असेसह ।
सीलवन्त कुल सुद्ध देहु कन्या सु नरेसह ।
तब चलन देहु दुज्जह लगन सगुन वन्द दिय अप्प तन ।
आनन्द उछाह समुदह सिषर बजत नद्द नीसान घन ॥३०॥

दूहा

सवा लष्ष उत्तर सयल, कमऊ गढ दूरङ्ग ।
राजत राज कुमोदमनि, हय गय द्रिब्ब अभग ॥३१॥
नारिकेलि फल परठि दुज, चौक पूरि मन मुत्ति ।
दई जु कन्या बचन बर, अति अनन्द करि जुत्ति ॥३२॥

भुजङ्गप्रयात

विहसित बर लगन लिन्नौ नरिंद,
बजी द्वार द्वार सु आनन्द द्ु द ॥३३॥
गढन गढ पत्ति सब बोलि नुत्ते,
सब आइय भूप कट्टु बस जुत्ते ॥३४॥

चले दस सहस्स असव्वार जान,
पूरिय पैदल तेतीस थान ॥३५॥
मद गल्लित मत्त सँ पच दती,
मनो साम पाहार बुगपति पती ॥३६॥
चलै अग्गि तेजी जु तत्ते तुखार,
चौवर चौरासी जु साकत्ति भार ॥३७॥
नग कठ नूप अनूप सु लाल,
रग पच रग ढलक्कत ढाल ॥३८॥
सुर पच साबद्द वाजित्र वाज,
सहस्स सहन्नाय मृग, मोहि राज ॥३९॥
समुद सिर सिखर उच्छाह छाह
रचित मडप तोरन श्रीयगाह ॥४०॥
पदमावती विलखि बर बाल बेली,
कही कीर सो बात तब होइ केली ॥४१॥
झट जाहु तुम्ह कीर दिल्ली सुदेस,
बर चाहुआन जु आनौ नरेस ॥४२॥

### दूहा

आनों तुम्ह चहुआन बर, अरु कहि इहै सदेस ।
सास सरीरहि जो रहे, प्रिय प्रथिराज नरेस ॥४३॥

### कबित्त

प्रिय प्रथिराज नरेस जोग लिखि कग्गर दिन्नौ ।
लगु नव रग रचि सरब दिन्न द्वादस ससि लिन्नौ ॥
से अरु ग्यारह तीस साष सवत परमानह ।
जोवित्री कुल सुद्ध बरनि वर रष्षहु प्रानह ॥
दिष्षत दिष्ट उच्चरिय बर इक्क पलक विलम्ब न करिय ।
अलगार रयन दिन पच महि ज्यो रुकमनि कन्हर वरिय ॥४४॥

दूहा

ज्यो रुकमनि कन्हर वरी, ज्यो वरि सभर कात ।
शिव मडप पच्छिम दिशा, पूजि समय स प्रात ॥४५॥
लै पत्री सुक यो चल्यौ उड्यो गगनि गहि बाव ।
जह दिल्ली प्रथिराज नर, अट्ठ जाम मे जाव ॥४६॥
दिय कग्गर नृपराज कर, षलि वचिय प्रथिराज ।
सुक देखत मन मे हँसे, कियो चलन कौ साज ॥४७॥

कबित्त

उहै घरी उहि पलनि उहै दिन बेर उहै सजि ।
सकल सूर सामत लिये सब बोल बब बजि ।
अरु कवि चन्द अनूप रूप सरसै बर कह बहु ।
और सेन सब पच्छ सहस सेना तिय सष्षहु ।
चामडराय दिल्ली धरह गढपति कर गढ भार दिय ।
अलगार राज प्रथिराज तब पूरब दिस तब गमन किय ॥४८॥

दूहा

जा दिन सिषर बरात गय, ता दिन गय प्रथिराज ।
ताही दिन पतिसाह कौ, भइ गज्जनै अवाज ॥४९॥

कबित्त

सुनि गज्जनै अवाज चढ्यो साहाब दीन बर ।
खुरासान सुलतान कास काबिलिय मीर धुर ।
जग जुरन जालिम जुझार भुज सार सार भुअ ।
धर धमकि भजि सेस गगन रवि लुप्पि रैन हुअ ।
उलटि प्रवाह मनौ सिन्धु सर रुक्कि राह अड्डौ रहिय ।
तिहि घरिय राज प्रथिराज सौं चन्द वचन इहि विधि कहिय ॥५०॥
निकट नगर जब जानि जाय वर विन्द उभय भय ।
समुद सिखर घन नद्द इद दुहु ओर घोर गय ।
अगवानिय अगिवान कुअर बग्गि वनि हय सज्जति ।
दिष्षन को त्रिय सवनि गौख चढि छाजन रज्जति ।

बिलखि अवास कुवरि वदन मनो राहु छाया सुरत।
झषति गवष्षि पल पल पलकि दिखत पथ दिल्ली नृपति ॥५१॥

**पद्धरी**

दिष्षत पथ दिल्ली-दिसान,
सुख भयो सूक जव मिल्यो आन ॥५२॥
सन्देश सुनत आनन्द नैन,
उमगीय बाल मनमथ्थ सैन ॥५३॥
तन चिकट चीर डारयो उतारि,
मज्जन मयक नव सत सिंगार ॥५४॥
भूषन मगाय नख सिख अनूप,
सजि सेन मनो मनमथ्थ भूप ॥५५॥
सोब्रन्न थार मोतिन भराय,
झलहल करत दीपक जराय ॥५६॥
सगह सखीय लिय सहस बाल,
रुकमनिय जेम मज्जत मराल ॥५७॥
पूजीय गवरि शकर मनाय,
दच्छिनै अंग करि लगिय पाय ॥५८॥
फिर देखि देखि प्रथिराज राज,
हस मुद्ध मुद्ध चरपट्ट लाज ॥५९॥
करि पकरि पीठ हय पर चढाय,
लै चल्यो नृपति दिल्ली सुराय ॥६०॥
भइ खबरि नगर बाहिर सुनाय,
पदमावतीय हरि लीय जाय ॥६१॥
बाजी सु बव हय गय पलान,
दौरे सुसज्जि दिस्सह दिसान ॥६२॥
तुम लेहु लेहु मुख जपि जोध,
हन्नाह सूर सव पहिरि क्रोव ॥६३॥

अग्गे जु राज प्रथिराज भूप,
पच्छै सु भयो वह सब सैन रूप ॥६४॥
पहुचे सु जाय तत्ते तुरग,
भुअ भिरन भूप जुरि जोध जग ॥६५॥
उलटी जु राज प्रथिराज बाग,
थकि सूर गगन धर धसत नाग ॥६६॥
सामत सूर सब काल रूप,
गहि लोह छोह वाहै सु भूप ॥६७॥
कम्मान बान छुट्टहिं अपार,
लागत लोह इम सारि धार ॥६८॥
घमसान घान सब वीर खेत
घन श्रोन बहत अरु रुकत रेत ॥६९॥
मारे बरात के जोध जोह,
परि रुड मुड अरि खेत सोह ॥७०॥

## दूहा

परे रहत रिन खेत अरि, करि दिल्लिय मुख रुक्ख ।
जीति चल्यो प्रथिराज रिन, सकल सूर भय सुक्ख ॥७१॥
पदमावति इम लै चल्यौ, हरखि राज प्रथिराज ।
एतें परि पतिसाह की, भई जु आनि अवाज ॥७२॥

## कबित्त

भाई जु आनि आवाज आय साहाबदीन सुर ।
आज गहौं प्रथिराज बोल बुल्लत गजत धुर ।
क्रोध जोध जोधा अनन्त करिय पन्ती अनि गज्जिय ।
बान नालि हथनालि तुपक तीरह सब सज्जिय ।
पवै पहार मनो सार के भिरि भुजान गजनेस बल ।
आये हकारि हकार करि खुरासान सुलतान दल ॥७३॥

### भुजङ्गप्रयात

खुरासान मुलतान खन्धार मीर,
बलक सोबल तेग अच्चूक तीर ॥७४॥
रुहगी फिरगी हलबी समानी,
ठटी ठट्ट बल्लोच ढाल निसानी ॥७५॥
मजारी-चखी मुक्ख जम्बक्क लारी,
हजारी हजारी इके जोध भारी ॥७६॥
तिन पष्षर पीठ हय जीन साल,
फिरगी कती पास सुकलात लाल ॥७७॥
तहा बाघ बाध मरूरी रिछोरी,
घन सार सम्मूह अरु चौर झोरी ॥७८॥
एराकी अरब्बी पटी तेज ताजी,
तुरक्की महाबान कम्मान बाजी ॥७९॥
ऐसे असिव असवार अग्गेल गोल,
भिरे जून जेते सुतत्ते अमोल ॥८०॥
तिन मद्धि सुलतान साहाब आप,
इसे रूप सो फौज बरनाय जाप ॥८१॥
तिन घेग्यि राज प्रथिराज राज,
चिहो ओर घनघोर नीसान बाज ॥८२॥

### कबित्त

बज्जिय घोर निसान रान चहुआन चिहो दिस।
सकल सूर सामन्त समरि बल जन्त्र मन्त्र तस।
उट्ठि राज प्रथिराज बाग लग मनो वीर नट।
कढत तेग मनो वेग लगत मनो बीज झट्ट घट।
थकि रहे सूर कौतिग गगन रगन मगन भइ श्रोन घर।
हर हनषि वीर जग्गे हुलस हुरव रङ्गि नव रत्त वर ॥८३॥

दूहा

हुरव रङ्ग नव रत्त वर, भयो युद्ध अति चित्त ।
निस वासुर समुझि न परत, न को हार नह चित्त ॥८४॥

कबित्त

न को हार नह जित्त रहेइ न रहहि सूर वर ।
धर उप्पर भर परत करत अति जुद्ध महाभर ।
कहौ कमध कहौ मथ्थ कहौ कर चरन अन्त दुरि ।
कहौ कध वहि तेग कहौ सिर जुट्टि फुट्टि उर ।
कहौ दन्त मन्त हय खुर षुपरि कुम्भ असडह रुड सब ।
हिन्दवान रान भय भानमुख गहिय तेग चहुआन जब ॥८५॥

भुजगप्रयात

गही तेग चहवान हिदवान रान,
गज जूथ परि कोप केहरि समान ॥ ८६ ॥
करे रुण्ड मुण्ड करी कुम्भ फारे,
बर सूर सामन्त हुकि गर्ज भारे ॥ ८७ ॥
करी चीह चिक्कार करि कलप भग्गे,
मद तज्जियं लाज ऊमङ्ग मग्गे ॥ ८८ ॥
दौरे गज अन्ध चहुआन केरो,
करीय गिरद्द चिहौ चक्क फेरो ॥ ८९ ॥
गिरद्द उडी भान अन्धार रैन,
गई सूधि सुज्झै नही मज्झि नैन ॥ ९० ॥
सिर नाय कम्मान प्रथिराज राज,
पकरिये साहि जिमि कुलिङ्ग बाज ॥ ९१ ॥
लै चल्यौ सिताबी करी फारि फौज,
परे मीर से पञ्च तह खेत चौज ॥ ९२ ॥
रज पुत्त पच्चास जुज्झे अमोर,
वजै जीत के नद्द नसीन घोर ॥ ९३ ॥

दूहा

जीति भई प्रथिराज की, पकरि साह लै सङ्ग ।
दिल्ली दिसि मारिग लगो, उतरि घाट गिर गङ्ग ॥ ९४ ॥
वर गोरी पद्मावती, गहि गोरी सुरतान ।
निकट नगर दिल्ली गये, चत्रभुजा चहुआन ॥ ९५ ॥

कबित्त

बोलि विप्र सोधे लगन्न सुभ घरो परिट्ठय ।
हर बासह मडप बनाय करि भावरि गठिय ॥
ब्रह्म वेद उच्चरहिं होम चौरी जु प्रत्ति वर ।
पद्मावति दुलहिन दुल्लह प्रथिराज राज नर ॥
डण्ड्यो साह सहाबदी अट्ठ सहस हय वर सुवर ।
दै दान मान षट भेस को चढे राज द्रुग्गा हुजर ॥ ९६ ॥

दूहा

चढे राज द्रुग्गह नृपति, सुमत राज प्रथिराज ।
अति अनन्द आनन्द से, हिन्दवान सिरताज ॥ ९७ ॥

## महोबा-खंड

आल्हा और पृथ्वीराज के युद्ध मे पृथ्वीराज के मूर्छित होने पर गिद्धनी का उसकी आख निकालने लगना और युद्ध भूमि मे घायल गिरे हुए सञ्जमराय का उसे अपना मास देकर राजा को बचाना ।

कबित्त

लोह लागि चहुवान परे मुरछा ह्वै धरतिय ।
उड गीधनि बैठि कै चुञ्च बाहैति विरत्तिय ।
देख्यो सञ्जमराय नृपति दृग दाढति पछिन ।
अपने तन को मास काटि भखु दियो ततच्छिन ॥
अपनै सुनयन देख्यो नृपति अन्त समै ध्रम पल्लियब ।
आये विवान बैकुण्ठ के देह सहत धरि चल्लियब ॥

दूहा

गीधनि कौं पल भखु दियो, नृप कै नैन बचाय।
देह हँसत बैकुण्ठ को, पहुच्यो सञ्जमराय॥

## चंद के अन्य दोहे

सरस काव्य रचना रची, खलजन सुनिन हसन्त।
जैसे सिधुर देखि मग, स्वान सुभाव भुसन्त॥ १॥
तौ पुनि सुजन निमित्त गुन, रचिये तन मन फूल।
जू का भय जिय जानि कं, क्यो डारिये दुकूल॥ २॥
पूरन सकल बिलास रस, सरस पुत्र फलदान।
अन्त होइ सहगामिनी, नेह नारि को मान॥ ३॥
जसहीनो नागो गिनहु, ढक्यो जग जसवान।
लपट हारै लोह छन, त्रिय जीतै बिन बान॥ ४॥
समदरसी ते निकट है, भुगति मुगति भरपूर।
विषम दरस वा नरन ते, सदा सरबदा दूरि॥ ५॥
पर योषित परसै नही, ते जीते जग बीच।
परतिय तक्कत रैन दिन, ते हारे जग नीच॥ ६॥

## विद्यापति ठाकुर

महोपाध्याय विद्यापति ठाकुर मैथिल ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम गणपति ठाकुर, पितामह का जयदत्त ठाकुर और प्रपितामह का धीरेश्वर ठाकुर था। इनका जन्म मिथिला देश के विसपी ग्राम मे हुआ था।

विद्यापति का जन्म किस सवत् मे हुआ, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा सकलित विद्यापति की पदावली में राजा शिवसिह के सिहासनारोहण विषयक एक कविता है। उसके ऊपर के दो पद हम यहा प्रस्तुत करते है —

३ ९ २ ४ २ ३ १
"अनल रन्ध्र कर लक्खन नरवय सक समुद्द कर आगनि ससी।
चैत कारि छठि जेठा मिलिओ बार बेहप्पय जाउ लसी॥"

इससे केवल इतना पता चलता है कि लक्ष्मणसेन (लक्खन) द्वारा प्रचारित सन् २९३ (शकाब्द १३२४, विक्रम सवत् १४५९) मे राजा शिवसिंह गद्दी पर बैठे। विद्यापति राजा शिवसिंह के दरबार मे थे। दरबार मे इनकी बडी प्रतिष्ठा थी। राजा ने इनको विसपी ग्राम दान दे दिया था। उसका दानपत्र अभी तक इनके वशजो के पास है। उस पर सन् २९३ लिखा है। इससे अनुमान होता है कि राजा ने गद्दी पर बैठने की खुशी मे विसपी ग्राम विद्यापति को दे दिया था। राज दरबार मे अपनी विद्वत्ता के बल पर इतना सम्मान प्राप्त करने के समय किसी मनुष्य की आयु कम से कम कितनी होनी चाहिए, इसकी कल्पना करके सन् २९३ के उतना समय पहले विद्यापति का जन्म-काल अनुमान कर लेना चाहिए।

विद्यापति की पदावली मे बहुत से पद्य ऐसे है जिनमे राजा शिवसिंह और उनकी रानी लखिमा देवी का नाम आया है। शृगार-रस का जहा कोई मधुर वर्णन आया है, वहा विद्यापति ने लिखा है कि इस रसको राजा शिवसिंह और लाखिमा देवी ही जानती है। रानी लाखिमा देवी के विषय मे ऐसा कहने की स्वतन्त्रता जब कवि को प्राप्त थी, तब इससे प्रकट होता है कि विद्यापति को राजा शिवसिंह बहुत मानते थे।

विद्यापति प्रतिभाशाली कवि और सस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। इन्होने सस्कृत भाषा मे पाच उत्तम ग्रन्थ बनाये जिनका मिथिला मे बड़ा आदर है। मैथिल-भाषा मे इनके बनाये बहुत से पद है, जो मिथिला मे काम काज के अवसर पर गृहस्थो के यहा गाये जाते है, और इनके कुछ पदों का बगदेश मे भी विशेष आदर है। इसी से कुछ बङ्गाली महाशय इनको भी बङ्गाली-कवि कहते है, परन्तु ये बङ्गाली नही थे।

इनकी कविता मे शृङ्गार-रस प्रधान है। सयोग-वियोग के छोटे-

छोटे भावो को भी दिखाने मे इन्होने बडी पटुता दिखलाई है । हमने इनकी कविता मे से कुछ अच्छे-अच्छे पद चुनकर आगे सग्रह कर दिये है, उसके पढने से पाठको को सहज ही मे यह पता चल जायगा कि इन्होने भावो के झलकाने मे कितनी सूक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है। इनकी कविता को चैतन्य महाप्रभु बहुत पसद करते थे । वास्तव मे इनका कविता बडी ही श्रुतिमधुर और भाव-विभूषिता है ।

इनकी कविता की भाषा हिन्दी है । केवल थोडे-से ऐसे शब्द है जो मिथिला मे बोले जाते है । अपनी कविता मे स्थान-स्थान पर इन्होने ठेठ हिन्दी शब्दो का अच्छा प्रयोग किया ।

इनकी कविता के कुछ चुने हुए पद यहा हम उद्धृत करते है । बहुत-से पद चमत्कारपूर्ण होने पर भी हमने छोड दिये, क्योकि उनके भावो मे अश्लीलता अधिक थी ।

नन्दक नन्दन कदम्बेरि तरु तरे धिरे धिरे मुरलि बजाव ।
समय सकेत निकेतन बइसल बेरि बेरि बोलि पठाव ॥

सामरी तोरा लागि अनुखने विकल मुरारि ।
जमुना का तिर उपवन उदवेगल फिरि फिरि ततहि निहार ।
गोरस बिके अबइते जाइते जॅनि जनि पुछ बनमारि ॥
तो हे मतिमान सुमति मधुसूदन बचन सुनह किछु मोरा ।
भनइ विद्यापति सुन बर जौवति बन्दह नन्दकिशोरा ॥ १ ॥

कि कहब हे सखि आजुक बात, मानिक पडल कुबनिक हात ।
काच काचन न जानय मूल, गुञ्जा रतन करइ समतूल ।
जे किछु कभु नहि कला रस जान, नीर खीर दुहु करे समान ।
तन्हि सो कहाँ पिरित रसाल, बानर कण्ठे कि मोतिय माल ।
भनइ विद्यापति इह रस जान, बानर मुह कि शोभय पान ॥ २ ॥

सजनी अपद न मोहि परबोध ।
तोडि जोड़िअ जाहा गेठे पए पड़ ताहा तेज तम परम विरोध ॥

सलिल सनेह सहज थिक सीतल ई जानइ सवे कोइ।
से जदि तपत कए जतने जुडाइ तइअओ विरत रस होइ॥
गेल सहज हे कि रिति उपजाइअ कुल ससि नीली रग।
अनुभवि पुनि अनुभवए अचेतन पडए हुतास पतग॥ ३॥

कालि कहल पिआ ए साझहि रे जायव मोये मारू देश।
मोये अभागिली नहि जानल रे सग जइतओ योगिनी वेश॥
हृदय वड दारुन रे पिया विनु विहरि न जाइ।
एक शयन सखि सूतल रे अछल बालभु निस भोर।
न जानल कति खन तेजिगेल रे विछुरल चकवा जोर॥
सून सेज हिय सालइ रे पियाए विनु घर मोये आजि।
विनति करहु सुसहेलिनि रे मोहि देह अगिहर साजि॥
विद्यापति कवि गाओल रे आवि मिलत पिय तोर।
लखिमा देइ वर नागर रे राय शिवसिंह नहि भोर॥ ४॥

हमर नागर रहल दूर देश, केऊ, नहि कहि सक कुशल सदेश।
ए सखि काहि करब अपतोस, हमर अभागि पिया नहि दोस।
पिया विसरल सखि पुरुब पिरीति, जखन कपाल वाम सब विपरीति।
मरम क वेदन मरमहि जान, आन क दुख आन नहि जान।
भनइ विद्यापति न पुरइ काम, कि करति नागरि जाहि विधि वाम॥५॥

लोचन धाए फेधायेल हरि नहि आयल रे।
शिव शिव जिवओ न जाए आसे अरुझाएल रे॥

मन करि तहँ उडि जाइअ जहां हरि पाइअ रे।
पेम परसमनि जानि आनि उर लाइअ रे॥
सपनहु संगम पाओल रग बढाओल रे।
से मोर विहि विघटाओल निन्दओ हेरायल रे॥
भनइ विद्यापति गाओल धनि धइरज कर रे।
अचिरे मिलत तोहि बालम्भु पुरत मनोरथ रे॥६॥

सरसिज बिनु सर सर बिनु सरसिज
की सरसिज बिनु सूरे ।
जौवन बिनु तन तनु बिनु जौवन
की जौवन पिय दूरे ॥
सखि हे मोर बड दैव विरोधी ॥ ७ ॥

माधव कत तोर करब बडाइ ।
उपमा तोहर हम ककरा कहब कहितहु अधिक लजाइ ॥
जो श्रीखण्ड सौरभ अति दुर्लभ तौ पुनि काठ कठोर ।
जौं जगदीश निशाकर तौ पुन इकहि पक्ष इजोर ॥
मनि समान अओरो नहि दूसर तिन कहु पाथर नामे ।
कनक कदलि छोट लज्जित भै रहु की कहु ठामहि ठामे ॥
तोहर सरिस एक तोह माधव मन होइछ अनुमाने ।
सज्जन जन सौं नेह कठिन थिक कवि विद्यापति भाने ॥ ८ ॥

सखि कि पुछसि अनुभव मोय ।
सेही पिरित अनुराग बखानइत तिले तिले नूतुन होइ ॥
जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल ।
सेहो मधुर बोल स्रवनहि सुनल स्रुति पथे परस न गेल ॥
कत मधु जामिनअ रभसे गमाओल न बुझल कैसन केल ।
लाख लाखजुग हिअ हिअ राखल तइओ हिआ जुडन न गेल ॥
कत विदग्ध जन रस अनुगमन अनुभव काहु न पेख ।
विद्यापति कह प्राण जुडाइत लाखवे न मिलल एक ॥ ९ ॥

ब्रह्म कमण्डल वास सुवासिनी सागर नागर गृह वाले,
पातक महिष विदारण कारण धृत करवाल वीचि माले,
जय गंगे, जय गंगे, शरणागत भय भगे ॥१०॥

पिय मोर बालक हम तरुणी,
कोन तप चुकलौह भैलौह जननी ।
पहिर लेल सखि इक दछिनक चीर,
पिया के देखत मोर दगध सरीर ॥

पिया लेलि गोद कै चललि बजार,
हटिया के लोग पुछे के लागु तोहार।
नहिं मोर देवर कि नहिं छोट भाइ,
पुरब लिखल छल स्वामी हमार ॥११॥

सखी मोर पिया,
अबहुँ न आओल कुलिश हिया।
नखर खोआयलु दिवस लिखि लिख,
नयन अन्धयालु पिया पथ पेखि।
आयब हेत कहि मोर पिया गैला,
पूरबक तेज गुन बिसरिल भेला।
भनहि विद्यापति शुन अवराइ,
कानु समझाइते अब चलि जाइ ॥१२॥

मधुपुर मोहन गेल रे मोरा विहरति छाति।
गोपी सकल बिसरलनि रे जत छिल अहिवाति ॥
सुतिल छलहु अपन गृह रे निन्दई गेलउ सपनाइ।
कर सौ छुटल परसमनि रे कोन गेल अपनाइ ॥
कत कहबो कत सुमिरब रे हम भरिय गराणी।
आनक धन सो धनवन्ति रे कुबजा भेल राणी ॥
गोकुल चान चकोरल रे चोरी गेल चन्दा।
विछुडि चलति दुहु जोडी रे जीव इह गेल धन्दा ॥
काक भाष निज भाखह रे पहु आओत मोरा।
क्षीर खाड़ भोजन देव रे भरि कनक कटोरा ॥
भनहिं विद्यापति गाओल रे धैरज धर नारी।
गोकुल होयत सुहाओन फेरि मिलत मुरारी ॥१३॥

अगने आओव जव रसिया, पलटि चलब हम ईषत हसिया।
रस नागरि रमनी, कत, कत जुगुति मनहि अनुमानी।
आवेशे आँचरे पिया, धरबे, जाओब हम जतन बहु करबे।

कचुया धरब जब हठिया , करे कर बाधब कुटिल आध दिठिया ।
रभस मागब पिय जबही , मुख मोडि विहसि बोलब नहि नहि ।
सहजहि सुपुरुख भमरा , मुख कमल मधु पीयब हमरा ।
नैखने हरब मोर गेयाने , विद्यापति कह धनि तुय धेयाने ॥१४॥

सरस वसत समय भल पाओलि दछिन पवन बहु धीरे ।
सपनहु रूप वचन यक भापिय मुख से दुरि करु चीरे ॥
तोहर वदन सम चाद होअथि नहि जैयौ जतन बिह देला ।
कै बेरि काटि बनावल नव कय तैयौ तुलित नहि भेला ॥
लोचन तूअ कमल नहि भैसक से जग के नहि जाने ।
से फिर जाय लुकैनह जल भय पकज निज अपमाने ॥
भनहि विद्यापति सुन वर जौवित ईसभ लछमि समाने ।
राजा शिवसिह रूपनरायन लखिमा देइ प्रति भाने ॥१५॥
जइत देखलि पथ नागरि सजनी आगरि सुबुधि सयानि ।
कनकलता सम सुन्दरि सजनी विह निरमावल आनि ॥
हस्ति गमनि जगा चलइत सजनी देखइत राजकुमारि ।
जिनका यह न सुहागिन सजनी पाय पदारथ चारि ॥
नील वसन तन घेरलि सजनी सिरे लेल चिकुर सभारि ।
तापर भमर पिवय रस सजनी बैसल पख पसारि ॥
केहरि सम कटि गुन अछि सजनी लोचन अवुज धारि ।
विद्यापति यह गाओल सजनी गुन पाओलि अवधारि ॥१६॥

## कबीर साहब

सयुक्त-प्रान्त मे शायद ही कोई ऐसा हिन्दू हो जो कबीर साहब को न जानता होगा । कबीर साहब के भजन मदिरो मे और सत्सग के अवसरो पर गाये जाते है । उनकी साखिया प्राय कहावतो का काम दिया करती है ।

कबीर साहब एक पथ के प्रवर्तक थे, जिसे कबीर-पथ कहते है ।

कबीर-पंथियों मे निम्नश्रेणी के लोग अधिकाश पाए जाते है। उनमें से कुछ तो साधू है जो गावो मे कुटी बनाकर रहते है, और कुछ गृहस्थ है। कबीर-पथी साधू सिर पर नोकदार पीले रग की टोपी पहनते है।

कबीर साहब कौन थे ? कहा और किस समय मे वे उत्पन्न हुए ? उनका असली नाम क्या था ? बचपन मे वह कौन धर्मावलबी थे? उनका विवाह हुआ था या नही ? और वह कितने समय तक जीवित रहे ? इन बातो मे बड़ा मतभेद है। कबीर साहब की जीवनी लिखनेवाले भिन्न-भिन्न बातें बतलाते है। उनमे सत्य का अश कितना है, इसका पता लगाना सहज नही है। "कबीर-कसौटी" में कबीर साहब का जन्म सवत् १४५५ वि० मे और मरण १५७५ वि० में होना लिखा है। कबीर-पथी लोग उनकी उम्र तीन सौ वर्ष की बतलाते है। उनके कथनानुसार कबीर साहब का जन्म १२०५ वि० मे और मरण १५०५ वि० मे हुआ है। इनमे से किसकी बात सत्य है ? इसका निर्णय करना बड़ी खोज का काम है। कबीर-पथ के विद्वानो की राय मे कबीर साहब का जन्म सवत् १४५५ ही सत्य कहा जाता है।

कबीर साहब ने अपने को जुलाहा लिखा है। एक जगह वह कहते है—

तू बाह्मन मैं काशी का जुलहा बूझहु मोर गियाना।

(आदि ग्रथ)

इससे अब इस बात मे तो कुछ सदेह रह ही नही जाता कि कबीर साहब जुलाहे थे। परन्तु वह जन्म के जुलाहे नही थे, यह कहावतो से मालूम होता है।

कहा जाता है कि सम्वत् १४५५ की ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा को एक ब्राह्मण की विधवा कन्या के पेट से एक पुत्र पैदा हुआ। लोक-लज्जावश उसने बालक को लहर तालाब (काशी) के किनारे फेक दिया। सयोग से नीरू जुलाहा अपनी स्त्री नीमा के साथ उसी राह से आरहा था। उसने उस अनाथ बच्चे को घर लाकर पाला। पीछे वही कबीर नाम से विख्यात हुआ।

कबीर साहब बालकपन ही से बड़े धर्मपरायण थे। जब उनको सुध-

बुध होगई तब वह तिलक लगाकर राम राम जपा करते थे। एक जुलाहे के घर में रहकर तिलक लगाना और राम राम जपना असभव-सा प्रतीत होता है। परन्तु सगति का प्रभाव बड़ा विचित्र होता है, वह असभव को सभव कर देता है।

ऐसी कहावत है कि कबीर साहब स्वामी रामानद के शिष्य थे। स्वामी रामानद शेष रात्रि मे गगा-स्नान के लिए मणिकर्णिका घाट पर नित्य जाया करते थे। एक दिन इसी समय कबीर साहब घाट की सीढियो पर जाकर सो रहे। अधेरे मे स्वामीजी का पैर उनके ऊपर पड गया। तब वे कुलबुलाये। स्वामीजी ने कहा—"राम राम कह, राम राम कह" कबीर साहब ने उसी को गुरुमत्र मान लिया। उसी दिन से उन्होने काशी मे अपने को स्वामी रामानद का शिष्य प्रसिद्ध किया। यवन के घर मे पले होने पर भी कबीर साहब की प्रवृत्ति हिन्दू-धर्म की तरफ अधिक थी।

कबीर साहब अपने जीवन का निर्वाह अपना पैतृक व्यवसाय करके ही करते थे। यह बात वह स्वय स्वीकार करते है—

"हम घर सूत तर्नाहि नित ताना"।

कबीर साहब ने विवाह किया था या नही, इस विषय मे भी बड़ा मतभेद है। कबीर-पथ के विद्वान् कहते है कि लोई नाम की स्त्री उनके साथ आजन्म रही, परन्तु उन्होने उससे विवाह नही किया। इसी प्रकार कमाल उनका पुत्र और कमाली उनकी पुत्री थी, इस विषय मे भी विचित्र बाते सुनी जाती है—"डूबे बस कबीर के उपजे पूत कमाल" यह भी एक कहावत-सा प्रसिद्ध होरहा है। इससे पता चलता है कि कबीर ने विवाह अवश्य किया था और कमाल कबीर का पुत्र था। कमाल भी कविता करते थे, परन्तु उन्होने कबीर साहब के सिद्धान्तो के खडन करने ही मे अपनी सारी उम्र बितादी। इसीसे "डूबे बस कबीर के उपजे पूत कमाल" कहा गया है।

कबीर साहब बड़े ही सुशील और बड़े सदाचारी थे। एक दिन की

बात है कि उनके यहा बीस-पच्चीस भूखे फकीर आए। कबीर साहब के पास उस दिन कुछ खाने को नही था। इसलिए वे बहुत घबराये। लोई ने कहा—यदि आज्ञा हो तो मै एक साहूकार के बेटे से कुछ रुपया लाऊ, वह मुझ पर मोहित है, मै पहुची नही कि उसने रुपये दिये नही। कबीर साहब ने कहा—जाओ, ले आओ। लोई साहूकार के बेटे के पास गई और उसने उससे अपना अभिप्राय कह सुनाया। साहूकार के बेटे ने तत्काल धन देदिया। जब अन्त मे उसने अपना मनोरथ प्रकट किया, तब लोई ने रात मे मिलने का वादा किया।

दिन खाने-खिलाने मे बीत गया। रात हुई, चारो ओर अधेरा छा गया। सयोग से उस दिन पानी बरस रहा था। लोई ने कबीर साहब से सब वृतान्त कह दिया था, इससे कबीर साहब को चैन नही था। वह सोचते थे कि जिसकी बात गई, उसका सब गया। उन्होने हवा-पानी की कुछ भी परवा न की और कम्बल ओढकर स्त्री को कधे पर बिठा कर वह साहूकार के घर पहुचे, आप तो बाहर खड़े रहे और लोई भीतर चली गई। न तो उसके कपडे भीगे थे और न उसके पैरो मे ही कीचड लगी थी। यह देखकर साहूकार के लड़के ने इसका कारण पूछा। लोई ने सब सच-सच कह दिया। यह सुनकर साहूकार के बेटे की कुवृत्ति बदल गई। वह लोई के पैर पर गिर पड़ा और कहा—तुम मेरी मा हो। इतना कहकर वह बाहर आया और कबीर साहब के पैर से लिपट गया और उसी दिन से वह उनका सेवक बन गया।

कबीर साहब के जीवन-चरित्र मे ऐसी बहुत-सी कथाए है जिनसे उनकी सच्चरित्रता प्रकट होती है।

कबीर साहब पढे-लिखे न थे। सत्सगी थे। सन्सग ही से उन्होने हिन्दू-धर्म की गूढ-गूढ बाते जानली थी। उनके हृदय मे हिन्दू-मुसलमान किसी के लिए द्वेष न था, वह सत्य के बडे पक्षपाती थे। जहा उन्हे सत्य के विरुद्ध कुछ दिखाई पडा, वहा उन्होने उसका खडन करने मे जरा भी हिचकिचाहट नही दिखाई।

कबीर साहब ने अपना अधिकार हिन्दू-मुसलमानो दोनो पर जमाया। आजकल भी हिन्दू-मुसलमान दोनो प्रकार के कबीर-पथी मिलते है, परन्तु सर्वसाधारण हिन्दू और मुसलमान दोनो का कबीर मत से बैर हो गया। हिन्दू-धर्म के नेता एक अहिन्दू के मुख से हिन्दू-धर्म का प्रचार देखकर भडके और मुसलमान कबीर साहब के हिन्दू-आचार्य का शिष्य होने तथा हिन्दू-धर्म का प्रचार करने के कारण कट्टर विरोधी होगये। इस विरोध के कारण उनको बडी-बडी कठिनाइया भोगनी पडी। परन्तु उनके हृदय मे जो सत्य का दीपक जल रहा था, वह किसी के बुझाए न बुझा।

कबीर साहब ने स्वय कोई पुस्तक नही लिखी। वे साखी और भजन बनाकर कहा करते थे और उनके चेले उसे कठस्थ कर लेते थे, पीछे से वह सब सग्रह कर लिया गया। कबीर-पथ के अधिकाश उत्तम-उत्तम ग्रन्थ उनके शिष्यो के रचे हुए कहे जाते है।

"खास ग्रन्थो" मे निम्न-लिखित पुस्तके है—

१—सुखनिधान, २—गोरखनाथ की गोष्ठी, ३—कबीर पाजी, ४—बलख की रमैनी, ५—आनन्द राम सागर, ६—रामानन्द की गोठी ७—शब्दावली, ८—मगल, ९—बसन्त, १०—होली, ११—रेखता, १४—झूलन, १३—ककहरा, १४—हिन्दोल, १५—बारहमासा, १६—चाचर, १७—चौंतीसी, १८—अलिफनामा, १९—रमैनी, २०—साखी, २१—बीजक।

कबीर-पथियो मे बीजक का बडा आदर है। बीजक दो है—एक तो बडा, जो स्वय कबीर साहब का काशिराज से कहा हुआ बतलाया जाता है, और दूसरे बीजक को कबीर के एक शिष्य भग्गूदास ने सग्रह किया है। दोनो मे बहुत कम अन्तर है।

कबीर साहब का उलटा प्रसिद्ध है। मेरी समझ मे लोगो को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए ही कबीर साहब ऐसा कहा करते थे। यो तो अर्थ लगानेवाले कुछ न कुछ उलटा-सीधा अर्थ लगा ही लेते है;

परन्तु खीच-तानकर लगाये गए ऐसे अर्थो मे कुछ विशेषता नही रहती। नमूने के लिए एक पद यहा दिया जाता है—

ठगिनी क्या नैना झमकावै, कबिरा तेरे हाथ न आवै ॥
कद्दू काटि मृदङ्ग बनाया नीबू काटि मजीरा।
सात तरोई मगल गावै नाचै बालम खीरा ॥
भैंस पदमिनी आसिक चूहा मेढ़क ताल लगावै।
चोला पहिरि गदहिया नाचै ऊट बिसुनपद गावै ॥
आम डार चढि कछुआ तोड़ै गिलहरि चुनि चुनि लावै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, बगुला भोग लगावै ॥

बे सिर-पैर की बाते है। तब भी कबीर-पथी लोग इनका कुछ-न-कुछ अर्थ बैठा ही लेते है।

कबीर साहब मूर्ति-पूजा के कट्टर विरोधी थे। यद्यपि ईश्वर का अवतार धारण करना भी वह नही मानते थे, परन्तु अपने को उन्होने स्वय सत्य-लोक-वासी प्रभु का दूत बतलाया है। वह कहते है—

काशी मे हम प्रकट भये है रामानद चेताये।
समरथ का परवाना लाये हस उबारन आये ॥
(शब्दावली)

लोगों का ऐसा कथन है कि मगहर मे प्राण-त्याग करने से मुक्ति नही मिलती। भला, सत्यान्वेषक कबीर इस बात को कैसे मान सकते थे? उन्होने लोगों का यह भ्रम मिटाने के लिए ही मगहर में जाकर शरीर छोड़ा। इस विषय में उन्होने कहा है—

जो कबीर काशी मरे तो रामहि कौन निहोरा।

* * *

जस काशी तस मगहा ऊसर हृदय राम जो होई।

कबीर साहब की कविता मे बडी शिक्षा भरी है। एक-एक पद से उनकी सत्य-निष्ठा प्रकट होती है। उन्होने जो कहा है, प्राय. सभी एक-से-एक बढकर है। हमने उन्हीमे से कुछ साखी और भजन चुन लिये

है। हमे कबीर साहब की साखी मे बडा आनन्द मिलता है। बातें तो छोटी-सी है, परन्तु उनमे अगाध ज्ञान भरा हुआ है।

हम यहा कबीर साहब की कुछ साखिया और भजन उद्धृत करते है—

## साखी

गुरु गोविन्द दोऊ खडे, काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दिया बताय ॥ १ ॥
यह तन बिष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलै, तौ भी सस्ता जान ॥ २ ॥
बहे बहाये जात थे, लोक बेद के साथ।
पैडा मे सतगुरु मिले, दीपक दीन्हा हाथ ॥ ३ ॥
ऐसा कोई ना मिला, सत्त नाम का मीत।
तन मन सौपे मिरग ज्यो, सुनै बधिक का गीत ॥ ४ ॥
सतगुरु साचा सूरमा, नख सिख मारा पूर।
बाहर घाव न दीखई, भीतर चकनाचूर ॥ ५ ॥
सुख के माथे सिलि परै, (जो) नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल पल नाम रटाय ॥ ६ ॥
लेने को सतनाम है, देने को अन दान।
तरने को आधीनता, बूड़न को अभिमान ॥ ७ ॥
दुख मे सुमिरन सब करै, सुख मे करै न कोय।
जो सुख मे सुमिरन करै, तो दुख काहे होय ॥ ८ ॥
सुमिरन की सुधि यो करै, ज्यो गागर पनिहार।
हालै डोलै सुरति में, कहै कबीर विचार ॥ ९ ॥
माला तो कर मे फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवा तो दहु दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ॥१०॥
गगन मडल के बीच मे, जहा सोहगम डोरि।
सबद अनाहद होत है, सुरत लगी तह मोरि ॥११॥

कबिरा गर्ब न कीजिये, काल गहे कर केस।
ना जानी कित मारि है, क्या घर क्या परदेस ॥१२॥
हाड जरै ज्यो लाकडी, केस जरै ज्यो घास।
सब जग जरिता देखि कर, भये कबीर उदास ॥१३॥
झूठे सुख को सुख कहै, मानत है मन मोद।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख मे कुछ गोद ॥१४॥
पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।
देखत ही छिपि जायगी, ज्यो तारा परभात ॥१५॥
रात गवाई सोय करि, दिवस गवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौडी बदले जाय ॥१६॥
आज कहै कल्ह भजूंगा, काल कहै फिर काल।
आज कालके करत ही, औसर जासी चाल ॥१७॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिडिया चुग गई खेत ॥१८॥
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल मे परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब ॥१९॥
कबिरा नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली, बहुरि न देखौ आय ॥२०॥
पाचो नौबत बाजती, होत छतीसो राग।
सो मन्दिर खाली पडा, बैठन लागे काग ॥२१॥
कहा चुनावै मेडिया, लम्बी भीति उसारि।
घर तो साढे तीन हथ, घना तो पौने चारि ॥२२॥
माटी कहै कुम्हार को, तू क्या रूँदै मोहि।
इक दिन ऐसा होइगा, मै रूँदूगी तोहि ॥२३॥
यह तन काचा कुम्भ है, लिए फिरै था साथ।
टपका लागा फूटिया, कछु नहि आया हाथ ॥२४॥

आये है सो जायगे , राजा रक फकीर ।
एक सिंघासन चढि चले , एक बंधे जजीर ॥२५॥
आसपास जोधा खडे , सभी बजावैं गाल ।
मझ महल से लै चला , ऐसा काल कराल ॥२६॥
या दुनिया मे आय के , छाडि देइ तू ऐंठ ।
लेना होय सो लेइ ले , उठी जात है पैंठ ॥२७॥
कबीर आप ठगाइये , और न ठगिये कोय ।
आप ठगे सुख ऊपजै , और ठगे दुख होय ॥२८॥
ऐसी गति ससार की , ज्यो गाड़र की ठाट ।
एक पडा जेहि गाड मे , सबै जाहिं तेहि बाट ॥२९॥
तू मत जानै बावरे , मेरा है सब कोय ।
पिंड प्रान से बधि रहा , सो अपना नहिं होय ॥३०॥
इक दिन ऐसा होयगा , कोउ काहू का नाहिं ।
घर की नारी को कहै , तन की नारी जाहिं ॥३१॥
नाम भजो तो अब भजो , बहुरि भजोगे कब्ब ।
हरियर हरियर रूखडे , ईधन हो गये सब्ब ॥३२॥
माली आवत देखि कै , कलिया करी पुकार ।
फूली फूली चुनि लिये , कालि हमारी बार ॥३३॥
हम जानै थे खाहिंगे , बहुत जमी बहु माल ।
ज्यो का त्यो ही रहि गया , पकरि लै गया काल ॥३४॥
भक्ति भाव भादो नदी , सबै चली घहराय ।
सरिता सोइ सराहिये , जो जेठ मास ठहराय ॥३५॥
जब लगि भक्ति सकाम है , तब लगि निष्फल सेव ।
कह कबीर वह क्यो मिले , निःकामी निज देव ॥३६॥
लागी लागी क्या करे , लागी बुरी बलाय ।
लागी सोई जानिये , जो वार पार ह्वै जाय ॥३७॥

लागी लगन छुटै नही, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा अगार मे, जाहि चकोर चवाय ॥३८॥
सोऔं तो सुपने मिलै, जागौं तो मन माहि।
लोचन राता सुधि हरी, बिछुरत कबहूं नाहि ॥३९॥
ज्यो तिरिया पीहर बसै, सुरति रहै पिय माहि।
ऐसे जन जग मे रहे, हरि को भूलै नाहि ॥४०॥
कबीर हसना दूर करु, रोने से करु चीत।
बिन रोये क्यो पाइये, प्रेम पियारा मीत ॥४१॥
हंसौ तो दुख ना बीसरै, रोवौं बल घटि जाय।
मनही माहि बिसूरना, ज्यौ घुन काठहि खाय ॥४२॥
हँस हँस केतन पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हांसी खेले पिउ मिलै, (तो) कौन दुहागनि होय ॥४३॥
सुखिया सब संसार है, खावै औ सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै औ रोवै ॥४४॥
मांस गया पिञ्जर रहा, ताकन लागे काग।
साहिब अजहु न आइया, मन्द हमारे भाग ॥४५॥
हवस करै पिय मिलन की, औ सुख चाहै अग।
पीर सहे बिनु पदमिनी, पूत न लेत उछग ॥४६॥
बिरहिनि ओदी लाकड़ी, सपचे औ धुधुआय।
छूटि पड़ौ या बिरह से, जो सिगरो जरि जाय ॥४७॥
पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय।
चित चकमक चहुटै नही, धूवां ह्वै ह्वै जाय ॥४८॥
जो जन बिरही नाम के, तिनकी गति है येह।
देही से उद्यम करै, सुमिरन करै विदेह ॥४९॥
बिरहा बिरहा मत कहो, बिरहा है सुल्तान।
जा घट बिरह न संचरै, सो घट जान मसान ॥५०॥

आगि लगी आकास मे, झरि झरि परै अंगार।
कबिरा जरि कचन भया, काच भया ससार ॥५१॥
कबिरा वैद बुलाइया, पकरि के देखी बाहि।
वैद न वेदन जानई, करक करेजे माहि ॥५२॥
जाहु वैद घर आपने, तेरा किया न होय।
जिन या बेदन निर्मई, भला करैगा सोय ॥५३॥
सीस उतारै भुइ धरै, तापर राखै पाव।
दास कबीरा यो कहै, ऐसा होय तो आव ॥५४॥
प्रेम न बाडी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ॥५५॥
छिनहि चढै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय ॥५६॥
प्रेम प्रेम सब कोई कहै, प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय ॥५७॥
जब मै था तब गुरु नही, अब गुरु है हम नाहि।
प्रेम गली अति साकरी, ता मे दो न समाहि ॥५८॥
जा घट प्रेम न सचरे, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की, सांस लेत बिन प्रान ॥५९॥
प्रेम तो ऐसा कीजियो, जैसे चद चकोर।
घीच टूटि भुइ मा गिरै, चितवै वाही ओर ॥६०॥
जहा प्रेम तहं नेम नहि, तहा न बुधि व्यौहार।
प्रेम मगन जब मन भया, कौन गिने तिथि वार ॥६१॥
प्रेम छिपाया न छिपै, जा घट परगट होय।
जो पै मुख बोलै नही, नैन देत है रोय ॥६२॥
पीया चाहे प्रेम रस, राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड्ग, देखा सुना न कान ॥६३॥

कबिरा प्याला प्रेम का, अन्तर लिया लगाय।
रोम रोम मे रमि रहा, और अमल क्या खाय ॥६४॥
नैनो की करि कोठरी, पुतली पलग बिछाय।
पलको की चिक डारि के, पिय को लिया रिझाय ॥६५॥
जल मे बसै कमोदिनी, चन्दा बसै अकास।
जा है जाको भावता, सो ताही के पास ॥६६॥
प्रीतम को पतिया लिखू, जो कहु होय बिदेस।
तन मे मन मे नैन मे, ताको कहा सदेस ॥६७॥
साई इतना दीजिये, जा मे कुटुम्ब समाय।
मै भी भूखा न रहू, साधु न भूखा जाय ॥६८॥
बिनवत हौ कर जोरि कै, सुनिये कृपा-निधान।
साधु सगति सुख दीजिये, दया गरीबी दान ॥६९॥
क्या मुख लै बिनती करौ, लाज आवत है मोहि।
तुम देखत औगुन करौ, कैसे भावौ तोहि ॥७०॥
अवगुन मेरे बापजी, बकसु गरीबनिवाज।
जो मै पूत कपूत हौ, तऊ पिता को लाज ॥७१॥
साहिब तुमहि दयाल हौ, तुम लगि मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को, सूझै और न ठौर ॥७२॥
सिख तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब कछु देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, सिख से कछु नहि लेय ॥७३॥
सिहो के लेहडे नही, हसो की नहि पात।
लालों की नहि बोरिया, साधु न चलैं जमात ॥७४॥
साधु कहावन कठिन है, ज्यो खाडे की धार।
डगमगाय तो गिरि परे, निःचल उतरै पार ॥७५॥
गाठी दाम न बाधई, नहि नारी से नेह।
कह कबीर ता साधु के, हम चरनन की खेह ॥७६॥

साधु हमारी आतमा, हम साधुन के जीव।
साधुन मद्धे यो रहौं, ज्यो पय मद्धे घीव ॥७७॥
जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पडा रहन दो म्यान ॥७८॥
कबीर सगत साधु की, हरै और की व्याधि।
सगत बुरी असाधु की, आठो पहर उपाधि ॥७९॥
कबीर सगत साधु की, जौ की भूसी खाय।
खीर खाड भोजन मिले, साकट सग न जाय ॥८०॥
कबीर सगत साधु की, ज्यो गधी का बास।
जो कछु गधी दे नही, तौ भी बास सुबास ॥८१॥
कबीर सगत साधु की, निष्फल कभी न होय।
होसी चदन बासना, नीम न कहसी कोय ॥८२॥
सगति भई तो क्या भया, हिरदा भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढे, तऊ न भीजै कोर ॥८३॥
हरियर जानै रूखडा, जौ पानी का नेह।
सूखा काठ न जानही, केतहु बूडा मेह ॥८४॥
मारी मरै कुसग की, ज्यो केले ढिग बेर।
वह हालै वह चीरई, साकट सग निबेर ॥८५॥
केला तबहिं न चेतया, जब ढिग जामी बेरि।
अब के चेते क्या भया, काटो लीन्हा घेरि ॥८६॥
समदृष्टी सतगुरु किया, मेटा भरम बिकार।
जह देखो तह एकही, साहिब का दीदार ॥८७॥
सहज मिलै सो दूध सम, मागा मिलै सो पानि।
कह कबीर वह रक्त सम, जामे ऐचातानि ॥८८॥
साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय ॥८९॥

आटा तजि भूसी गहै, चलना देखु निहार।
कबीर सारहि छाडि कै, करै असार अहार ॥९०॥
उतते कोई न बाहुरा, जाते बूझू धाय।
इतते सबही जात है, भार लदाय लदाय ॥९१॥
उतते सतगुरु आइया, जा की बुधि है धीर।
भवसागर के जीव को, खेइ लगावै तीर ॥९२॥
जो आवै तो जाय नहिं, जाय तो आवै नाहिं।
अकथ कहानी प्रेम की, समझ लेहु मन माहिं ॥९३॥
सूली ऊपर घर करै, विष का करै अहार।
ताको काल कहा करे, जो आठ पहर हुसियार ॥९४॥
नाव न जानौं गाव का, बिन जाने कित जाव।
चलता चलता जुग भया, पाव कोस पर गाव ॥९५॥
सतगुरु दीनदयाल है, दया करी मोहिं आय।
कोटि जनम का पथ था, पल मे पहुचा जाय ॥९६॥
चलन चलन सब कोइ कहै, मोहि अदेशा और।
साहिब से परिचय नही, पहुचैंगे केहि ठौर ॥९७॥
कबीर का घर सिखर पर, जहा सिलहली गैल।
पाव न टिकै पिपीलिका, पडित लादे बैल ॥९८॥
मरिये तो मरि जाइये, छूटि परै जंजार।
ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार ॥९९॥
कस्तूरी कुडल बसै, मृग ढूढै बन माहिं।
ऐसे घट मे पीव है, दुनिया जानै नाहिं ॥१००॥
द्वार धनी के पडि रहै, धका धनी का खाय।
कबहुक धनी निवाजई, जो दर छाडि न जाय ॥१०१॥
जरा मीच व्यापै नही, मुआ न सुनिये कोय।
चलु कबीर वा देस को, जहँ बैद साइया होय ॥१०२॥

साध सती औ सूरमा, ज्ञानी औ गज-दद।
एते निकसि न बहुरैं, जो जुग जाहि अनन्त ॥१०३॥
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की, कटि उजियारा होय ॥१०४॥
जूझैंगे तब कहैंगे, अब कछु कहा न जाय।
भीड पडे मन मसखरा, लडै किधौं भगि जाय ॥१०५॥
अगिन आंच सहना सुगम, सुगम खडग की धार।
नेह निभावन एक रस, महा कठिन व्यौहार ॥१०६॥
सूरा नाम धराइ के, अब का डरपै वीर।
मडि रहना मैदान मे, सन्मुख सहना तीर ॥१०७॥
पतिबरता को सुख घना, जाके पति है एक।
मन मैली बिभिचारनी, ताके खसम अनेक ॥१०८॥
पतिबरता पति को भजे, और न आन सुहाय।
सिंह बचा जो लघना, तौ भी घास न खाय ॥१०९॥
नैनो अन्तर आव तू, नैन झापि तोहिं लेव।
ना मैं देखौं और को, ना तोहि देखन देव ॥११०॥
मैं सेवक समरत्थ का, कबहु न होय अकाज।
पतिबरता नागी रहैं, तो वाही पति की लाज ॥१११॥
सब आये उस एक मे, डार पात फल फूल।
अब कहो पाछे क्या रहा, गहि पकडा जब मूल ॥११२॥
चन्दन गया विदेसड़े, सब कोइ कहै पलास।
ज्यो ज्यो चूल्हे झोंकिया, त्यो त्यो अधिकी बास ॥११३॥
लाली मेरे लाल की, जित देखो तित लाल।
लाली देखन मै गई, मैं भी होगई लाल ॥११४॥
हम बासी वा देश जह, बारह मास बिलास।
प्रेम झिरै बिगसै कवल, तेज पुज परकास ॥११५॥

कबीर जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिं।
अब गुरु दिल मे देखिया, गावन को कछु नाहिं ॥११६॥
ज्ञानी से कहिये कहा, कहत कबीर लजाय।
अंधे आगे नाचते, कला अकारथ जाय ॥११७॥
जो तोको काटा बुवै, ताहि बोव तू फूल।
तोहिं फूल को फूल है, वाको है तिरसूल ॥११८॥
दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की स्वास से, लोह भस्म होजाय ॥११९॥
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहु सीतल होय ॥१२०॥
हस्ती चढिये ज्ञान की, सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप ससार है, भूसन दे झख मारि ॥१२१॥
आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक।
कहि कबीर नहि उलटिये, वही एक की एक ॥१२२॥
कथा कीरतन रात दिन, जाके उद्यम येह।
कह कबीर ता साधु की, हम चरनन की खेह ॥१२३॥
बन्दे तू कर बन्दगी, तौ पावै दीदार।
औसर मानुष जनम का, बहुर न बारम्बार ॥१२४॥
साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहिं बिचार।
हतै पराई आत्मा, जीभ बांधि तरवार ॥१२५॥
मधुर बचन है औषधी, कटुक बचन है तीर।
स्रवन द्वार ह्वै सचरै, सालै सकल सरीर ॥१२६॥
बोलत ही पहिचानिये, साहु चोर को घाट।
अन्तर की करनी सबै, निकसै मुख की बाट ॥१२७॥
जिन ढूढा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठ।
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठ ॥१२८॥

पढना गुनना चातुरी , यह तो बात सहल ।
काम दहन मन बसि करन , गगन चढन मुस्कल ॥१२९॥
भय बिनु भाव न ऊपजै , भय बिनु होय न प्रीति ।
जब हिरदे से भय गया , मिटी सकल रस रीति ॥१३०॥
कथनी मीठी खाड सी , करनी विष की लोय ।
कथनी तज करनी करै , तौ विष से अमृत होय ॥१३१॥
लाया साखि बनाय करि , इत उत अच्छर काट ।
कह कबीर कब लग जिये , जूठी पत्तल चाट ॥१३२॥
पानी मिलै न आपको , औरन बकसत छीर ।
आपन मन निस्चल नही , और बंधावत धीर ॥१३३॥
मारग चलते जो गिरै , ताकौ नाही दोस ।
कह कबीर बैठा रहै , ता सिर करडे कोस ॥१३४॥
रोडा होइ रहु बाट का , तजि आपा अभिमान ।
लोभ मोह तृसना तजै , ताहि मिलै भगवान् ॥१३५॥
रोड़ा भया तो क्या भया , पथी को दुख देह ।
साधू ऐसा चाहिये , ज्यो पैडे की खेह ॥१३६॥
खेह भई तो क्या भया , उडि उडि लागै अग ।
साधू ऐसा चाहिये , जैसे नीर निपग ॥१३७॥
नीर भया तो क्या भया , ताता सीरा जोय ।
साधू ऐसा चाहिये , जो हरि ही जैसा होय ॥१३८॥
हरी भया तो क्या भया , जो करता हरता होय ।
साधू ऐसा चाहिये , जो हरिभज निरमल होय ॥१३९॥
निरमल भया तो क्या भया , निरमल मागे ठौर ।
मल निरमल ते रहित है , ते साधू कोई और ॥१४०॥
साच बराबर तप नही , झूठ बराबर पाप ।
जाके हिरदे साच है , ताके हिरदे आप ॥१४१॥

साचे स्राप न लागई , साचे काल न खाय ।
साचा को साचा मिलै , साचे माहि समाय ॥१४२॥
साचे कोइ न पतीजई , झूठे जग पतियाय ।
गली गली गोरस फिरै , मदिरा बैठि बिकाय ॥१४३॥
साचे को साचा मिलै , आधिक बढे सनेह ।
झूठे को साचा मिलै , तडदे टूटै नेह ॥१४४॥
जहा दया तह धर्म है , जहा लोभ तह पाप ।
जहा क्रोध तह काल है , जहा छिमा तह आप ॥१४५॥
बुरा जो देखन मै चला , बुरा न मिलिया कोय ।
जो दिल खोजो आपना , मुझसा बुरा न कोय ॥१४६॥
दाया दिल मे राखिये , तू क्यो निरदइ होय ।
साई के सब जीव है , कीड़ी कुजर सोय ॥१४७॥
काटि करम लागे रहे , एक क्रोध का लार ।
किया कराया सब गया , जब आया हकार ॥१४८॥
दसो दिसा से क्रोध की , उठी अपरबल आगि ।
सीतल सगति साधु की , तहा उबरिये भागि ॥१४९॥
बडा हुआ तो क्या हुआ , जैसे पेड खजूर ।
पथी को छाया नही , फल लागै अति दूर ॥१५०॥
जह आपा तह आपदा , जह ससय तह सोग ।
कह कबीर कैसे मिटै , चारो दीरघ रोग ॥१५१॥
कबीर जोगी जगत गुरु , तजै जगत की आस ।
जो जग की आसा करै , तो जगत गुरू वह दास ॥१५२॥
तन तुरग असवार मन , कर्म पियादा साथ ।
त्रिस्ना चली सिकार को , विषे बाज लिये हाथ ॥१५३॥
चलौ चलौ सब कोई कहै , पहुचै बिरला कोय ।
एक कनक अरु कामिनी , दुरगम घाटी दोय ॥१५४॥

पर नारी पैनी छुरी, मत कोइ लावो अग ।
रावन के दस सिर गये, परनारी के सग ॥१५५॥
सब सोने की सुन्दरी, आवै बास सुबास ।
जो जननी ह्वै आपनी, तऊ न बैठे पास ॥१५६॥
छोटी मोटी कामिनी, सब ही विष की बेल ।
बैरी मारै दाव दै, यह मारै हसि खेल ॥१५७॥
जागत मे सोवन करै, सोवन मे लौ लाय ।
सुरति डोर लागी रहै, तार टूटि नहिं जाय ॥१५८॥
निन्दक नियरे राखिये, आगन कुटी छवाय ।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ॥१५९॥
तिनका कबहु न निंदिये, जो पायन तर होय ।
कबहू उडि आखिन परै, पीर घनेरी होय ॥१६०॥
दोष पराये देखि करि, चले हसन्त हसन्त ।
अपने याद न आवई, जिनका आदि न अन्त ॥१६१॥
माखी गुड मे गड़ि रही, पख रह्यो लपटाय ।
हाथ मलै औ सिर धुने, लालच बुरी बलाय ॥१६२॥
औगुन कहौ शराब का, ज्ञानवत सुनि लेय ।
मानुष से पसुआ करै, द्रव्य गाठि को देय ॥१६३॥
रूखा सूखा खाइ कै, ठडा पानी पीव ।
देखि बिरानी चूपडी, मत ललचावै जीव ॥१६४॥
कबीर साई मुज्झ को, रूखी रोटी देय ।
चुपडी मागत मै डरू, रूखी छीन न लेय ॥१६५॥
सत्त नाम को छाडि कै, करै और को जाप ।
बेस्या केरे पूत ज्यो, कहै कौन को बाप ॥१६६॥
एकै साधै सब सधै, सब साधै सब जाय ।
जा गहि सेवै मूल को, फूलै फलै अघाय ॥१६७॥

पाहन पूजे हरि मिलें, तो मैं पुजौं पहार।
तातें ये चाकी भली, पीस खाय ससार ॥१६८॥
कांकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई चुनाय।
ता चढि मुल्ला बाग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय ॥१६९॥
पोथी पढि पढि जग मुआ, पडित हुआ न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढे सो पडित होय ॥१७०॥
सपने मे साईं मिले, सोवत लिया जगाय।
आखि न खोलू डरपता, मति सुपना ह्वै जाय ॥१७१॥
साझ पडे दिन बीतवै, चकवी दीन्ही रोय।
चल चकवा वा देस को, जहा रैन ना होय ॥१७२॥
चात्रिक सुतहि पढावही, आन 'नीर मति लेय।
मम कुल यही स्वभाव है, स्वाति बूद चित देय ॥१७३॥
जूआ चोरी मुखबिरी, व्याज घूस पर नार।
जो चाहे दीदार को, एती वस्तु निवार ॥१७४॥
धरती करते एक पग, समुदर करते फाल।
हाथून परबत तौलते, तिनहू खाया काल ॥१७५॥
तत्व तिलक माथे दिया, सुरति सरवनी कान।
करनी कठी कठ में, परसा पद निर्वान ॥१७६॥
गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहरि गभीर।
चहुदिस दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर ॥१७७॥
सुन्न मँडल मे घर किया, बाजै सबद रसाल।
रोम रोम दीपक भया, प्रकटे दीनदयाल ॥१७८॥
सौ जोजन साजन बसै, मानो हृदय मझार।
कपट सनेही आगने, जानु समुदर पार ॥१७९॥
हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत है, हरिजन हरि ही देत ॥१८०॥

कबिरा माला मनहिं की, और ससारी भेख।
माला फेरे हरि मिलै, गले रहट के देख ॥१८१॥
साधू गाठि न बाधई, उदर समाना लेप।
आगे पाछे हरि खडे, जब मागै तब देय ॥१८२॥
बात बनाई जग ठगा, मन परबोधा नाहिं।
कह कबीर मन लै गया, लख चौरासी माहि ॥१८३॥
कबिरा माला काठ की, बहुत जतन का फेर।
माला साँस उसास की, जामे गाठ न मेर ॥१८४॥
सती न पीसै पीसना, जो पीसै सो राड।
साधू भीख न मागई, जो मागै सो भाड ॥१८५॥
आब गई आदर गया, नैनन गया सनेह।
ये तीनो तब ही गये, जबहिं कहा कछु देह ॥१८६॥
कबिरा नवै सो आपको, पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तोलिये, नवै सो भारी होय ॥१८७॥
तरवर तासु बिलम्बिये, बारह मास फलन्त।
सीतल छाया सघन फल, पछी केल करन्त ॥१८८॥
कबिरा हम गुर रस पिया, बाकी रही न छाक।
पाका कलस कुम्हार का, बहुरि न चढसी चाक ॥१८९॥
सब रग तात, रबाब तन, बिरह बजावे नित्त।
और न कोई सुनि सकै, कै साई कै चित्त ॥१९०॥
गुरु कुम्हार सिष कुम्भ है, गढ गढ काढै खोट।
अन्तर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट ॥१९१॥
केसन कहा बिगारिया, जो मूडो सौ बार।
मन को क्यो नही मूडिये, जामें विषय विकार ॥१९२॥
कबिरा रसरी पाव मे, कह सोवै सुख चैन।
स्वास नगारा कूच का, बाजत है दिन रैन ॥१९३॥

## शब्दावली

( १ )

मन फूला फूला फिरै जक्त में कैसा नाता रे ।। टेक ।।
माता कहै यह पुत्र हमारा बहिन कहै बिर मेरा ।
भाई कहै यह भुजा हमारी नारि कहै नर मेरा ।।
पेट पकरि माता रोवै बाह पकरि कै भाई ।
लपटि झपटि कै तिरिया रोवै हस अकेला जाई ।।
जब लगि माता जीवै रोवै बहिन रोवै दस मासा ।
तेरह दिन तक तिरिया रोवै फेर करै घर बासा ।।
चार गजी चरगजी मगाया चढा काठ की घोडी ।
चारो कोने आग लगाया फूक दियो जस होरी ।।
हाड़ जरै जस लाह कड़ी को केस जरै जस घासा ।
सोना ऐसी काया जरि गई कोई न आयो पासा ।।
घर की तिरिया देखन लागी ढूढि फिरी चहु देसा ।
कहै कबीर सुनो भई साधो छोड़ो जग की आसा ।।

( २ )

काया बौरी, चलत प्रान काहे रोई ।। टेक ।।
काया पाय बहुत सुख कीन्हो नित उठि मलि मलि धोई ।
सो तन छिआ छार ह्वै जैहै नाम न लैहै कोई ।।
कहत प्रान सुनु काया बौरी मोर तोर सग न होई ।
तोहिं अस मित्र बहुत हम त्यागा सङ्ग न लीन्हा कोई ।।
ऊसर खेत कै कुसा मगावै चाचर चवर कै पानी ।
जीवत ब्रह्म को कोई न पूजै मुरदा कै मिहमानी ।।
सब सनकादिक आदि ब्रह्मादिक सेस सहस मुख होई ।
जो जो जन्म लियो बसुधा में थिर न रह्यो है कोई ।।
पाप पुन्य है जन्म सघाती समुझि देखि नर लोई ।
कहत कबीरा अन्तर की गति जानत बिरला कोई ।।

( ३ )

आई गवनवाँ की सारी, उमिरि अबही मोरी बारी ॥टेक॥
साज समाज पिया लै आये और कहरिया चारी।
बम्हना बेदरदी अचिरा पकरि कै जोरत गठिया हमारी ॥
सखी सब गावत गारी ॥
विधि गति बाम कछु समझ परत ना बैरी भई महतारी।
रोय रोय अँखिया मोर पोछत घरवा से देत निकारी ॥
भई सबको हम भारी ॥
गवन कराय पिया लै चाले इत उत बाट निहारी।
छूटत गाव नगर से नाता छूटै महल अटारी ॥
करम गति टरै न टारी ॥
नदिया किनारे बलम मोर रसिया दीन्ह घूघट पट टारी।
थरथराय तन कापन लागे काहू न देख हमारी ॥
पिया लै आये गोहारी ॥
कहँ कबीर सुनो भई साधो यह पद लेहु बिचारी।
अब के गौना बहुरि नहिं औना करिले भेट अकवारी ॥
एक बेर मिलि ले प्यारी।

( ४ )

हमन है इस्क मस्ताना हमन को होसियारी क्या ?
रहे आजाद या जग मे हमन दुनिया से यारी क्या ?
जो विछुडे है पियारे से भटकते दर बदर फिरते।
हमारा यार है हम मे हमन को इन्तिजारी क्या ?
खलक सब नाम अपने को बहुत कर सिर पटकता है।
हमन गुरु नाम साचा है हमन दुनिया से यारी क्या ?
न पल विछुडे पिया हम से न हम विछुडे पियारे से।
उन्ही से नेह लागी है हमन को वेकरारी क्या ?

कबीरा इस्क का माता दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाजुक है हमन सिर बोझ भारी क्या ?

५

भज ले सिरजनहार, सुघर तनके पायके ।।टेक ।।
काहे रहो अचेत कहा यह औसर पैहो।
फिर नहिं ऐसी देह वहुरि पाछे पछितैहो ।।
लख चौरासी जोनि में, मानुप जन्म अनूप।
ताहि पाय नर चेतत नाही, कहा रङ्क कहा भूप ।। सुघर० ।।
गर्भ वास मे रह्यो कह्यो मै भजिहौं तोही।
निसदिन सुमिरौ नाम कष्ट से काढो मोही ।।
चरनन ध्यान लगाइके, रहौ नाम लौ लाय।
तनिक न तोहि विमारिहौ, यह तन रहै कि जाय।। सुघर० ।।
इतना कियो करार काढि गुरु वाहर कीना।
भूलि गयौ यह वात भयौ माया आवीना ।।
भूलि वाते उद्र की, आन पडी सुधि एत।
बारह वरस वीतिगे या विधि, खेलत फिरत अचेत ।।सुघर०।।
विषया वान समान देह जोवन मदमाती।
चलत निहारत छाँह तमक के बोलत वाती ।।
चोवा चन्दन लाइ के, पहिरे बसन रँगाय।
गलिया-गलिया झाकी मारै, पर तिरिया लख मुसकाय।।सुघर०।।
तरुनापन गई वीत बुढापा आनि तुलाने।
कापन लागे सीस जलत दोउ चरन पिराने ।।
नैन नासिका चूवन लागे, मुख ते आवत बास।
कफ पित कठै घेर लियो है, छुटि गइ घर की आस ।। सुघर० ।।
मातु पिता सुत नारि कहौ काके सङ्ग जाई।
तन धन घर औ काम धाम सब ही छुटि जाई।

आखिर काल घसीटि है, पडिहौ जम के फन्द ।
बिन सतगुरु नहिं बाचिहौ, समुझ देख मतिमन्द ॥ सुघर० ॥
सफल होत यह देह नेह सतगुरु से कीजै ।
भक्ती मारग जानि चरन सतगुरु चित दीजै ॥
नाम गहौ निरभय रहौ, तनिक न व्यापै पीर ।
यह लीला है मुक्ति की, गावत दास कबीर ॥ सुघर० ॥

( ६ )

जाग पियारी अब का सोवै । रैन गई दिन काहे को खोवै ॥
जिन जागा तिन मानिक पाया । तै बौरी सब सोय गँवाया ॥
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी । कबहुँ न पिय की सेज सँवारी ॥
हौं बौरी बौरापन कीन्हो । भर जोबन अपना नहिं चीन्हो ॥
जाग देख पिय सेज न तेरे । तोहि छाडि उठि गये सबेरे ॥
कहै कबीर सोई धन जागे । सबद बान उर अन्तर लागै ॥

( ७ )

या जग अंधा, मैं केहि समुझावो ॥ टेक ॥
इक दुइ होयँ उन्हें समुझावो, सबहि भुलाना पेट के धन्धा ॥ मैं केहि० ॥
पानी कै घोडा पवन असवरवा, ढरकि परै जस ओस कै बुन्दा ॥ मैं केहि० ॥
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा, खेवनहारा के पडिगा फन्दा ॥ मैं केहि० ॥
घर का वस्तु निकट नहिं आवत, दियना बारिके ढूढत अधा ॥ मैं केहि० ॥
लागी आग सकल बन जरिगा, बिन गुरु ज्ञान भटकिगा बदा ॥ मैं केहि० ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, इकदिन जाय लगोटी झार बदा ॥ मैं केहि० ॥

( ८ )

सूर सग्राम को देखि भागै नही, देखि भागै सोई सूर नाही ।
काम और क्रोध मद लोभ से जूझना, मडा घमसान तह खेत माही ॥
शील औ साच सतोष साही भये, नाम समसेर तह खूब बाजै ।
कहै कब्बीर कोई जूझि है सूरमा, कायरा भीड़ तह तुरत भाजै ॥

( ९ )

ज्ञान का गेद कर सुरति का दड कर, खेल चौगान मैदान माहीं।
जगत का भरमना छोडदे बालके, आयजा भेख भगवत पाही॥
भेष भगवत की सेस महिमा करै, सेस के सीस पर चरन डारै
कामदल जीतिके कवल दल सोधिके, ब्रह्मको बेधि कै क्रोध मारै॥
पदम आसन करै पवन परिचै करै, गगन के महल पर मदन जारै।
कहत कब्बीर कोई सत जन जौहरी, करम की रेख पर मेख मारै॥

( १० )

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फास लिये कर डोलै मधुरी बानी॥
केशव के कमला ह्वै बैठी शिवके भवन भवानी।
पडा के मूरत ह्वै बैठी तीरथ मे भई पानी॥
योगी के योगिन ह्वै बैठी राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी काहू के कौड़ी कानी॥
भक्तन के भक्तिन ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो हो सन्तो यह सब अकथ कहानी॥

( ११ )

पायो सत नाम, गरे कै हरवा।
साकर खटोलना रहनि हमारी दुबरे दुबरे पांच कहरवा।
ताला कुजी हमै गुरु दीन्ही जब चाहो तब खोलो किवरवा॥
प्रेम प्रीति की चुनरी हमारी जब चाहौ तब नाचौ सहरवा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो बहुर न ऐबै एही नगरवा॥

( १२ )

कैसे दिन कटिहै, जतन बताये जइयो॥
एहि पार गगा वोहि पार यमुना
बिचवा मड़इया हमको छवाये जइयो॥

अचरा फारि के कागद बनाइन
अपनी सुरतिया हियरे लिखाये जइयो ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो
बहिया पकरि के रहिया बताये जइयो ॥

( १३ )

करम गति टारे नाहिं टरी ।
मुनि बसिष्ट से पडित ज्ञानी सोधि के लगन धरी ।
सीता हरन मरन दसरथ को बन मे बिपति परी ॥
कह वह फन्द कहा वह पारधि कह वह मिरग चरी ।
सोता को हरि लैगौ रावन सुबरन लक जरी ॥
नीच हाथ हरिश्चन्द्र बिकाने बलि पाताल धरी ।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृग गिरगिट जोनि परी ॥
पाडव जिनके आपु सारथी तिन पर विपति परी ।
दुरजोधन को गरब घटायो जदुकुल नास करी ॥
राहु केतु औ भानु चन्द्रमा विधि सयोग परी ।
कहत कबीर सुनो भई साधो होनी होके रही ॥

( १४ )

सन्तो राह दोऊ हम दीठा ।
हिन्दू तुरुक हटा नहिं मानै, स्वाद सबन को मीठा ॥
हिन्दू बरत एकादसि साधै, दूध सिंघाडा सेती ।
अन को त्यागै मन नहि हटकै, पारन करै सगोती ॥
रोजा तुरुक नमाज गुजारै, विसमिल बांग पुकारै ।
उनकी भिस्त कहां ते होइ है, साझे मुरगी मारै ॥
हिन्दू दया मेहर को तुरकन, दोनो घट सो त्यागी ।
वै हलाल वै झटका मारै, आगि दुनो घर लागी ॥
हिन्दू तुरुक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई ।
कहै कबीर सुनो हो सन्तो, राम न कहेउ खोदाई ॥

( १५ )

अरे इन दोउन राह न पाई।

हिन्दू अपनी करै बडाई सागर छुवन न देई।
बेस्या के पायन तर सोवै यह देखो हिन्दुआई॥
मुसलमान के पीर औलिया मुरगी मुरगा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं घरहि मे करै सगाई॥
बाहर से एक मुरदा लाये धोय धाय चढवाई।
सब सखिया मिल जेवन बैठी घर भर करै बडाई॥
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहै कबीर सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई॥

( १६ )

मन न रगाये, रगाये जोगी कपरा।

आसन मारि मदिर मे बैठे, नाम छाडि पूजन लागे पथरा॥
कनवा फडाय जोगी जटवा बढौलै, दाढी बढाय जोगी होइ गैलै बकरा।
जङ्गल जाय जोगी धुनिया रमौलै, काम जराय जोगी बनि गैलै हिजरा।
मथवा मुडाय जोगी कपडा रगौलै, गीता बाचि कै होइ गैलै लबरा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जम दरवजवा बाधल जैबे पकरा॥

( १७ )

रमैया की दुलहिन लूटा बजार।

सुरपुर लूट नागपुर लूटा, तीन लोक मच हाहाकार।
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे, नारद मुनि के परी पिछार॥
स्रिङ्गी की मिङ्गीकरि डारी, पारासर कै उदर विदार।
कनफूका चिरकासी लूटे, लूटे जोगेसर करत विचार॥
हम तो बचिगे साहब दया से, शब्द डोर गहि उतरे पार।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, इस ठगनी से रहो हुसियार॥

( १७ )

घूघट का पट खोल रे, तोहे पीव मिलेगे।

घट घट में वह साईं रमता, कटुक वचन मत बोल रे।
धन जोबन को गरब न कीजै, झूठा पचरङ्ग चोल रे ॥
सुन्न महल में दियना बारि ले, आसन सो मत डोल रे।
जोग जुगुत सो रङ्ग महल मे, पिय पायो अनमोल रे ॥
कहै कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे ॥

( १९ )

तेरे दया धरम नहिं तन मे, मुखडा क्या देखै दरपनमें ॥
घरबारी तो घर में राजी, फक्कड राजी बन में ॥
ऐंठी धोती पाग लपेटी, तेल चुवत जुलफन मे।
गली गली की सखी रिझाई, दाग लगाया तन में ॥
पाथर की एक नाव बनाई, उतरा चाहै छन मे।
कहत कबीर सुनो भई साधो, कायर चढै न रन मे ॥

( २० )

मेरा तेरा मनुवा, कैसे एक होइ रे।
मैं कहता हौ आँखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी।
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राख्यो अरुझाइ रे ॥
मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोइ रे।
मैं कहता निरमोही रहियो, तू जाता है मोहि रे ॥
जुगन जुगन समझावत हारा, कहा न मानत कोइ रे।
तू तो रंगी फिरै बिहंगी, सब धन डारा खोइ रे ॥
सतगुरु धारा निरमल बाहै, वा मे काया धोइ रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होइ रे ॥

( २१ )

बीत गये दिन भजन बिना रे।
बाल अवस्था खेल गवायो, जब जवानि तब मान किया रे ॥
लाख कारन मूल गवायो, अजहु न मिटी तेरे मनकी तृषा रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, पार उतरि गये सन्त जना रे ॥

( २२ )

तोहिं मोरी लगन लगाये रे फकिरवा।

सोवत ही मै अपने मदिर मे, सबदन मारि जगाये रे फकि०।
बूडत ही भव के सागर मे, बहिया पकरि समुझाये रे फकि०।
एकै बचन बचन नहिं दूजा, तुम मोसे बद छुडाये रे फकि०।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सत्त नाम गुन गाये रे फकि०।

( २३ )

अधियरवा मे ठाढि गोरी, का करलू।

जब लगि तेल दिया मे बाती, एही अजोरवा बिछाय घलतू।
मन का पलग सन्तोष बिछौना, ज्ञान का तकिया लगाय रखतू।
जरि गया तेल बुझाइ गई बाती, सुरत मे मुरत समाय रखतू।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जोतियामे जोतिया मिलाय रखतू।

( २४ )

झीनी झीनी बीनी चदरिया।

काहे कै ताना काहे कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।
इगला पिगला ताना भरनी, सुख मन तार से बीनी चदरिया॥
आठ कवल दल चरखा डोलै, पाच तत्त गुन तीनी चदरिया।
साईं को सियत मास दस लागै, ठोक ठोक कै बीनी चदरिया॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढे, ओढि के मैली कीनी चदरियो।
दास कबीर जतन से ओढी, ज्यो की त्यो धर दीनी चदरिया॥

( २५ )

रहना नहिं देस बिराना है।

यह ससार कागद की पुडिया, बूद पडे घुल जाना है।
यह ससार काट की बाडी, उलझ पुलझ मर जाना है॥
यह ससार झाड औ झाखर, आग लगे वरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है॥

( २६ )

लोका मति का भोरा रे।
जो कासी तन तजै कबीरा रामै कौन निहोरा रे॥
राम भगति पर जाको हित चित ताको अचरज काहा।
गुरु प्रताप साधु सगति जग जीतै जाति जोलाहा॥
कहत कबीर सुनौ रे सन्तो भरम परौ जनि कोई।
जस कासी तस मगहा ऊसर हृदय राम जो होई॥

# रैदास

रैदासजी कबीर साहब के समय मे हुए थे। ये जाति के चमार थे। इनके पिता का नाम रग्घू और माता का नाम घुरबिनिया था। इनका जन्म काशी में हुआ था। ये भी महात्मा रामानन्द के शिष्यो मे थे।

रैदासजी और कबीर साहब मे बहुत वादविवाद हुआ करता था। रैदासजी जब कुछ सयाने हुए तब भक्तो और साधुओ की सेवा मे अधिक रहने लगे। जो कुछ कमाते, सब साधु-सन्तो को खिला-पिला दिया करते थे। यह बात इनके पिता रग्घू को अच्छी नही लगी। उसने स्त्री सहित रैदासजी को घर से अलग कर दिया। खर्च के लिए वह इनको एक कौडी भी नही देता था। रैदासजी जूता बनाकर किसी तरह अपना गुजर करते और रात-दिन भगवत्-चर्चा मे मग्न रहा करते थे। ये मास मदिरा को छूते तक न थे। १२० वर्ष की अवस्था मे इन्होने शरीर छोडा।

इनके विषय मे बहुत-सी करामात की कहानिया लोगो मे प्रसिद्ध है। गुजरात प्रात मे इनके मत को माननेवाले लाखो आदमी है जो अपने को रविदासी कहते है। ये मीराबाई के गुरु थे। इनकी कविता से इनकी बडी भक्ति प्रकट होती है। रैदासजी के बनाये हुए कुछ दोहे और पद हम यहा उद्धृत करते है—

( १ )

हरि सा हीरा छाडि कै, करै आन की आस।

ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास ॥

( २ )

रैदास रात न सोइये, दिवस न करिये स्वाद।
अहनिसि हरिजी सुमिरिये, छाड़ि सकल प्रतिवाद॥

( ३ )

भगती ऐसी सुनहु रे भाई।
आइ भगती तब गई बडाई।
कहा भयो नाचे अरु गाये कहा भयो तप कीन्हे।
कहा भयो जे चरन पखारे जौलौ तत्व न चीन्हे॥
कहा भयो जे मूड मुडायो कहा तीर्थ व्रत कीन्हे।
खाली दास भगत अरु सेवक परम तत्व नहि चीन्हे॥
कह रैदास तेरी भगत दूर है भाग बडे सो पावे।
तजि अभिमान मेटि आपा पर पिपलिक ह्वै चुनि खावे॥

( ४ )

पहले पहरे रैन दे बनजरिया तै जनम लिया ससार वे।
सेवा चूकी राम की तेरी बालक बुद्धि गवार वे॥
बालक बुद्धि न चेता तू भूला माया जाल वे।
कहा होय पीछे पछताये जल पहिले न बाधी पाल वे॥
बीस बरस का भया अयाना थाभि न सक्का भार वे।
जन रैदास कहै बनजरिया जनम लिया ससार वे॥

( ५ )

राम मैं पूजा कहा चढाऊ। फल अरु मूल अनूप न पाऊ॥
थनहर दूध जो बछरू जुठारी। पुहुप भवर जल मीन बिगारी॥
मलयागिर बेधियो भुअगा। विष अमृत दोउ एकै सगा॥
मन ही पूजा मन ही धूप। मन ही सेऊ सहज सरूप॥
पूजा अरचा न जानू तेरी। कह रैदास कवन गति मेरी॥

( ५ )

रे चित चेत अचेत काहे बालक को देख रे।
जाति ते कोई पद नहिं पहुचा राम भगति विशेष रे॥
खट क्रम सहित जे विप्र होते हरि भगति चित दृढ नाहि रे।
हरि की कथा सोहाय नाही स्वपच तूलै ताहि रे॥
मित्र शत्रु अजात सबते अन्तर लावे हेत रे।
लाग वाकी कहा जानै तीन लोक पवेत रे॥
अजामिल गज गनिका तारी काटी कुजर की पास रे।
ऐसे दुरमत मुक्त कीये तो क्यो न तरै रैदास रे॥

( ७ )

जो तुम गोपालहिं नहिं गैहौ।
तो तुमका सुख मे दुख उपजै सुखहि कहा ते पैहौ॥
माला नाय सकल जग डहको झूठो भेख बनैहौ।
झूठे ते साचे तब होइ हो हरि की सरन जब ऐहौ॥
कनरस, बतरस और सबै रस झूठहि मूड डुलैहौ।
जब लगि तेल दिया मे बाती देखत ही बुझ जैहौ॥
जो जन राम नाम रग राते और रग न सोहैहौ।
कह रैदास सुनो रे कृपानिधि प्रान गये पछितैहौ॥

( ८ )

प्रभु जी सगति सरन तिहारी।
जग जीवन राम मुरारी॥
गली गली को जल बहि आयो सुरसरि जाय समायो।
सगत के परताप महातम नाम गगोदक पायो॥
स्वाति बूद बरसै फनि ऊपर सीस विषै होइ जाई।
वही बूंद कै मोती निपजै सगत की अधिकाई॥
तुम चदन हम रेड बापुरे निकट तुम्हारे आसा।
सगत के परताप महातम आवै बास सुबासा॥

जाति भी श्रोछी करम भी ओछा, श्रोछा कसब हमारा।
नीचे से प्रभु ऊँच कियो है कह रैदास चमारा॥

( ९ )

अब कैसे छुटै नाम रट लागी॥ टेक॥
प्रभु जी तुम चदन हम पानी। जाकी अग अग बास समानी॥
प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा। जैसे चितवत चद चकोरा॥
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती। जाकी जोति बरै दिन राती॥
प्रभु जी तुम मोती हम धागा। जैसे सोनहि मिलत सोहागा॥
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा। ऐसी भक्ति करै रैदासा॥

## धर्मदास

धर्मदासजी जाति के कसौधन बनिये और बाधवगढ के बडे भारी महाजन थे। इनके जन्म और मरण के समय का ठीक पता नही चलता। परन्तु ये कबीर साहब के समकालीन थे, यह निश्चय है।

धर्मदास जी बालकपन ही से बडे धर्मात्मा और भगवत्-चर्चा के प्रेमी थे, साधु-सतो और पडितो का बडा आदर-सत्कार करते थे। इन्होंने दूर-दूर तक तीर्थों की यात्रा की थी।

मथुरा से आते समय कबीर साहब से इनका साक्षात् हुआ। कबीर साहब ने मूर्तिपूजा और तीर्थ व्रत आदि का खडन मडन करके इनका चित्त सत-मत की ओर झुकाया। फिर तो ये बराबर कबीर साहब से मिलते रहे और अपना संशय मिटाते रहे। "अमर सुख निधान" ग्रन्थ मे इनकी और कबीर साहब की बातचीत विस्तार के साथ लिखी है। उनमे बहुत-सी ज्ञान की बाते हैं।

कबीर साहब की शरण मे आने पर धर्मदासजी ने अपना सारा धन लुटा दिया। स० १५७५ वि० मे जब कबीर साहब परमधाम को सिधारे तब उनकी गद्दी धर्मदास जी को मिली। उससे पद्रह या बीस वर्ष के बाद इन्होंने भी इस ससार को छोडा।

इनकी शब्दावली में से कुछ पद चुनकर हम यहा उद्धृत करते हैं—

( १ )

मोरे पिया मिले सत ज्ञानी ।

ऐसन पिय हम कबहु न देखा , देखत सुरत लुभानी ॥
आपन रूप जब चीन्हा बिरहिन , तब पिय के मन मानी ॥
कर्म जलाय के काजल कीन्हा , पढे प्रेम की बानी ॥
जब हसा चले मानसरोवर , मुक्ति भरे जह पानी ॥
धर्मदास कबीर पिय पाये , पिट गई आवाजानी ॥

( २ )

गुर पैया लागो , नाम लखा दीजो रे ॥

जनम जनम का सोया मनुआ , शब्दन मारि जगा दीजो रे ॥
घट अधियार नैन नहि सूझै , ज्ञान का दीपक जगा दीजो रे ॥
विष की लहर उठत घट अन्तर , अमृत बूद चुवा दीजो रे ॥
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा , खेय के पार लगा दीजो रे ॥
धरमदास की अरज गुसाईं , अब के खेप निभा दीजो रे ॥

( ३ )

हम सत्त नाम के बैपारी ।

कोई कोई लादे कासा पीतल , कोई कोई लौग सुपारी ॥
हम तो लाद्यो नाम धनी को , पूरन खेप हमारी ॥
पूजी न टूटै नफा चौगुना , बनिज किया हम भारी ॥
हाट जगाती रोक न सकि है , निर्भय गैल हमारी ॥
मोती बूद घट ही मे उपजै , सुकिरत भरत कोठारी ॥
नाम पदारथ लाद चला है , धरम दास बैपारी ॥

( ४ )

झरि लागै महलिया , गगन घहराय ।

खन गरजै खन बिजुली चमकै , लहर उठै शोभाबरनि न जाय ॥
सुन्न महल से अमृत बरसै , प्रेम आनन्द ह्वै साधु नहाय ॥

खुली किवरिया मिटी अधियरिया , धनसतगुरु जिन दिया लखाय ॥
धरमदास बिनवै कर जोगी ``नगुरु चरन मे रहत समाय ॥

( ५ )

मितऊ मडैया सूनी करि गैलो ।
अपन वलम परदेस निकरि गैलो हमरा के कछुवो न गुन दै गैलो ॥
जोगिन ह्वै के मै वन बन ढूढो हमरा के बिरह वैराग दै गैलो ॥
सग की सखी सब पार उतरि गैली हम धन ठाडी अकेली रहि गैलो ॥
धरमदास यह अरज करतु है सार सवद सुमिरन दै गैलो ॥

( ६ )

मोरा पिया बसै कौने देस हो ।
अपपे पिया के ढूढन हम निकसी कोई न कहत सनेस हो ॥
पिय कारन हम भई है बावरी धर्यो जोगिनिया कै भेस हो ।
ब्रह्मा विष्णु महेस न जाने का जानै सारद सेस हो ॥
धनि जो अगम अगोचर पइलन हम सब सहत कलेस हो ।
उहा के हाल कबीर गुरु जानै आवत जात हमेस हो ॥

## गुरु नानक

गुरु नानक का जन्म स० १५२६ वि०, कार्तिक की पूर्णिमा के दिन, चार घडी रात रहे, कल्यानचन्द खत्री की धर्मपत्नी तृप्ता के गर्भ से हुआ। कल्यानचन्द, जिला लाहौर, तहसील शकरपुर के तलवडी नगर के सूबाराय बुलार पठान के कारकुन थे ।

गुरु नानक ने बालकपन ही मे अपनी विलक्षण बुद्धि के अपूर्व चमत्कार दिखाये । ये बहुत सीधे-सादे और सत स्वभाव के थे। स० १५४५ वि० मे इनका विवाह गुरुदासपुर के मूलचन्द खत्री की कन्या सुलक्षणी से हुआ। सवत् १५५१ और १५५३ वि० मे सुलक्षणी देवी के गर्भ से क्रमश श्रीचन्द्र और लक्ष्मीचन्द्र, दो पुत्रो का जन्म हुआ । आगे चलकर श्रीचन्द्र उदासी साधु-सम्प्रदाय के मूल पुरुष हुए । और लक्ष्मी-

चन्द्र के वश के लोग अब तक वर्तमान है।

गुरू नानक जी के समय मे मुसलमानो के अत्याचार से हिन्दू-जाति त्राहि-त्राहि कर रही थी। गुरु नानक जी के सदुपदेश से हिन्दुओ मे एक ऐसा सिख-समुदाय पैदा हो गया जिसने हिन्दुओ की मान-मर्यादा ही नही बचाई, बल्कि मुसलमानी सल्तनत की जड तक हिला दी। विचार करके देखा जाय तो गुरू नानकजी ने हिन्दुओ का बडा भारी उपकार किया।

गुरू नानकजी ने स० १५२६ से १५७९ तक आगरा, बिहार, बङ्गाल, आसाम, ब्रह्मा, उडीसा, मारवाड, हैदराबाद, मद्रास, लका, बद्रीनारायण, नैपाल, सिकम, भूटान, सिंध, मक्का, जद्दा, मदीना, रूम, बगदाद, ईरान, बिलोचिस्तान, कधार, काबुल, और काश्मीर की यात्रा की। यात्रा में ये जहा-जहा गये, वहा-वहा के लोग इनके उपदेश से बहुत लाभ उठाते रहे। काशी मे गुरु नानक और कबीर साहब से भी धर्म-चर्चा हुई थी। अन्त के १६ वर्ष इन्होने कर्तारपुर मे बिताकर ६९वर्ष १० महीना और १० दिन की अवस्था (स० १५९५) मे शरीर छोडा।

गुरू नानक जी की शिक्षा ने पजाब मे सिखो की एक जाति ही बना दी। इनके बाद जितने गुरू हुए, सब एक से एक बढकर पराक्रमी, प्रतापी और बुद्धिमान हुए। यह गुरू नानक जी ही की शिक्षा का फल था कि गुरू गोविन्दसिंह सरीखे शूरवीर हिन्दुओ मे पैदा हुए।

हम गुरू नानकजी की कविता के कुछ नमूने यहा उद्धृत करते है—

कलिया थी घडले भये, घडलियो भये सुपैदु।
नानक मता मतो दिया, उज्जरि गइया खेडु॥ १॥
जागोरे जिन जागना, अब जागनि की बारि।
फेरि कि जागो "नानका", जब मोवउ पाव पसारि॥ २॥
मित्रा दोस्त माल धन, छडि चले अति भाइ।
मगि न कोई "नानका", उह हस अकेला जाइ॥ ३॥
जेही पिरीति लगदिया, तोड निवाहू होइ।
"नानक" दरगह जादिया, ठक्क न सक्के कोइ॥ ४॥

सूरा एकन आखियन, जो लडनि दला मे जाय।
सूरे सोई "नानका" जो, मनणु हुकुम रजाय ॥ ५ ॥
हिरदे जिनके हरि बसे, से जान कहियहि सूर।
कही न जाई "नानका", पूरि रह्या भरपूर ॥ ६ ॥
मन की दुबिधा ना मिटै, मुक्ति कहा ते होइ।
कउडी बदले "नानका", जन्म चल्या नर खोइ ॥ ७ ॥
जिन बोले अमृत वसे, जीया होवे दाति।
तिन बेले तू उठि बहु, चिह पहरे पिछली राति ॥ ८ ॥

( ९ )

इस दम दा मैनू कीबे भरोसा, आया आया न आया न आया ॥
ग ससार रैन दा सुपना, कहि दीखा कहि नाहि दिखाया।
सोच विचार करे मत मन मे, जिसने ढूढा उसने पाया ॥
'नानक" भक्तन के पद परसे, निस दिन रामचरन चित लाया ॥

( १० )

सब कछु जीवत को व्योहार।
माता पिता भाई सुत बाधव, अरु पुन गृह की नार ॥
तन ते प्रान होत जब न्यारे टेरत प्रेत पुकार ॥
आध घरी कोऊ नहि राखै घर ते देत निकार ॥
कहु नानक भज राम नाम नित जाते हो उद्धार ॥

( ११ )

मन की मनही माहि रही ॥
ना हरि भजे न तीरथ सेये चोटी काल गही ॥
दारा मीत पूत रथ सपति धन जन पूर्न मही ॥
और सकल मिथ्या यह जानो भजना राम सही ॥
फिरत फिरत बहुते जुग हार्‌यो मानस देह लही ॥
"नानक" कहत मिलन की विरिया सुमिरत कहा नही ॥

( १२ )

जो नर दुख मे दुख नहिं मानै ॥
सुख सनेह अरु भय नहिं जाके कचन माटी जानै ॥
नहिं निन्दा नहिं अस्तुति जाके लोभ मोह अभिमाना ॥
हर्ष शोक ते रहे नियारो नाहि मान अपमाना ॥
आसा मनसा सकल त्यागि कै जगते रहै निरासा ॥
काम क्रोध जेहि परसै नाहिन तेहि घट ब्रह्म निवासा ॥
गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्ही तिन यह जुगति पिछानी ॥
"नानक" लीन भयो गोविन्द सो ज्यो पानी सग पानी ॥

( १३ )

रे मन कौन गत होइ है तेरी ।
याहि जग मे राम नाम, सो तो नहिं सुन्यो कान,
विषयन सो अति लुभान, मति नाहिन फेरी ॥
मानस को जनम लीन्ह, सिमरन नहिं निमिष कीन्ह,
दारा सुत भयो दीन, पगहु परी बेरी ॥
"नानक" जन कह पुकार, सुपने ज्यो जग पसार,
सिमरत नहि क्यो मुरार, माया जाकी चेरी ॥

( १४ )

सुमरन करले मेरे मना ।
तेरि विति जाति उमर हरिनाम बिना ॥
कूप नीर बिनु धेनु छीर बिन मदिर दीप बिना ।
जैसे तरुवर फल विन हीना तैसे प्राणी हरनाम बिना ॥
देह नैन बिन रैन चद बिन धरती मेह बिना ।
जैसे पडित वेद विहीना तैसे प्राणी हरनाम बिना ॥
काम क्रोध मद लोभ निहारो छाड दे अब सतजना ।
कहे "नानकशा" सुन भगवता या जग मे नहिं कोइ अपना ॥

( १५ )

बिसर गई सब तात पराई । जब मे साधू सङ्गत पाई ॥

नहि कोई बैरी नहि बेगाना सकल सङ्ग हमरी बनि आई।
जो प्रभ् कीन्हो सो भला करि मानो यह सुमति साधू से पाई॥
सब मे रम रहा प्रभु एकाकी पेख पेख "नानक" बिगसाई॥

( १६ )

साधो मन का मान त्यागो।
काम क्रोध सगति दुर्जन की ताते अहनिस भागो॥
सुख दुख दोनो सम करि जानै और मान अपमाना।
हर्ष शोक ते रहै अतीता तिन जग तत्व पिछाना॥
अस्तुति निन्दा दोऊ त्यागै खोजै पद निरबाना।
जन "नानक" यह खेल कठिन है किनहू गुरुमुख जाना॥

( १७ )

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा तोही सङ्ग समाई॥
पुष्प मध्य ज्यो बास बसत है मुकर माहि जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर घट ही खोजो भाई॥
बाहर भीतर एकै जानो यह गुरु ज्ञान बताई।
जन "नानक" बिन आपा चीन्हे मिटै न भ्रम की काई॥

## सूरदास

सूरदास का जन्म अनुमान से १५४० वि० मे और मरण १६२० वि० मे कहा जाता है। उन्होने ६७ वर्ष की अवस्था मे सूरसारावली लिखी। सूरदास का सबमे बडा ग्रन्थ सूरसागर है, सूरसारावली उसी की सूची है, जो सूरसागर के बननेके बाद बनी है। सूरसारावली मे लिखा है—

"गुरु प्रसाद होत यह दरसन, सरसठि वरस प्रवीन।
शिव विधान तप करेउ बहुत दिन, तऊ पार नहिं लीन॥

इससे पता चलता है कि सूरसारावली लिखते समय सूरदास की अवस्था ६७ वर्ष की थी। उन्होने साहित्य-लहरी नाम का एक और ग्रन्थ

बनाया है। उसमे सूरसागर के दृष्ट-कूट पदो का सग्रह है। साहित्य-लहरी मे सूरदास ने एक स्थान पर लिखा है—

मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरी नन्द को लिखि सुबल सवत पेख॥
नन्द नन्दन मास छै ते हीन तृतिया वार।
नन्द नन्दन जनम ते है बाण सुख आगार॥
तृतिय ऋक्ष सुकर्म जोग विचारि सूर नवीन।
नन्द नन्दन दास हित साहित्य लहरी कीन॥

अर्थ—मुनि = ७, रसन = रसहीन अर्थात् शून्य, रस = ६, दसन गौरीनन्दन = १ = १६०७, नन्द नन्दन मास = बैशाख, छै हीन-तृतिया = अक्षय तृतिया, तृतिय ऋक्ष = कृतिका नक्षत्र, सुकर्म योग। (देखो सरदार कवि कृत साहित्य लहरी की टीका)।

इससे प्रकट होता है कि साहित्य लहरी १६०७ वि० मे बनी। उस समय सूरदास की अवस्था ६७ वर्ष की थी। क्योंकि साहित्य लहरी और सूरसारावली के बनने का समय प्राय एक ही अनुमान किया जाता है। इस अनुमान के आधार पर सूरदास का जन्म (१६०७—६७) १५४० वि० मे होना सिद्ध होता है।

सूरदास का जन्म दिल्ली के पास "सीही" गाव मे हुआ था। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। कुछ लोग रुनकता गाव (रेणुकाक्षेत्र) को, जो आगरा मथुरा की सडक पर है, इनका जन्म-स्थान बतलाते हैं। इनके माता-पिता दरिद्र थे। पिता का नाम रामदास था। सूरदास सात भाई थे। छ भाई मुसलमानो के साथ लडाई मे मारे गये। सरदार कवि ने सूरदास को चन्दबरदाई का वशज बतलाया है।

सूरदास जन्म के अन्धे न थे। ऐसी कहावत है कि एकबार ये एक युवती को देखकर उस पर मुग्ध हो गये। उसकी ओर एकटक ताकते हुए ये बहुत देर तक खडे रहे। अन्त मे वह युवती इनके पास स्वय आई और कहने लगी—महाराज! क्या आज्ञा है? सूरदास को उस समय

अपनी स्थिति पर बडी लज्जा आई। इन्होने यह दोष आखो का समझ कर युवती से कहा कि यदि तुम मेरी आज्ञा मानती हो तो सुई से मेरी दोनो आखे फोड़ दो। युवती ने आज्ञानुसार ऐसा ही किया। तब से सूरदास अन्धे हो गये। भक्तमाल मे लिखा है कि सूरदास जन्म के अन्धे थे; परन्तु इस पर सहसा विश्वास नही होता; क्योकि इन्होने अपनी कविता मे रगो का, ज्योति का और अनेक प्रकार के हाव-भाव का ऐसा यथार्थ वर्णन किया है जो बिना आख से देखे, केवल सुनकर, नही किया जा सकता।

सूरदास की कविता के लालित्य और माधुर्य के विषय मे तो कहना ही क्या है? हिन्दुओ के घर-घर मे इनके भजन बडे प्रेम से गाये और सुने जाते है। हिन्दुस्तान के गवैये सूरदास के भजन बडे चाव से गाते हैं। राम-चरित्र लिखने मे जैसी तुलसीदास जी ने अपनी प्रतिभा दिखलाई है, उसी तरह श्री कृष्ण की लीला लिखकर सूरदास ने भी अपनी अनुपम कवित्व-शक्ति का परिचय दिया है। प्रेमी और भक्तजनो के हृदयो में सूरदास के भजनो से आनन्द का समुद्र उमड़ पडता है। कविता द्वारा बाल-चरित्र का ठीक-ठीक चित्र आखो के सामने कर देने की इनमें अलौकिक पटुता थी। हिन्दी-साहित्य मे सूरदास का गौरव कितना है, यह इस दोहे से भली-भाति समझा जा सकता है—

"सूर सूर, तुलसी ससी, उडुगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जह तह करैं प्रकास॥"

गावो की साधारण जनता ने भी सूर, तुलसी और कबीर की कविता के सम्बन्ध मे अपनी राय अपनी ही बोली मे स्थिर की है। उनकी समालोचना का एक नमूना यह है—

जो कुछ रहा सो अधरा कहिगा, कठवउ कहेसि अनूठी।
बचा खुचा सो जोलहा कहिगा, और कहै सो जूठी॥

गोपियो के विरह-वर्णन मे सूरदास ने हृद्गत भावो के झलकाने में कमाल कर दिया है। सूरदास काव्य-शास्त्र के पडित थे। पुराणो का

इन्होने अच्छा अध्ययन किया था। महाप्रभु बल्लभाचार्य ने ब्रजभाषा के सुप्रसिद्ध आठ कवियो को मिलाकर अष्टछाप स्थापित किया था। उनके नाम ये है—कृष्णदास, परमानन्द दास, कुभनदास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी, नन्ददास, गोविन्द स्वामी, सूरदास। इन आठो मे सूरदास सब से उत्तम थे। महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के उपदेश से इन्होने श्री मद्भागवत का उल्था किया, जो सूरसागर नाम से प्रसिद्ध है। इसमे सवा लक्ष पद थे, किन्तु अब पाच हजार ही उपलब्ध है। सूरसागर के सिवा ब्याहलो, नल दमयती और हरिवश की टीका भी इन्होने लिखी थी। किन्तु ये तीनो अब अप्राप्य है।

सूरदास ने ८० वर्ष की अवस्था मे गोकुल मे शरीर छोडा। इनका अन्तिम भजन यह है, जो शरीर छोडते समय इन्होने कहा—

खञ्जन नैन रूप रस माते।
अति से चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते ॥
चल चल जात निकट श्रवनन के उलट-पलट ताटक फदाते।
सूरदास अञ्जन गुन अटके नतरु अबहिं उडि जाते ॥

प्राचीन मनुष्यो की कहावत है कि ये उद्धव के अवतार थे। इसमें सन्देह नही कि उनके हृदय मे वास्तविक प्रेम था। ये प्रेम की दशा से पूर्ण अभिज्ञ थे और भगवान श्रीकृष्ण को सखा-भाव से भजनेवाले भक्त थे।

यद्यपि इनके पद-पद मे लालित्य भरा है, परन्तु स्थानाभाव से इनके थोडे से पद सूरसागर से चुनकर यहा लिखे जाते है।

( १ )

मेरो मन अनत कहा सुख पावै ॥
जैसे उडि जहाज को पच्छी फिरि जहाज पर आवै ॥
कमल नयन को छाडि महातम और देव को ध्यावै।
परम गगा को छाडि पियासो दुर्मनि कूप खनावै ॥
जिन मधुकर अबुज रस चाख्यो क्यो करील फल खावै।
"सूरदास" प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ॥

( २ )

सोभित कर नवनीत लिये ।
घुटुरुवन चलत रेनु तन मंडित मुख में लेप किये ॥
चारुकपोल लोल लोचन छवि गौरोचन को तिलक दिये ।
लर लटकन मानो मत्त मधुप गन माधुरी मधुर पिये ॥
कठुला क वज्र केहरि नख राजत है सखि रुचिर हिये ।
धन्य "सूर" एको पल यह सुख कहा भयो सत कल्प जिये ॥

( ३ )

यशोदा हरि पालने झुलावै ।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोई कछु गावै ॥
मेरे लाल को आउ निदरिया काहे न आनि सुवावै ।
तू काहे न वेगी सी आवे तोको कान्ह बुलावै ॥
कबहू पलक हरि मूदि लेत है कबहू अधर फरकावै ।
सोवत जानि मौन ह्वै ह्वै रही कर-कर सैन बतावै ॥
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि यशुमति मधुरे गावै ।
जो सुख "सूर" अमर मुनि दुर्लभ सो नदभामिनि पावै ॥

( ४ )

लालन हौं वारी तेरे या मुख ऊपर ।
माई मेरिहि डीठि न लागे ताते मसि बिन्दा दयो भ्रू पर ॥
सर्वसु मैं पहिले ही दीनी नान्ही नान्ही दतुली द्व पर ।
अब कहा करो निछावरि "सूर" यशोमति अपने लालन ऊपर ॥

( ५ )

घुटरुवन चलत श्याम मणि आगन मात पिता दोउ देखत री ।
कबहुक किलकिलात मुख हेरत, कबहु जननि मुख पेखत री ॥
लटकन लटकत ललित भाल पर काजर बिन्दु भ्रुव ऊपर री ।
वह सोभा नैननि भरि देखै नहिं उपमा कहु भू पर री ॥
कबहुक दौर घुटरुवन लटकत गिरत परत फिरि धावत री ।

इतते नन्द बुलाइ लेत है उतते जननि बुलावति री ॥
दपति होड करत आपुस मे श्याम खिलौना कीनो री ।
"सूरदास" प्रभु ब्रह्म सनातन सुत हितकरि दोउ लीनो री ॥

( ६ )

गहे अगुरिया तात की नद चलन सिखावत ।
अरबराई गिरि परत है कर टेकि उठावत ॥
बार बार बकि श्याम सो कछु बोल बकावत ।
दुहधा दोउ दतुली भई अति मुख छवि पावत ॥
कबहु कान्ह कर छाडि नद पग द्वै करि धावत ।
कबहु धरणि पर बैठि के मन मह कछु गावत ॥
कबहु उलटि चलै धाम को घुटरुन करि धावत ।
"सूर" श्याम मुख देखि महर मन हर्ष बढावत ॥

( ७ )

मैया कबहि बढेगी चोटी ।
कितीबार मोहि दूध पियत भइ यह अजहू है छोटी ॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यो ह्वै है लाबी मोटी ।
काढत गुहत नहावत ओछत नागिन सी भ्वै लोटी ॥
काचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी ।
'सूर"श्याम चिरजीवो दोऊ भैया हरि हलधर की जोटी ॥

( ८ )

खेलन अब मेरी जात बलैया ।
जबहि मोहि देखत लरिकन सग तबहि खिझत बल भैया ॥
मोसो कहत तात बसुदेव को देवकी तेरी मैया ।
मोल लियो कछु दे बसुदेव को करि करि जतन बटैया ॥
अब बाबा कहि कहत नद को यसुमति को कहै मैया ।
ऐसेहि कहि सब मोहि खिझावत तब उठि चलो खिसैया ॥
पाछे नद सुनत है ठाढे हसत हसत उर लैया ।
"सूर" नद बलिरामहि धिरयो सुनि मन हरख कन्हैया ॥

( ९ )

कमलनयन कछु करौ बियारी।
लुचुई लपसी सद्य जलेबी सोइ जेवहु जो लगै पियारी॥
घेवर मालपुआ मुतिलाडू सुघर सजूरी सरस सवारी।
दूध बरा उत्तम दधि बाटी दाल मसूरी की रुचि न्यारी॥
आछो दूध औटि धौरी को मैं ल्याई रोहिणि महतारी।
"सूरदास" बलराम श्याम दोउ जेवैं हैं जननि जाइ बलिहारी॥

( १० )

जेवत श्याम नद की कनिया।
कछुक खात कछु धरनि गिरावत छवि निरखत नदरनिया॥
बरी बरा बेसन बहु भातिन व्यजन विविध अनगनिया।
डारत खात लेत अपने कर रुचि मानत दधि दनिया॥
मिश्री दधि माखन मिश्रित करि मुख नावत छविधनिया।
आपुन खात नन्द मुख नावत सो सुख कहत न बनिया॥
जो रस नन्द यशोदा बिलसत सो नहिं तिहु भुवनिया।
भोजन करि नन्द अचवन कियो मागत "सूर" जुठनिया॥

( ११ )

चद्र खिलौना लैहौं मैया मेरी, चद्र खिलौना लैहौं॥
धौरी को पय पान न करिहौं बेनी सिर न गुथैहौं।
मोतिन माल न धरिहौं उर पर भगुली कठ न लैहौं॥
जैहों लोट अभी धरनी पर तेरी गोद न ऐहों।
लाल कहैहौं नद बबा को तेरो सुत न कहैहौं॥
कान लाय कछु कहत यसोदा दाउहिं नाहिं सुनैहौं।
चदा हू ते अति सुन्दर तोहिं नवल दुलहिया ब्यैहों॥
तेरी सौह मेरी सुन मैया अबही व्याहन जैहौं।
"सूरदास" सब सखा बराती नूतन मगल गैहौं॥

( १२ )

मैया मेरी, मै नहि माखन खायो।
भोर भयो गैयन के पाछे मधुबन मोहि पठायो।
चार पहर बसीबट भटक्यो साझ परे घर आयो॥
मैं बालक बहियन को छोटो छीको किस बिध पायो।
ग्वाल बाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो॥
तू जननी मन की अति भोरी इनके कहे पतियायो।
जिय तेरे कछु भेद उपज है जान परायो जायो॥
यह ले अपनी लकुट कमरिया बहुतहि नाच नचायो।
"सूरदास" तब बिहसि जसोदा ले उर कठ लगायो॥

( १३ )

मैया मै न चरैहौ गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसो मेरे पाइ पिराइ।
जो न पत्याहि पूछ बलदाउहि अपनी सौह दिवाइ॥
मैं पठवति अपने लरिका कू आवै मन बहराइ।
"सूर" श्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाइ॥

( १४ )

नैना ढीठ अतिहो भए।
लाज लकुट दिखाय त्रासी नैकहू न नए॥
तोरि पलक कपाट घूघट ओट मेटि गए।
मिले हरि को जाइ आतुर जे है गुणनि मए॥
मुकुट कुण्डल पीतपट कटि ललित भेस ठए।
जाइ लुब्धे निरखि वह छवि "सूर" नन्द-जए॥

( १५ )

बिछुरे श्री व्रजराज आजु तौ नैनन ते परतीत गई।
उठि न गई हरि सग तबहि ते ह्वै न गई सखि श्याममई॥
रूप रसिक लालची कहावत सो करनी कछुवै न भई।

साचे क्रूर कुटिल ए लोचन व्यथा मीनछवि मानो छीनलई ॥
अब काहे जल मोचत सोचत समौ गए ते शूल नए ।
"सूरदास" याही ते जड़ भए इन पलकन ही दगा दए ॥

( १६ )

यशोदा वार वार यो भाषै ।
है कोई ब्रज हितू हमारी चलत गोपालहिं राखै ॥
कहा काज मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलायौ ।
सुफलक सुत मेरे प्राण हतन को काल रूप ह्वै आयौ ॥
बरु ये गोधन हरो कस सब मोहि बदी ले मेलौ ।
इतने ही सुख कमल नयन मेरी अखियन आगे खेलौ ॥
बासर बदन बिलोकत जीवो निसि निज अङ्क मे लाओ ।
तेहि बिछुरत जो जीवो कर्मवश तौ हसि काहि बुलाओ ॥
कमल नयन गुण टेरत टेरत अधर बदन कुम्हिलानी ।
"सूर" कहा लगि प्रकट जनाऊ दुखित नन्दजू की रानी ॥

( १७ )

अरी मोहिं भवन भयानक लागे, माई ! श्याम बिना ।
देखहि जाइ काहि लोचन भरि नन्द महरि के अगना ॥
लै जु गये अक्रूर ताहिं को ब्रज के प्राणधना ।
कौन सहाय करे घर अपने मेटे विघन घना ॥
काहि उठाइ गोद करि लीजै करि करि मन मगना ।
"सूरदास" मोहन दरसन बिन सुख सपति सपना ॥

( १८ )

नैन सलोने श्याम, हरि कब आवहिंगे ।
वे जो देखत राते राते फूलन फूले डार ।
हरि बिन फूल झरी सी लागत झरिझरि परत अगार ॥
फूल बिनन ना जाऊ सखीरी हरि बिन कैसे फूल ।
सुनरी सखी मोहिं राम दुहाई लागत फूल त्रिशूल ॥

जब तें पनिघट जाऊ सखीरी वा जमुना के तीर।
भरि भरि यमुना उमडि चलत है इन नैनन के नीर ॥
इन नैनन के नीर सखीरी सेज भई घरनाव।
चाहत हौं ताही पै चढिके हरि जी के ढिग जाव ॥
लाल पियारे प्राण हमारे रहे अधर पर आय।
'सूरदास" प्रभु कुज बिहारी मिलत नही क्यो धाय ॥

( १९ )

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतग करी दीपक सो आपै प्राण दह्यो ॥
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सो सम्पति हाथ गह्यो।
सारग प्रीति करी जो नाद सो सन्मुख बाण सह्यो ॥
हम जो प्रीति करी माधव सो चलत न कछू कह्यो।
"सूरदास" प्रभु विन दुख दूनो नैनन नीर बह्यो ॥

( २० )

प्रीति तौ मरनऊ न बिचारै।
प्रीति पतग जोति पावक ज्यो जरत न आपु सभारै।
प्रीति कुरग नाद स्वर मोहित वधिक निकट ह्वै मारै।
प्रीति परेवा उडत गगन ते उडत न आपु सभारै ॥
सावन मास पपीहा बोलत पिउ पिउ करि जो पुकारै।
"सूरदास" प्रभु दरसन कारन ऐसी भाति विचारै ॥

( २१ )

जिन कोउ काहु के वश होहि।
ज्यो चकोर दिनकर वश डोलत मोहं फिरावत मोहि ॥
हम तो रीझ लटू भइ लालन महा प्रेम जिय जानि।
बन्ध अबन्ध अमति निशिवासर को सुरझावति आनि ॥
उरझे सग अग अग प्रति विरह बेलि की नाई।
मुकुलित कुसुम नैन निद्रा तजि रूप सुधा सियराई ॥

अति आधीन हीन अति व्याकुल कहा लो कहो बनाइ।
ऐसी प्रीति करी रचना पर "सूरदास" बलि जाइ ॥

( २२ )

कह्यो कान्ह सुन यशुमति मैया।
आवहिंगे दिन चार पाच मे हम हलधर दोउ भैया।
मुरली वेत विषाण देखिये शृंगी बेर सवेरो।
लै जिनि जाइ चुराइ राधिका कछुक खिलौना मेरो ॥
जा दिन ते तुमसे बिछुरे हम कोऊ न कहत कन्हैया।
भोरहि नाहि कलेऊ कीनो साझ न पय पीयो ना घैया ॥
कहत न बन्यो सदेशो मोपै जननि जितो दुख पायो।
अब हम सों वसुदेव देवकी कहत आपनो जायो ॥
कहिये कहा नन्द बाबा सो बहुत निठुर मन कीनो।
"सूर" हमहि पहुचाइ मधुपुरी बहुरो सोध न लीनो ॥

( २३ )

मधुकर हम न होहि वे बेली।
जिन भजि तजि तुम फिरत और रग करत कुसुम रस केली ॥
वारे ते वर बाजि बढी हैं अरु पोषी पिय पानि।
बिनु पिय परस प्रात उठि फूलत होत सदा हित हानि ॥
है बेली विरहा वृन्दावन उरझी श्याम तमाल।
पुहुप वास रस रसिक हमारे विलसत मधुप गोपाल ॥
योग समीर धीर नहि डोलत रूप डार ढिग लागि।
"सूर" परागनि तजति हिये ते श्री गुपाल अनुरागि ॥

( २४ )

समुझि न परत तुम्हारी ऊधो।
ज्यो त्रिदोष उपजे जक लागत बोलत वचन न सूधो ॥
आपुन को उपचार करो कछु तब औरन सिख देहू।
बडो रोग उपज्यो है तुमको मौन सवारे लेहू ॥

वहाँ भेषज नाना विधि को अरु मधुरिपु से है वैद ।
हम कान्र डरपत अपने सिर यह कलक है कैद ॥
साची वात छाड कत झूठी कहो कौन विधि सुनही ।
"सूरदास" मुकताहल भोगी हम ज्वारि को चुनही ॥

( २५ )

अखिया हरि दरसन की प्यासी ।
देख्यो चाहत कमलनैन को निसिदिन रहत उदासी ॥
आये ऊधो फिरि गये आगन डारि गये गर फासी ।
केसरि को तिलक मोतिन की माला बृन्दावन को वासी ॥
काहू के मन की कोऊ न जानत लोगन के मन हासी ।
सूरदास प्रभु तुमरे दरस को जाइ करवट ल्यो कासी ॥

( २६ )

ऊधो अखिया अति अनुरागी ।
इकटक मग जोवति अरु रोवति भूलेहु पलक न लागी ॥
बिन पावस पावस ऋतु आई देखत है विदमान ।
अब धौ कहा कियो चाहत है छाडहु निर्गुन ज्ञान ॥
सुनि प्रिय सखा श्यामसुन्दर के जानत सकल सुभाइ ।
जैसे मिलैं सूर के स्वामी तैसी करहु उपाइ ॥

( २७ )

हमको हरि की कथा सुनाउ ।
ये आपनी ज्ञान गाथा अलि मथुरा ही लै जाउ ॥
वे नर नारिन ही समुझहिंगी तेरो बचन बनाउ ।
पालागों ऐसी इन बातनि उनही जाइ रिझाउ ॥
जो शुचिसखा श्यामसुन्दर को अरु जिय अति सतिभाउ ।
तो बारक आतुर इन नैनन वह मुख आनि दिखाउ ॥
जो कोउ कोटि करै कैसे हू विधि विद्या व्यसाउ ।
तो सुन "सूर" मीन को जल बिन नाहि न और उपाउ ॥

( २८ )

ऊधो जी हमहिं न योग सिखैये।
जेहि उपदेश मिले हरि हमको सो व्रत नेम बतैये ॥
मुक्ति रहो घर बैठि आपने निरगुन सुनत दुख पैये।
जेहि सिर केस कुसुम भरि गूथे तेहि कैसे भसम चढैये ॥
जानि जानि सब मगन भये है आपुन आपु लखैये।
"सूरदास" प्रभु सुनत न वा विधि बहुरि किया व्रज ऐये ॥

( २९ )

ऊधो कहा मति दीन्हो हमहिं गोपाल।
आवहु री सखी सब मिलि बैठो जो पावे नदलाल ॥
घर बाहर ते बोलि लेहु सब जावदेक व्रजबाल।
कमलासन बैठहु री माई मूदहु नैन विशाल ॥
षटपद कही सोऊ करि देखी हाथ कछू नहिं आई।
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन नेकु न देत दिखाई ॥
फिरि भई मगन विरह सागर मे काहुहि सुधि न रही।
पूरण प्रेम देखि गोपिन को मधुकर मौन गही ॥
कछु ध्वनि सुनि स्रवनन चातक की प्रान पलटि तनु आये।
"सूर" सो अब के टेरि पपीहै विरही मृतक जिवाये ॥

( ३० )

मुख देखे की कौन मिताई।
जैसे कृपनहिं दीन मागनो लालच लीने करत बडाई ॥
प्रीतम सो जो रहे एक रस निसिवासर बढि प्रेम सवाई।
चित महिं और कपट अन्तर्गत ज्यो फलखीर नीर चिकनाई ॥
तब वह करी नन्द नन्दन अलि बन बेली रसरास खिलाई।
अब यह कितही दूर मधुपुरी ज्यो उडि भवर बेल तजि जाई ॥
योग सिखाये क्यो मनमानै क्योऽब ओसकन प्यास बुझाई।
"सूरदास" उदास भई हम पूरब प्रीति उघरि निज आई ॥

( ३१ )

ऊधो योग योग हम नाही।
अबला सार ज्ञान कहा जानै कैसे ध्यान धराही ॥
ते ये मूदन नैन कहत है हरि मूरति जा माही।
ऐसी कथा कपट की मधुकर हमते सुनी न जाही ॥
स्रवन चीर अरु जटा बधावहु ये दुख कौन समाही।
चदन तजि अग भस्म बतावत विरह अनल अति दाही ॥
योगी भरमत जेहि लगि भूले सो तो है अपु माही।
"सूरदास" ते न्यारे न पल छिन ज्यो घट ते परछाही ॥

( ३२ )

कहा लौ कीजै बहुत बडाई।
अति अगाध मन अगम अगोचर मनसो तहा न जाई ॥
जाके रूप न रेख बरन वपु नाहिन सङ्गत सखा सहाई।
ता निर्गुण सो नेह निरन्तर क्यो निवहै री माई ॥
जल बिन तरग भीति बिन लेखन बिन चेतहि चतुराई।
या ब्रज मे कछु नही चाह है ऊधो आनि सुनाई ॥
मन चुभि रह्यो माधुरी मूरति अग अग उरझाई।
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन "सूरदास" सुखदाई ॥

( ३३ )

कहत कत परदेसी की बात।
मन्दिर अरध अवधि बदि हम सो हरि अहार चलि जात ॥
शशि रिपु वरष सूर रिपु युगवर हर रिपु किये फिरे घात।
मघ पचक लै गये श्यामघन आइ बनी यह बात ॥
नखत वेद ग्रह जोरि अर्द्ध करि को बरजै हम खात।
"सूरदास" प्रभु तुमहि मिलन को कर मीजत पछितात ॥

( ३४ )

ऊधो जो तुम हमहि बतायो।

सो हम निपट कठिनई करि करि या मन को समुझायो ॥
योग याचना जबहि अगह गहि तबही है सो ल्यायो।
भटक परचो बोहित के खग ज्यो फिरि हरि ही पै आयो ॥
अब कै तो सोई उपदेशो जेहि जिय जाय जिआयो।
बारक मिलै "सूर" के प्रभु तौ करौ आपनो भायो ॥

( ३५ )

मधुकर इतनी कहियहु जाइ।
अति कृसगात भई ये तुम बिन परम दुखारी गाय ॥
जल समूह बरसत दोउ आखै हूकति लीने नाउ।
जहाँ जहाँ गोदोहन कीनो सूघति सोई ठाउ ॥
परति पछार खाइ छिनही छिन अति आतुर ह्वै दीन।
मानहु "सूर" काढि डारी है बारि मध्य ते मीन ॥

( ३६ )

जाके रूप बरन बपु नाही। नैन मूदि चितवो चित माही ॥
हृदय कमल मे ज्योति विराजै। अनहद नाद निरन्तर बाजै ॥
इडा पिंगला सुखमन नारी। सहज सु तामे बसै मुरारी ॥
माता पिता न दारा भाई। जल थल घट-घट रह्यो समाई ॥
इहि प्रकार भव दुख सरि तरहू। योग पथ क्रम क्रम अनुसरहू ॥

( ३७ )

प्रेम प्रेम ते होय, प्रेम ते पर है जीये।
प्रेम बधो ससार, प्रेम परमारथ लहिये ॥
एकै निश्चय प्रेम को, जीवन मुक्ति रसाल।
साचो निश्चय प्रेम को, जिहि रे मिलै गोपाल ॥
ऊधो कहि सतभाय, न्याय तुम्हरे मुख साचे।
योग प्रेमरस कथा, कहो कचन की काचे ॥
जाके पर है हूजिये, गहिये सोई नेम।
मधुप हमारी सो कहो, योग भलो या प्रेम ॥

सुनि गोपी के बैन, नेम ऊधो के भूले।
गावत गुन गोपाल, फिरत कुजन मे फूले॥
खिन गोपी के पा परै, धन्य सोइ है नेम।
धाइ धाइ द्रुम भेटही, ऊधो छाके प्रेम॥
धनि गोपी धनि ग्वाल, धन्य सुरभी बनचारी।
धनि यह पावन भूमि, जहाँ गोविंद अभिसारी॥
उपदेसन आये हुते, मोहिं भयो उपदेस।
ऊधो यदुपति पै चले, धरे गोप को भेस॥
भूले यदुपति नाव, कहो गोपाल गोसाई।
एक बार ब्रज जाहु, देहु गोपिन दिखराई॥
वृन्दाबन सुख छाडि कै, कहा बसे हो आइ।
गोबर्द्धन प्रभु जानि कै, ऊधो पकरे पाइ॥
ऊधो ब्रज को नेम, प्रेम बरनो सब आई।
उमग्यो नैनन नीर, बात कछु कह्यो न जाई॥
"सूर" श्याम भूलत भये, रहे नैन जल छाइ।
पोछि पीतपट सो कह्यो, भल आये योग सिखाइ॥

( ३८ )

कहा लौ कहिये ब्रज की बात।
सुनहु श्याम तुम बिन उन लोगन जैसे दिवस बिहात॥
गोपी गाइ ग्वाल गोसुत वै मलिन बदन कृस गात।
परम दीन जनु सिसिर हिमी हत अबुज गत बिन पात॥
जाकहु आवत देखि दूरते सब पूछति कुसलात।
चलन न देत प्रेम आतुर उर कर चरनन लपटात॥
पिक चातक वन बसन न पावहिं बायस बलिहि न खात।
"सूर" श्याम सदेसन के डर पथिक न उहि मग जात॥

( ३९ )

सुन ऊधो मोहिं नेक न बिसरत वे ब्रजवासी लोग।

तुम उनको कछु भली न कीनी निसिदिन दियो बियोग ॥
यदपि वसुदेव देवकी मथुरा सकल राजसुख भोग ।
तद्यपि मनहि बसत बशीवट ब्रज यमुना संयोग ॥
वे उत रहत प्रेम अवलम्बन इतते पठयो योग ।
"सूर" उसास छाडि भरि लोचन बढ्यो विरह ज्वर सोग ॥

( ४० )

ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाही ।
वृन्दाबन गोकुल तन आवत सघन तृणन की छाही ॥
प्रात समय माता यसुमति अस नन्द देख सुख पावत ।
माखन रोटी दह्यो सजायो अति हित साथ खवावत ॥
गोपी ग्वाल बाल सग खेलत सब दिन हसत खिरात ।
"सूरदास" धनि धनि ब्रजवासी जिन सो हसत ब्रजनाथ ॥

( ४१ )

हरि बिन कौन दरिद्र हरै ।
कहत सुदामा सुन सुन्दरि जिय मिलन न हरि बिसरै ॥
और मित्र ऐसे समया मह कत पहिचान करै ।
बिपति परे कुसलात न बूझै बात नही उचरै ॥
उठिके मिले तदुल हम दीने मोहन बचन फुरै ।
"सूरदास" स्वामी की महिमा टारी विधि न टरै ॥

( ४२ )

और को जाने रस की रीति ।
कहा हौं दीन कहा त्रिभुवनपति मिले पुरातन प्रीति ॥
चतुरानन सन निमिष न चितवत इती राज की नीति ।
मोसे बात कही हिरदय की गये जाहि युग बीति ॥
बिनु गोबिन्द सकल सुख सुन्दरि भुस पर की सी भीति ।
हौ कहा कहो "सूर" के प्रभु की निगम करत जाकी कीत ॥

( ४३ )

नैना भये अनाथ हमारे।
मदन गोपाल वहा ते सजनी सुनियत दूरि सिधारे ।।
वे जल सर हम मीन बापुरी कैसे जिवहिं निनारे।
हम चातक चकोर श्यामघन बदन सुधानिधि प्यारे ।।
मधुबन बसत आस दरसन की जोई नैन मग हारे।
"सूरज" श्याम करी पिय ऐसी मृतकहु ते पुनि मारे ।।

( ४४ )

रुक्मिनि मोहिं ब्रज बिसरत नाही।
वा क्रीडा खेलत यमुना तट विमल कदम की छाही ।।
सकल सखा अरु नन्द यसोदा वे चितते न टराही।
सुत हित जानि नन्द प्रतिपाले बिछुरत विपति सहाही ।।
यद्यपि सुखनिधान द्वारावति तउ मन कहु न रहाही।
"सूरदास" प्रभु कुजबिहारी सुमिरि सुमिरि पछताही ।।

( ४५ )

सखीरी श्याम सबै इक सार।
मीठे बचन सुहाये बोलत अन्तर जारनहार ।।
भवर कुरग काम अरु कोकिल कपटिन की चटसार ।।
सुनहु सखीरी दोष न काहू जो विधि लिखो लिलार ।।
उमडी घटा नाखि आवे पावस प्रेम की प्रीति अपार ।
"सूरदास" सरिता सर पोखत चातक करत पुकार ।।

( ४६ )

सखीरी श्याम कहा हित जानै।
कोऊ प्रीति करे कैसेहू वे अपनो गुन ठानै ।।
देखो या जलधर की करनी बरसत पोषै आनै।
"सूरदास" सरबस जो दीजै कारो कृतहि न मानै ।।

( ४७ )

मेरे कुअर कान्ह बिनु सब कुछ वैसहि धरयो रहै।
को उठि प्रात होत ले माखन को कर नेत गहै॥
सूने भवन यसोदा सुत के गुन गुनि सूल सहै।
दिन उठि घेरत ही घर ग्वारिनि उरहन कोउ न कहै॥
जो ब्रज मे आनन्द हो तो मुनि मनसाहू न गहै।
"सूरदास" स्वामी बिनु गोकुल कौडीहू न लहै॥

( ४८ )

जन्म सिरानो ऐसे ऐसे।
कै घर घर भरमत यदुपति बिन कै सोवत कै वैसे॥
कै कहु खान पान रसनादिक कै कहु बाद अनैसे।
कै कहु रक कहू ईश्वरता नट बाजीगर जैसे॥
चेत्यो नही गयो टरि अवसर मीन बिना जल जैसे।
यह गति भई "सूर" की ऐसी श्याम मिलै धौ कैसे॥

( ४९ )

काया हरि के काम न आई।
भाव भक्ति जह हरियश सुनयो तहा जात अलसाई॥
लोभातुर ह्वै काम मनोरथ तहा सुनत उठि धाई।
चरन कमल सुन्दर जह हरि को क्योहू न जात नवाई॥
जब लगि श्याम अग नहि परसत आखे जोग रमाई।
"सूरदास" भगवत भजन बिनु विषय परम विष खाई॥

( ५० )

सबै दिन गये विषय के हेत।
तीनौपन ऐसे ही बीते केस भये सिर सेत॥
आखिन अन्ध श्रवण नहि सुनियत थाके चरन समेत।
गगाजल तजि पियत कूपजल हरि तजि पूजत प्रेत॥
राम नाम विन क्यो छूटोगे चन्द्र गहे ज्यो केत।
"सूरदास" कछु खर्च न लागत राम नाम मुख लेत॥

( ५१ )

जो तू राम नाम चित धरतो।
अबको जन्म आगलो तेरो, दोऊ जन्म सुधरतौ॥
यम को त्रास सबै मिटि जातो भक्त नाम तेरो परतौ।
तदुल घृत सवारि श्याम को सत परोसो करतौ॥
होतो नफा साधु की सगति मूल गाठते टरतौ।
"सूरदास" बैकुण्ठ पैठ मे कोऊ न फेट पकरतौ॥

( ५२ )

दो मे एको तो न भई।
ना हरि भजे न गृह सुख पाये वृथा बिहाय गई॥
ठानी हुती और कछु मन मे औरै आनि भई।
अविगत गति कछु समुझि परत नहि जो कछु करत दई॥
सुत सनेह तिय सकल कुटुम मिलि निसिदिन होत खई।
पद नख चद चकोर विमुख मन खात अगार भई॥
विषय विकार दवानल उपजी मोह बयार बई।
भ्रमत भ्रमत बहुते दुख पायो अजहु न टेव गई॥
कहा होत अब के पछताने होती सिर बितई।
"सूरदास" सेये न कृपानिधि जो सुख सकल मई॥

( ५३ )

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगुल कमल पर गजवर क्रीडत तापर सिंह करत अनुराग॥
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कज पराग।
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर ताहू पर अमृत फल लाग॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पालव, ता पर सुक, पिक, मृगमद, काग।
खजन धनुष चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर यक मनिधर नाग॥
अग अग प्रति और और छवि उपमा ताको करत न त्याग।'
"सूरदास" प्रभु पियहु सुधारस मानहु अधरन को बड भाग॥

( ५४ )

आपको आपनही विसरो।
जैसे स्वान काच के मन्दिर भ्रमि भ्रमि भूकि मरो।
ज्यो केहरि प्रतिमा के देखत बरबस कूप परो॥
मरकट मूठि छोडि नही दीनी घर घर द्वार फिरो।
"सूरदास" नलिनी के सुवना कह कौने पकरो॥

( ५५ )

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो।
समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो॥
इक नदिया इक नार कहावत मैलोहि नीर भरो।
जब दोनो मिल एक बरन भये सुरसरि नाम परो॥
इक लोहा पूजा मे राखत इक घर बधिक परो।
पारस गुन अवगुन नहि चितवै कचन करत खरो॥
यह माया भ्रम जाल कहावै "सूरदास" सगरो।
अबकी बार मोहि पार उतारो नहि प्रन जात टरो॥

( ५६ )

जा दिन मन पछी उडि जैहे।
ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहे॥
घर के कहे बेग ही काढो भूत भये कोउ खैहे।
जा प्रीतम से प्रीति घनेरी सोऊ देखि डरैहे॥
कह वह ताल कहा वह सोभा देखत धूर उडैहे।
भाई बधु कुटुम्ब कबीला सुमिरि सुमिरि पछतैहे॥
बिन गोपाल कोऊ नहि अपना जस कीरति रहि जैहै।
सो तो "सूर" दुर्लभ देवन को सतसगति मे पैहै॥

( ५७ )

छाड़ मन हरि बिमुखन को सग।
जाके सग कुबुद्धी उपजै परत भजन मे भग॥

कागहि कहा कपूर खवाये स्वान न्हवाये गग ।
खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषण अग ॥
पाहन पतित बान नहिं वेधत रीतो करत निपग ।
"सूरदास" खल कारी कामरि चढत न दूजो रग ॥

( दोहे )

भौरा भोगी बन भ्रमै, मोद न मानै ताप ।
सब कुसुमनि मिल रस करै, कमल बँधारै आप ॥ १ ॥
सुनि परमित पिय प्रेम की, चातक चितवत पारि ।
घन आशा सब दुख सहै, अत न याँचे वारि ॥ २ ॥
देखो करनी कमल की, कीनो जल सो हेत ।
प्राण तज्यो प्रेम न तज्यो, सूख्यो सरहिं समेत ॥ ३ ॥
दीपक पीर न जानई, पावक परत पतङ्ग ।
तनु तो तिहि ज्वाला जरयो, चित न भयो रस भङ्ग ॥ ४ ॥
मीन वियोग न सहि सकै, नीर न पूछै बात ।
देखि जु तू ताकी गतिहि, रति न घटै तन जात ॥ ५ ॥
प्रीति परेवा की गनो, चाहत चढन अकास ।
तह चढि तीय जु देखिये, परत छाड उर स्वास ॥ ६ ॥
सुमर सनेह कुरङ्ग को, पवन न राच्यो राग ।
धरि न सकत पग पछमनो, सर सनमुख उर लाग ॥ ७ ॥
सब रस को रस प्रेम है, विषयी खेलै सार ।
तन, मन, धन, यौवन खिसै, तऊ न माने हार ॥ ८ ॥
तै जु रतन पायो भलो, जान्यो साधु समाज ।
प्रेमकथा अनुदिन सुनी, तऊ न उपजी लाज ॥ ९ ॥
सदा सघाती आपनो, जिय को जीवन प्रान ।
सो तू विसरयो सहज ही, हरि ईश्वर भगवान ॥ १० ॥
वेद पुरान स्मृति सबै, सुर नर सेवत जाहि ।
महामूढ अज्ञान मति, क्यो न सभारत ताहि ॥ ११ ॥

खग मृग मीन पतग लौ , मै सोवे सब ठौर ।
जल थल जीव जिते तिते , कहो कहा लगि और ॥ १२ ॥
प्रभु पूरन पावन सखा , प्राननहू को नाथ ।
परम दयालु कृपालु प्रभु , जीवन जाके हाथ ॥ १३ ॥
गर्भवास अति त्रास मे , जहा न एको अग ।
सुनि सठ तेरो प्रानपति , तहा न छाड्यो सग ॥ १४ ॥
दिना राति पोखत रह्यो , ज्यो तंबोली पान ।
वा दुख ते तोहि काढि कै , लै दीनो पय मान ॥ १५ ॥
जिन जड ते चेतन कियो , रचि गुन तत्व-विधान ।
चरन चिकुर कर नख दिये , नयन नासिका कान ॥ १६ ॥
असन बसन बहुविधि दिये , औसर-औसर आनि ।
मात पिता भैया मिले , नई रुचहि पहिचानि ॥ १७ ॥
सजन कुटुम परिजन बढे , सुत दारा धन धाम ।
महामूढ विषयी भयो , चित आकर्ष्यो काम ॥ १८ ॥
खान पान परिधान रस , यौवन गयो व्यतीत ।
ज्यो बिट परि परतीय बस , भोर भये भयभीत ॥ १९ ॥
जैसे सुख ही मन बढ्यो , तैसे बढ्यो अनग ।
धूम बढ्यो लोचन खस्यो , सखा न सूझ्यो सग ॥ २० ॥
जम जान्यो सब जग सुन्यो , वाढ्यो अजस अपार ।
बीच न काहू तब कियो , (जब) दूतनि काढ्यो वार ॥ २१ ॥
कह जानो कहँवा मुवो , ऐसे कुमति कुमीच ।
हरिसो हेत विसारि के , सुख चाहत है नीच ॥ २२ ॥
जो पै जिय लज्जा नही , कहा कहौ सौ वार ।
एकहु अंक न हरि भजे , रे सठ "सूर" गँवार ॥ २३ ॥

# मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी का असली नाम मुहम्मद था। मलिक इनकी उपाधि थी, और जायस मे रहने के कारण लोग इनको जायसी कहते थे। वास्तव मे यह जायस के रहनेवाले न थे। पद्मावतके तेईसवे दोहे की पहली चौपाई—"जायस नगर धरम असथानू, तहा आइ कवि कीन्ह बखानू" से स्पष्ट है कि ये कही बाहर से जायस मे आये और वहा इन्होने पद्मावत लिखी। जायसी रायबरेली जिले मे एक बडा कस्बा और रेल का स्टेशन है।

बहुत से लोग कहते है कि इनका जन्म-स्थान गाजीपुर है। ये एक दरिद्रकुल में उत्पन्न हुए थे। सात वर्ष की अवस्था मे शीतला निकलने से इनकी दाहिनी आख जाती रही और चेहरा भी ऊबडखाबड होगया। इसी अवसर मे इनकी माता भी मर गई। पिता शीतला निकलने के पहले ही मर चुके थे। ये अनाथ होकर साधु-फकीरो के साथ फिरने लगे और उनकी सगति से ही इन्होने बहुत-सी बाते सीखी। वेदान्त और योग-क्रिया की भी बहुत-सी बाते इनको मालूम थी। पद्मावत मे स्थान-स्थान पर इन्होने अपने इस ज्ञान का परिचय दिया है। अखरावट मे तो वेदान्त ही की चर्चा मुख्य है।

योगी समझकर बहुत से लोग इनके शिष्य होगये। शिष्य लोग इनके बनाये हुये बारहमासो को गाया करते थे। इनका एक चेला अमेठी आया। वह इनका बनाया हुआ नागमती का बारहमासा गा-गाकर घर-घर भीख मागा करता था। एक दिन अमेठी के राजा ने भी उसे सुना। उन्हे वह बहुत पसद आया। खासकर इस दोहे ने तो उनके हृदय पर बहुत ही प्रभाव डाला—

"कवल जो विगसत मानसर, विनु जल गयउ सुखाइ।
सूख वेलि फिर पलुहइ, जउ पिउ सीचइ आइ॥"

राजा ने उस चेले से बारहमासे के रचयिता का परिचय पाकर मलिक

मुहम्मद को लाने के लिए अपना एक सरदार भेजा। तब से मलिक मुहम्मद अमेठी मे रहने लगे। राजा को कोई संतान न थी। मलिक मुहम्मद की कृपा से उनका वंश चला। तब से इनका बहुत आदर होने लगा। वही पर इनका देहान्त भी हुआ। राजा ने अपने महल से उत्तर की ओर थोड़ी दूर पर इनकी कब्र बनवादी, जो अब तक है।

एक दिन अवध के एक रईस ने इनके चेहरे को देखकर ठट्ठा मार-कर हंस दिया। इस पर इन्होने बडे धैर्य्य से कहा—

"मोंहि का हँससि कि कोहरहिं"

अर्थात् मेरी हँसी उडाते हो या उस कुम्हार की, जिसने मुझे ऐसा कुरूप गढा है? इस पर रईस साहब बहुत शर्मिन्दा हुए और इनका परिचय पाकर उन्होंने अपने अपराध की क्षमा मागी।

जायसी के जन्म-मरण की ठीक तिथि का पता नही चलता। पद्मावत मे उसका रचनाकाल हिजरी सन् ९२७ (सं० १५८४) दिया हुआ है। इससे इनके समय का अनुमान किया जा सकता है।

जायसी ने दो पुस्तके पद्य मे लिखी, एक पद्मावत और दूसरी अखरावट। पद्मावत मे रानी पद्मावती की कहानी बड़ी कुशलता से लिखी गई है। यद्यपि उसकी भाषा जायस के आसपास की देहाती है, परन्तु उसमे रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमा आदि का बहुत सुन्दर समावेश हुआ है। सारी कथा दोहे-चौपाई मे है। मुसलमान होने पर भी प्रसग के अनुसार हिन्दू देवताओ के प्रति भक्ति का वर्णन करने मे जायसी ने बडी उदार-हृदयता का परिचय दिया है। एक मुसलमान के द्वारा हिन्दी-भाषा की ऐसी सेवा होनी बडे हर्ष की बात है।

अखरावट पद्मावत के बाद बना। अखरावट मे क से लेकर प्रायः सभी अक्षरो पर कविता की गई है। इसमे ईश्वर की स्तुति और ससार की असारता बतलाई गई है।

जायसी की कविता का कुछ नमूना हम आगे प्रस्तुत करते हैं—

## राजा का स्वर्गवास ( पद्मावत से )

तौलहि श्वास पेट महँ अही । जौलहि दशा जीउ की रही ॥
काल आइ देखलाई साटी । उठि जिय चला छाड़ के माटी ॥
काकर लोग कुटुम घर बारू । काकर अर्थ द्रव्य ससारू ॥
वही घडी सब भयो परावा । आपन सोइ जो परसा खावा ॥
रहि जे हितू साथ के नेगी । सबै लागि काढन तेहि बेगी ॥
हाथ झार जस चलै जुवारी । तजा राज ह्वै चला भिखारी ॥
जब लग जीव रतन सब काहा । भा बिन जीव न कौड़ी लाहा ॥

गढ सौंपा तेहिं बादल, गये टेकत बसुदेव ।
छोडी राम अयोध्या, जो भावै सो लेव ॥

पद्मावति पुनि पहरि पटोरा । चली साथ पिय के ह्वै जोरा ॥
सूरज छिपा रयनि ह्वै गई । पूनो शशि सो अमावस भई ॥
छोरे केश मोति लट छूटी । जानो रयनि नखत सब छूटी ॥
सेंदुर परा जो शीस उघारी । आग लाग चहि जग अँधियारी ॥
यही दिवस हो चाहत नाही । चलो साथ पिय दै गलबाही ॥
सारस पखि नहिं जिये निरारे । हौं तुम बिन का जियो पियारे ॥
न्योछावर कै तन छहराऊ । छार होऊँ सग बहुर न आऊ ॥

दीपक प्रीति पतग ज्यो, जन्म निवाह करेउ ।
न्योछावर चहुपास ह्वै, कठ लाग जिय देउ ॥

## पद्मावत का सती होना

नागमती पद्मावत रानी । दोउ महासत सती बखानी ॥
दोउ सौत चढ खाट जो बैठी । औ शिवलोक परा तहँ दीठी ॥
बैठो कोइ राज औ पाटा । अन्त सबै बैठे पुनि खाटा ॥
चन्दन अगर काढ सर साजा । और गति देय चले लै राजा ॥
बाजन बाजहिं होय अगोता । दोउ कन्त लै चाहै सोता ॥

एक जो बाजा भयो विवाहू । अब दुसरे है और निबाहू ॥
जियत जलै जौ कन्त की आसा । मुये रहस बैठे इक पासा ॥
आज सूर दिन अथयो, आज रयनि शशि बूड़ ।
आज नाथ जिय दीजिये, आज अगिन हम जूड़ ॥
सर रच दान पुन्य बहु कीन्हा । सात बार फिर भावर लीन्हा ॥
एक जो भावर भयो वियाही । अब दूसर ह्वै गोहन जाही ॥
जियत कन्त तुम हम गल लाई । मुये कण्ठ नहि छाडहु साई ॥
लै सर ऊपर खाट बिछाई । पौढी दोउ कन्त गल लाई ॥
और जो गाठ कन्त तुम जोरी । आदि अन्त लहि जाय न छोरी ॥
यह जगकाह जो अथहि न याथी । हम तुम नाह दोहू जग साथी ॥
लागी कण्ठ अग दै होरी । छार भई जर अग न मोरी ॥
राती पिय के नेह की, स्वर्ग भयो रतनार ।
जो रे उवा सो अथवा, रहा न कोई ससार ॥
वै सहगवन भई जिय आई । बादशाह गढ छेका धाई ॥
तब लग सो अवसर ह्वै बीता । भये अलोप राम औ सीता ॥
आय शाह जो सुना अखारा । ह्वै गइ रात दिवस उजियारा ॥
छार उठाय लीन इक मूठी । दीन्ह उड़ाइ पिरथवी झूठी ॥
सगरे कटक उठाई माटी । पुल बाधा जह जह गढ घाटी ॥
जौ लहि उपर छार नहि परै । तौ लहि यह तृष्णा नहि मरै ॥
भा दहवा भा जूझ असूझा । बादल आय पँवर पर जूझा ॥
जून्हर भईं सब इस्त्री, पुरुष भये सग्राम ।
बादशाह गढ चूरा, चितौर भा इसलाम ॥
मै यह अर्थ पण्डितन बूझा । कह कि हम कुछ और न सूझा ॥
चौदह भुवन जोहत उपराही । सो सब मानुष के घट माही ॥
तन चितौर मन राजा कीन्हा । हिय सिहल बुधि पद्मिनि चीन्हा ॥
गुरू सुवा जेहि पथ दिखावा । बिन गुरु जगत सो निरगुन पावा ॥
नागमती यह दुनिया धधा । बाचा सोई न यह चित बन्धा ॥

राघव दूत सोइ शैतानू । माया अलाउदी सुलतानू ॥
प्रेम कथा यह भाँति विचारू । बूझ लेहु जो बूझहि पारू ॥
तुरकी अरबी हिन्दवी, भाषा जेती आहि ।
जामें मारग प्रेम का, सबै सराहै ताहि ॥

मुहमद कवि यह जोर सुनावा । सुना सो प्रेम पीर का पावा ॥
जोरे लाय रक्त ले गये । प्रेम प्रीति नयनहिं जल भये ॥
औ मैं जान गीत अस कीन्हा । की यह रीति जगत मह चीन्हा ॥
कहाँ सो रतनसेन अब राजा । कहाँ सुवा अस वुध उपराजा ॥
कहाँ अलाउदीन सुलतानू । कहँ राघव जेहि कीन्ह बखानू ॥
कहँ सुरूप पद्मावति रानी । कुछ न रही जग रही कहानी ॥
धन माई यह कीरति तासू । फूल मरै पर मरै न बासू ॥
कौन जगत यश बेचा, कौन लीन यश मोल ।
जो यह पढ़ै कहानी, हम सवरै दोउ बोल ॥

मुहमद वृद्ध बैस जो भई । यौवन हन सो अवस्था गई ॥
बल जो गयो कै खीन शरीरू । दृष्टि गई नयनहि दै नीरू ॥
दसन गये कै वचा कपोला । बैन गये अनरुच दै बोला ॥
वुधि जो गई दै हिय बौराई । गर्व गयो तरिहत शिर नाई ॥
श्रवण गये ऊंच जो सूना । स्याही गये सीस भा धूना ॥
भवर गये केसहिं दे भुवा । यौवन गयो जीत ले जुवा ॥
जो लहि जीवन जोबन साथा । पुनि सो मीच पराये हाथा ॥

## अखरावट

ठा ठाकुर बड़ आप गोसाईं । जेइ सिरजा जग अपनइ नाईं ॥
आपुहि आप जो देखइ चहा । आपन प्रभुता आपसे कहा ॥
सबइ जगत दरपन कै लेखा । आपुहि दरपन आपुहि देखा ॥
आपुहि बन औ आपु पखेरू । आपुहि सउजा आपु अहेरू ॥
आपुहि पुहुप फूल वन फूले । आपहि भवर बासरस भूले ॥
आपुहि फल आपुहि रखवारा । आपुहि सो रस चाखनहारा ॥

आपुहि घटघट मह सुख चाहइ । आपुहि आपन रूप सराहइ ॥
पानी मह जस बुल्ला, तस यह जग उतराइ ।
एकहि आवत देखिये, एकहि जात बिलाइ ॥
सा साँसा जउ लहि दिन चारी । ठाकुर से करि लेहु चिन्हारी ॥
अब न रहहु होहु डिठिआरा । चीन्हि लेहु जो तोहि सवारा ॥
पहले से जो ठाकुर कीजिअ । अइसे जिअन मरन नहिं छीजिअ ॥
छाड़हु घिउ अरु मछरी मासू । सूखे भोजन करहु गरासू ॥
दूध मास घिव करु न अहारू । रोटी सान करहु फरहारू ॥
यहि विधि काम घटावहु काया । काम क्रोध तिसना मद माया ॥
तब बइठउ बजरासन मारी । गहि सुखमना पिङ्गला नारी ॥
प्रेम तन्तु तस लागि रहु, करहु ध्यान चित बाधि ।
पारधि जइस अहेर कह, लागि रहइ सर साधि ॥

## नरोत्तमदास

नरोत्तमदास कस्बा बाडी जिला सीतापुर के रहने वाले ब्राह्मण थे। इनका जन्म स० १५५० के लगभग माना जाता है। शिवसिंह सरोज मे स० १६०२ मे इनका जीवित रहना लिखा है। यह अच्छे कवि थे। १५८२ मे इन्होने सुदामा-चरित्र लिखा। इन्होने ध्रुवचरित्र भी लिखा था। सुदामा-चरित्र हमने देखा है। इनकी कविता बडी सुन्दर है। इनके सुदामा-चरित्र से कुछ नमूने यहा दिये जाते है—

लोचन कमल दुखमोचन तिलक भाल श्रवननि कुण्डल मुकुट धरे माथ है। ओढ़े पीत बसन गरे मै बैजयती माल शख चक्र गदा और पद्म लिये हाथ हैं। कहत नरोत्तम सदीपनि गुरू के पास तुमही कहत हम पढे एक साथ है। द्वारिका के गये हरि दारिद हरेंगे पिय द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ है ॥१॥

सिच्छक हौ सिगरे जग को तिय ताको कहा अब देति है सिच्छा ।
जे तप कै परलोक सुधारत सपति की तिनके नहिं इच्छा ।

मेरे हिये हरि के पद पकज बार हजार लै देखु परिच्छा।
औरन को धन चाहिये बावरी बाँभन को धन केवल भिच्छा ॥२॥

दानी बड़े निहु लोकन मे जग जीवत नाम सदा जिनको लै।
दीनन की सुधि लेत भली बिधि सिद्धि करौ पिय मेरो मतो लै।
दीनदयालु के द्वार न जात सो और के द्वार पै दीन ह्वै बोलै।
श्री जदुनाथ से जाके हितू सो तिहूपन क्यो कन मागत डोलै ॥३॥

क्षत्रिन के प्रन युद्ध जुवा सजि बाजि चढे गज राजन ही।
वैस को बानिज और कृषी, प्रन शूद्र के सेवन-साजन ही।
बिप्रन को प्रन है जु यही सुख सम्पति सो कुछ काज नही।
कै पढिबो कै तपोधन है कन मागत बाभनै लाज नही ॥४॥

कोदो सवा जुरतौ भरिपेट न चाहति हौं दधि दूध मिठौती।
सीत व्यतीत भयौ सिसियातहि हौ हठती पै तुम्हे न हठौती।
जो जनती न हितू हरि सो तौ मै काहे को द्वारिका पेलि पठौती।
या घर ते न गयो कबहू पिय टूटो तवा अरु फूटी कठौती ॥५॥

छाडि सबै तक तोहि लगी बक आठहु जाम यहै जक ठानी।
जातहि दैहै लदाय लढा भरि लैहौ लदाय यहै जिय जानी।
पावे कहा ते अटारी अटा जिनके बिधि दीन्ही है टूटी-सी छानी।
जो पै दरिद्र लिखो है ललाट तो काहू पै मेटि न जात अजानी ॥६॥

फाटे पट टूटी छानि खायौ भीख मागि आनि बिना जग्य बिमुख रहत देव-पित्रई। वै है दीनबन्धु दुखी देख कै दयाल ह्वै है दैहै कछु भलो सौ हौं जानत अगत्रई। द्वारिका लौ जात पिय ! केतौ अलसात तुम काहे कौ लजात भई कौन-सी विचित्रई। जो पै सब जन्म या दरिद्र ही सतायो तोपै कौन काज आइहै कृपानिधि की मित्रई ॥७॥

तै तो कही नीकी सुनि बात हित ही की यही रीति मितई की नित प्रीति सरसाइये। मित्र के मिलेते चित्त चाहिये परसपर मित्र के जो जेइये तो आपहू जेवाइये। वै है महाराज जोरि बैठत समाज भूप तहा

यही रूप जाय कहा सकुचाइये। दुख सुख करि दिन काटे ही बनैगे भूलि विपति परे पै द्वार मित्र के न जाइये ॥८॥

विप्र के भगत हरि जगत-विदित-बन्धु लेत सब ही की सुधि ऐसे महादानि है। पढे एक चटसार कही तुम कैयो बार लोचन-अपार वै तुम्हैं न पहिचानिहै। एक दीनबन्धु कृपासिन्धु फेर गुरूबन्धु तुम सम कौन दीन जाको जिय जानिहै। नाम लेत चौगुनी गये ते द्वार सौगुनी सो देखत सहस्रगुनी प्रीति प्रभु मानिहै ॥९॥

द्वारिका जाहु जू द्वारिका जाहु जू आठहु जाम यहै जक तेरे।
जौ न कहो करिये तौ बड़ो दुख जैए कहा अपनी गति हेरे॥
द्वार खरे प्रभु के छरिया तह भूपति जान न पावत नेरे।
पाच सुपारी तै देखु बिचारिकै भेट कौ चारि न चाउर मेरे ॥१०॥

यह सुनि के तब ब्राह्मनी, गई परोसिनि पास।
पाव सेर चाउर लिये, आई सहित हुलास ॥११॥
सिद्धि करी गनपति सुमिरि, बाधि दुपटिया खूट।
मागत खात चले तहा, मारग वाली बूट ॥१२॥

मगल सगीत धाम धाम मे पुनीत जहा नाचै वारवधू देवनारि अनुहारिका। घटन के नाद कहू वाजन के छाइ रहे कहू पिक केकि पढै सुक और सारिका। रतनन-ठाट हाट-वाटन में देखियत घूमैं गज अस्व रथपती नर-नारिका। दसो-दिसा भीर द्विज धरत न धीर मन उठति है पीर लखि वलवीर द्वारिका ॥१३॥

दीठि चकचौधि गई देखत सुवर्नमयी, एक तें सरस एक द्वारिका के भौन है। पूछे विन कोऊ कहू काहू सों न करै बात देवता-से बैठे सब साधि-साधि मौन है। देखत सुदामै धाय पौरजन गहे पाय, "कृपा करि कहो कहा कीने विप्र गौन है?" "धीरज अधीर के हरन पर-पीर के, बताओ वलवीर के महल यहा कौन है ॥१४॥"

द्वारपाल चलि तह गयो, जहा कृस्न जदुराय।
हाथ जोरि ठाढो भयौ, बोल्यौ सीस नवाय ॥१५॥

सीस पगा न झँगा तन में प्रभु जानै को आहि बसै केहि ग्रामा ।
धोती फटी-सी लटी-दुपटी अरु पांय उपानह की नहिं सामा ।।
द्वार खरो द्विज दुर्बल एक रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा ।
पूछत दीनदयाल के धाम बतावत आपनो नाम सुदामा ।।१६।।

लोचन पूरि रहे जल सो प्रभु दूरि ते देखत ही दुख मेटचो ।
सोच भयौ सुरनायक के कलपद्रुम के हिय माझ खखेटचो ।।
कंप कुबेर हिये सर सो परसे पग जात सुमेर ससेटचो ।
रंक ते राउ भयौ तबही जबही भरि अंक रमापति भेटचो ।।१७।।

ऐसे बेहाल बेवाइन सों पग कंटक जाल लगे पुनि जोये ।
हाय महा दुख पायो सखा तुम आये इतै न कितै दिन खोये ।।
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करिकै करुनानिधि रोये ।
पानी परात को हाथ छुयौ नहिं नैनन के जल सो पग धोये ।।१८।।

तन्दुल तिय दीने हते, आगे धरियो जाय ।
देखि राजसम्पति विभव, दै नहिं सकत लजाय ।।१९।।
अन्तरजामी आप हरि, जानि भगत की रीति ।
सुहृद सुदामा विप्र सो, प्रगट जनाई प्रीति ।।२०।।
कछु भाभी हमको दियो, सो तुम काहे न देत ।
चापि पोटरी काख में, रहे कहो केहि हेत ।।२१।।

आगे चना गुरमात दये ते लये तुम चाबि हमें नहिं दीने ।
स्याम कही मुसकाय सुदामा सो चोरि की बानि मे हौ जु प्रबीने ।।
पोटरी काख मे चापि रहे तुम खोलत नाहिं सुधारस भीने ।
पाछिली बानि अजौ न तजी तुम तैसेई भाभी के तन्दुल कीने ।।२२।।

खोलत सकुचत गाठरी, चितवत हरि की ओर ।
जीरन पट फटि छुटि परे, बिखर गये तेहि ठौर ।।२३।।

तन्दुल मागत मोहन विप्र सकोच ते देत नहीं अभिलाखे ।
है नहिं पास कछू कहि के तेहि गोपि घनी विधि काख मे राखे ।।

सो लखि दीनदयालु उतै यह चोरी करी तुम यो हँसि भाखे।
खोलि के पोट अछोटमुठी गिरिधारन चाउर चाव सो चाखे ॥२४॥
कांपि उठी कमला मन सोचति मो सों कहा हरि को मन औंको।
ऋद्धि कपी सब सिद्धिकपी नवनिद्धि कपी ब्रह्मनायक धौंको॥
सोच भयो सुरनायक के जब दूसरी बार लयो भरि झौंको।
मेरु डरयो बकसै जनि मोहि कुबेर चबावत चाउर चौंको ॥२५॥

हूल हियरा मे कान कानन परी है टेर भेटत सुदामै स्याम बनै न अघातही। कहै नरोत्तम ऋद्धि सिद्धिन में सोर भयो ठाढी थरहरै थौर सोचै कमला तही ॥ नाकलोक नागलोक ओक-ओक थोक-थोक ठाडे थरहरै मुख से कहै न बातही। हालो परयो लाकन मे लालो परयो चक्रिन मे चालो परयो लोगन मे चाउर चबातही ॥२६॥

भौन भरो पकवान मिठाइन लोग कहैं निधि हैं सुखमा के।
साझ सबेरे पिता अभिलाषत दाख न चाखत सिंधु छमा के॥
बाभन एक कोऊ दुखिया सेर-पावक चाउर लायो समा के।
प्रीति की रीति कहा कहिये तिहि बैठि चबात हैं कंत रमा के ॥२७॥

मूठी तीसरी भरत ही, रुकुमिनि पकरी बाह।
ऐसी तुम्हे कहा भई, सपति की अनचाह ॥२८॥
कही रुकुमिनी कान मे, यह धौं कौन मिलाप।
करत सुदामहि आपसों, होत सुदामा आप ॥२९॥

हाथ गह्यो प्रभु को कमला कहै नाथ कहा तुमने चित धारी।
तन्दुल खाय मुठी दुइ दीन कियो तुमने दुइ लोक बिहारी॥
खाय मुठी तिसरी अब नाथ कहा निज बास की आस बिचारी।
रकहि आप समान कियो तुम चाहत आपहि होन भिखारी ॥३०॥

रूपे के रुचिर थार पायस सहित सिता, जीती जिन सोभा है सरदहू के रद की। दूसरे पहिति भात सोधो है सुरभि घृत, फूलेफूले फुलका प्रफुल्ल दुति मंद की॥ पापर मुगौरी बरा ब्यंजन अनेक प्रीति, देवता

बिलोकि रहे देवकी के नद की । या बिधि सुदामाजू को आछेकै जेवाय प्रभु पाछे तै पछयावरि परोसी आनि कद की ॥३१॥

कह्यो विश्वकर्मा को हरि तुम जाय करि नगर सुदामाजी को रचौ वेग अबही । रतन जटित धाम सुवरणमयी सब, कोट औ बजार बाग फूलन के तबही ॥ कल्पवृक्ष द्वार गज रथ असवार प्यादे कीजिये अपार दास दासी देव छबही ॥ इन्द्र औ कुबेर आदि देव बधू अपसरा गधरब गुनी जहा ठाढे रहे सबही ॥३२॥

नित नित सब द्वारावती , दिखराई प्रभु आप ।
भले बाग अनुराग सह , जहा न ब्यापै ताप ॥३३॥
परम कृपा दिन-दिन करी , कृपानाथ जदुराय ।
मित्र-भावना बिस्तरी , दूनो आदर भाय ॥३४॥

दाहिने बेद पढ़ै चतुरानन सामुहे ध्यान महेस धरयो है ।
बाए दुऔ कर जोरे लिए सब देवन साथ सुरेस खरयौ है ॥
एनेइ बीच अनेक लिये धन पायन आय कुबेर परयौ है ।
देखि बिभौ अपनो सपनो बपुरो वह बाभन चौकि परयौ है ॥३५॥

देनो हुतौ सो दै चुके , विप्र न जानी गाथ ।
चलती बेर गोपालजू , कछू न दीन्हो हाथ ॥३६॥
गोपुर लौ पहुचाय कै , फिरे सकल दरबार ।
मित्र वियोगी कृस्न के , नैत्र चली जल - धार ॥३७॥
हो कब इत आवत हुतौ , वाही पठयौ ठेलि ।
कहिहौं धन सो जाइके , अब धन धरौ सकेलि ॥३८॥
बालापन के मित्र है , कहा देउ मै साप ।
जैसौ हरि हमको दियौ , तैसो पइ हैं आप ॥३९॥
और कहा कहिये जहा , कञ्चन हो के धाम ।
निपट कठिन हरिको हियो , मोको दियो न दाम ॥४०॥
मि सोचत-सोचत झखत , आयो निज पुर तीर ।
दीठि परी इकबारही , हय गयद की भीर ॥४१॥

वेई सुरतरु प्रफुलित फुलवारिन मे, वेई सरवर हस बोलन-मिलन को। वेई हेम-हिरन दिसान दहलीजन मे, वेई गजराज हय गरज-पिलन को ।। द्वार द्वार छरी लिये द्वार-पौरिया जो खरे, बोलत मरोर-वरजोर त्यो भिलन को। द्वारका ते चल्यौ भूलि द्वारिका ही आयो नाथ, मागिया न मो पै चारि चाउर गिलन को ।।४२।।

जगर-मगर जोति छाय रही चहु ओर अगर-वगर हाथी-घोरन को रोर है। चौपर को बनो है बजार पुनि सोनान के, महल दुकान की कतार चहुँ ओर हैं।। भीरभार धकापेल चहु दिशि देखियत, द्वरिका तें दूनो यहाँ प्यादन को जोर है। रहिवे को ठाम है न, काहू सो पिछान मेरी, बिन जाने बसे कोऊ हाड मेरे तोर है ।। ४३ ।।

फूटी एक थारी बिन टोटनी की झारी हुती, बास की पिटारी औ कथारी हुती टाट की। बेटे बिन छुरी औ कमंडलु सौ टूक बहो, फटे हुते पावौ पाटी टूटी एक खाट को। पथरौटा, काठ को कठौता कहू दीसै नाहिं, पीत्तर को लोटो हो कटोरो हो न बाटकी। कामरी फटी-सी हुती डोडन की माला ताक, गोमती की माटी की न सुद्ध कहू माट की ।।४४।।

## मीराबाई

मीराबाई जोधपुर मेडता के राठौर रतनसिंहजी की एकलौती बेटी थी। इनका जन्म कुडकी नामक ग्राम मे, सवत् १५५५ वि० और स० १५६० वि० के बीच हुआ था। इनका विवाह उदयपुर के सीसोदिया राजकुल में महाराना सागाजी के कुवर भोजराज के साथ स० १५७३ मे हुआ था। इनका देहान्त कब हुआ—इसका ठीक ठीक पता नही चलता। स्वर्गवासी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का अनुमान है कि मीराबाई ने सवत् १६२० और १६३० वि० के बीच शरीर छोडा।

मीराबाई का समय कौन-सा है ? इस विषय मे बडा मतभेद है। सतवानी के सम्पादक ने इनका जीवन-समय स० १५७३ से १६३० तक माना है और इनको जोधपुर के राठौर राव रत्नजीतसिह की एकलौती

बेटी और उदयपुर के युवराज भोजराज की स्त्री लिखा है । मिश्रबन्धु लिखते है कि "यह बाईजी मेडतिया के राठौर रत्नसिह की पुत्री, राव ईदाजी की पौत्री और जोधपुर के बसानेवाले प्रसिद्ध राव जोधाजी की प्रपौत्री थी । इन्होने १५७३ में चौकडी नामक ग्राम मे जन्म लिया और इनका विवाह महाराना कुमार भोजराज के साथ हुआ । मीराबाई का देहान्त द्वारिकाजी में स० १६०३ मे हुआ । पहले वहुतो का मत था कि मीराबाई राजा कुम्भकरण की स्त्री थी और बाईजी का जन्म-काल स० १४७५ का लोग मानते थे । परन्तु जोधपुर के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुशी देवीप्रसादजी ने मीराबाई के बाबत उपर्युक्त बाते का पता लगाया है, जो अब सर्वसम्मत भी है ।"

टाड साहब लिखते है कि "मैरता निबासी राठौर सरदार दूदाजी की मीराबाई नामक कन्या से महाराणा कुभ का विवाह हुआ था ।" महाराना कुभ सं० १४७५ में चित्तौर के सिहासन पर बैठे और दूदाजी के पिता जोधाजी का स० १५४५ मे ६१ वर्ष की अवस्था मे देहान्त हो चुकी थी । दूदाजी अपने १४ भाइयो मे चौथे थे । अतएव पिता के मरने के समय उनकी अवस्था कम से कम ३० वर्ष की रही होगी अर्थात् १५१५ मे वे उत्पन्न हुए होगे । महाराजा कुभ का देहान्त १५२५ मे हुआ अतएव मीराबाई का राजा कुभ की रानी होना ही नही बल्कि यह भी असम्भव जान पडता है कि वे उनके समय मे पैदा हुई थी ।

रायबहादुर कमलाशंकर प्राणशकर त्रिवेदी, बी० ए० ने "गुजराती भाषानु बृहद् व्याकरण" के "गुजराती भाषानो इतिहास" प्रकरण में २९वे पृष्ठ पर लिखा है कि "नरसिह महेता अने मीराबाई ई० स० ना १५ मा सैका मा थई गयाँ छे ।" पर गुजरात के साहित्यिको मे भी मीराबाई के सम्बन्ध में बहुत मतभेद चल रहा है । मीराबाई के समय-सबन्ध में उनके पदो से जो कुछ पता चलता है, वह यह है कि वे रैदास की शिष्या थी । उनके कितने ही पदो में यह स्पष्ट लिखा हुआ मिलता है कि वे रैदासजी को गुरु मानती थी । प्रमाण के लिए यहा कुछ पद मीराबाई की शब्दा-

वली से उद्धृत किये जाते है.—

१—रैंदास सत मिले मोहिं सतगुरु दीन्हा सुरत सहदानी। पृष्ठ २०

२—गुरुमिलिया रैंदासजी दीन्हो ज्ञान की गुटकी। पृष्ठ २५

३—गुरु रैंदास मिले मोहिं पूरे धुर से कलम भिडी। पृष्ठ ३६

४—मीरा ने गोविंद मिल्या जी गुरु मिलिया रैंदास। पृष्ठ ३७

रैंदासजी कबीर साहब के गुरुभाई थे। कबीर साहब का जन्म सं० १४५५ में और मरण १५७५ में माना जाता है। इसीके आसपास रैंदासजी का भी जीवनकाल रहा होगा। इसी समय के भीतर मीराबाई का भी जीवन-समय होना चाहिए, तभी रैंदासजी का मीराबाई का गुरु होना प्रमाणित हो सकेगा। पता नही, उम्र मे रैंदास बडे थे या कबीर। रैंदास कब मरे, यह भी अनिश्चित है। यदि दोनों का जन्म-मरण-काल एक ही मान लिया जाय तो मीराबाई के जन्म के समय रैंदास १०० वर्ष के रहे होगे। विवाह के पहले ही मीराबाई को रैंदास ने ज्ञानोपदेश किया होगा। क्योकि १५७३ मे मीराबाई का विवाह हो गया। विवाह के बाद १५७३ से १५७५ के भीतर रैंदास को मीराबाई से मिलने का मौका मिलना, मेरी राय में असम्भव ही है। सौ सवासौ वर्ष की उम्र मे रैंदास का राजपूताने जाना यदि सम्भव हो तो मीराबाई का जन्म सं० १५५५ ही ठीक है। इस हिसाब से मिश्रबधुओ ने और सतबानी के सम्पादक ने जो मीराबाई का समय निर्धारित किया है यह गलत ठहरता है। उस समय रैंदास का मीराबाई से सत्सग होना असम्भव है।

कहा जाता है कि विवाह होने वर मीरावाई चित्तौड गईं, वहाँ विवाह होने से दस बरस के भीतर ही यह विधवा होगईं, परन्तु इनको इस बात का कुछ भी शोक न हुआ। क्योकि इनके हृदय मे गिरिधर गोपाल के लिए बडी भक्ति थी और ये रात दिन गिरिधर नागर के प्रेम में ही मतवाली रहती थी। अपने कुलकी लज्जा छोडकर जब यह बेधडक साधु-सेवा करने लगी, तब यह बात इनके देवर विक्रमाजीत को, जो महाराना रतनसिंह के बाद चित्तौड की गद्दी पर बैठे थे, बहुत खटकी। उन्होंने

मीरा को बहुत समझाया और चम्पा और चमेली नाम की दो दासिया इस अभिप्राय से मीरा के पास रक्खी कि वे साधु-सगति की ओर से मीरा का चित्त हटाती रहे, परन्तु मीरा की सगति से उन दोनो दासियो पर भी भक्ति का रग चढ गया। तब राणा ने अपनी सगी बहन ऊदा का मीराबाई के पास समझाने के लिए भेजा। परन्तु मीरा अपने प्रण से नही टली, उलटे ऊदा का ही चित्त मीरा के प्रेम पर आसक्त होगया। वह मीरा की चेली हो गई। तब राणा ने मीरा को विष का प्याला भेजा। मीरा ने उसे भगवान् का चरणामृत समझकर पी लिया। कहते है कि उस विष का मीराबाई पर कुछ भी असर न हुआ। इतने पर भी जब राणा ने नही माना और वे बराबर उपाधि करते रहे, तब मीरा ने घबडाकर गोस्वामी तुलसीदासजी को यह पद लिखकर भेजा—

श्री तुलसी सुखनिधान दुख हरन गुसाई।
बारहि बार प्रनाम करू अब हरो सोक समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढाई।
साधु सग अरु भजन करत मोहि देत कलेस महाई॥
बालपने ते मीरा कीन्ही गिरधर लाल मिताई।
सो तो अब छूटतहि नाहि क्यो हू लगी लगन बरियाई॥
मेरे मात पिता के सम हो हरि भक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखियो समुझाई॥

इसके उत्तर मे तुलसीदास ने यह लिख भेजा—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषण बन्धु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कत ब्रज बनिता, भये सब मङ्गलकारी॥
नातो नेह राम सो मनियत सुहृद सुसेव्य जहा लौ।
अजन कहा आख जो फूटे बहुतक कहो कहा लौ॥

"तुलसी" सो सब भाति परमहित, पूज्य प्रानते प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद एही मतो हमारो॥

इस उत्तर के पाने पर मीराबाई चित्तौड छोडकर रात के समय मेडता चली आई। यह कथा बिलकुल मनगढत है। मीराबाई का जन्म-काल स०१५५५ या १५७३ मानने पर तो यह किसी तरह सभव नही कि १५८९ मे पैदा होनेवाले गोस्वामी तुलसीदास से इनका यह पत्रव्यवहार हुआ हो और उनकी राय से इन्होने गृहत्याग किया हो। मीरा और तुलसी के पदो को मिलाकर किसी ने यह नई घटना रच दी है।

वहा भी उनका मन न लगा तब वृन्दावन चली गई। वृन्दावन मे मीराबाई जीव गोस्वामी का दर्शन करने गई। उन्होंने कहा, हम स्त्रियो से नही मिलते। मीराबाई ने कहला भेजा—मै नही जानती थी कि गिरिधर लाल के सिवा यहा और भी पुरुष हैं। यह सुनते ही जीव गोस्वामी नगे पैर बाहर आकर मीराबाई को आदरपूर्वक लेगये। वहा कुछ समय रहकर फिर द्वारका चली गईं। राणाजी ने मीराबाई को वापस लाने के लिए कई ब्राह्मणो को द्वारका भेजा। मीराबाई ने आना अस्वीकार किया। तब ब्राह्मणो ने वही धरना दे दिया और अन्न-जल छोड दिया। तब कहा जाता है कि मीराबाई रणछोड़जी से मिलने के लिए मदिर में गईं और वही मूर्ति मे समा गई।

मीराबाई के हृदय मे अगाध प्रेम था। उनके पदों से उनकी हार्दिक भक्ति प्रकट होती है। मीराबाई संस्कृत भी जानती थी। उन्होंने गीतगोविन्द की टीका लिखी है। इसके सिवा नरसीजी का मायरा और रागगोविन्द भी उनके रचे हुए कहे जाते हैं। हमने इन मे से कोई पुस्तक नही देखी।

मीराबाई की कविता राजपूतानी बोली मिश्रित हिन्दी भाषा मे है। गुजराती भाषा मे भी मीरावाई ने मधुर कविता रची है। हम यहा उनके कुछ पद उद्धृत करते है—

( १ )

घडी एक नहि आवडे , तुम दरसण बिन मोय ।
तुमहो मेरे प्राण जी , कासू जीवण होय ॥
धान न भावै नीद न आवै , विरह सतावै मोय ।
घायल सी घूमत फिरू रे , मेरा दरद न जाणे कोय ॥
दिवस तो खाय गमायो रे , रैण गमाई सोय ।
प्राण गमायो झूरता रे , नैण गमाई रोय ॥
जो मै ऐसा जाणती रे , प्रीति किये दुख होय ।
नगर ढढोरा फेरती रे , प्रीति करो मत कोय ॥
पथ निहारू डगर बुहारू , ऊबी मारग जोय ।
"मीरा"के प्रभु कबरे मिलोगे , तुम मिलिया सुख होय ॥

( २ )

हेरी मै तो प्रेम दिवाणी , मेरा दरद न जाणे कोय ।
सूली ऊपर सेज हमारी , किस विध सोणा होय ॥
गगन मडल पै सेज पिया की , किस विध मिलणा होय ।
घायल की गति घायल जाणै , की जिन लाई होय ॥
जौहरीकी गति जौहरी जानै , की जिन जौहर होय ।
दरद की मारी बन बन डोलू , वैद मिल्या नहि कोय ॥
"मीरा"की प्रभु पीर मिटैगी, जब वैद सवलिया होय ।

( ३ )

बंसीवारो आयो म्हारे देस , थारी सावरी सुरत वाली बैस ॥
आऊ आऊ कर गया सावरा , कर गया कौल अनेक ।
गिणते गिणते घिस गई उगली, घिस गई उंगली की रेख ॥
मै वैरागिणि आदि की , थारे म्हारे कद को सदेस ।
बिन पाणी बिन साबुन सावरा, हुइ गई धुई सपेद ॥
जोगिण हुई जंगल सब हेरू , तेरा नाम न पाया भेस ।
तेरी सुरत के कारणे , धर लिया भगवा भेस ॥

मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, घूघरवाला केस।
"मीरा" को प्रभु गिरिधर मिल गये, दूना बढा सनेस॥

( ३ )

राम मिलण रो घणो उमावो, नित उठ जोऊ बाटडिया।
दरसण बिन मोहि पल न सुहावै, कल न पडत है आखडिया॥
तलफ तलफ के बहु दिन बीते, पडी बिरह की फासडिया।
अब तो बेगि दया कर साहिब, मै हू तेरी दासडिया॥
नैण दुखी दरसण को तिरसे, नाभि न बैठे सासडिया।
रात दिवस यह आरत मेरे, कब हरि राखे पासडिया॥
लगी लगन छूटण की नाही, अब क्यो कीजै आटडिया।
"मीरा" के प्रभु गिरिधर नागर, पूरौ मन की आसडिया॥

( ५ )

पायो जी, मैने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो॥
जनम जनम की पूजी पाई, जग मे सभी खोवायो।
खरचै नहि कोई चोर न लेवे, दिन दिन बढ़त सवायो॥
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो।
"मीरा" के प्रभु गिरधरनागर, हरख हरख जस गायो॥

( ६ )

बसो मेरे नैनन मे नन्दलाल।
मोहनो मूरति सावरि सूरति नैना बने बिसाल॥
अधर सुधारस मुरली राजित उर बैजन्ती माल।
छुद्रघटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल॥
"मीरा" प्रभु सतन सुखदाई भक्त बछल गोपाल॥

( ७ )

करमगति टारे नाहि टरे।
सतबादी हरिचद से राजा, नीच घर नीर भरे।

पाच पाडु अरु कुन्ती द्रोपती , हाड हिमालय गरे ।।
जज्ञ किया बलि लेण इद्रासन, सो पाताल धरे ।
"मीरा" के प्रभु गिरधरनागर, विष से अमृत करे ।।

( ८ )

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई ।
दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई ।।
भाई छोडया बन्धु छोडया छोडया सगा सोई ।
साध सङ्ग बैठ बैठ लोक लाज खोई ।।
भगत देख राजी हुई जगत देख रोई ।
असुवन जल 'सीच सीच प्रेम बेल बोई ।।
दधि मथ घृत काढ लियो डार दई छोई ।
राणा विष को प्यालो भेज्यो पीय मगन होई ।।
अब तो बात फैल पडी जाणे सब कोई ।
"मीरा" राम लगण लागी होणी होय सो होई ।।

( ९ )

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय ।।
साप पिटारा राणा भेज्या मीरा हाथ दियो जाय ।
न्हाय धोय जब देखण लागी सालिगराम गई पाय ।।
जहर का प्याला राणा भेज्या अमृत दीन्ह बनाय ।
न्हाय धोय जब पीवण लागी हो अमर अचाय ।।
मूल सेज राणा ने भेजी दीज्यो मीरा सुलाय ।
साझ भई मीरा सोवण लागी मानो फूल बिछाय ।।
"मीरा" के प्रभु सदा सहाई राखे बिघन हटाय ।
भजन भाव मे मस्त डोलती गिरधर पै बलि जाय ।।

( १० )

नहि ऐसो जन्म बारम्बार ।
क्या जानू कछु पुन्य प्रकटे , मानुसा अवतार ।।

बढत पलपल घटत छिनछिन , चलत न लागे बार ।
बिरछ के ज्यो पात टूटे , लागे नहिं पुनि डार ॥
भौसागर अति जोर कहिये , विषय ओखी धार ।
सुरत का नर बाधे बेडा , बेगि उतरे पार ॥
साधु सता ते महता , चलत करत पुकार ।
"दासमीरा" लाल गिरिधर , जीवना दिन चार ॥

( ११ )

मन रे परसि हरि के चरन ।
सुभग सीतल कमल कोमल , त्रिविध ज्वाला हरन ।
जे चरन प्रहलाद परसे , इन्द्र पदवी धरन ॥
जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हो , राखि अपने सरन ।
जिन चरन ब्रह्माड भेटचो , नख सिखौ श्री भरन ॥
जिन चरन प्रभु परसि लीने , तरी गौतम धरन ।
जिन चरन कालीहि नाथ्यो , गोप लीला करन ॥
जिन चरन धारचो गोबर्द्धन , गरब मघवा हरन ।
"दास मीरा" लाल गिरिधर , अगम तारन तरन ॥

( १२ )

नातो नाम को मो सू तनक न तोडचो जाय ॥
पाना ज्यो पीली पडी रे , लोग कहे पिंड रोग ।
छाने लाघन मै किया रे , राम मिलन के योग ॥
बाबल बैद बुलाइया रे , पकड दिखाई म्हारी बाह ।
मुरख बैद मरम नहिं जाने , करक कलेजे माह ॥
जाओ बैद घर आपने रे , म्हारो नाव न लेय ।
मै तो दाघी बिरह की रे , काहे कू औषद देय ॥
मास गलि गलि छीजिया रे , करक रह्या गल माहि ।
आगुलिया की मूदड़ी म्हारे , आवन लागी बाहि ॥

रहु रहु पापी पपीहा रे, पिव को नाम न लेय।
जे कोई बिरहिन साम्हले तो, पिव कारन जिव देय॥
खिन मन्दिर खिन आगने रे, खिन खिन ठाढी होय।
घायल ज्यूं घूमूं खडी, म्हारी बिथा न बूझै कोय॥
काटि कलेजो मैं धरू रे, कौआ तू ले जाय।
ज्या देसा म्हारो पिव बसै रे, वे देखत तू खाय॥
म्हारे नातो नाम को रे, और न नातो कोय।
"मीरा" व्याकुल बिरहिनी रे, पिय दरसन दीजो मोय॥

# हितहरिवंश

गोस्वामी हितहरिवंश का जन्म वैशाख बदी ११ स० १५५९में देवबद (सहारनपुर) मे और मरण स० १६५९ के लगभग हुआ। इनके पिता का नाम व्यासजी, माता का तारावती और स्त्री का रुक्मिणी था।

हितहरिवश जी राधाबल्लभ सम्प्रदाय के सस्थापक थे। ये सस्कृत और हिन्दी के अच्छे कवि थे। ये श्रीकृष्ण की वशी के अवतार माने जाते ह। सस्कृत मे इन्होने 'राधा सुधानिधि" नामक १७० श्लोको का एक काव्य रचा। कुछ लोगो का कहना है कि यह ग्रन्थ श्री चैतन्य महाप्रभु के शिष्य स्वामी प्रबोधानन्द का रचा हुआ है। इनकी कविता का मुख्य लक्ष्य भक्ति था। हिन्दी मे इन्होने ८४ पद कहे है। उनमे से कुछ चुने हुए पद हम नीचे उद्धृत करते है—

( १ )

ब्रज नव तरुणि कदम्ब मुकुट मणि श्यामा आजु बनी।
नख सिखलौ अँग अग माधुरी मोहे श्याम ध नी॥
यो राजत कवरी गूथित कच कनक कञ्ज बदनी।
चिकुर चन्द्रिकनि बीच अरध विधु मानहु ग्रसत फनी॥
सौभग रस सिर स्रवत पनारी पिय सीमत ठनी।
भृकुटी काम कोदड नैन सर कज्जल रेख अनी॥

भाल तिलक ताटक गंड पर नासा जलज मनी।
दसन कुन्द सरसाधर पल्लव पीतम मन समनी॥
चिबुक मध्य अति चारु सहज सखि सावल विन्दु कनी।
प्रीतम प्रान रतन सपुट कुच कचुकि कसित तनी॥
भुज मृनाल वल हरत वलय जुत परस सरस स्रवनी।
श्याम सीस तरु मनु मिडवारा रची रुचिर रवनी॥
नाभि गँभीर मीन मोहन मन खेलन को ह्रदिनी।
कृश कटि पृथु नितंब किंकिन बृत कदलि खंभ जघनी॥
पद अम्बुज जावक युत भूषन प्रीतम उर अवनी।
नव नव भाव विलोम भाम इभ विहरति बर करनी॥
"हितहरिबस" प्रसंसित श्यामा कीरति बिसद घनी।
गावत स्रवननि सुनत सुखाकर बिस्व दुरित दवनी॥

( २ )

चलहि किन मानिनि कुञ्ज कुटीर।
तो बिन कुवर कोटि बनिता जुत मथत मदन की पीर॥
गदगद सुर बिरहाकुल पुलकित श्रवण विलोचन नीर।
क्वासि क्वासि वृषभाननदिनी बिलपत विपिन अधीर॥
बसी बिसिख ब्याल मालावलि पञ्चानन पिक कीर।
मलयज गरल हुतासन मारुत साखामृग रिपु चीर॥
"हितहरिबस" परम कोमल चित सपदि चली पिय तीर।
सुनि भयभीत बज्र को पिंजर सुरत सूर रनबीर॥

( ३ )

आजु बन नीको रास बनायो।
पुलिन पवित्र सुभग यमुनातट मोहन वेनु बजायो॥
कल ककन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचुपायो
जुवतिनु मडल मध्य श्यामघन सारग राग जमायो॥

ताल मृदंग उपंग मुरज डफ मिलि रस सिंधु बढायो ।
विविध विसद वृषभान नंदिनी अंग सुगन्ध दिखायो ॥
अभिनय निपुन लटकि लट लोचन भृकुटी अनंग नचायो ।
तातायेइ ताथेई धरि नवगति पति ब्रजराज रिझायो ॥
सकल उदार नृपति चूडामणि सुख बारिद बरखायो ।
परिरंभन चुम्बन आलिङ्गन उचित जुवति जन पायो ॥
बरखत कुसुम मुदित नभ नायक इन्द्र निसान बजायो ।
"हितहरिबंस" रसिक राधापति जस बितान जग छायो ॥

( ४ )

छप्पय

ना जानौ छिनु अंत कवन बुधि घटहि प्रकासित ।
छुटि चेतन जु अचेत तेउ मुनिभय विष वासित ॥
पारासर सुर इंद्र कलप कामिनि मम फंदा ।
परयो देह दुख द्वंद कौन क्रम काल निकन्दा ॥
इहि डर डरपहि "हरिबंसहित", जिन बिभ्रम गुन सलिल पर ।
जिहि नामनि मंगल लोक तिहु, हरि पदु भजु, न बिलंब कर ॥

( ५ )

छप्पय

तैं भाजन कृत जटिल विमल चंदन कृत इंधन ।
अमृत पूरि तिहि मध्य करत सरषप बल रिंधन ॥
अद्भुत धर पर करत कष्ट कंचन हल वाहत ।
वारि करत पावारि मंद बोवन विष चाहत ॥
"हितहरिवंस" विचारि कैं, यह मनुज देह गुरु चरन गहि ।
सकहि तो सब परपंच तजि, श्रीकृष्ण कृष्णगोविन्द कहि ॥

( ६ )

आरति कीजै श्याम सुन्दर की । नँद-नंदन श्री राधिका-वर की।

भक्ति को दीप प्रेम करि बाती । साधु संगति कर अनुदिन राती ॥
आरति ब्रज जुवतिन मन भावै । स्याम लीला 'हितहरिबस" गावैं ॥

दोहा

( ७ )

तनहिं राखु सतसंग में, मनहिं प्रेमरस भेद ।
सुख चाहत "हरिबसहित", कृष्ण कल्पतरु सेव ॥

( ८ )

निकसि कुञ्ज ठाढ़े भये, भुजा परस्पर अंस ।
राधा-वल्लभ मुख कमल, निरखत "हितहरिबस" ॥

( ९ )

सब सों हित निहकाम मन, वृन्दावन विश्राम ।
राधा-वल्लभ लाल को, हृदय ध्यान मुख नाम ॥

( १० )

रसना कटौ जु अनरटौ, निरखि अनफुटौ नैन ।
श्रवन फुटौ जु अनसुनौ, बिनु राधा जसु बैन ॥

## नरहरि

नरहरि का जन्म सं० १५६२ में फतेहपुर जिले के असनी गांव में हुआ। ये १०५ वर्ष तक जीवित रहे। अकबर के दरबार में इनका अच्छा मान था। एकबार एक कसाई एक गाय लिये जाता था। किसी तरह कसाई के हाथ से छूटकर गाय कांपती हुई नरहरि के घर में जा छिपी। नरहरि को गाय की दशा पर बड़ी दया आई। उन्होंने कसाई को गाय देने से इन्कार कर दिया, और एक छप्पय लिखकर गाय के गले में लटकाकर उसे अकबर के सामने उपस्थित किया। कहते हैं, इसके प्रभाव से अकबर ने उस गाय को ही नहीं छुड़वा दिया, बल्कि अपने राज में गोवध बन्द कर दिया था। वह छप्पय यह है—

अरिहु दन्त तृन धरै, ताहि मारत न सबल कोइ ।
हम संतत तृन चरहिं, बचन उच्चरहिं दीन होइ ॥
अमृत पय नित स्रवहिं, बच्छ महि थंभन जावहिं ।
हिन्दुहिं मधुर न देहिं, कटुक तुरुकहिं न पियावहिं ॥

कह कवि "नरहरि" अकबर सुनो, बिनवत गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहि मारियत, मुयहु चाम सेवइ चरन॥

इनके बनाये हुए नीति-विषयक दो ग्रन्थ सुने जाते हैं। इनकी कविता के कुछ नमूने देखिये—

( १ )

नरहरि धरहरि को करै, जननि सुतहिं विष देइ।
बेडा हठि खेती चरै, साधु परद्धन लेइ॥
साधु परद्धन लेइ, नाव करिया गहि बोरै।
सोइ पहरु सोइ चोर, प्रीति प्रियतम हठ तोरै॥
नृपति प्रजहि दुख देइ, कौन समरथ करै धरहरि।
छितिपति अकबर साह, सुनो धरहरिकरै 'नरहरि'॥

( २ )

ज्ञानवान हठ करै, निधन परिवार बढावै।
वधुआ करै गुमान, धनी सेवक ह्वै धावै॥
पण्डित किरिया हीन, राड दुरबुद्धि प्रमानै।
धनी न समझै धर्म, नारि मरजाद न मानै॥
कुलवत पुरुष कुलविधि तजै, बन्धु न मानै बन्धु हित।
सन्यास धारि धन सग्रहै, ये जग मे मूरख विदित॥

( ३ )

को सिखवत कुलबधू, लाज गृह-काज रग रति।
हसन को सिक्खवत, करन पय पान भिन्न गति॥
सज्जन को सिक्खवत, दान अरु शील सुलच्छन।
सिहन को सिक्खवत, हनन गज कुभ ततच्छन॥
विधि रच्यो जानि "नरहरि" निरखि, कुल सुभाव को मिट्टवै।
गुण धर्म अकब्बर साह सुन, को नर काको सिक्खवै॥

( ४ )

सठन सनेह जु करै, मान बेचै सुलुब्ध कह।

पिय वियोग मुख चहै, साकरै तजै स्वामि कह ॥
मन बन्धहि पर रमन, खेल दुर्जन सग खेलहि ।
नृपति मित्र करि गिनहि, सर्प मुख अगुलि मेलहि ॥
चुक्क हित समै "नरहरि" निरखि, जड आगे बिस्तरहि गुन ।
पछताहि सु ते नर भगति बिन, दौलत दलपति खान सुन ॥

( ५ )

बैर धनी निरधनी, बैर कायर अरु सूरहि ।
घृत मधु माखी बैर, बैर निम्मूहि कपूरहि ॥
मूसे सर्पहि बैर, बैर पावक अरु पानी ।
जरा जोबना बैर, बैर मूरख अरु ज्ञानी ॥
बड बैर मोर जिमि चन्द मन, बिरहिन बैर बसन्त सो ।
नरहरि सुकब्बि कब्बित्त किय, मगन बैर अदत्त सो ॥

( ६ )

न कछु क्रिया बिन विप्र, न कछु कायर जिय छत्री ।
न कछु नीति बिन नृपति, न कछु अच्छर बिन मत्री ॥
न कछु बाम बिन धाम, न कछु गथ बिन गरुआई ।
न कछु कपट को हेत, न कछु मुख आप बडाई ॥
न कछु दान सनमान बिन, न कछु सुभोजन जासु दिन ।
जन सुनो सकल "नरहरि" कहत, न कछु जनम हरि-भक्ति बिन ॥

( ७ )

सरवर नीर न पीवही, स्वाति बूद की आस ।
केहरि कबहु न तृन चरै, जो ब्रत करै पचास ॥
जो ब्रत करै पचास, विपुल गज्जूह बिदारै ।
धन ह्वै गर्ब न करै, निधन नहि दीन उचारै ॥
"नरहरि" कुल क सुभाव, मिटै नहि जब लग जीवै ।
बरु चातक मरि जाय, नीर सरवर नहि पीवै ॥

( ८ )

सर सर हस न होत, बाजि गजराज न दर दर।
तर तर सुफर न होत, नारि पतिव्रता न घर घर॥
मन मन सुमति न होत, मलैगिर होत न बन बन।
फन फन मनि नहि होत, मुक्त जल होत न घन घन॥
रन रन सूर न होत है, जन जन होत न भक्ति हरि।
नर सुनो सकल "नरहरि" कहत, सब नर होत न एक सरि॥

( ९ )

भूमि परत अवतरत, करत बानक बिनोद रस।
पुनि जोबन मदमत्त, तत्व इन्द्री अनग बस॥
विजय हेत जड फिरत, बहुरि पहुच्यो बिरधप्पन।
गयो जन्म गुन गनत, अन्त कछु भयो न अप्पन॥
थिर रहत न कोउ नरपति न बल, रहत एक चहु जुग्ग जस।
सुइ अजर अमर "नरहरि" निरखि, पिये भक्ति भगवन्त रस॥

( १० )

कबहु द्वार प्रतिहार, कबहु दर दर फिरत नर।
कबहु देत धन कोटि, कबहु कर तर करत कर॥
कबहु नृपति मुख चहत, कहत करि रहत बचन बस।
कबहु दास लघु दास, करत उपहास जिभ्य रस॥
कछु जानि न सम्पति गर्बिये, विपति न यह उर आनिये।
हिय हारि न मानत सतपुरुष, "नरहरि" हरिहिं सभारिये॥

## हरिदास

स्वामी हरिदास ललिता सखी के अवतार समझे जाते है। मुलतान के समीप सारस्वत ब्राह्मण-कुल मे इनका जन्म हुआ था। कोई-कोई इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण मानते है। ये बड़े त्यागी और विरक्त पुरुष थे। इनके प्राय

सभी शिष्य महात्मा और सुकवि थे। इन्होने निम्बार्क-सम्प्रदाय के अन्त-र्गत टट्टी वाली वैष्णव सम्प्रदाय चलाई। गान-विद्या मे ये बडे प्रवीण थे। तानसेन और बैजू बावरे को गान-विद्या इन्हीने सिखलाई थी। ये वृन्दावन मे रहा करते थे। अकबर बादशाह भी एक बार तानसेन के साथ भेस बदलकर इनका दर्शन करने के लिए आये थे।

इन्होने सिद्धान्त के १९ पद और केलिमाल ( ११० पद ) नामक दो ग्रन्थो की रचना की है। इनके जन्म-मरण का ठीक समय विदित नही है।

इनकी कविता के कुछ नमूने हम नीचे लिखते है—

( १ )

**राग विहाग**

गहो मन सब रस को रस सार।
लोक वेद कुल करमै तजिये भजिये नित्य विहार॥
गृह कामिनि कंचन धन त्यागौ सुमिरो श्याम उदार॥
गति "हरिदास" रीति संतन की गादी को अधिकार॥

( २ )

**राग विभास**

ज्यो ही ज्यो ही तुम राखत हौ त्यो ही त्यो ही रहियतु हो हो हरि।
और अचिरचै पाइ धरौ सु तौ कहौ कौन के पैंड भरि॥
जदपि हौ अपनो भायो कियो चाहौ कैसे करि सकौ जो तुम राखौ पकरि।
कहि "हरिदास" पिंजरा के जनावर लौ तरफराइ रह्यो उडिबे को कितेउ करि॥

( ३ )

काहू को बस नाहिं तुम्हारी कृपा ते सब होय बिहारी बिहारिनि।
और मिथ्या प्रपंच काहे को भाखियै सो तो है हारनि॥
जाहि तुम सो हित तासो तुम हित करौ सब सुख कारनि।
"श्री हरिदास" के स्वामी श्यामा कुंजविहारी प्राननि के आधारनि॥

( ४ )

राग आसावरी

हित तौ कीजै कमल नैन सो जा हित के आगे और हित लागै फीको ।
कै हित कीजै साधु सगति सौ जावै कलमष जीको ।।
हरि को हित ऐसो जैसो रग मजीठ ससार हित कसूभि दिन दुतीको ।
कहि "हरिदास" हित कीजे बिहारी सौ और न निबाहु जानि जीको ।।

( ५ )

तिनका वयारि के बस ।
ज्यो भावै त्यो उडाइ लै जाइ आपने रस ।।
ब्रह्मलोक सिवलोक और लोक अस ।
कहि "हरिदास"बिचारि देख्यो बिना बिहारी नाही जस ।।

( ६ )

हरि के नाम को आलस क्यो करत है रे काल फिरत सर साधे ।
हीरा वहुत जवाहिर सचे कहा भयो हस्ती दर बाधे ।।
वेर कुबेर कछू नहि जानत चढे फिरत है काधे ।
कहि "हरिदास" कछू न चलत जब आवत अन्त की आधे ।।

( ७ )

राग कल्यान

हरि को ऐसोई सब खेल ।
मृगतृस्ना जग व्याप रही है कहू बिजोरो न बेल ।।
धनमद, जोवनमद औ' राजमद ज्यो पछिन मे डेल ।
कहि "हरिदास' यहै जिय जानो तीरथ को सो मेल ।।

( ८ )

प्रेम-समुद्र रूप-रस गहिरे कैसे लागै घाट ।
वेकारयो दै जानि कहावत जाति पनो की कहा परी बाट ।।
काहू को सर परै न सूधो मारत गाल गली गली हाट ।
कहि "हरिदास" बिहारिहि जानौ तकौ न औघट घाट ।।

# नन्ददास

नन्ददास को कुछ लोग तुलसीदासजी का सगा भाई बताते है। ये स्वामी विट्ठलनाथजी के शिष्य थे। अष्टछाप मे इनका भी नाम है। २५२ वैष्णवो की वार्ता मे लिखा है कि शिष्य होने के पहले ये एक बार द्वारिका जा रहे थे, पर राह भूलकर सीनन्द गाव मे पहुचे। वहा एक खत्री की परम सुन्दरी स्त्री पर आसक्त हो गये। उस स्त्री के सम्बन्धी इनसे पिड छुडाने के लिए उसे लेकर गोकुल चले गये, ये भी पीछे-पीछे लगे रहे। अन्त मे विट्ठलनाथजी के उपदेश से इनका मोह भग हुआ, और ये कृष्ण भगवान के प्रेम मे फस गए।

इन्होने कई ग्रन्थ बनाये है। उनके नाम ये है—रासपचाध्यायी, अनेकार्थ नाम माला, रुक्मिणी मगल, हितोपदेश, दशमस्कध भागवत, दानलीला, मानलीला, ज्ञानमजरी, अनेकार्थमजरी, रूपमञ्जरी, नाम-मञ्जरी, नाम चिन्तामणि माला, रसमञ्जरी, विरहमञ्जरी, नाममाला, नामकेतु पुराण गद्य, और श्याम सगाई। भ्रमरगीत भी इन्ही का रचित कहा जाता है। इनकी कविता भी बडी मनोहारिणी है। २५२ वैष्णवो की वार्ता मे लिखा है कि इन्होने समस्त श्रीमद्भागवत का पद्यानुवाद किया था, परन्तु मथुरा के कथावाचको के आग्रह से इन्होने उसे यमुना जी मे प्रवाहित कर दिया। रासपञ्चाध्यायी की रचना इन्होने अपने एक मित्र की सम्मति से की थी।

भ्रमरगीत, इनकी हिन्दी भागवत का अश जान पडता है, क्योकि उसके प्रारम्भ मे पुस्तक प्रारम्भ का कोई लक्षण नही। उसमे कुल ७५ पद्य है।

रास पञ्चाध्यायी और भ्रमरगीत के कुछ सुन्दर पद हम यहा उद्धृत करते है—

## रासपञ्चाध्यायी

बन्दन करौ कृपानिधान श्रीसुक सुभकारी।
सुद्ध ज्योतिमय रूप सदा सुन्दर अविकारी॥

हरि लीला रस मत्त मुदित नित विचरत जग मे।
अद्भुत गति कतहू न अटक ह्वै निकसत मग मे॥
नीलोत्पलदल श्याम अग नव जोबन भ्राजै।
कुटिल अलक मुखकमल मनो अलि अवलि विराजै॥
ललित विसाल सुभाल दिपति जनु निकर निसाकर।
कृष्ण भगति प्रतिबन्ध तिमिर कहँ कोटि दिवाकर॥
कृपा रङ्ग रस ऐन नैन राजत रतनारे।
कृष्ण रसासव पान अलस कछु घूम घुमारे॥
श्रवण कृष्ण रसभवन गण्ड मण्डल भल दरसै।
प्रेमानन्द मिलिन्द मन्द मुसुकनि मधु वरसै॥
उन्नत नासा अधर बिम्ब शुक की छबि छीनी।
तिन मह अद्भुत भाति जु कछुक लसित मसि भीनी॥
कम्बुकण्ठ की रेख देखि हरि धरमु प्रकासै।
काम क्रोध मद लोभ मोह जिह निरखत नासै॥
उरवर पर अति छवि की भीर कछु वरनि न जाई।
जिहि भीतर जगमगत निरन्तर कुअर कन्हाई॥
सुन्दर उदर उदार रोमावलि राजति भारी।
हियो सरोवर रस भरि चली मनो उमगि पनारी॥
जिहि रस की कुण्डिका नाभि अस शोभित गहरी।
त्रिवली तामहं ललित भाति मनु उपजत लहरी॥
अति सुदेस कटि देस सिह सोभित सघनन अस।
जोवन मद आकरसत बरसत प्रेम सुधारस॥
गूढ जानु आजानु-बाहु मद-गज-गति लोलै।
गगादिकन पवित्र करत अवनी पर डोलै॥
जब दिनमनि श्रीकृष्ण दृगन ते दूरि भये दुरि।
पसरि परचो अधियार सकल ससार घुमडि घिरि॥

तिमिर ग्रसित सब लोक-ओक लखि दुखित दयाकर।
प्रकट कियो अद्भुत प्रभाव भागवत विभाकर॥
श्रीबृन्दाबन चिदघन कछु छबि बरनि न जाई।
कृष्ण ललित लीला के काज गहि रह्यो जडताई॥
जह नग खग मृग लता कुज वीरुध तृन जेते।
नहि न काल गुन प्रभा सदा सोभित रहै तेते॥
सकल जन्तु अविरुद्ध जहा हरि मृग सग चरही।
काम क्रोध मद लोभ रहित लीला अनुसरही॥
सब दिन रहित बसन्त कृष्ण अवलोकनि लोभा।
त्रिभुवन कानन जा विभूति करि सोभित सोभा॥
ज्यों लक्ष्मी निज रूप अनूपम पद सेवित नित।
भूबिलसत जु बिभूति जगत जग मग रही जित कित॥
श्री अनन्त महिमा अनन्त को बरनि सकै कवि।
सकरषक सो कछुक कही श्रीमुख जाकी छवि॥
देवन मे श्री रमारमन नारायन प्रभु जस।
बन मे वृन्दाबन सुदेस सब दिन सोभित अस॥
या बन की बर बानिक या बन ही बन आवै।
सेस महेश सुरेस गनेस न पारहि पावै॥
जह जेतिक द्रुमजात कल्पतरु सम सब लायक।
चिन्तामणि सम सकल भूमि चिन्तित फल दायक॥
तिन मह इक जु कल्पतरु लगि रही जगमग ज्योती।
पात मूल फल फूल सकल हीरा मनि मोती॥
तह मुतियन के गन्ध लुबध अस गान करत अलि।
वर किन्नर गन्धर्व अपच्छर तिन पर गइ बलि॥
अमृत फुही सुख गुही अति सुही परत रहत नित।
रास रसिक सुन्दर प्रिय को स्रम दूर करन हित॥

ता सुरतरु मह् और एक अद्भुत छबि छाजै।
साखा दल फल फूलनि हरि प्रतिबिम्ब बिराजै॥
ता तरु कोमल कनक भूमि मनिमय मोहत मन।
दिखियतु सब प्रतिबिम्ब मनौ धर मह् दूसर बन॥
जमुनाजू अति प्रेम भरी नित बहत सुगहरी।
मनि मण्डित महि माह दोरि जनु परसत लहरी॥
तह् इक मनिमय अक चित्र को सद्म सुभग अति।
तापर षोडश दल सरोज अद्भुत चक्राकृति॥
मधि कमनीय करिनिका सब सुख सुन्दर कन्दर।
तह् राजत ब्रजराज कुअर वर रसिक पुरन्दर॥
निकर विभाकर दुति मेटत सुभ मनि कौस्तुभ अस।
सुन्दर नन्द कुअर उर पर सोइ लागति उडु जस॥
मोहन अद्भुत रूप कहि न आवत छबि ताकी।
अखिल खण्ड व्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी॥
परमातम परब्रह्म सबन के अन्तरजामी।
नारायन भगवान धरम करि सब के स्वामी॥
बाल कुमर पौगण्ड धरम आक्रान्त ललित तन।
धरमी नित्य किसोर कान्ह मोहत सब को मन॥
अस अद्भुत गोपाल लाल सब काल बसत जह्।
याही ते बैकुण्ठ बिभव कुण्ठित लागत तह्॥

## पद

नदभवन को भूषण माई।
यसुदा को लाल बीर हलधर को, राधारमण परम सुखदाई॥
शिव को धन सतन को सरबस, महिमा वेद पुरानन गाई।
इन्द्र को इन्द्र देव देवन को, ब्रह्म को ब्रह्म अधिक अधिकाई॥
काल को काल ईश ईशन को, अतिहि अतुल तोल्यो नहिं जाई।
"नन्ददास" को जीवन गिरिधर, गोकुल गाव को कुवर कन्हाई॥

### भ्रमरगीत

ऊधव को उपदेश, सुनो ब्रजनागरी।
रूप सील लावन्य, सबै गुन आगरी॥
प्रेम धुजा रस रूपिनी, उपजावत सुख पुन्ज।
सुन्दर श्याम बिलासिनी, नव वृन्दाबन कुन्ज॥
सुनो ब्रजनागरी॥ १॥

कहन श्याम सन्देश, एक मैं तुम पै आयो।
कहन समै सकेत, कहू अवसर नहिं पायो॥
सोचत ही मन मे रह्यो, कब पाऊ इक ठाउ।
कहि सदेस नन्दलाल को, बहुरि मधुपुरी जाउ॥
सुनो ब्रजनागरी॥ २॥

सुनत श्याम को नाम, ग्राम गृह को सुधि भूली।
भरि आनन्द रस हृदय, प्रेम बेली द्रुम फूली॥
पुलकि रोम सब अङ्ग भये, भरि आये जल नैन।
कण्ठ घुटे गदगद गिरा, बोले जात न बैन॥
व्यवस्था प्रेम की॥ ३॥

सुनत सखा के बैन, नैन भरि आये दोऊ।
बिबस प्रेम आवेस, रही नाही सुधि कोऊ॥
रोम रोम प्रति गोपिका, ह्वै रही सांवरे गात।
कल्मतरोरुह सांवरो, ब्रजवनिता भईं पात॥
उलहि अग अग ते॥ ४॥

## टोडरमल

टोडरमल खत्री थे। इनका जन्म सं० १५८० में और मरण सं० १६४६ मे हुआ। ये बादशाह अकबर के भूमि-कर विभाग के प्रधान अमात्य थे। एक बार ये बगाल के गवर्नर बनाये गये थे और इन्होने कई बार पठानो को भी परास्त किया था। बही-खाते का सब के पहले इन्हो

ही ने प्रचार किया था । ये हिन्दी कविता भी करते थे । उसके कुछ नमूने नीचे देखिये—

सोहै जिन सासन मे आतमानुसासन सु जीके दुखहारी सुखकारी साची सासना । जाको गुन भद्रकार गुण भद्र जाको जानि भद्र गुन धारी भव्य करत उपासना । ऐसे सार सास्त्र को प्रकास अर्थ जीवन को वनै उपकार नासै मिथ्या भ्रम वासना । ताते देस भाषा अर्थ को प्रकास करु जाते मन्द बुद्धि हू के हिये होवै अर्थ भासना ॥ १ ॥

गुन बिनु धन जैसे, गुरु बिन ज्ञान जैसे मान बिन दान जैसे, जल बिन सर है । कण्ठ बिन गीत जैसे, हित बिन प्रीत जैसे, वेश्या रस रीति जैसे, फल बिन तर है ॥ तार बिन जन्त्र जैसे, स्याने बिन मन्त्र जैसे, पुरुष विन नार जैसे, पुत्र बिन घर है । "टोडर" सुकवि तैसे मन मे विचारि देखो धर्म बिन धन जैसे पच्छी बिना पर है ॥ २ ॥

जार को विचार कहा, गनिका को लाज कहा, गदहा को पान कहा, आंधरे को आरसी । निगुनी को गुन कहा, दान कहा दारिदी को, सेवा कहा सूम की अरण्डन की डार सी ॥ मदपी को सुचि कहा, सांच कहा लम्पट को, नीच को वचन कहा, स्यार की पुकार सी । "टोडर" सुकवि ऐसे हठी ते न टारे टरै, भावे कहो सूधी बात भावे कहो फारसी ॥ ३ ॥

## बीरबल

महाराज बीरबल का जन्म स० १५८५ वि० मे, तिकवापुर जिला कानपुर मे एक साधारण ब्राह्मण के घर मे हुआ । इनके पिता का नाम गगादास था । प्रयाग के किले मे जो अशोक स्तम्भ है, उस पर यह खुदा हुआ है—

"सवत् १६३२ शाके १४९३ मार्ग बदी ५ सोमवार गगादास सुत महाराज बीरबल श्री तीरथराज प्रयाग की यात्रा सुफल लिखित ।"

शिवराज भूषण कवि ने इनका जन्मस्थान त्रिविक्रमपुर लिखा है, जो यमुना के तट पर बसा है और वही भूषण का भी जन्मस्थान है ।

अतएव जो लोग बीरबल का जन्मस्थान नारनौल बताते है उन्हे भूषण का यह दोहा देखना चाहिये—

द्विज कनौज कुल कस्यपी , रतनाकर सुत धीर।
बसत त्रिविक्रमपुर सदा , तरनि तनूजा तीर॥
बीर बीरबल से जहा , उपजे कवि अरु भूप।
देव बिहारीश्वर जहा , विश्वेश्वर तद्रूप॥

पर श्रीयुत विसेन्ट स्मिथ ने अकबर के इतिहास मे लिखा है कि, "Birbal, originally a poor Brahman, named Mahesh Das, was born at Kalpi about 1528, and consequently was fourteen years older than Akbar He was at first in the service of Raja Bhagwandas, who sent him to Akbar early in the reign" "अर्थात् बीरबल एक गरीब ब्राह्मण था, जिसका नाम महेशदास था। वह सन् १५२८ मे कालपी मे पैदा हुआ। वह अकबर से लगभग १५ वर्ष बडा था। नह पहले राजा भगवानदास की सेना मे था। राजा ने उसे अकबर को दे दिया था।" डाक्टर ग्रियर्सन भी अपने The Modern Vernacular Literature of Hindustan मे बीरबल का नाम महेशदास ही लिखते है। बदाऊनी ब्रह्मदास नाम बतलाता है। बीरबल के जन्मस्थान के सम्बन्ध मे बडा मतभेद चला आता है।

महाराज बीरबल अकबर के मन्त्री थे। अकबर इनको बहुत मानते थे। इन्होने कई बार सेनापति का भी काम किया था और कई लडाइया जीती थी। यहा तक कि स० १६४० मे, उत्तर पश्चिम सीमात प्रदेश के युद्ध ही मे इनका प्राणान्त भी हुआ। जब इनके मरने का समाचार बादशाह अकबर को मिला, तब अकबर ने अत्यन्य दुखी होकर यह सोरठा पढा—

दीन देखि सब दीन , एक न दीन्हो दुसह दुख।
सो अब हम कह दीन , कछुक न राख्यो बीरबर॥

अकबर के दरबार मे कट्टर मुसलमान वजीरो के बीच मे रहकर भी इन्होने हिन्दुग्रो का बडा हित साधन किया था । इनके ही प्रभाव से हिन्दुओ की बहुत-सी कठिनाइया दूर हुई थी और हिन्दुग्रो को ऊचे-ऊचे पद मिले थे । अकबर बीरबल पर बडा विश्वास रखते थे । ये अपनी युक्तिपूर्ण वातो से बादशाह का मनोरजन भी खूब करते थे । एक साधारण दशा से अपने बुद्धिबल के द्वारा उन्नति करके ये अकबर के नवरत्नो मे होगये और शाहीदरबार से इन्होने एक बडी जागीर और महाराजा की पदवी पाई । कविता मे इनका उपनाम ब्रह्म था ।

ये स्वय व्रजभाषा के अच्छे कवि थे और कवियो का बडा आदर करते थे । केशवदास को एक बार इन्होने एक छन्द पर छ लाख रुपये दिये थे और ओरछा नरेश पर एक करोड का अर्थदण्ड क्षमा करा दिया था ।

इनका लिखा कोई ग्रन्थ देखने मे नही आता । केवल पुस्तको मे कही-कही इनके कुछ छन्द मिलते हैं । इनकी कविता बडी ही चमत्कार-पूर्ण और ललित होती थी । इसका नमूना देखिये—

उछरि उछरि भेकी झपटै उरग पर उरग पै केकिन के लपटै लहकि है । केकिन के सुरति हिये की ना कछू है भये एकी करी केहरि न बोलत बहकि है ।। कहै कवि "ब्रह्म" वारि हेरत हरिन फिरै बैहर बहत बडे जोर सो जहकि है । तरनि के तावन तवा-सी भई भूमि रही दसहू दिसान मे दवारि सी दहकि है ।। १ ।।

एक समै हरि धेनु चरावत बेनु बजावत मञ्जु रसालहि ।
डीठि गई चलि मोहन की वृषभानुसुता उर मोतिन मालहि ।।
सो छबि "ब्रह्म" लपेटि हिए करसा कर लै कर कज सनालहि ।
ईस के सीस कुसुम्भ का माल मनो पहिरावति व्यालिनि व्यालहि ।।२।।
सखि भोर उठी बिन कचुकी कामिनि कान्हर ते करि केलि घनी ।
कवि "ब्रह्म" भनै छबि देखते ही कहि जात नही मुखते बरनी ।।

कुच अग्र नखच्छत कत दयो सिर नाय निहारि लियो सजनी।
ससिसेखर के सिर से सु मनो निहुरे ससि लेत कला अपनी ॥३॥
पूत कपूत कुलच्छनि नारि लराक परोस लजाय न सारो।
बन्धु कुबुद्धि पुरोहित लम्पट चाकर चोर अतीथ धुतारो ॥
साहब सूम अराक तुरंग किसान कठोर दिवान नकारो।
"ब्रह्म" भनै सुनु शाह अकब्बर बारहो बाधि समुद्र मे डारो ॥४॥
पेट मे पौंढ के पौढे मही पर पालना पौंढ के बाल कहाये।
आई जबै तरुनाई त्रिया सग सेज पै पौढ के रग मचाये ॥
छीर समुद्र के पौढनहार को "ब्रह्म" कबौ चित ते नहि ध्याये।
पौढत पौढत पौढत ही सा चिता पर पौढन के दिन आये ॥५॥

बीरबल के नाम से कुछ पहेलिया भी प्रसिद्ध है। उन मे से दो-एक ये है—

कर बोलै कर ही सुनै, स्रवन सुनै नहि ताहि।
कहै पहेली बीरबल, सुनिये अकबर साहि ॥
"नाडी"।

मारो तो वह जी उठै, बिन मारे मर जाय।
कहै पहेली बीरवल, मुर्दा आटा खाय ॥
"तबला"।

## तुलसीदास

हिन्दी-भाषा के अभूतपूर्व महाकवि गोस्वामी तुलसीदास का जन्म सवत् १५८९ वि० मे, राजापुर मे हुआ। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। इनका पहला नाम रामबोला था। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। लाला सीताराम इन्हे सनाढ्य ब्राह्मण बतलाते है। इनका जन्म दरिद्र कुटुम्ब मे हुआ था, जैसा कि इन्होने कवितावली मे "जायो कुल मगन" आदि स्पष्ट ही लिखा है। इनके गुरु का नाम नरहरिदासजी था। रामायण के प्रारम्भ मे "बन्दउ गुरु-

पद-कञ्ज, कृपासिंधु नररूप-हरि" इस सोरठ के "नररूप-हरि" पद से, लोग गुरु का नाम नरहरि निकालते है। इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या से हुआ था। स्त्री पर इनका प्रेम अधिक था। एक दिन वह नैहर चली गई। इनसे पत्नी-वियोग न सहा गया। ये ससुराल जाकर स्त्री से मिले। स्त्री को लज्जा आई। उसने ये दोहे कहे—

लाज न लागत आपु को, दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि चरममय देह मम, तामे जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महु, होति न तौ भव-भीति॥

यह बात गोसाईं जी को ऐसी लगी कि वे वहा से उसी समय काशी चले आये और विरक्त हो गये। स्त्री बेचारी को क्या मालूम था कि उसकी साधारण बात का ऐसा परिणाम होगा। उसने बहुत विनती की, और भोजन करने को कहा, परन्तु उन्होने एक न सुनी। यह घटना तुलसीदास के प्रेम की प्रौढता प्रगट करती है। इनके हृदय मे प्रेम का समुद्र लहरे मार रहा था। प्रेम की अटूट धारा जो क्षण-भर पहले स्त्री की ओर वह रही थी उसी को दूसरे ही क्षण मे इन्होने श्रीराम की ओर फेर दी, जो इनके जीवन के अन्तिम दम तक बडे वेग से बहती रही। उस प्रेम की धारा ने तुलसीदास को अजर अमर कर दिया। कौन जानता था कि एक छोटी-सी घटना से इनके जीवन का प्रवाह इस प्रकार बदल जायगा।

घर छोडने के पीछे एक बार स्त्री ने यह दोहा इनके पास लिख भेजा—

कटि की खीनी कनक सी, रहत सखिन सग सोय।
मोहि फटे को डर नही, अनत कटे डर होय॥

इसके उत्तर मे गोसाईं जी ने लिखा—

कटे एक रघुनाथ सग, बाधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेम रस, पतिनी के उपदेस॥

वृद्धावस्था मे एक दिन तुलसीदास चित्रकूट से लौटते हुए बिना जाने अपन ससुर के घर टिके। इनकी स्त्री भी वृद्धा हो चुकी थी। उसने पहले तो इन्हे पहचाना नही, अतिथि-सत्कार के लिए चौका आदि लगा दिया। पीछे बातचीत होने पर उसने पहचाना कि ये मेरे पति है। उसकी इच्छा हुई कि मै भी पति के साथ रहू। रातभर आगा-पीछा सोचकर उसने सबेरे अपने को सबेरे तुलसीदास के सामने प्रकट किया, और अपनी इच्छा कह सुनाई। परन्तु गोसाई जी ने अस्वीकार किया। इस अचानक भेंट का प्रभाव दोनो ओर कैसा पडा होगा, यह अनुमान करने पर बड़ा करुण जान पडता है। गोसाईं जी और उनकी स्त्री को अपनी युवावस्था के उस एक दिन की घटना याद आई होगी, जब उन दोनो का वियोग हुआ था।

गोसाईजी काशी और अयोध्या में बहुत रहा करते थे। परन्तु मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, चित्रकूट, जगन्नाथजी और सोरो ( शूकरक्षेत्र ) मे भी भ्रमण किया करते थे। काशीजी मे इनके कई स्थान प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि हनुमानजी की कृपा से इनको श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन हुआ था।

काशी मे टोडरमल नाम के एक जमीदार से गोसाईजी का बडा प्रेम था। उनके मरने पर इन्होने यह दोहे कहे थे—

महतो चारो गाव को, मन को बडो महीप।
तुलसी या कलिकाल मे, अथये टोडर दीप॥
तुलसी राम सनेह को, सिर धरि भारी भार।
टोडर काधा ना दियो, सब कहि रहे उतार॥
तुलसी उर थाला विमल, टोडर गुन गन बाग।
ये दोउ नयननि सीचिहौ, समुझि समुझि अनुराग॥
रामधाम टोडर गये, तुलमी भये असोच।
जियबो मीत पुनीत बिनु, यही जानि सकोच॥

अकबर के प्रसिद्ध वजीर नवाव खानखाना (रहीम) से भी गोसाईंजी

का वडा स्नेह था। आमेर के राजा मानसिह भी इनका वडा आदर किया करते थे। कहते है कि व्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि नन्ददासजी तुलसीदासजी के सगे भाई थे। तुलसीदासजी से, सूरदासजी, नाभाजी और केशवदासजी की भी भेट हुई थी। तुलसीदास की कीर्ति भारत मे ही नही, इग्लैंड, जर्मनी, आस्ट्रिया आदि देशो मे भी फैल चुकी है। इनके "रामचरित मानस" का अग्रजी मे अनुवाद हो चुका है। इनकी कविता पर अग्रेजी में कितने ही निबन्ध लिखे जा चुके है। तुलसीदासजी के विषय में अग्रेजो की क्या सम्मति है, इस सम्बन्ध मे हम प्रसिद्ध इतिहासकार श्रीयुत विसेट स्मिथ की सम्मति यहा उद्धृत करते है —

"वह कवि हिन्दी-कविता-कानन मे सबसे वडा वृक्ष है। उनका नाम न तो आईन ए अकबरी मे मिलेगा और न मुसलमान इतिहासकारो की पुस्तको मे, और न उनका पता किसी फारसी इतिहासकार के बयान से तैयार की हुई किसी योरोपीय लेखक की पुस्तक ही मे लगेगा। तो भी वे अपने समय मे भारत मे सर्वश्रेष्ठ पुरुष थे। यहा तक कि उन्हे अकबर से वडा कहा जा सकता है। क्योकि लाखो स्त्री और पुरुषो के हृदय पर उन्होने जो विजय प्राप्त की है, वह उस बादशाह की जीती हुई कितनी ही लडाइयो से चिरस्थायी है। यद्यपि इस कवि के मित्रो और प्रशसको मे आमेर के राजा मानसिह और अब्दुर्रहीम खानखाना ऐसे पुरुष थे, पर तो भी ऐसा मालूम होता है कि बादशाह को या अबुलफजल को उनका परिचय नही दिया गया। अकबर और अबुलफजल दोनो ही हिन्दुओ के गुण की कदर करते थे। यदि उनको काशी मे शान्त जीवन व्यतीत करने वाले इस कवि का पता होता तो वे उसकी कदर करने मे कभी न चूकते।"*

*सुप्रसिद्ध लाला सीताराम के पास तुलसीदास का एक चित्र हमने देखा है, जिसे वे अकबर बादशाह का बनवाया हुआ बतलाते है। इस से मालूम होता है कि अकबर को तुलसीदास का परिचय था। सम्भव

"यह कवि तुलसीदास थे। उनको धन या शिक्षा का कोई खास मौका नही मिला। वह एक गरीब ब्राह्मण माता-पिता की सतान थे, जिन्होने उन्हे अमगल नक्षत्र मे पैदा होने के कारण अनाथ छोड दिया था। ईश्वरेच्छा से उन्हे एक भिक्षु ने पालापोसा और राम के सम्बन्ध मे पौराणिक शिक्षाओ से अभिज्ञ किया।

"जिस ग्रथ पर उनकी कीर्ति अवलम्बित है, उसका नाम 'रामायण" है। कवि ने उसे "रामचरितमानस" कहा है। यह ग्रथ इतना बडा है कि ग्राउज का अग्रेजी भाषान्तर ५६२ पृष्ट का है। इस ग्रथ का ईश्वर-वाद ईसाई धर्म से इतना मिलता जुलता है कि उसमे से बहुत से प्रसग राम के स्थान पर ईसु रखने से ईसाइयो के लिए उपयोगी हो सकते है। ग्रियर्सन कहते है और ठीक कहते है कि किसी प्रार्थना-सग्रह मे उन्हे स्थान मिल सकता है। काव्य का ईश्वरवाद जितना उच्च है, उतनी ही उच्च उसकी नीति है। और आदि से अत तक उसमे एक भी शब्द या विचार ऐसा नही पाया जा सकता, जो निर्मल न हो। राम की स्त्री सीता स्त्रीत्व का आदर्श वताई गई है। उत्तर हिन्दुस्तान के हिन्दुओ को यह ग्रथ उतना ही प्यारा है जितना ईसाइयो को बाइबिल। हिन्दी-साहित्य मे यह ग्रथ अद्वितीय है। इसके प्रभाव के विषय मे कुछ कहना असभव है। १९१६ की जनवरी मे लिखे हुए एक पत्र मे सर जार्ज ग्रियर्सन कहते है कि "तुलसीदास सारे हिन्दुस्तान के साहित्य मे सबसे श्रेष्ठ है।" इत्यादि,

देखिये, Vincent Smith's History of Akbar,, pp.417-420

तुलसीदासजी ने इतने ग्रथ बनाए—

१—रामचरितमानस, २—कवित्त रामायण, ३—दोहावली, ४—गीतावली, ५—रामाज्ञा, ६—विनय-पत्रिका, ७—बरवै रामायण, ८—

है, अबुलफजल की मृत्यु के बाद यह परिचय हुआ हो, इसी से आईन-ए-अकबरी में इनका कुछ जिक्र न आ सका। —सम्पादक।

रामलला नहछू, ९—वैराग्य सदीपनी, १०—कृष्ण-गीतावली, ११—पार्वती-मगल, १२—राम सतसई, १३— हनुमदबाहुक, १४—जानकी मगल।

प्राय ये सभी ग्रथ मिलते है। तुलसीदासजी के ग्रथो में रामचरित-मानस सब से बडा और बहुत ही लोकप्रिय ग्रन्थ है। भारत मे अब तक इसकी करोडो प्रतिया छप चुकी है। यह एक ऐसा सर्वप्रिय ग्रथ है कि गरीब की झोपडी से लेकर राजा के महल तक, नौ करोड मनुष्यो तक इसकी पूरी पहुच है। इस एक ग्रन्थ ही ने तुलसीदासजी को तब तक के लिए अमर कर दिया, जब तक पृथ्वी पर हिन्दू जाति और हिन्दी-भाषा का अस्तित्व है। कौन कह सकता था कि एक गरीब के घर में उत्पन्न होकर, एक साधारण स्त्री द्वारा प्रतारित युवक इस असार ससार मे अनन्त काल के लिए अपनी कीर्ति-ध्वजा स्थापित कर जायगा। हमने तुलसीदासजी के ग्रन्थो मे से कुछ दोहे, चौपाई, बरवै, कवित्त, भजन आदि सग्रह कर दिये है, परन्तु इनकी कविता का पूरा आनन्द तो तभी मिलेगा, जब पूरा रामचरितमानस पढा जाय। रामचरितमानस के समान भारत मे और किसी ग्रन्थ का प्रचार नही है।

रामचरितमानस की छन्द-सख्या इस प्रकार है—

| काड | चौपाई | दोहा | सोरठा | अन्य छन्द | कुल छन्द-सख्या |
|---|---|---|---|---|---|
| बाल कांड | १४९४ | ३५९ | ३५ | ६८ | १९५६ |
| अयोध्याकाड | १३०६ | ३१४ | १३ | १६ | १६४९ |
| अरण्य काड | २६३ | ५० | ८ | ४५ | ३६६ |
| किष्किन्धाकाड | १५४ | ३१ | ३ | ५ | १९३ |
| सुन्दर काड | २७१ | ६२ | १ | ९ | ३४३ |
| लका काड | ५७४ | १५० | ९ | ७४ | ८०७ |
| उत्तर काड | ५९६ | २०७ | १६ | ५४ | ८७३ |
| | ४६५८ | ११७३ | ८५ | २७१ | ६१८७ |

सवत् १६८० वि० श्रावण शुक्ला सप्तमी को तुलसीदासजी ने असी और गगा के सगम पर शरीर छोडा। उस समय का यह दोहा प्रसिद्ध है—

सवत्-सोलह सौ असी, असी गग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

मृत्यु के समय गोसाई जी ने यह दोहा पढा था—

रामनाम जस बरनि कै, भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये, अबही तुलसी सोन॥

## सीता की शोभा

जनम सिधु पुनि वधु बिष, दिन मलीन सकलङ्क।
सिय मुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रङ्क॥
घटइ बढइ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज सधिहिं पाई॥
कोक सोकप्रद पकज द्रोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही॥
वैदेही मुख पटतर दीन्हे। होइ दोष बड अनुचित कीन्हे॥
सिय सोभा नहिं जाय बखानी। जगदबिका रूप-गुन-खानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत नारि अग-अनुरागी॥
सीय बरनि तेहि उपमा देई। कुकवि कहाइ अजस को लेई॥
जौ पटतरिय तीय मह सीया। जग अस जुवति कहा कमनीया॥
गिरा मुखर तनु अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
बिष बारुनी बन्धु प्रिय जेही। कहिय रमासम किमि वैदेही॥
जौ छवि सुधा-पयोनिधि होई। परम-रूप-मय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मंदर-सिंगारू। मथइ पानिपकज निज मारू॥

एहि बिधि उपजइ लच्छि जब, सुन्दरता सुखमूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय समतूल॥

रामचरितमानस से कुछ ऐसे दोहे और चौपाइया हम यहा उद्धृत करते है, जिनका उपयोग बोलचाल मे कहावतो की तरह प्रमाण रूप से किया जाता है—

वन्दौ सन्त असज्जन चरना । दुखप्रद उभय बीच कछु वरना ।।
बिछुरत एक प्रान हरि लेही । मिलत एक दारुन दुख देही ।।
परहित सरिस धर्म नहि भाई । पर-पीडा सम नहि अधमाई ।।
काहु न कोउ दुख सुख कर दाता । निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ।।
सुमति कुमति सब के उर रहही । नाथ पुरान निगम अस कहही ।।
जहा सुमति तह सम्पति नाना । जहा कुमति तह विपति निदाना ।।
गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी । मुनि मन मुदित करि भल जानी ।।
उचित कि अनुचित किये बिचारू । धर्म जाइ सिर पातक भारू ।।

अनुचित उचित विचार तजि , जे पालहि पितु बैन ।
ते भाजन सुख सुजस के , बसहि अमरपति ऐन ।।

बिनु सतोष न काम नसाही । काम अछत सुख सपनेहु नाही ।।
राम भजनबिन मिटहि कि कामा । थल बिहीन तरु कवहु कि जामा ।।
बिनु बिज्ञान कि समता आवइ । कोउ अवकासकि नभ बिन पावइ।।
श्रद्धा बिना धर्म नहि होई । बिनु महि गध कि पावइ कोई ।।
बिनु तप तेज कि कर बिसतारा । जल बिनु रस कि होइ ससारा ।।
सील कि मिल बिन वुध सेवकाई । जिमि बिनु तेज न रूप गोसाई।।
निज सुख बिन मन होइकि थीरा । परस कि होइ बिहीन समीरा ।।
कवनिउ सिद्धि कि बिन बिस्वासा । बिनु हरिभजन कि भवभय नासा ।।

बिन बिस्वास भक्ति नहि , तेहि बिन द्रवहि न राम ।
रामकृपा बिनु सपनेहु , जीव न लह बिश्राम ।।

परद्रोही कि होइ निहसका । कामी पुनि कि रहइ निकलका ।।
भव कि परहि परमातमबिदक । सुखी कि होहि कवहु परनिंदक ।।
राज कि रहइ नीति बिनु जाने । अघ कि रहइ हरि चरित बखाने ।।
पावन जस कि पुन्य बिन होई । बिनु अघ अजस कि पावइ कोई ।।
धन्य सो भूप नीति जो करई । धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई ।।
धन्य घरी सोइ जब सतसगा । धन्य जन्म हरिभक्ति अभगा ।।

कवि कोविद गावहिं अस नीती । खल सन कलह नहीं भल प्रीती ॥
उदासीन नित रहिय गुसाईं । खल परिहरिय स्वान की नाईं ॥
फूलइ फलइ न बेत, यदपि सुधा बरसहिं जलद ।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं बिरंचि संत ॥
बायस पालिय अति अनुरागा । होइ निरामिष कबहु कि कागा ॥
संत सहहिं दुख परहित लागी । पर दुख हेतु असंत अभागी ॥
साधु चरित सुभ सरिस कपासू । निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । बंदनीय जेहि जग जस पावा ॥
खल सन इव परबंधन करई । खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई ॥
को न कुसंगति पाइ नसाई । रहइ न नीच मते चतुराई ॥
मुनि गन निकट विहग मृग जाहीं । बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ॥
हित अनहित पसु पच्छी जाना । मानुष तन गुन ज्ञान निधाना ॥
काटे पै कदली फरै, काटि जतन करि सींच ।
बिनय न मान खगेस सुनु, डाटे पै नव नीच ॥
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं । प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ॥
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलत न कछु संदेहू ॥
तृषित बारि बिन जो तनु त्यागा । मुये करै का सुधा तड़ागा ॥
का वर्षा जब कृषी सुखाने । समय चूकि पुनि का पछताने ॥
दुइ कि होइ इक संग भुवाला । हँसब ठठाइ फुलाउब गाला ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥
कर्म प्रधान विश्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥
आरत कहहिं बिचारि न काऊ । सूझ जुआरिहिं आपन दाऊ ॥
जल पय सरिस बिकाइ, देखहु प्रीति कि रीति भल ।
बिलग होइ रस जाइ, कपट खटाई परत ही ॥
कसे कनक मनि पारखि पाये । पुरुष परखिये समय सुभाये ॥
प्रभु अपने नीचहु आदरहीं । अग्नि धूम गिरि तृन सिर धरहीं ॥
सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥

तनय मातु पितु पोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल ससारा ॥
धन्य जन्म जगतीतल तासू । पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू ॥
चारि पदारथ करतल ताके । प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके ॥
गुरु श्रुति सम्मत धर्मफल , पाइय बिनहिं कलेस ।
हठ बस सब सकट सहे , गालब नहुष नरेस ॥
सहज सुहृद गुरुस्वामिसिख , जो न करइ सिर मानि ।
सो पछताइ अघाइ उर , अवसि होय हित हानि ॥
सेवक सुख चह मान भिखारी । व्यसनी धन सुभगति व्यभिचारी ॥
लोभी जस चह चारु गुमानी । नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी ॥
राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा । हरिहिं समर्पे बिनु सतकर्मा ॥
विद्या बिनु विवेक उपजाये । श्रम फल पढे किये अरु पाये ॥
सग ते यती कुमन्त्र ते राजा । मान ते ज्ञान पान ते लाजा ॥
प्रीति प्रणय बिन मद ते गुनी । नासहिं वेगि नीति अस सुनी ॥
नवनि नीच कै अति दुखदाई । जिमि अकुस धनु उरग बिलाई ॥
परहित बस जिनके मन माही । तिन्ह कह जग दुर्लभ कछु नाही ॥
सचिव वैद गुरु तीन जो , प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तीन कर , होइ बेगही नास ॥
बरु भल बास नरक कर ताता । दुष्ट सग जनि देहिं विधाता ॥
कादर मन कर एक अधारा । दैव दैव आलसी पुकारा ॥
सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपिन सन सुन्दर नीती ॥
ममता रत सन ज्ञान कहानी । अति लोभी सन विरति बखानी ॥
क्रोधिहिं सम कामिहिं हरि-कथा । ऊसर बीज बये फल यथा ॥
कौल काम बस कृपिन विमूढा । अति दरिद्र अजसी अति बूढा ॥
सदा रोग बस सतत क्रोधी । विष्णु विमुख श्रुति सत विरोधी ॥
तनु पोषक निन्दक अघखानी । जीवत शव सम चौदह प्रानी ॥
राकापति षोडश उगहिं , तारागन समुदाय ।
सकल गिरिन्ह दव लाइये , रवि बिन राति न जाय ॥

पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहही। ऐसे नर निकाय जग अहही॥
बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर जग थोरे॥
अति सघर्षन करै जो कोई। अनल प्रकट चदन ते होई॥
सत विटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्हि कै करनी॥
सत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन पै कहइ न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं सो सत पुनीता॥
नहिं दरिद्र सम दुख जग माही। सत मिलन सम सुख कछु नाही॥

मुखिया मुख सो चाहिये, खान-पान को एक।
पालै-पोषै सकल अग, तुलसी सहित विवेक॥

## बरवै रामायण

कुकुम तिलक भाल श्रुति कुण्डल लोल।
काकपच्छ मिलि सखि कस लसत कपोल॥ १ ॥
केस मुकुत सखि मरकत मनि मय होत।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत॥ २ ॥
सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर।
सीय अग सखि कोमल कनक कठोर॥ ३ ॥
सिअ मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाय।
निसि मलीन वह निसि दिन यह बिगसाय॥ ४ ॥
चपक हरवा अग मिलि अधिक सुहाइ।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाइ॥ ५ ॥
सिअ तुअ अग रग मिलि अधिक उदोत।
हार बेलि पहिरावौ चपक होत॥ ६ ॥
का घूघट मुख मूदहु नवला नारि।
चाद सरग पर सोहत यहि अनुहारि॥ ७ ॥
गरब काह रघुनन्दन जनि मन माह।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छाह॥ ८ ॥

स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम।
इनते भइ सित कीरति अति अभिराम ॥ ९ ॥
बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाय।
ए अखिया दोउ बैरिनि देहिं बुताय ॥ १० ॥
डहकनि है उजियरिया निसि नहि घाम।
जगत जरत अस लागै मोहिं बिनु राम ॥ ११ ॥
अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया कै मुदरी ककन होइ ॥ १२ ॥
जान आदि कवि तुलसी नाम प्रभाउ।
उलटा जपत काल ते भये ऋषिराउ ॥ १३ ॥
केहि गनती मह गनती जस बन घास।
राम जपतु भये तुलसी तुलसीदास ॥ १४ ॥
नाम भरोस नाम बल नाम सनेहु।
जनम जनम रघुनन्दन तुलसिहिं देहु ॥ १५ ॥

## राम सतसई

आसन दृढ आहार दृढ, सुमति ज्ञान दृढ होइ।
तुलसी विना उपासना, बिन दूलह की जोइ ॥ १ ॥
रामचरण अवलम्ब बिनु, परमारथ की आस।
चाहत बारिद बुद गहि, तुलसी उडन अकास ॥ २ ॥
स्वारथ परमारथ सकल, सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता, उचित न तुलसी तोर ॥ ३ ॥
जहा राम तह काम नहिं, जहा काम नहिं राम।
तुलसी कबहू होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम ॥ ४ ॥
सम्पति सकल जगत्त की, स्वासा सम नहिं होइ।
सो स्वासा तजि राम पद, तुलसी अलग न खोइ ॥ ५ ॥
तुलसी सो अति चतुरता, राम चरन लवलीन।
पर मन पर धन हरन को, गनिका परम प्रबीन ॥ ६ ॥

स्वामी होनो सहज है, दुर्लभ होनो दास।
गाडर लाये ऊन को, लागी चरन कपास॥ ७॥
तुलसी सब छल छाडि कै, कीजै राम सनेह।
अन्तर पति सो है कहा, जिन देखी सब देह॥ ८॥
कोटि बिघ्न सकट बिकट, कोटि सत्रु जो साथ।
तुलसी बल नहिं करि सकै, जो सुदिष्ट रघुनाथ॥ ९॥
लगन महूरत योग बल, तुलसी गनत न काहि।
राम भये जेहि दाहिने, सबै दाहिने ताहि॥ १०॥
ऊंची जाति पपीहरा, पियत न नीचो नीर।
कै याचै घनश्याम सो, कै दुख सहै शरीर॥ ११॥
होइ अधीन याचै नही, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी माँगनहिं, को बारिद बिनु देइ॥ १२॥
मान राखिबो मागिबो, पिय सो सहज सनेहु।
तुलसी तीनो तब फबै, जब चातक मत लेहु॥ १३॥
गगा यमुना सरसुती, सात सिन्धु भर पूर।
तुलसी चातक के मते, बिन स्वाती सब धूर॥ १४॥
एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ यश, चातक तुलसीदास॥ १५॥
राम राम रटिबो भलो, तुलसी खता न खाय।
लरिकाई ते पौरिबो, धोखेहु बूडि न जाय॥ १६॥
तुलसी बिलम्ब न कीजिये, भजि लीजै रघुवीर।
तन तरकस ते जात है, स्वास सारसो तीर॥ १७॥
असन बसन सुतनारि सुख, पापिहु के घर होइ।
सन्त समागम राम धन, तुलसी दुर्लभ दोइ॥ १८॥
तुलसी मीठे बचन ते, सुख उपजत चहु ओर।
बसीकरन यह मत्र है, परिहरु बचन कठोर॥ १९॥

तुलसी अपने राम कहु , भजन करहु निरसङ्क ।
आदि अन्त निर्वाहिबो , जैसे नव को अङ्क ॥ २० ॥
तुलसी राम सनेह करु , त्याग सकल उपचारु ।
जैसे घटत न अङ्क नव , नव के लिखत पहारु ॥ २१ ॥
तुलसी सत सुअनु तरु , फूल फलहिं पर हेत ।
इतते ये पाहन हनत , उतते वे फल देत ॥ २२ ॥
गोधन गजधन बाजिधन , और रतन धन खान ।
जब आवत सन्तोष मन , सब धन धूरि समान ॥ २३ ॥
काम क्रोध मद लोभ की , जौलो मन मे खान ।
तौ लो पण्डित मूरखौ , तुलसी एक समान ॥ २४ ॥
प्रेम बैर अरु पुण्य अघ , यश अपयश जय हान ।
बात बीज इन सबन को , तुलसी कहहि सुजान ॥ २५ ॥
तौ लग योगी जगत गुरु , जौ लगि रहत निरास ।
जब आसा मन मे जगी , जग गुरु योगी दास ॥ २६ ॥
उरग तुरग नारी नृपति , नर नीचो हथियार ।
तुलसी परखत रहब नित , इनहिं न पलटत बार ॥ २७ ॥
दुर्जन दर्पन सम सदा , करि देखो हिय गौर ।
सन्मुख की गति और है , बिमुख भये पर और ॥ २८ ॥
सिष्य सखा सेवक सचिव , सुतिय सिखावनु साच ।
सुनि करिये पुनि परिहरिय , पर मनरञ्जन पाच ॥ २९ ॥
दीरघ रोगी दारिदी , कटु बच लोलुप लोग ।
तुलसी प्रान समान जौ , तऊ त्यागिबे योग ॥ ३० ॥
बहुमुत बहुरुचि बहु बचन , बहु अचार व्यवहार ।
इनको भलो मनाइबो , यह अज्ञान अपार ॥ ३१ ॥
सहि कुवास सासति असम , पाप अनट अपमान ।
तुलसी धर्म न परिहरहिं , ते वर सन्त सुजान ॥ ३२ ॥

तुलसी साथी विपत के, विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्यब्रत, राम भरोसो एक ॥ ३३ ॥
तुलसी असमय के सखा, साहस धर्म विचार।
सुकृत सील सुभाव ऋजु, राम चरन आधार ॥ ३४ ॥
राग रोष गुन दोष को, साखी हृदय सरोज।
तुलसी बिकसत मित्र लखि, सकुचत देखि मनोज ॥ ३५ ॥
खग मृग मीत पुनीत किय, बनहु राम नयपाल।
कुनय बालि रावण घरहि, सुखद बन्धु किय काल ॥ ३६ ॥
तुलसी जो कीरति चहहिं, पर कीरति को खोइ।
तिनके मुह मसि लागि है मुये न मिटि है धोइ ॥ ३७ ॥
नीच चग सम जानिये, सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि देत महि गिरि परत, खैचत चढत अकास ॥ ३८ ॥
राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार ॥ ३९ ॥
साहिब ते सेवक बडो, जो निज धर्म सुजान।
राम बाधि उतरे उदधि, नाघि गये हनुमान ॥ ४० ॥
सूर समर करनि करहिं, कहि न जनावहि आप।
विद्यमान रिपु पाइ रन, कायर करहिं प्रलाप ॥ ४१ ॥
जूझे ते भल बूझिबो, भली जीति ते हारि।
डहके ते डहकाइबो, भलो जु करिय बिचार ॥ ४२ ॥
मन्त्री गुरु अरु वैद्य जो, प्रिय बोलिहि भय आस।
राज धर्म तन तीन कर, होइ बेगिही नास ॥ ४३ ॥
हृदय कपट वर वेषि धरि, बचन कहै गढि छोलि।
अबके लोग मयूर ज्यो, क्यो मिलिये मन खोलि ॥ ४४ ॥
अमिय गारि गारेउ गरल, नारि करि करतार।
प्रेम वैर की जननि युग, जानहिं बुध न गवार ॥ ४५ ॥

तुलसी अपनो आचरन , भलो न लागत कासु ।
तेहि न बसात जो खात नित , लहसुनहू की बासु ।। ४६ ।।
मुखिया मुख सो चाहिये , खान पान को एक ।
पालै पोसै सकल अग , तुलसी सहित विवेक ।। ४७ ।।
हित पुनीत सब स्वारथहि , अरि असुद्ध बिनु जाड ।
निज मुख मानिक सम दसन , भूमि परे ते हाड ।। ४८ ।।
तुलसी पावस के समै , धरी कोकिला मौन ।
अब तो दादुर बोलि है , हमै पूछि है कौन ।। ४९ ।।
तुलसी हमसो राम सो , भलो मिलो है सूत ।
छाडे बनै न सग रहै , ज्यो घर माहि कपूत ।। ५० ।।
व्याधा बधो पपीहरा , परो गग जल जाय ।
चोच मूदि पीवै नही , जल पिये मो पन जाय ।। ५१ ।।
बार बार बर मागहू , हरषि देहु श्रीरङ्ग ।
पद सरोज अनपायिनी , भक्ति सदा सत्सङ्ग ।। ५२ ।।
सात स्वर्ग अपवर्ग सुख , धरिय तुला इक अङ्ग ।
तुलै न ताहि सकल मिलि , जो सुख लव सत्सङ्ग ।। ५३ ।।
तुलसी रा के कहत ही , निकसत पाप पहार ।
फिरि भीतर आवत नही , देत मकार किवार ।। ५४ ।।
तुलसी काया खेत है , मनसा भये किसान ।
पाप पुण्य दोऊ बीज है , बुवै सो लुनै निदान ।। ५५ ।।
आवत ही हर्षे नही , नैनन नही सनेह ।
तुलसी तहा न जाइये , कचन बरसे मेह ।। ५६ ।।
तुलसी कबहु न त्यागिये , अपने कुल की रीति ।
लायक ही सो कीजिये , ब्याह बैर अरु प्रीति ।। ५७ ।।
तुलसी जस भवितव्यता , तैसी मिलै सहाय ।
आप न आवे ताहि पै , ताहि तहा लै जाय ।। ५८ ।।

जगते रहु छत्तीस ह्वै, रामचरन छ तीन।
तुलसी देखु विचारि हिय, है यह मतौ प्रबीन ॥ ५९ ॥
रैन को भूषन इन्दु है, दिवस को भूषन भान।
दास को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन ज्ञान ॥ ६० ॥
ज्ञान को भूषन भक्ति है, ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन शांति पद, तुलसी अमल अदाग ॥ ६१ ॥
तुलसी मिटै न मोहतम, किये कोटि गुन ग्राम।
हृदय कमल फूलै नही, बिनु रवि कुल रवि राम ॥ ६२ ॥
सुनत लखत श्रुति नयन बिनु, रसना बिनु रस लेत।
बास नासिका बिनु लहै, परसै बिना निकेत ॥ ६३ ॥
सोई ज्ञानी सोइ गुनी, जन सोइ दाता ध्यानि।
तुलसी जाके चित भई, राग द्वेष की हानि ॥ ६४ ॥

## विनय-पत्रिका

### ( १ )

गाइये गनपति जगबदन, संकर सुवन भवानी नंदन।
सिद्धिसदन गजबदन बिनायक, कृपासिंधु सुंदर सब लायक ॥
मोदकप्रिय मुद मंगल-दाता, विद्या-वारिधि बुद्धिविधाता।
मांगत "तुलसिदास" कर जोरे, बसहिं रामसिय मानस मोरे ॥

### ( २ )

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत, दये बिनु बेद बडाई भानी ॥
निज घर की बर बात बिलोकहु हो तुम परम सयानी।
सिव की दई संपदा देखत श्री सारदा सिहानी ॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नही निसानी।
तिन रंकन को नाक संवारत हौं आयो नकवानी ॥
दुख दीनता दुखी इनके दुख जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं भीख भली मैं जानी ॥

प्रेम प्रशसा विनय व्यग जुत सुनि विधि की वर बानी।
"तुलसी" मुदित महेस मनहिं मन जगत मातु मुसुकानी ॥

( ३ )

ऐसी तोहि न बूझिये हनुमान हठीले।
साहेब कहू न राम से तोसे न वसीले ॥
तेरे देखत सिंह को सिसु मेढक लीले।
जानत हौ कलि तेरेऊ मनु गुनगन कीले ॥
हाक सुनत दसकन्ध के भये बन्धन ढीले।
सो बल गयो किधौं भये अब गर्वगहीले ॥
सेवक को परदा फटै तुम समरथ सीले।
अधिक आपु ते आपनो सुनि मान सहीले ॥
सासति "तुलसीदास" की सुनि सुजस तुहीले।
तिहू काल तिनको भलो जे राम रगीले ॥

( ४ )

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भव भय दारुन।
नव कज लोचन कज मुख कर कज पद कजारुन ॥
कन्दर्प अगनित अमित छवि नव नील नीरज सुन्दर।
पटपीत मानहु तडित रुचि सुचि नौमि जनक सुतावर ॥
भजु दीनबन्धु दिनेस दानव दैत्यवस निकदन।
रघुनन्द आनदकन्द कौसलचन्द दसरथ-नन्दन ॥
शिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदार अङ्ग विभूषन।
आजानु भुज-शर चाप धर सग्राम जित खर दूषन ॥
इमि वदत "तुलसीदास" शकर शेष मुनि मनरजन।
मम हृदय कज निवास करु कामादि खल-दल गजन ॥

( ५ )

मेरो मन हरि हठ न तजै।
निस दिन नाथ देउ सिख बहु विधि करत सुभाव निजै।
ज्यो जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै ॥

ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहि भजै।
लोलुप भ्रमत गृह पशु ज्यो जह तह सिर पदत्रान बजै ॥
तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहु न मूढ लजै ॥
हौ हार्‌यो करि जतन विविध विध अतिसय प्रवल अजै।
"तुलसिदास" बस होइ तबहि जब प्रेरक प्रभु बरजै ॥

( ६ )

अब लौ नसानी अब न नसैहौ।
राम कृपा भवनिसा सिरानी जागे फिरि न डसैहौ॥
पायो नाम चारु चिन्तामनि उर करते न खसैहौ।
श्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कचनहि कसैहौ ॥
परवस जानि हस्यो इन इन्द्रिन निज बस ह्वै न हसैहौ।
मन मधुकर पन करि "तुलसी" रघुपति-पद-कमल बसैहौ ॥

( ७ )

ऐसे राम दीन-हितकारी ।
अति कोमल करुनानिधान बिनु कारन पर उपकारी ॥
साधन हीन दीन निज अघ बस सिला भई मुनि नारी।
गृहते गवनि ,परसि पद पावन घोर सापते तारी ॥
हिंसारत निषाद तामस वपु पसु समान वनचारी।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेम बस नहि कुल जाति विचारी ॥
यद्यपि द्रोह कियो सुरपति सुत कहि न जाइ अति भारी।
सकल लोक अवलोकि सोकहत सरन गये भय टारी ॥
विहग योनि आमिष अहार-पर गीध्र कौन 'व्रतधारी।
जनक समान क्रिया ताकी निज कर सब भांति सवारी ॥
अधम जाति सवरी जोषित जड लोक वेद ते न्यारी।
जानि प्रीति दै दरस कृपानिधि सोऊ रघुनाथ उधारी ॥
कपि सुग्रीव बन्धु भय व्याकुल आयो सरन पुकारी।
सहि न सके दारुन दुख जन के हत्यो वालि सहि गारी ॥

रिपु को अनुज विभीषन निसिचर कौन भजन अधिकारी।
सरन गये आगे ह्वै लीन्हो भेटयो भुजा पसारी॥
असुभ होइ जिनके सुमिरेते बानर रीछ बिकारी।
वेद विदित पावन किये ते सब महिमा नाथ तुम्हारी॥
कह लगि कहो दीन अगनित जिनकी तुम बिपतिनिवारी।
कलि मल ग्रसित "दास तुलसी" पर काहे कृपा बिसारी॥

( ८ )

मन पछतैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरि पद भजु करम बचन अरु हीते॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बलीते।
हम हम करि धन धाम सवारे अन्त चले उठि रीते॥
सुत बनितादि जानि स्वारथ रत न करु नेह सबहीते।
अन्तहु तोहिं तजेंगे पामर तू न तजै अबहीते॥
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड त्यागु दुरासा जीते।
बुझै न काम अगिनि "तुलसी" कहु विषय भोग बहु घीते॥

( ९ )

तू दयाल, दीन हू, तू दानि, हू भिखारी।
हू प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुञ्ज हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नहिं आरतहर तोसो॥
ब्रह्म तू, हू जीव, तू ठाकुर, हू चेरो।
तात मात गुरु सखा तू सब विध हित मेरो॥
तोहि मोहि नातो अनेक मानिये जो भावै।
ज्यो त्यो "तुलसी" कृपाल चरण शरण आवै॥

( १० )

ममता तू न गई मेरे मन ते।
पाके केस जन्म के साथी लाज गई लोकन त।

तन थाके कर कम्पन लागे जोति गई नैनन ते ॥
सरवन बचन न सुनत काहु के बल गये सब इन्द्रिन ते ।
टूटे दसन बचन नहिं आवत सोभा गई मुखन ते ॥
कफ पित बात कठ पर बैठे सुतहिं बुलावत कर ते ।
भाइ बन्धु सब परम पियारे नारि निकारत घर ते ॥
जैसे ससिमण्डल बिच स्याही छुटै न कोटि जतन ते ।
"तुलसिदास" बलि जाउ चरन ते लोभ पराये धन ते ॥

( ११ )

कबहुक हौ इहि रहनि रहौगो ।
श्री रघुनाथ कृपाल कृपा ते सन्त सुभाव गहौगो ॥
जथा लाभ सन्तोष सदा काहू सौ कछु न चहौगो ।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहौगो ॥
पुरुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौगो ।
बिगत मान सम सीतल मन परगुन औगुन न कहौगो ॥
परिहरि देह जनित चिन्ता दुख सुख समबुद्धि सहौगो ।
'तुलसिदास' प्रभु इहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौगो॥

## गीतावली

( १२ )

पौढिये लाल पालने हौ झुलावौ ।
बाल विनोद मोद मजुल मनि किलकनि खानि खुलावौ ।
तेह अनुराग ताग गुहिबे कहु मति मृगनयनि बुलावौ ॥
"तुलसी" भनित भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौ ।
चारु चरित रघुबर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चित लावौ ॥

( १३ )

जागिये कृपानिधान जानिराय रामचन्द्र
जननि कहै बार-बार भोर भयो प्यारे ।

राजिव लोचन बिसाल प्रीति वापिका मराल
ललित कमल बदन उपर मदन कोटि वारे ॥
अरुन उदित विगत सर्वरी ससाक किरिनहीन
दीन दीप ज्योति मलिन दुति समूह तारे।
मनहु ज्ञान घन प्रकाश बीते सब भौबिलास
आस त्रास तिमिरन्गोम तरनि तेज जारे ॥
बोलत खग निकर मुखर मधुर करि प्रतीत सुनहु
श्रवन प्रान जीवन धन मेरे तुम वारे।
मनहु वेद बन्दी मुनिवृन्द सूत मागधादि
बिरुद बदत जय जय जय जयति कैटभारे ॥
सुनत वचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल
भागे जञ्जाल विपुल दुख कदम्ब टारे।
"तुलसिदास" अति अनन्द देख के मुखारबिन्द
छूटे भ्रम फन्द परम मन्द द्वन्द भारे ॥

( १४ )

जननी निरखत वाल धनुहिआ ॥
बार बार उर नयननि लावति प्रभुजु की ललित पनहिआ ॥
कवहु प्रथम ज्यो जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सकारे।
उठहु तात बलि मातु बदन पर अनुज सखा सब द्वारे ॥
कवहु कहत बड वार भई ज्यो जाहु भूप पै भैया।
बन्धु बोलि जेइयै जो भावै गई नेछावरि मैया ॥
कबहु समुझि वन गमन राम को रहि चकि चित्र लिखी सी।
"तुलसिदास" या समय कहेते लागति प्रीति सिखी सी ॥

( १५ )

बैठी सगुन मनावति माता।
कब अइहै मेरे बाल कुशल घर कहहु काग फुरि बाता ॥

दूध भात की दोनी दैहौ सोने चोच मढैहौ।
जव सिय सहित विलोकि नयन भरि राम लखन उर लैहौ॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
गनक वुलाइ पाय परि पूछति प्रेम मगन मृदुवानी॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट ते समाचार लै आयौ।
प्रभु आगमन सुनत "तुलसी" मानो मीन मरत जल पायौ॥

## कृष्ण-गीतावलि

( १६ )

मोकहु झूठहि दोस लगावहि।
मय्या इनहि बानि परि गृह की नाना युक्ति बनावहि॥
इन्ह के लिए खेलिवो छाड्यो तऊ न उवरन पावहि।
भाजन फोरि वोरि कर गोरस देन उलहनो आवहि॥
कवहुक वाल रोवाइ पानि गहि मिस यहि करि उठि धावहि।
करहि आपु शिर धरहि आन के बचन बिरचि हरावहि॥
मेरी टेव बूझ हलधर सो सतत सग खेलावहि।
जे अन्याउ करहि काहू को ते शिशु मोहि न भावहि॥
सुनि सुनि बचन चातुरी ग्वालिनि हँसि हँसि बदन दुरावहि।
वाल गोपाल केलि कलि कीरति "तुलसिदास" मुनि गावहि॥

( १७ )

अवहि उरहनो दै गई बहुरो फिरि आई।
सुनु मैय्या तेरी सौ करो याकी टेक लरन की सकुच वेचेसि खाई॥
या ब्रज मे लरिका घने हौ ही अन्याई।
मुहु लाए मूडहि चढी अतहु अहिरिनि तोहि सूधी करि पाई॥

( १८ )

छाडो मेरे ललित ललन लरिकाई।
ऐहै देखु कालि तेरे वै ब्याहु की बात चलाई॥

डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि हँसि हैं नई दुलहिया सुहाई।
उबटि नहाहु गुहो चोटिया बलि देखि भलो बर करहिं बडाई॥
मातु कह्यो करि कहत बोलि दे भइ बडिबार कालि तो न आई।
जब सोइबो तात यो हा कहि नयन मीचि रहे पौढि कन्हाई॥
उठि कह्यो भोर भयो झगुली दै मुदित महर लखि आतुरताई।
बिहसी ग्वालि जान "तुलसी" प्रभु सकुचि लगे जननी उर धाई॥

( १९ )

हरि को ललित बदन निहारु।
निपटही डाटति निठुर ज्यो लकुट करते डारु॥
मंजु अंजन सहित जलकन चुवत लोचन चारु।
श्याम सारस मगन मनो शशि श्रवत सुधा सिंगारू॥
सुभग उर दधि बुन्द सुन्दर लखि अपनपो वारू।
मनहु मरकत मृदु सिखर पर लसत विषद तुषारु॥
कान्ह हू पर सतर भौ हैं महरि मनहिं विचारु।
"दासतुलसी" रहति क्यो रिस निरखि नन्दकुमारु॥

( २० )

देखु सखी हरि बदन इन्दु पर।
चिक्कन कुटिल अलक अवली छबि कहि न जाय शोभा अनूपबर॥
बाल भुअगिनि निकर मनहु मिलि रही घेरि रस जानि सुधाकर।
तजि न सकहिं नहिं करहिं पान कहो कारन कौन विचार डरहिं उर॥
अरुन बनज लोचन कपोल सुभ श्रुति मंडित कुंडल अति सुन्दर।
मनहु सिन्धु निज सुतहिं मनावन पठये युगल वसीठि बारिचर॥
नदनन्दन मुख की सुन्दरता कहि न सकहिं श्रुति शेष उमा वर।
"तुलसीदास" त्रैलोक्य विमोहन रूप कपटनर त्रिविध शूल हर॥

( २१ )

गोपाल गोकुल वल्लभी प्रिय गोप गोसुत वल्लभ।
चरणारबिन्दमहं भजे भजनीय सुर नर दुर्लभ॥

घनश्याम काम अनेक छवि लोकाभिराम मनोहर।
किंजल्क बसन किशोर मूरति भूरि गुन करुनाकर॥
सिर केकिपच्छ बिलोल कुंडल अरुन बनरुह लोचन।
गुञ्जावतंस विचित्र सब अंग धातु भव भय मोचन॥
कच कुटिल सुन्दर तिलक भ्रू राका मयङ्क समानन।
अपहरत "तुलसीदास" त्रास बिहार वृन्दा कानन॥

## जानकी मङ्गल

### ( सोहर छन्द )

( २२ )

देखि सपुर परिवार जनक हिय हारेउ।
नृप-समाज जनु तुहिन बनजबन मारेउ॥
कौसिक जनकहिं कहेउ देहु अनुसासन।
लखहिं भानुकुल भानु इसान-सरासन॥
मुनिवर तुम्हरे बचन मेरु महि डोलहिं।
तदपि उचित आचरन पाच भल बोलहिं॥
बान बान जिमि गयउ गँवहिं दसकन्धर।
को अवनीतल इन सम बीर धुरन्धर॥
पारबती मन सरिस अचल धनुघालक।
हैं पुरारि तेउ एक नारि व्रत पालक॥
सो धनु कहिय विलोकन भूप किसोरहिं।
बेध कि सिरिस सुमन कन कुलिस कठोरहिं॥
रोम रोम छबि निदरत सोम मनोजनि।
देखिय मूरति मलिन करिय मुनि सो जनि॥
मुनि हसि कहेउ जनक यह मूरति सोहइ।
सुमिरत सकृत मोह मल सकल बिछोहइ॥

## पार्वती मङ्गल

( २३ )

तजे भोग जिमि रोग लोग अहिगन जनु ।
मुनि मनसहु ते अगम तपहिं लायो मन ।।
सकुचहिं बसन विभूषन परसत जो बपु ।
तेहि सरीर हर हेत अरभेउ बड तप ।।
पूजहि शिवहिं समय तिहु करहिं निमज्जन ।
देखि प्रेम व्रत नेम सराहहिं सज्जन ।।
नींद न भूख पियास सरिस निसि बासर ।
नयन नीर मुख नाम पुलक तनु हिय हर ।।
कन्द मूल फल असन कबहु जल पवनहि ।
सूख वेल के पात खात दिन गवनहि ।।
नाम अपरना भयउ परन जब परिहरे ।
नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे ।।
देखि सराहहिं गिरिजहिं मुनिवर मुनि बहु ।
अस तप सुना न दीख कबहु काहू कहु ।।
देखि दसा करुनाकर हर दुख पायउ ।
मोर कठोर सुभाय हृदय अस आयउ ।।

## कवितावली

( १ )

अवधेश के द्वारे सकारे गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे ।
अवलोकिहौं सोच विमोचन को ठगि सी रही जे न ठगे धिक से ।।
तुलसी मनरजन रजित अजन नैन सुखजन जातक से ।
सजनी ससि मे समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे ।।

( २ )

तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन कज की मजुलताई हरै ।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे छवि भूरि अनग की दूरि धरै ।।

दमके दतिया दुति दामिनि ज्यों किलकैं कल बाल विनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मन्दिर मे बिहरैं॥

( ३ )

वर दंत की पंगति कुन्द कली अधराधर पल्लव बोलन की।
चपला चमकैं घन बीच जगैं छवि मोतिन माल अमोलन की॥
घुघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुण्डल लोल कपोलन की।
नेवछावर प्राण करैं तुलसी बलि जाऊं लला इन बोलन की॥

( ४ )

कीर के कागर ज्यों नृप चीर विभूषन उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मग बास के रूख ज्यों पंथ के साथ ज्यों लोग लुगाई॥
संग सुबंधु पुनीत प्रिया मनो धर्म क्रिया धरि देह सोहाई।
राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाउ की नाई॥

( ५ )

पुरते निकसी रघुवीर बधू धरि धीर दये मग मे डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की पट सूखि गए मधुराधर वै॥
फिर बूझति है चलनोऽब कितो पिय पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तियकी लखि आतुरता पियकी अखियां अति चारु चली जल च्वै॥

( ६ )

जल को गये लक्खन हैं लरिका परखो पिय छांह घरीक ह्वै ठाढे।
पोंछ पसेउ बयारि करौं अरु पाय पखारिहौं भूभुरि डाढे॥
तुलसी रघुवीर प्रिया श्रम जानि कै बैठि विलम्ब लौं कंटक काढे।
जानकी नाह को नेह लख्यो पुलको तन वारि विलोचन बाढे॥

( ७ )

सीस जटा उर बाहु विशाल विलोचन लाल तिरीछीसी भौंहैं।
तून सरासन बान धरे तुलसी बन मारग मे सुठि सोहैं॥
सादर बारहिबार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्रामवधू सिय सों कहो सांवरो सो सखि रावरो को हैं॥

( ८ )

कतहु विटप भूधर उपारि अरि सैन बरष्षत ।
कतहु बाजि सो बाजि मर्दि गजराज करष्षत ।।
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत ।
विकट कटक विद्दरत वीर वारिद जिमि गज्जत ।।
लगूर लपेटत पटकि महि जयति राम जय उच्चरत ।
तुलसीस पवननन्दन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत ।।

( ९ )

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी । जीविका बिहीन लोग सिद्यमान सोचबस कहै एक एकन सो कहा जाय का करी । वेदहु पुरान कही लोकहु बिलोकियत साकरे समै के राम रावरे कृपा करो । दारिद दसानन दबाई दुनी दीन-बन्धु दुरित दहत देखि तुलसी हहा करी ।

## बलभद्र मिश्र

बलभद्र मिश्र सनाढ्य ब्राह्मण ओडछा निवासी पडित काशीनाथ के पुत्र और प्रसिद्ध कवि केशवदास के बडे भाई थे । केशवदास ने अपनी कवि-प्रिया मे इनका नाम लिखा है । इनका जन्मकाल स० १६०० वि० के लगभग माना जाता है । इनके रचे हुए नखशिख, भागवत भाष्य, बलभद्री व्याकरण, हनुमन्नाटक टीका, गोवर्द्धन सतसई टीका और दूषण विचार आदि ग्रथ कहे जाते है । इनमे से नखशिख और दूषण विचार आदि दो-तीन ग्रथो के सिवा अन्य ग्रन्थ अभी तक नही मिले है । अब तक इनकी जितनी कविताए मिली, उनके देखने से ये बडे अच्छे कवि जान पड़ते है । नमूने के तौर पर इनके कुछ छद नीचे लिखे जाते है —

पाटल नयन कोकनद के से दल दोऊ
बलभद्र बासर उनीदी लखी बाल मै ।
शोभा के सरोवर मे बाडव की आभा कैधौ
द्वेवधुनि भारती मिली है पुन्य काल मै ।।

/

काम कँवरत कैधौ नासिका उडुप बैठ्यो
खेलत सिकार तरुनी के मुख ताल मैं।
लोचन सितासित मै लोहित लकीर मानो
बाधे जुग मीन शाल रेसम के जाल मैं ॥ १ ॥
मरकत सूत कैधौ पन्नग के पूत अति
राजत अभूत तमराज कैसे तार है।
मखतूल गुन ग्राम सोभित सरस श्याम
काम मृग कानन कै कोहू के कुमार है ॥
कोप की किरनि कै जलज नल नील तत
उपमा अनत चारु चवर शृङ्गार है।
कारे सटकारे भीजे सोधे सो सुगध बास
ऐसे बलभद्र नवबाला तेरे बार है ॥ २ ॥

## दादूदयाल

दादूदयाल का जन्म फाल्गुन शुक्ला अष्टमी, बृहस्पतिवार सवत १६०१ वि० मे हुआ था। जन्मस्थान कहा था, इस विषय मे बडा मतभेद पाया जाता है। दादूपथी लोग कहते है कि इनका जन्म अहमदाबाद (गुजरात) मे हुआ था। महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी ने इनका जन्म स्थान जौनपुर बतलाया है। परन्तु दादूदयाल की कविता की भाषा देखने से गुजरात देश ही उनका जन्म-स्थान प्रतीत होता है।

ये किस जाति के थे, इसमे भी बडा झगडा है। कोई इन्हें गुजराती ब्राह्मण बतलाता है, कोई मोची और कोई धुनिया कहता है। सर्वसाधारण मे ये धुनिया ही प्रसिद्ध है, परन्तु "जाति पाति पूछै ना कोई, हरि को भजै सो हरि का होई" इस कहावत के अनुसार हमें इनका गुण ही देखना चाहिये। गुण की कोई जाति नही है। जाति चाहे ऊच हो या नीच गुण का आदर सर्वत्र होगा। कबीर ने कहा है--

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥

दादूदयाल का गुरु कौन था, इसका भी ठीक ठीक पता नही। लोग कहते है कि कमाल इनके गुरु थे। कमाल कबीर के पुत्र थे । दादूदयाल की पदावली मे कबीर का नाम तो कई स्थानो पर आया है, परन्तु कमाल का एक स्थान पर भी नही। दादूदयाल ने गुरु की महिमा भी बहुत गाई है। ऐसी दशा मे यदि कमाल इनके गुरु होते, तो उनका नाम भी कही न कही आता ही।

दादू पथियो के कथनानुसार, कबीर साहब की तरह दादूदयाल भी बालक रूप मे, लोदीराम नागर ब्राह्मण को साबरमती नदी (अहमदाबाद) मे बहते हुए मिले थे। इनके विषय मे भी बहुत-सी चमत्कार की कहानिया प्रसिद्ध है। ये बडे क्षमाशील थे। इसी से लोगो ने इन्हे "दयाल" की पदवी दी थी और ये सबको दादा कहा करते थे, इसीसे लोग इन्हे "दादू' कहने लगे।

दादूदयाल आमेर मे जो जयपुर की पुरानी राजधानी है, १४ वर्ष तक रहे। वहा से जयपुर, मारवाड़, बीकानेर आदि स्थानो मे घूमते हुए स० १६५९ मे नराना मे, जो जयपुर से २० कोस पर है, आकर ठहर गये। वहा से तीन चार कोस पर भराने की पहाडी है, वहा भी ये कुछ समय तक रहे, और स० १६६० मे वही इन्होने शरीर छोडा। इसी कारण से वह स्थान बहुत पवित्र समझा जाता है। समस्त दादू पथियो के मुखिया वही रहते है। वहा दादूदयाल का एक मन्दिर है। उसमे उनके कपडे और पोथिया अब तक है। वहा प्रति वर्ष फागुन सुदी ४ से द्वादशी तक, नौ दिन बडा भारी मेला लगता है। इस पथ मे दो प्रकार के साधू पाये जाते है, एक भेसधारी विरक्त, दूसरे नागा। भेसधारी विरक्त गेरुआ वस्त्र पहनते है और कथा-कीर्तन मे अपना समय बिताते है। नागा सफेद सादे कपडे पहनते है और खेती, फौज की नौकरी तथा वैद्यक आदि करके जीविका चलाते है। जयपुर राज्य की नागो की सेना प्रसिद्ध ही है। दोनो प्रकार के साधू विवाह नही करते। गृहस्थो के लडको को चेला मूडकर अपना पथ चलाते है। ये लोग न तो तिलक लगाते है और न गले मे

कंठी पहनते है । प्राय हाथ मे एक सुमिरनी रखते है । सिर पर टोपी या पगडी पहनते है और आते जाते समय एक दूसरे से "सत्त राम" कहते है । दादूदयाल के शिष्यो मे सुन्दर दास, रज्जबजी, जनगोपाल और मोहनदास आदि अच्छे कवि हो गये है ।

दादूदयाल निरञ्जन निराकार परब्रह्म के उपासक थे और उसी को सबमे रमनेवाला राम कहकर सुमिरन करते कराते थे ।

ये हिंदी, फारसी, गुजराती, मारवाडी और मराठी आदि कई भाषाओ के ज्ञाता थे। गुजराती और हिंदी भाषा मे इनकी कविताए बडी ही हृदय-वेधक हुई है । जब मै इनकी कविता का अध्ययन कर रहा था, तब कई स्थानो पर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि ससार-प्रसिद्ध महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीताजलि के भावो से उनमे विशेष महीन और प्रेमाभि-सिक्त भाव है । दोनो के भाव और कहने के ढग मे कही-कही बड़ी समता पाई जाती है ।

दादूदयाल की साखी मे वह रस नही है जो कबीर साहब की साखी मे पाया जाता है । परन्तु दादूदयाल के पदो मे प्रेम का जो मनोहर रूप प्रकट हुआ है वह कबीर साहब के थोडे ही भजनो मे पाया जाता है। कबीर साहब की तरह दादूदयाल भी हिन्दू मुसलमानो मे भेद नही मानते थे, यह उनके पदो से साफ-साफ प्रकट होता है ।

यहा हम दादूदयाल के कुछ चुने हुये दोहे और पद प्रकाशित करते है—

घीव दूध मे रमि रह्या , व्यापक सब ही ठौर ।
दादू बकता बहुत है , मथि काढ़ै ते और ॥ १ ॥
दादू दीया है भला , दिया करो सब कोय ।
घर मे धरा न पाइये , जो कर दिया न होय ॥ २ ॥
यह मसीत यह देहरा , सतगुरु दिया दिखाइ ।
भीतरि सेवा बदगी , बाहिर काहे जाइ ॥ ३ ॥

कहि कहि मेरी जीभ रहि , सुणि सुणि तेरे कान ।
सतगुरु बपुरा क्या करै , जो चेला मूढ अजान ।। ४ ।।
सुख का साथी जगत सब , दुख का नाही कोइ ।
दुख का साथी साइया , दादू सतगुरु होइ ।। ५ ।।
दादू देख दयाल कौं , सकल रहा भरपूर ।
रोम रोम मे रमि रह्यो , तू जिनि जानै दूर ।। ६ ।।
मिसरी माहै मेल करि , माल बिकाना बस ।
यो दादू महिंगा भया , पारब्रह्म मिलि हस ।। ७ ।।
केते पारिख पचि मुये , कीमति कही न जाइ ।
दादू सब हैरान है , गूगे का गुड खाइ ।। ८ ।।
जब मन लागै राम सो , तब अनत काहे को जाइ ।
दादू पाणी लूण ज्यो , ऐसै रहै समाइ ।। ९ ।।
क्या मुह ले हसि बोलिये , दादू दीजे रोइ ।
जनम अमोलक आपणा , चले अकारथ खोइ ।। १० ।।
एक देस हम देखिया , जह सत नहि पलटै कोइ ।
हम दादू उस देस के , जह सदा एकरस होइ ।। ११ ।।
सुरग नरक ससय नही , जिवण मरण भय नाहि ।
राम विमुख जे दिन गये , सो सालै मन माहि ।। १२ ।।
मै ही मेरे पोट सर , मरिये ताके भार ।
दादू गुरु परसाद सो , सिर थै धरी उतार ।। १३ ।।
दादू मारग कठिन है , जीवत चलै न कोइ ।
सोई चलि है बापुरा , जे जीवत मिरतक होइ ।। १४ ।।
काया कठिन कमान है , खीचै विरला कोइ ।
मारे पाचौ मिरगला , दादू सूरा सोइ ।। १५ ।।
जे सिर सौप्या राम कौ , सो सिर भया सनाथ ।
दादू दे ऊरण भया , जिसका तिसके हाथ ।। १६ ।।

कहता सुनता देखता, लेता देताँ प्राण।
दादू सो कतहू गया, माटी धरी मसाण ॥ १७॥
जिहि घर निंदा साधु की, सो घर गये समूल।
तिनकी नीव न पाइये, नाव न ठाव न धूल ॥ १८ ॥

पद

हुसियार रहो मन मारैगा, साईं सतगुरु तारैगा॥
माया का सुख भावै, मूरिख मन बौरावै रे॥
झूठ साच करि जाना, इन्द्री स्वाद भुलाना रे॥
दुख कौ सुख करि मानै, काल झाल नहिं जानै रे॥
दादू कहि समझावै, यह अवसर बहुरि न पावै रे॥१॥

भाई रे ऐसा पंथ हमारा।
द्वै पख रहित पंथ गहि पूरा अबरण एक अधारा॥
वाद विवाद काहू सौ नाही माहि जगत थै न्यारा।
समदृष्टि सू भाई सहज मे आपहि आप विचारा॥
मैं, तैं, मेरी यहु मत नाही निरबैरी निरविकारा।
पूरण सबै देखि आपा पर निरालम्भ निरधारा॥
काहू के सगी मोह न ममिता सगी सिरजनहारा।
मन ही मनसू समझि सयाना आनद एक अपारा॥
काम कल्पना कदे न कीजे पूरण ब्रह्म पियारा।
इहि पथ पहुचि पार गहि"दादू"सो तत सहजि सभारा॥ २ ॥

आव रे सजणाँ आव, सिर पर धरि पाव।
जानी मैंडा जिद असाडे।
तू रावैं दा राव वे॰ सजणा आव॥
इत्था उत्था जित्था कित्था, हौं जीवा तो नाल वे।
मीयां मैंडा आव असाडे।
तू लालो सिर लाल वे सजणा आव॥

तन भी डेवा मन भी डेवा, डेवा प्यण्ड पराण वे ।
सच्चा साई मिलि इत्थाई ।
जिन्दा करॉ कुरवाण वे सजणा आव ।।
तू पाकौ सिर पाक वे सजणा तू खूबौ सिर खूब ।
दादू भावै सजणा आवै ।
तू मीठा महबूब वे सजणा आव ।। ३ ।।
(पञ्जाबी भाषा)

म्हारा रे व्हाला ने काजे रिदै जोवा ने हू ध्यान धरू ।
आकुल थाये प्राण म्हारा कोने कही पर करू ।।
सभारचो आवे रे व्हाला व्हेला एहो जोइ ठरू ।
माथी जी माथै थइनि पेली तीरे पार तरू ।।
पीव पाखे दिन दुहेला जाये घडी बरसा सौ केम भरू ।
दादू रे जन हरि गुण गाता पूरण स्वामी ते वरू ।। ४ ।।
(गुजराती भाषा)

बटाऊ रे चलना आजि कि काल ।
समझि न देखै कहा मुख सोवै रे मन राम सभालि ।।
जैसे तरवर बिरस बसेरा पङ्खी वैठे आइ ।
ऐसे यहु सब हाट पसारा आप आप कौ जाइ ।।
कोइ नहि तेरा सजन सगाती जिन खोवे मन भूल ।
यहु ससार देखि जिन भूलै सब ही सेवल फूल ।।
तन नहि तेरा धन नहि तेरा कहा रह्यो इहि लागि ।
दादू हरि बिन क्यो मुख सौवै काहे न देखे जागि ।। ५ ।।

जागि रे सब रैणि विहाणी । जाइ जनम अगुली कौ पाणी ।।
घडी घडी घडियाल बजावै । जे दिन जाइ से बहुरि न आवै ।।
सूरज चन्द कहै समझाइ । दिन दिन आयू घटती जाइ ।।
सरवर पाणी तरुवर छाया । निसदिन काल गरासै काया ।।
हस बटाऊ प्राण पयाना । दादू आतमराम न जाना ।।६।।

बातें बादि जाहिंगी भइये।
तुम जिन जानौ बातनि पइये॥
जब लग अपना आप न जाणै, तब लग कथनी काची।
आपा जाणि साईं कूं जाणै, तब कथनी सब साची॥
करणी बिना कन्त नहिं पावै, कहे सुने का होइ।
जैसी कहै करै जे तैसी, पावेगा जन सोइ॥
बातनि ही जे निरमल होवै, तौ काहे कूं कसि लीजै।
सोना अगिनि दहै दस बारा, तब यहु प्राण पतीजै॥
यों हम जाणा मन पतियाना, करनी कठिन अपारा।
"दादू" तन का आपा जारै, तौ तिरत न लागै बारा॥ ७॥

## गंग

गङ्ग बड़े प्रतिभाशाली और अकबर के दरबारी कवि थे। अब्दुर्रहीम खानखाना इनको बहुत चाहते थे। गङ्ग के जन्म और मरण की तिथि का ठीक पता नहीं चलता; परन्तु अनुमान से यह माना जा सकता है कि इनकी और रहीम की अवस्था में बहुत कम अन्तर रहा होगा। रहीम का जन्म १६१० में और मृत्यु १६८२ वि० में हुई। अतएव गङ्ग का जन्मकाल भी १६१० के आसपास होगा।

गङ्ग और औरङ्गजेब के सम्बन्ध की एक कथा भी लोक में बहुत प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि औरङ्गजेब ने एक बार कविता से बहुत प्रसन्न होकर गङ्ग को एक हथिनी पुरस्कार में दी। हथिनी बुड्ढी थी। गङ्ग ने हथिनी का मजाक उड़ाते हुए यह छन्द रचा—

तिमिरलङ्ग लई मोल चली बब्बर के हलके।
रही हुमायूं साथ गई अकबर के दल के॥
जहांगीर जस लियो पीठि को भार छुडायो।
शाहजहां करि न्याय ताहि को माड चटायो॥

बलरहित भई पौरुष थक्यो , भगी फिरत बन स्यार डर ।।
औरङ्गजेब करिनी सोई , लै दीन्ही कवि "गङ्ग" घर ।।

इस कथा मे सत्य का कुछ अंश हो या न हो, गङ्ग औरङ्गजेब के समय तक जीवित रहे हो या नही, पर एक बुढिया हथिनी के साथ मुगल खानदान का खासा मजाक उडाया गया है ।

गङ्ग बडे ही धुरन्धर कवि थे । यद्यपि इनका कोई ग्रन्थ नही मिलता परन्तु जो कुछ फुटकर छन्द मिलते है, उनसे इनकी उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय मिलता है ।

इनका एक छप्पै सुनकर अब्दुर्रहीम खानखाना ने इनको ३६ लाख रुपये दिये थे । वह छप्पय यह है —

चकित भवर रहि गयौ गमन नहि करत कमल बन ।
अहि फनि मनि नहि लेत तेज नहि बहत पवन घन ।।
हस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिलै अति ।
बहु सुन्दरि पद्मिनी पुरुष न चहै न करै रति ।।
खलभलित सेस कवि "गङ्ग" भनि अमित तेज रवि रथ खस्यो ।
खानानखान बैरम सुवन जि दिन क्रोध करि तुग कस्यो ।।

हम इनके कुछ छन्द नीचे लिखते है —

बैठी थी सखिन सग पिय को गवन सुन्यो सुख के समूह मे वियोग आग भरकी । 'गग' कहै त्रिविध सुगन्ध लै पवन बह्यो लागत ही ताके तन भई बिथा जर की ।। प्यारी को परसि पौन गयो मानसर पह लागत ही औरै गति भई मानसर की । जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो जल जरि गयो पङ्क सूख्यो भूमि दरकी ।। १ ।।

नवल नवाब खानखाना जू तिहारी त्रास भागे देसपती धुनि सुनत निसान की । 'गङ्ग' कहै तिनहू की रानी राजधानी छाड़ि फिरै बिललानी सुधि भूली खानपान की ।। तेऊ मिली करिन हरिन मृग बानरन तिनहु की भली भई रच्छा तहा प्रान की । सची मिली करिन भवानी जानी केहरिन मृगन कलानिधि कपिन जानी जानकी ।। २ ।।

प्रबल प्रचण्ड बली बैरम के खानखाना तेरी धाक दीपन दिसान दह दहकी। कहै कवि 'गङ्ग' तहा भारी सूर वीरन के उमडि अखण्ड दल प्रलै पौन लहकी॥ मच्यो घमसान तहा तोप तीर बान चलै मडि बलवान किरपान कोपि गहकी। तुण्ड काटि मुण्ड काटि जोसन जिरह काटि नीमा जामा जीन काटि जिमी आनि ठहकी॥ ३॥

झुकत कृपान मयदान ज्यो उदोत भान एकन ते एक मनो सुखमा जरद की। कहै कवि 'गङ्ग' तेरे बल की बयारि लागे फूटी गज घटा घन घटा ज्यो सरद की॥ एते मान सोनित की नदिया उमडि चली रही न निसान कहू महि मे गरद की। गौरी गह्यो गिरिपति गनपति गह्यो गौरी गौरीपति गह्यो पूछ लपकि बरद की॥ ४॥

फूट गये हीरा की बिकानी कनी हाट हाट काहू घाट मोल काहू बाढ मोल को लयो। टूट गई लङ्का फूट मिल्यो जो विभीषन है रावन समेत बस आसमान को गयो॥ कहै कवि 'गङ्ग' दुरजोधन से छत्रधारी तनक मे फूटे ते गुमान वाको नै गयो। फूटे ते नरद उठि जात बाजी चौसर को आपुस के फूटे कहु कौन को भलो भयो॥ ५॥

आवत हौ चले शिव शैलते गिरीश जाचे मिल्यो हुतो मोहि जहा सागर सगर को। कविन की रसना की पालकी पै चढो जात सग सोहै रावरो प्रताप तेज वर को॥ कवि 'गङ्ग' पूछी तुम को हौ कित जैहौ, उन कह्यो मोसो हसि कै सनेसो ऐसो थर को। जस मेरो नाम मेरो दसो दिसि काम मेरो कहियो प्रनाम हौ गुलाम वीरवर को॥ ६॥

देखत के वृच्छन मे दीरघ सुभायमान कीर चल्यो चाखिवे को प्रेम जिय जग्यो है। लाल फल देखि कै जटान मडरान लागे देखत बटोही वहुतेरे डगमग्यो है॥ 'गङ्ग' कवि फल फूटे भुआ उधिरान लखि सबन निराश ह्वै कै निज गृह भग्यो है। ऐसो फलहीन वृच्छ वसुधा मे भयो यारो सेमर विसासी वहुतेरन को ठग्यो है॥ ७॥

मृगहू ते सरस विराजत विसाल दृग देखिये न अति दुति कौलहू के दल मे। "गङ्ग" घन दुज से लसत तन आभूपन ठाढे द्रुम छाह देख कै

गई बिकल मैं। चख चित चाय भरे शोभा के समुद्र माझ रही ना सभार दसा औरे भई पल मे। मन मेरो गरुओ गयोरी बूडि मै न पायो नैन मेरे हरुये तिरन रूप जल मैं ।। ८ ।।

चकई बिछुरि मिली तू न मिली प्रीतम सो गग कवि कहै ये तो कियो मान ठानरी। अथये नछत्र ससि अथई न तेरी रिस तू न परसन परसन भयो भान री। तू न खोली मुख खोलो कज औ गुलाब मुख चली सीरी वायु तू न चली भो बिहान री। राति सब घटी नाही करनी ना घटी तेरी दीपक मलीन तेरो मान री ।। ९ ।।

अधर मधुप ऐसे वदन अधिकानी छवि विधि मानो बिधु कीन्हो रूप को उदधि कै। कान्ह देखि आवत अचानक मुरछि पर्यो बदन छपाइ सखियान लीन्ही मधि कै। मारि गई 'गङ्ग' दृग शर वेधि गिरिधर आधी चितवनि मैं अधीन कीन्हो अधिकैं। बान बधि बधिक बधे को खोज लेत फेरि बधिक बधू ना खोज लीन्ही फेरि बधि कै ।। १० ।।

मालती शकुन्तला सी को है कामकदला सी हाजिर हजार चारु नटी नौल नागरैं। ऐल फैल फिरत खवास खास आसपास चोवन का चहल गुलाबन की गागरै। ऐसी मजलिस तेरी देखी बीरबर आज 'गग' कहै गूगी ह्वै कै रही है गिरा गरैं। महि रह्यो मागधनि गीत रह्यो ग्वालियर गोरा रह्यो गोर ना अगर रह्यो आगरैं ।। ११ ।।

राजे भाजे राज छोडि रन छोडि रजपूत रौतौ छोडि राउत रनाई छोडि रानाजू। कहै कवि 'गङ्ग' हूल समुद के चहू कूल कियो न करै कबूल तिय खसमाना जू। पश्चिम पुरतगाल कासमीर अवताल खक्खर को देस बाढ्यो भक्खर भागना जू। रूम साम लोम सोम बलक बदाख-शान खैल फैल खुरासान खीझे खानखाना जू ।। १२ ।।

कोप कसमीर ते चल्यो है दल साजि बीर धीर ना धरत गल गाजिबे को भीम है। सुन्न होत साझे ते बजत दत आधीरात तीसरे पहर दहल दै असीम है। कहै कवि 'गङ्ग' चौथे पहर सतावै आनि

निपट निगोरो मोहि जानि कै यतीम है । बाढी शीत शखा कापै कर ह्वै अतङ्का लघुशङ्का के लगे ते होत लका की मुहीम है ।।१३।।

कहेते न समझे न समझाये समझे सुकवि लोग कहे ताहि मानत असार सी । काक को कपूर जैसे मरकट को भूषण ज्यो ब्राह्मण को मक्का जैसे मीर को बनारसी । बहिरे के आगे तान गाये तो सवाद जैसे हिजडे के आगे नारि लागत अगार सी । कहे कवि 'गग' मनमाहि तो विचार देखो मूढ आगे विद्या जैसे अधे आगे आरसी ।। १४ ।।

तारा की जोत मे चद्र छिपे नहि सूर छिपे नहि बादर छाये ।
रन्न चढे रजपूत छिपे नहि दाता छिपे नहि मागन आये ।।
चचल नारि को नैन छिपे नहि प्रीति छिपे नहि पीठ दिखाये ।
'गग' कहै सुन शाह अकब्बर कर्म छिपे न भभूत लगाये ।। १५ ।।

बुरो प्रीति को पथ, बुरो जगुल को बासो ।
बुरो नारि को नेह, बुरो मूरख सो हासो ।।
बुरी सूम की सेव, बुरो भगिनी पर भाई ।
बुरी कुलच्छन नारि, सास घर बुरो जमाई ।।
बुरो पेट पपाल है, बुरो युद्ध से भागनो ।
'गग' कहे अकबर सुनो, सब से बुरो है मागनो ।। १६ ।।

दलहि चलत हलहलत भूमि थल थल जिमि चल दल ।
पल पल खल खलभलत बिकल बाला कर कुल कल ।
जब पटहध्वनि युद्ध धुधु धुद्धुव धृद्धुव हुव ।
अरर अरर फटि दरकि गिरत धसमसति धुकन ध्रुव ।
भनि 'गग' प्रबल महि चलत दल जहगीरशाह तुव भार तल ।
फुफु फनिन्द फन फुकरत सहस गाल उगिलत गरल ।।१७।।

मृगनैनी की पीठ पै बेनी लसै सुख साज सनेह समोइ रही ।
सुचि चीकनी चारु चुभी चित मै भरि भौन भरी खुशबोइ रही ।
कवि 'गग' जू या उपमा जो कियो लखि सूरति ता श्रुति गोइ रही ।
मनो कचन के कदलीदल पै अति सावरी सापिनी सोइ रही ।।१८।।

मन घायल पायल मायल ह्वै गढ लकते दूरि निसक गयो।
तह रूप नदी त्रिवली तरि कै करि साहस सागर पार भयो।
कवि 'गग' भनै बटपार मनोज रुमावलि सो ठग सग लयो।
परि दोऊ सुमेरु के बीच मनोभव मेरो मुसाफिर लूट लयो ॥१०॥

## हरिनाथ

हरिनाथ नरहरि के पुत्र थे। शाहजहा बादशाह की इन पर बडी कृपा रहती थी। शाहजहा के सिवा अन्य राजा महाराजाओ के यहा भी इनका अच्छा मान था, और इनको विदाई मे घोडे, हाथी, रथ, पालकी और गाव आदि मिलते थे।

एक बार आमेर के राजा सवाई मानसिंह की प्रशसा में इन्होने नीचे लिखे दोहे पढकर एक लाख रुपया दान पाया—

बलि बोई कीरति लता, कर्ण करी द्वैपात।
सीची मान महीप ने, जब देखी कुम्हिलात ॥ १ ॥
जाति जाति ते गुन अधिक, सुन्यो न कबहू कान।
सेतु बाधि रघुबर तरे, हेला दे नृप मान ॥ २ ॥

जब रुपया लेकर हरिनाथ दरबार से घर की ओर चले तो मार्ग मे एक ब्राह्मण मिला। उसने यह दोहा कहा—

दान पाय दोई बढे, की हरि की हरिनाथ।
उन बढि ऊचे पग किये, इन बढि ऊचे हाथ॥

इस दोहे से प्रसन्न हो हरिनाथ ने सब धनधान्य जो कुछ पाया था, उस ब्राह्मण को दे दिया और आप खाली हाथ घर चले गये। एक बार हरिनाथ बाधवगढ के बघेला रामचन्द्र के दरबार में गये। वहा राजा से दान सम्मान पाकर उन्होने अपनी विपत्ति को सबोधन करके यह सवैया पढा—

आज लौ तोसों औ मोसो विपत्ति बढी रही प्रीति की रीति महेली।
तो हित झार पहार मझाय कै आय के देखी है भूमि बघेली॥

श्री हरिनाथ सो मान करै मति मेरी कही यह मानि लै हेली ।
भेटत हौ राजा रामनरेसहि भेंटि लै री फिर भेट दुहेली ॥

इस सवैया से प्रसन्न होकर राजा ने हरिनाथ को एक लाख रुपया पुरस्कार दिया ।

अब जरा हरिनाथ के चिडीखाने का वर्णन सुनिये—

वाजपेयी बाज सम पाडे पच्छिराज सम,
हस से त्रिवेदी और सोहै बडे गाथ के ।
कुही सम सुकुल मयूर से तिवारी भारी,
जुर्रा सम मिसिर नवैया नही माथ के ॥
नीलकण्ठ दीक्षित अवस्थी है चकोर चारु,
चक्रवाक दुवे गुरु सुख शुभ साथ के ।
येते द्विज जाने रङ्ग रङ्ग के मै आने,
देस देस मे बखाने चिरीखाने हरिनाथ के ॥

## रहीम

रहीम का पूरा नाम नवाब अब्दुल्रहीम खानखाना था । इनके बाप का नाम बैरम खा था । इनका जन्म स० १६१० मे हुआ । ये अकबर के प्रधान सेनापति, मन्त्री और दरबार के नवरत्नो मे से एक रत्न थे । अकबर इनका बहुत आदर करते थे ।

रहीम अरबी, फारसी, सस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान थे । इन की सभा सदा पडितो से भरी रहती थी । ये बडे दानी, परोपकारी, सज्जन और श्रीकृष्णचन्द्र के अनन्य उपासक थे । श्रीकृष्ण के लिए इनकी कविता मे इनके विशुद्ध प्रेम की बडी ही मनोहर झलक दिखाई पडती है । इनका स्वभाव बहुत ही सरस और दयापूर्ण था । कहा जाता है कि जीवन भर मे इन्होने कभी किसी पर क्रोध नहीं किया । वर्ष मे एक बार किसी नियत दिन पर ये अपने घर की सारी सम्पत्ति दान कर दिया करते थे । इनको ससार का बडा गहरा अनुभव था । स० १६८२ में ये परलोक सिधारे ।

जो मुगल साम्राज्य का उच्च पदाधिकारी, सहृद, विद्वान, सुकवि रसिक, दयालु दानवीर और भक्त था, उसके जीवन की घटनाये भी बडी मनोहर और अद्भुत होगी, इसमे सन्देह ही क्या है ? रहीम के विषय मे बहुत सी किम्बदन्तिया लोगो मे प्रचलित है। उनमे से कितनी सच और कितनी झूठी है, इसका निर्णय करना इतिहास के अभाव मे बहुत कठिन है। अतएव सत्य असत्य का निर्णय समालोचकोपर छोडकर पाठको के मनोरजन के लिए कुछ किम्वदन्तियो का उल्लेख यहां किया जाता है।

( १ )

अकबर के दरबार मे गग बडे प्रतिभाशाली कवि थे। रहीम उनको बहुत चाहते थे। एक दिन गग ने रहीम की प्रशसा मे यह छप्पय सुनाया—

चकित भवर रहि गयो गमन नहि करत कमल बन।
अहि फन मनि नहि लेत तेज नहि बहत पवन घन॥
हस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिलै अति।
बहु सुन्दर पद्मिनी पुरुष न चहै न करै रति॥
खलभलित सेस कवि गग भनि अमित तेज रवि रथ खस्यो।
खानानखान बैरम सुवन जि दिन क्रोध करि तग कस्यो॥

कहते है कि इस छप्पय से रहीम इतने प्रसन्न हुए कि उसी समय इन्होने ३६ लाख की एक हुण्डी, जो खजाने मे जमा होने के लिए आई थी, उठाकर गग को दे दी। यदि घटना सच हो तो, सचमुच रहीम बडे ही निस्पृह और दानवीर थे।

( २ )

गोसाई तुलसीदासजी से भी रहीम का परिचय था। एक दिन एक याचक ब्राह्मण को तुलसीदासजी ने इनके पास भेजा। उसको अपनी कन्या के विवाह के लिए कुछ धन की आवश्यकता थी। तुलसीदासजी ने यह आधा दोहा भी लिखकर उस ब्राह्मण के हाथ भेजा था—

"सुरतिय, नरतिय, नागतिय, यह चाहत सब कोय।"

रहीम ने इस दोहे को इस तरह पूरा करके उस ब्राह्मण को बहुत सा धन देकर तुलसीदासजी के पास भेज दिया—

"गोद लिए हुलसी[1] फिरै, तुलसी से सुत होय॥"

( ३ )

रहीम रहाराणा प्रतापसिंह की देशभक्ति और उनके स्वाभिमान की बड़ी प्रशसा किया करते थे। एक बार इनके घर की बेगमे राजपूतो के हाथ पड गई। राणाजी ने बडे ही आदर के साथ उनको रहीम के पास भेज दिया। तब से राणाजी पर रहीम की बडी श्रद्धा रहने लगी। इसका बदला चुकाने के लिए इन्होंने एक बार अकबर को मेवाड पर एक बडी चढाई करने से रोका भी था। राणाजी के विषय मे इन्होने राजपूतानी बोली मे बहुत से दोहे बनाये थे, उनमें से एक यह है—

भ्रम रहसी, रहसी धरा, खिस जासे खुरसाण।
अमर बिसम्भर ऊपरै, रखिऔ नहचौ राण॥

( ४ )

एक बार रहीम का एक नौकर छुट्टी लेकर घर गया। घर मे उसकी नवबधु का पहले पहल आगमन हुआ था। दम्पत्ति के नवीन प्रेम मे छुट्टी के सारे दिन बात की बात मे चले गये। स्त्री ने पति को घर मे कुछ दिन और रहने के लिए बहुत आग्रह किया। किन्तु नौकरी छूट जाने के भय से पुरुष ने छुट्टी पूरी होने के बाद घर पर ठहरने का साहस नही किया। तब स्त्री ने एक बरवै लिखकर और लिफाफे मे बन्द करके पुरुष को दिया और कहा कि इसे अपने मालिक को दे देना। पुरुष ने ऐसा ही किया। रहीम ने लिफाफा खोला तो उसमे केवल यह लिखा था—

प्रेम प्रीति कौ बिरवा, चल्यौ लगाय।
सीचन की सुधि लीज्यो, मुरझि न जाय॥

[1] हुलसी तुलसीदासजी की माता का नाम था, और हुलसी का दूसरा अर्थ 'हर्ष से फूली हुई' भी होता है।

रीहम ने सारा रहस्य समझ लिया। इन्होने नौकर को बुलाकर घर रहने के लिए एक लम्बी छुट्टी दी और उसकी स्त्री के लिए बहुत से गहने और कपडे भेजे।

यह छन्द इनना पसन्द आया कि इन्होने इसी छद में बरवै नायिका भेद लिख डाला। यह नायिका भेद शृंगार रस की एक बहुमूल्य सम्पत्ति है। घटना और उसका परिणाम दोनो ही बहुत सरस है।

( ५ )

अकबर के मरने पर जहागीर ने रहीम को राजद्रोह के अभियोग मे कैद कर दिया। कैद मे इन्हे बडे बडे कष्ट झेलने पडे। जेल से किसी तरह छुटकारा मिला, तब इन्हे आर्थिक कष्ट ने आ घेरा। क्योकि जहागीर ने इनका सम्पत्ति पहले ही जब्त कर ला थी। ये दुखी होकर चित्रकूट चले आये। इस हालत मे भी याचक लोग इन्हें घेरे रहते थे। दानशक्ति की क्षीणता से इनको बडा मानसिक कष्ट होता था। इन्होने याचको को साफ साफ कह दिया कि—

ये रहीम दर दर फिरै, मागि मधुकरी खाहि।
यारो यारी छोड दो, वे रहीम अब नाहि॥

किन्तु याचक कब मानने लगे। एक दिन एक याचक ने इन्हे बहुत विवश किया और इन्ही का यह दोहा उसने पढ सुनाया—

रहिमन दानि दरिद्र तर, तऊ जाचिबे जोग।
ज्यो सरितन सूखा परे, कुआ खनावत लाग॥

इससे विवश होकर इन्होने रीवा-नरेश के पास यह दोहा लिख भेजा—

चित्रकूट मे रमि रहे, रहिमन अवध नरेश।
जापर बिपदा परति है, सो आवत यहि देस॥

इस दोहे पर मुग्ध होकर रीवा-नरेश ने एक लाख रुपया रहीम के पास भेज दिया। रहीम ने सब रुपया उस याचक को दे दिया।

( ६ )

दरिद्रावस्था से दु.खी होकर रहीम ने एक भुजवे के यहां भार झोंकने

की नौकरी कर ली। एक दिन ये भार झोंक रहे थे। उसी समय रीवा-नरेश उधर से निकले। उन्होंने रहीम को पहचानकर कहा--

जाके सिर अस भार, सो कस झोंकत भार अस।

यह सुनकर रहीम ने सिर उठाकर देखा तो रीवा-नरेश खडे दिखाई पड़े। इन्होंने तत्काल यह उत्तर दिया--

रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार म।[1]

रहीम की कविता नीति और ज्ञान के तत्व से पूर्ण है। छोटे छोटे दोहो मे इन्होंने जो बडे बडे भाव भर दिये है, वे मन को मुग्ध कर लेते है। इनकी कविता का प्रधान गुण सरलता है। इन्होंने कही कही ग्रामीण शब्दो का प्रयोग करके भी अपने भाव व्यक्त किये है। हिन्दी ही मे नही, संस्कृत और फारसी आदि भाषाओ मे भी रहीम ने बडी सरस कविता की है। इनके रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थो के नाम प्रसिद्ध है—

रहीम सतसई, बरवै नायिका भेद, रास पचाध्यायी, शृगार सोरठ, मदनाष्टक, दीवान फारसी और वाकयात बावरी का फारसी अनुवाद तथा खेट कौतुक जातकम्।

इनमे "बरवै नायिका भेद" ही समूचा छपा हुआ मिलता है। शेष हिन्दी-ग्रथो का पता ही नही। शृगार सोरठ और मदनाष्टक के नमूने के छन्द मिलते है जो इस पुस्तक मे दे दिये गये है। रहीम सतसई के अभी तक थोडे ही दोहे मिलते है। हा, खेट कौतुक जातकम् पूरा मिलता है। रहीम ने "बरवै नायिका भेद" के प्रारम्भ मे कहा है कि—

कवित कह्यो, दोहा कह्यो, तुल्यो न छप्पै छन्द।
विरच्यो इहै विचारि कै, यह बरवै रस छन्द।

इससे जान पडता है कि रहीम ने कवित्त और छप्पै भी लिखे है। हिन्दी-मन्दिर प्रयाग ने "रहीम" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। उसमे

[1] यह घटना मुझे कोइरीपुर (जौनपुर) मे बिन्दा नाम के एक अपढ भिक्षुक की जबानी मालूम हुई।

रहीम की सब कविताए, जो अब तक मिलती है, सगृहीत है।

रहीम की जितनी कवितायें अब तक मिली है, वे उनको एक प्रतिभाशाली कवि प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है। यहा रहीम की कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते है—

## रहीम सतसई

कहि रहीम इक दीपते, प्रकट सब द्युति होय।
तनु सनेह कैसे दुरी, दृग दीपक जरु दोय ॥ १ ॥

तरुवर फल नहि खात है, सरवर पियहि न पान।
कहि रहीम परकाज हित, सम्पति सुचहि सुजान ॥ २ ॥

जिहि रहीम चित आपनो, कीन्हो चतुर चकोर।
निशिवासर लागो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर ॥ ३ ॥

रीति प्रीति सबसो भली, वैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम की, बहुरि न सङ्गति होत ॥ ४ ॥

कहि रहीम धन बढि घटे, जात धनिन की बात।
घटे बढे उनको कहा, घास बेचि जे खात ॥ ५ ॥

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नही वित हानि को, जो न होय हित हानि ॥ ६ ॥

को रहीम पर द्वार पर, जात न जिय पछितात।
सपति के सब जात है, विपति सबहि लै जात ॥ ७ ॥

जो रहीम होती कहू, प्रभु गति अपने हाथ।
तौ को धौ केहि मानतो, आप बड़ाई साथ ॥ ८ ॥

जो रहीम मन हाथ है, मनसा कहु किन जाहि।
जल मे ज्यो छाया परी, काया भीजति नाहि ॥ ९ ॥

तेहि प्रमान चलिबो भलो, जो सब दिन ठहराय।
उमडि चलै जल, पारतें, जो रहीम बढि जाय ॥ १० ॥

यो रहीम सुख दुख सहत, बडे लोग सह शाति।
उवत चन्द्र जिहि भाति सो, अथवत वाही भाति ॥ ११ ॥

माह मास लहि टेसुआ, मीन परे थल भौर।
त्यो रहीम जग जानिए, छुटे आपनो ठौर ॥ १२ ॥
कहि रहीम सपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
विपति कसौटी जे कसे, तेई साचे मीत ॥ १३ ॥
तबही लग जीबो भलो, दीयो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमहि न रुचै रहीम ॥ १४ ॥
रहिमन दानि दरिद्र तर, तऊ जाचिबे जोग।
ज्यो सरितन सूखा परे, कुवा खनावत लोग ॥ १५ ॥
रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिये डारि।
जहा काम आवै सुई, कहा करे तरवारि ॥ १६ ॥
बड माया को दोष यह, जो कबहू घटि जाय।
तो रहीम मरिबो भलो, दुख सहि जिये बलाय ॥ १७ ॥
धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कज तजि अत बसि, कहा भौर को भाय ॥ १८ ॥
दादुर मोर किसान मन, लग्यो रहै घन माहि।
पै रहीम चातक रटनि, सरवर को कोउ नाहि ॥ १९ ॥
अमरबेलि बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरये काहि ॥ २० ॥
रहिमन अति न कीजिये, गहि रहिये निज कानि।
सहिजन अति फूले तऊ, डार पात की हानि ॥ २१ ॥
सरवर के खग एक से, बाढत प्रीत न धीम।
पै मराल को मानसर, एकै ठौर रहीम ॥ २२ ॥
कहु रहीम केतिक रही, केती गई विहाय।
माया ममता मोह परि, अन्त चले पछिताय ॥ २३ ॥
जो रहीम करिवो हुतो, व्रज को यही हवाल।
तौ कत मातहि दुख दियो, गिरिवरधर गोपाल ॥ २४ ॥

दीरघ दाहा अर्थ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यो रहीम नट कुण्डली, सिमिट कूदि कढि जाहिं ॥ २५ ॥
जे रहीम विधि बड किए, को कहि दूषण काढि।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तें बाढि ॥ २६ ॥
रहिमन याचकता गहे, बडे छोट ह्वै जात।
नारायण हू को भयो, बावन आगुर गात ॥ २७ ॥
ए रहीम घर घर फिरैं, मागि मधुकरी खाहिं।
यारौ यारी छोडि दो, अब रहीम वे नाहिं ॥ २८ ॥
हरि रहीम ऐसी करी, ज्यो कमान सर पूर।
खैंचि आपनी ओर को डार दियो पुनि दूर ॥ २९ ॥
सतन सपति जानिके, सबको सब कुछ देइ।
दीनबन्धु बिन दीन की, को रहीम सुधि लेइ ॥ ३० ॥
समय दशा कुल देखि के, लोग करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान ॥ ३१ ॥
सर सूखे पछी उडै, और सरन समाहिं।
दीन मोन बिन पच्छ के, कहु रहीम कह जाहिं ॥ ३२ ॥
धूर धरत नित शीश पर, कहु रहीम किहि काज।
जिहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूढत गजराज ॥ ३३ ॥
दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहि लखै, दीनबन्धु सम होय ॥ ३४ ॥
राम न जाते हिरन सग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहु, होति आपने हाथ ॥ ३५ ॥
कहु रहीम कैसे निभै, बेर केरु को सग।
वे डोलत रस आपनो, उनके फात अग ॥ ३६ ॥
जो रहीम ओछो बढै, तौ तितही इतराय।
प्यादे से फरजी भयो, टेढो टेढो जाय ॥ ३७ ॥

खीरा को मुह काटिके, मलियत लोन लगाय।
रहिमन करुवे मुखन की, चहिये यही सजाय ॥ ३८ ॥
नैन सलोने अधर मधु, कहु रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लौन पर, अरु मीठे पर लौन ॥ ३९ ॥
जो विषया सतन तजी, मूढ ताहि लपटात।
ज्यो नर डारत वमन कर, श्वान स्वाद सो खात ॥ ४० ॥
जो रहीमन दीपक दशा, तिथि राखत पट ओट।
समै परे ते होति है, वाही पटकी चोट ॥ ४१ ॥
रहिमन राज सराहिये, शशि सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है, तप्यो तरैयन खोय ॥ ४२ ॥
कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यो न चचला होय ॥ ४३ ॥
रहिमन कहत सुपेट सो, क्यो न भयो तू पीठ।
रीते अनरीते करत, भरे बिगारत दीठ ॥ ४४ ॥
जे गरीब सो हित करै, धनि रहीम वे लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई योग ॥ ४५ ॥
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसग।
चन्दन विष व्यापत नही, लपटे रहत भुजग ॥ ४६ ॥
यह न रहीम सराहिये, देन लेन की प्रीत।
प्रानन बाजी राखिये, हारि होय कै जीत ॥ ४७ ॥
आप न काहू काम के, डार पात फल मूर।
औरन को रोकत फिरै, रहिमन कूर बबूर ॥ ४८ ॥
रहिमन सूधी चाल सो, प्यादा होत वजीर।
फरजी मीर न हो सकै, टेढे की तासीर ॥ ४९ ॥
बडे पेट के भरन मे, है रहीम दुख वाढि।
याते हाथी हहरि के, दये दात द्वै काढि ॥ ५० ॥

यो रहीम सुख होत है , बढत देखि निज गोत ।
ज्यो बडरी अखिया निरखि , आखिन को सुख होत ॥ ५१ ॥
ओछो काम बडे करै , तौ न बडाई होय ।
ज्यो रहीम हनुमन्त को , गिरिधर कहै न कोय ॥ ५२ ॥
जो बडेन को लघु कहौ , नहि रहीम घटि जाहि ।
गिरिधर मुरलीधर कहे , कछु दुख मानत नाहि ॥ ५३ ॥
शशि सकोच साहस सलिल , मान सनेह रहीम ।
बढत बढत बढि जाति है , घटत घटत घटि सीम ॥ ५४ ॥
यह रहीम निज सग ले , जनमत जगत न कोय ।
बैर प्रीति अभ्यास यश , होत होत ही होय ॥ ५५ ॥
बडे दीन को दुख सुने , लेन दया उर आनि ।
हरि हाथी सो कब हुती , कहु रहीम पहिचानि ॥ ५६ ॥
रहिमन राम न उर धरै , रहत विषय लपिटाय ।
पशु खर खात सवाद सो , गुर गुलियाये खाय ॥ ५७ ॥
दुरदिन परे रहीम कहि , दुरथल जैयत भागि ।
ठाढे हूजत घूर पर , जब घर लागत आगि ॥ ५८ ॥
प्रीतम छवि नैनन बसी , पर छबि कहा समाय ।
भरी सराय रहीम लखि , आप पथिक फिरि जाय ॥ ५९ ॥
गुरुता फबे रहीम कहि , फबि आई है जाहि ।
उर पर कुच नीके लगै , अन्त बतौरी आहि ॥ ६० ॥
कुटिलन सग रहीम कहि , साधू बचते नाहि ।
ज्यो नैना सैननि करै , उरज उमेठे जाहि ॥ ६१ ॥
कौन बडाई जलधि मिलि , गग नाम भौ धीम ।
केहि की प्रभुता नहि घटी , पर घर गये रहीम ॥ ६२ ॥
मानसरोवर ही मिलै , हसनि मुक्ता भोग ।
सफरिन भरे रहीम सर , बक बालकनहि योग ॥ ६३ ॥

रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढे आकाश लौं, तऊ बावनै नाम ॥ ६४ ॥
रहिमन रिससहि तजत नहि, बडे प्रीति को पौरि।
मूकन मारत आबई, नीद बिचारी दौरि ॥ ६५ ॥
मनसिज माली की उपज, कही रहीम न जाय।
फूल श्याम के उर लगे, फल श्यामा उर आय ॥ ६६ ॥
जेहि रहीम तन मन दियो, कियो हिए बिच भौन।
तासो दुख सुख कहन की, रही बात अब कौन ॥ ६७ ॥
जो पुरुषारथ ते कहू, सम्पति मिलति रहीम।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम ॥ ६८ ॥
सब कोऊ सब सो करै, राम जुहार सलाम।
हित रहीम तब जानिये, जा दिन अटकै काम ॥ ६९ ॥
ज्यो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगै, बढे अंधेरो होय ॥ ७० ॥
छोटेन सो सोहै बडे, कहि रहीम यहि लेख।
सहसन को हथ बाधियत, लै दमरी की मेख ॥ ७१ ॥
सम्पति भरम गवाइ के, हाथ रहत कछु नाहि।
ज्यो रहीम शशि रहत है, दिवस अकासहि माहि ॥ ७२ ॥
अनुचित उचित रहीम लघु, करहि बडेन को जोर।
ज्यो शशि के सयोग ते, पचवत आगि चकोर ॥ ७३ ॥
काम कछू आवै नही, मोल न कोऊ लेइ।
बाजू टूटे बाज को, साहब चारा देइ ॥ ७४ ॥
धनि रहीम जल पक को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय ॥ ७५ ॥
मागे घटत रहीम पद, कितो करो बढि काम।
तीन पैग वसुधा करी, तऊ बावनै नाम ॥ ७६ ॥

नाद रीझि तन देत मृग , नर धन हेत समेत ।
ते रहीम पशु ते अधिक , रीझेऊ कछू न देत ॥ ७७ ॥
रहिमन कबहु बडेन के , नाहिं गर्व को लेश ।
भार धरे ससार को , तऊ कहावत शेष ॥ ७८ ॥
रहिमन नीचन सग वसि , लगत कलक न काहि ।
दूध कलारिन हाथ लखि , मद समुझहिं सब ताहि ॥ ७९ ॥
रहिमन अब वे बिरछ कह , जिनकी छाह गभीर ।
बागन विच बिच देखियत , सेहुड कज करीर ॥ ८० ॥
मुकता करै कपूर करि , चातक जीवन जोय ।
येतो बडो रहीम जल , ब्याल वदन विष होय ॥ ८१ ॥
शशि की शीतल चादनी , सुन्दर सबहिं सुहाय ।
लगे चोर चित मे लटी , घटि रहीम मन आय ॥ ८२ ॥
अमृत ऐसे बचन मे , रहिमन रिस की गास ।
जैसे मिसिरिहु मे मिली , निरस बॉस की फास ॥ ८३ ॥
रहिमन मनहिं लगाय के , देखि लेहु किन कोय ।
नर को बस करिबो कहा , नारायन बस होय ॥ ८४ ॥
रहिमन असुवा नयन डरि , जिय दुख प्रगट करेइ ।
जाहि निकारो गेह ते , कस न भेद कहि देइ ॥ ८५ ॥
गुन ते लेत रहीम जन , सलिल कूप ते काढि ।
कूपहु ते कहु होत है , मन काहू को बाढि ॥ ८६ ॥
रहिमन मन महाराज के , दृग सो नही दिवान ।
जाहि देखि रीझे नयन , मन तेहि हाथ बिकान ॥ ८७ ॥
बिरह रूप घन तम भयो , अवधि आस उदोत ।
ज्यो रहीम भादो निशा , चमकि जात खद्योत ॥ ८८ ॥
रहिमन लाख भली करौ , अगुनी अगुन न जाय ।
राग सुनत पय पियत हू , साप सहज धरि खाय ॥ ८९ ॥

जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत सब, शीत घाम औ मेह ॥ ९० ॥
शीत हरत तम हरन नित, भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तेहि रविको कहा, जो घटि लखै उलूक ॥ ९१ ॥
नहिं रहीम कुछ रूप गुण, नहिं मृगया अनुराग।
देशी श्वान जो राखिये, भ्रमत भूखही लाग ॥ ९२ ॥
कागज को सो पूतरा, सहजहि मे घुल जाय।
रहिमन यह अचरज लखो, सोऊ खेंचत बाय ॥ ९३ ॥
विगरी बात बनै नही, लाख करौ किन कोय।
रहिमन विगरे दूव को, मथै न माखन होय ॥ ९४ ॥
मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय ॥ ९५ ॥
होय न जाकी छाह ढिग, फल रहीम अति दूर।
बाढेहु सो बिन काज ही, जैसे तार खजूर ॥ ९६ ॥
यो रहीम गति बडेन की, ज्यो तुरग व्यवहार।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार ॥ ९७ ॥
रहिमन निज मनकी व्यथा, मनही राखौ गोय।
सुनि अठिलैहै लोग सब, बाटि न लैहै कोय ॥ ९८ ॥
रहिमन चुप ह्वै बैठिये, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइ है, बतन न लगि है देर ॥ ९९ ॥
गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछु उपाव ॥१००॥
रहिमन वे नर मर चुके, जे कहु मागन जाहिं।
उनसे पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ॥१०१॥
जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाडत छोह ॥१०२॥

धन दारा अरु सुतन मे , रहत लगाये चित्त ।
क्यो रहीम खोजत नही , गाढे दिन को मित्त ॥१०३॥
अमी हलाहल मद भरे , श्वेत श्याम रतनार ।
जियत मरत झुकि झुकि परत जिहि चितवत इक बार ॥१०४॥
कमला थिर न रहीम कहि , लखत अधम जे कोइ ।
प्रभु की सो अपनी कहै , क्यो न फजीहत होइ ॥१०५॥
रहिमन पानी राखिये , बिन पानी सब सून ।
पानी गये न ऊबरै , मोती मानुस चून ॥१०६॥
जाय समानी उदधि मे , गङ्ग नाम भयो धीम ।
काकी महिमा ना घटी , पर घर गये रहीम ॥१०७॥
मानसरोवर ही मिले , हसन मुक्ता भोग ।
सफरी भरे रहीम ए , विपुल बिलोकन योग ॥१०८॥
बढत रहीम धनाढ्य धन , धनै धनी को जाइ ।
घटे बढै तिन को कहा , भीख मागि जो खाइ ॥१०९॥
रहिमन रहिला की भली , जो परसै चित लाय ।
परसत मन मैला करे , सो मैदा जरि जाय ॥११०॥
खैर खून खासी खुशी , बैर प्रीति मधु पान ।
रहिमन दाबे ना दबे , जानत सकल जहान ॥१११॥
गगन चढै फिर क्यो तिरै , रहिमन बहरी बाज ।
फेरि आय बन्धन परै , पेट अधम के काज ॥११२॥
काल परे कछु और है , काज सरे कछु और ।
रहिमन भावर के भये , नदी सेरावत मौर ॥११३॥
रहिमन चाक कुम्हार को , मागे दिया न देइ ।
छेद मे डडा डारि के , चहै नाद लइ लेइ ॥११४॥
अब रहीम मुसकिल परी , गाढे दोऊ काम ।
साचे से तो जग नही , झूठे मिलै न राम ॥११५॥

रहिमन कोऊ का करै , ज्वारी चोर लबार ।
जो पति राखनहार है , माखन चाखनहार ॥११६॥
रहिमन बिपदा तू भली , जो थोरे दिन होय ।
हित अनहित या जगत मे , जानि परत सब कोय ॥११७॥
साधु सराहै साधुता , यती जोखिता जान ।
रहिमन साचे सूर को , बैरी करै बखान ॥११८॥
करत निपुनई गुन बिना , रहिमन निपुन हजूर ।
मानो टेरत बिटप चढि , मोहि समान को कूर ॥११९॥
यों रहीम सुख होत है , उपकारी के अग ।
बाटनवारे के लगै , ज्यो मेहदी को रग ॥१२०॥
भूप गनत लघु गुनिन को , गुनी गनत लघू भूप ।
रहिमन गिरि ते भूमि लौ , लखो तो एकै रूप ॥१२१॥
तैं रहीम मन आपनो , कीन्हो चारु चकोर ।
निसि बासर लाग्यो रहै , कृष्णचन्द्र की ओर ॥१२२॥
मागे मुकुरि न को गयो , केहि न त्यागियो साथ ।
मागत आगे सुख लह्यो , ते रहीम रघुनाथ ॥१२३॥
छिमा बडेन को चाहिये , छोटेन को उतपात ।
का रहीम हरि को घट्यो , जो भृगु मारी लात ॥१२४॥

### सोरठा

रहिमन मोहि न सुहाय , अमी पियावत मान विन ।
जो विष देय बुलाय , प्रेम सहित मरिबो भलो ॥१२५॥

### बरवै नायिका भेद

लहरत लहर लहरिया , लहर वहार ।
मोतिन जरी किनरिया , विथुरे वार ॥ १ ॥
लागेउ आनि नवेलियहि , मनसिज वान ।
उकसन लाग उरोजवा , दृग तिरछान ॥ २ ॥

कवन रोग दुहु छतिया, उपजेउ आय।
दुखि दुखि उठै करेजवा, लगि जनु जाय॥ ३॥
औचक आय जोबनवा, मोहिं दुख दीन।
छुटि गो सङ्ग गोइयवा, नहिं भल कीन॥ ४॥
भोरहिं बोलि कोइलिया, बढवत ताप।
घरि घरि एक घरिअवा, रहु चुपचाप॥ ५॥
बाहर लैके दियवा, बारन जाय।
सासु ननद ढिग पहुचत, देति बुझाय॥ ६॥
होइ कत आय बदरिया, बरखहिं पाथ।
जैहौ घन अमरैया, सुगना साथ॥ ७॥
जैहौ चुनन कुसुमिआ, खेत बडि दूर।
नौवा केरि छोहरिया, मुहिं सग कूर॥ ८॥
जस मद मातल हथिया, हुकमत जाति।
चितवत जाति तरुनिया, मन मुसुकाति॥ ९॥
खीन मलिन विषभैया, औगुन तीन।
मोहिं कहत बिधुबदनी, पिय मतिहीन॥१०॥
ते अब जासि बेइलिया, बरु जरि मूल।
बिन पिय सूल करेजवा, लखि तुव फूल॥११॥
का तुम जुगल तिरियवा, झगरत आय।
पिय बिन मनहु अटरिया, मुहिं न सुहाय॥१२॥
कासो कहौं सदेसवा, पिय परदेसु।
लगेहु चहत नहिं फूले, तेहि बन टेसु॥१३॥
पिय आवत अगनैया, उठि कै लीन।
साथे चतुर तिरियया, बैठक दीन॥१४॥
कठिन नीद भिनुसरवा, आलस पाय।
धन दै मूरख मितवा, रहल लोभाय॥१५॥

सुभग बिछाइ पलगिया , अंग सिंगार ।
चितवति चौंकि तरुनिया , दै दृग द्वार ॥१६॥
बन घन फूलहि टेसुआ , बगियन बेलि ।
चले बिदेश पियरवा , फगुआ खेलि ॥१७॥
पीतम इक सुमिरिनिया , मुहि देइ जाहु ।
जेहि जपि तोर बिरहवा , करब निबाहु ॥१८॥
लखि अपराध पियरवा , नहि रिस कीन ।
बिहसत चदन चउकिया , बैठक दीन ॥१९॥
करत न हिय अपरधवा , सपनेहु पीय ।
मान करन की बिरिया , रहिगो हीय ॥२०॥
लै कर सुघर खुरुपिया , पिय के साथ ।
छइबे एक छतरिया , बरसत पाथ ॥२१॥
सघन कुज अमरैया , सीतल छाह ।
झगरत आइ कोइलिया , पुनि उडि जाह ॥२२॥
खेलत जानिसि टोलवा , नन्दकिसोर ।
छुइ वृषभानु कुअरिया , होइ गइ चोर ॥२३॥
पातम मिले सपनवा , भो सुखखानि ।
आनि जगायेसि चेरिया , भइ दुखदानि ॥२४॥
पिय मूरति चितसरिया चितवत बाल ।
चितवत अवध सबेरवा , जपि जपि माल ॥२५॥
बिरहिन और बिदेसिया , भौ इक ठौर ।
पिय मुख तकत तिरियवा , चन्द चकोर ॥२६॥
सखियन कीन सिंगरवा , रचि बहु भाति ।
हेरति नैन अरसिया , मुरि मुसुकाति ॥२७॥
छाकहु बइठ दुअरिया , मीजहु पाय ।
पिय तन पेखि गरमिया , विजन डुलाय ॥२८॥

टूटि खाट घर टपकत , टटिश्रौ टूटि ।
पिय कै बाह सिर्हनवा , सुख कै लूटि ॥२९॥
ढील श्रोखि जल अचवनि , तरुनि सुगानि ।
धरि खसकाइ घइलना , मुरि मुसुकानि ॥३०॥
बालम अस मन मिलयउ , जस पय पानि ।
हसिनि भई सवतिया , लइ बिलगानि ॥३१॥
पथिक आइ पनिघटवा , कहत "पियाव" ।
पैया परउ , ननदिया , फेरि कहाव ॥३२॥

**शृगार सोरठ**

पलटि चली मुसुकाय , दुति रहीम उजियाय अति ।
बाती सी उसकाय , मानो दीनी दीप की ॥१॥
दीपक हिये छिपाय , नवल बधू घर लै चली ।
कर विहीन पछिताय , कुच लखि निज सीसै धुनै ॥२॥
गई आगि उर लाय , आगि लेन आई जो तिय ।
लागी नही बुझाय , भभकि भभकि बरि बरि उठै ॥३॥

**मदनाष्टक**

कलित ललित माला , वा जवाहिर जडा था ।
चपल चखन वाला , चादनी मे खडा था ॥
कटि तट बिच मेला , पीत सेला नवेला ।
अलि बन अलबेला , यार मेरा अकेला ॥

# केशवदास

केशवदास सनाढय ब्राह्मण थे । इनके पिता का नाम काशीनाथ था । इनका जन्म स० १६१२ के लगभग हुआ । ओडछा नरेश महाराजा रामसिह के भाई इन्द्रजीतसिह इनका विशेष आदर करते थे । महाराजा बीरबल ने इनको केवल एक छद पर छ लाख रुपये दिये थे । वह छद यह है—

केशवदास के भाल लिख्यो बिधि रक को अक बनाय सवारयो।
धोये धुवै नहि छूटो छुटै बहु तीरथ जाय कै नीर पखारयो॥
ह्वै गयो रक ते राव तबै जब वीरबली नृपनाथ निहारयो।
भूलि गयो जग की रचना चतुरानन बाय रह्यो मुख चारयो॥

केशवदास ने महाराजा बीरबल के द्वारा इन्द्रजीतसिंह पर एक करोड का जुरमाना अकबर से माफ करा दिया था। इनका शरीरात स० १६७४ के लगभग हुआ।

ये सस्कृत के बड़े पडित थे। इनकी कविता बहुत गूढ होती थी। इसी से प्रसिद्ध देव कवि ने इन्हे "कठिन काव्य का प्रेत" कहा है। और इनकी कविता के विषय मे यह भी प्रसिद्ध है कि "कवि का दीन न चहै बिदाई। पूछै केशव की कविताई।"

इनके रचे हुये आठ ग्रथ कहे जाते है—रसिक प्रिया, कवि प्रिया, राम चद्रिका, विज्ञान गीता, वीर सिहदेव चरित्र, जहागीर चद्रिका, नखशिख और रत्न बावनी। उनमे से चार बहुत प्रसिद्ध है—रामचद्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया और विज्ञान गीता। लोग कहते है कि रामचन्द्रिका इन्होने तुलसीदासजी के कहने से लिखी। रामचन्द्रिका महाकाव्य है। कविप्रिया अलकार-प्रधान ग्रन्थ है। यह प्रवीणराय वेश्या के लिए लिखा गया था। प्रवीणराय काव्यकला मे इनकी शिष्या थी। रसिकप्रिया शृगार-प्रधान ग्रन्थ है। इसमे रसो का वर्णन है। विज्ञानगीता एक साधारण ग्रथ है।

केशवदास महाकवि थे, इसमे सदेह नही। इनकी कोई-कोई कविता अन्य कवियो की कविता की तरह सुनते ही समझ मे नही आ जाती। उसके लिए कुछ विचार की आवश्यकता पडती है। परन्तु जितना ही उसे अधिक विचारिये, उतनी ही मिठास भी बढती जाती है।

केशवदास रसिक भी एक ही थे। वृद्धावस्था मे इन्होने केशो की सफेदी देखकर कहा—

केशव केसनि अस करी, जस अरिहू न कराहिं।
चन्द्रबदनि मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहिं॥

इससे प्रकट होता है कि वृद्ध होने पर भी इनका मन वृद्ध नही हुआ था।

इनकी कविता के कुछ नमूने हम यहा उद्धृत करते है—

( १ )

विप्र न नेगी कीजिये, मूढ न कीजे मित्त।
प्रभु न कृतघ्नी सेइये, दूषण सहित कवित्त॥

( २ )

धीरज मोचन लोचन लोल विलोकि कै लोककी लीकति छूटी।
फूट गये श्रुति ज्ञान के केशव आख अनेक विवेक की फूटी॥
छोडि दई सरिता सब काम मनोरथ के रथ की गति छूटी।
त्यो न करे करतार उबारक जो चितवै वह बारवधूटी॥

( ३ )

तोरि तनी टकटोरि कपोलनि जोरि रहे कर त्यो न रहौगी।
पान खवाइ सुधाधर पान कै पाइ गहे तस हौ न गहौगी॥
केसव चूक सबै सहिहौ मुख चूमि चले यह तो न सहौंगी।
कै मुख चूमन दे फिरि मोहि कै आपनी धाय सो जाय कहौगी॥

( ४ )

भूषण सकल घनसारही के घनश्याम, कुसुम कलित केशरही छबि छाई सी। मोतिन की लरी सिर कंठ कठ माल हार, और रूप ज्योति जात हेरत हेराई सी॥ चदन चढाये चारु सुन्दर शरीर सब, राखी जनु सुभ्र शोभा बसन बनाई सी। शारदा सी देखियतु देखो जाइ केशोराइ ठाढ़ी वह कुवरि जुन्हाई मे अन्हाई सी॥

( ५ )

मन ऐसो मन मृदु मृदुल मृणालिका के, सूत कैसो सुर ध्वनि मननि हरित है। दार्‌यो कैसो बीज दात पात से अरुण ओठ, केशोदास देखि

दृग आनद भरित है ॥ येरी मेरी तेरी मोहिं भावत भलाई ताते, बूझति हौ तोहिं और बूझत डरति है। माखन सी जीभ मुख कज सी कोमलता मे काठ सी कठेठी बात कैसे निकरति है ॥

( ६ )

पडित पुत्र, सुधी पतिनी जु पतिव्रत प्रेम परायन भारी।
जानै सब गुण, मानै सबै जग, दान विधान दया उर धारी ॥
केशव रोगनही सो वियोग, सयोग सुभोगन सो सुखकारी।
साच कहे, जग माह लहे यश, मुक्ति यहै चहु वेद विचारी ॥

( ७ )

बाहन कुचाली, चोर चाकर, चपल चित, मित्र मति हीन, सूम स्वामी त्र्र आनिये। पर वश भोजन, निवास वास कुकुरन, वरषा प्रवास, केशोदास दुखदानि ये ॥ पापिन के अङ्ग सग, अगना अनग वश, अपयश युत सुत, चित हित हानि ये। मूढता बुढाई, ब्याधि, दारिद, झुठाई आधि, यहई नरक नरलोकनि बखानिये ॥

( ८ )

कैटभसो नरकासुरसो पल मे मधुसो मुरसो जिन मारचो।
लोक चतुर्दश केशव रक्षक पूरण वेद पुरान विचारचो ॥
श्री कमला कुच कुकुम मडित पडित देव अदेव निहारचो।
सो कर मागन को बलि पै करतारहु ने करतार पसारचो ॥

( ९ )

जौ हौ कहौ रहिये तो प्रभुता प्रकट होत चलन कहौ तौ हित हानि नाही सहनो। भावै सो करहु, तौ उदास भाव प्राणनाथ साथ लै चलहु कैसे लोकलाज वहनो ॥ केशोदास की सो तुम सुनहु छबीलेलाल चलेही बनत जो पै नाही राज रहनो। जैसियै सिखाओ सीख तुमही सुजान प्रिय तुमही चलत मोहिं जैसो कछु कहनो ॥

( १० )

रीझ सु धिक बिन मौज मौज धिक देत सु खीझिय ॥
दीबो धिक बिन साच साच धिक धर्म न भावै ।
धर्म सु धिक बिन दया दया धिक अरि कहू आवै ॥
अरि धिक चित्त न सालई, चित धिक जहू न उदार मति ।
मति धिक केशव ज्ञान बिनु, ज्ञान सु धिक बिनु हरिभगति ॥

( ११ )

पातक हानि पिता सग हारिबो गर्व के शूलनि ते डरिये जू ।
तालनि को बधिबो बधरोर को नाथ के साथ चिता जरिये जू ॥
पत्र फटै ते कटे रिन केसव कैसहु तीरथ मे मरिये जू ।
नीकी लगै ससुरारि की गारि औ डाड भलो जो गया भरिये जू ॥

( १२ )

पाप की सिद्धि सदा ऋण बृद्धि सुकीरति आपनी आप कही की ।
दुख को दान जु सूतक न्हान जु दासी की सतति सतत फीकी ॥
बेटी को भोजन भूषन राड को केशव प्रीति दसा पर ती की ।
युद्ध मे लाज दया अरि को अरु ब्राह्मण जाति सो जीति न नीकी ॥

( १३ )

सोने की एक लता तुलसी बन क्यो बरनो सुनि बुद्धि सकै छ्वै ।
केशवदास मनोज मनोहर ताहि फले फल श्रीफल से द्वै ॥
फूलि सरोज रह्यो तिन ऊपर रूप निरूपन चित्त चले च्वै ।
तापर एक सुवा शुभ तापर खेलत बालक खजन के द्वै ॥

( १४ )

दुरिहै क्यो भूषण बसन दुति यौवन की देह हू की ज्योति होति द्यौस ऐसी राति है । नाहक सुवास लागे ह्वै है कैसी केशव सुभावती की वास भौर भीर फारे खाति है ॥ देखि तेरी सूरत की मूरत बिसूरति हू, लालनि के दृग देखिबे को ललचाति है । चालि है क्यो चदमुखी कुचन के भार भये कचन के भार हो लचकि लङ्क जाति है ॥

( १५ )

भूत की मिठाई कसी साधु की झुठाई जैसी स्यार की ढिठाई ऐसी छीण छहू ऋतु है। धीरा कैसो हास केसोदास दासी कैसो सुख सूर की सी सङ्क अङ्क रङ्क कैसो वितु है॥ सूम कैसो दान महामूढ कैसो ज्ञान गौरी गौरा कैसो मान मेरे जान समुदितु है। कौने है सवारी वृषभानु की कुमारी यह तेरी कटि निपट कपट कैसो हितु है।

( १६ )

किधौ मुख कमल ये कमला की ज्योति होति किधौ चारु मुखचन्द्र चन्द्रिका चुराई है। किधौ मृग लोचनि मरीचिका मरीचि कैधौ रूप की रुचिर रुचि सुचि सो दुराई है॥ सौरभ की सोभा की दसन घन दामिनी की केसव चतुर चित ही की चतुराई है। एरी गोरी भोरी तेरी थोरी थोरी हासी मेरी मोहन की मोहिनी की गिरा की गुराई है॥

( १७ )

बन मे वृषभानु कुमारि मुरारि रमे रुचि सो रस रूप पिये।
कल कूजत पूजत कामकला विपरीति रची रति केलि हिये॥
मणि सोहत श्याम जराई जरी अति चौकी चलै चल चार हिये।
मखतूल के झूल झुलावत केशव भानु मनो शनि अङ्क लिये॥

( १८ )

चचल न हूजै नाथ अचल न खैचो हाथ, सोवै नेक सारिकऊ शुक तो सुवायो जू। मन्द करो दीप द्युति चन्द मुख देखियत, दौर के दुराय आऊ द्वार तो दिखायो जू॥ मृगज मराल बाल बाहिरै विड़ार देऊ, भायो तुम्है केशव सु मोहू मन भायो जू। छल के निवास ऐसे बचन विलास सुनि, सौगुनी सुरत हू तै श्याम सुख पायो जू॥

( १९ )

पाइ परै मनुहार करै पलका पर पाइ धरै भय भीने।
सोइ गई कहि केशव कैसहू कोर करोरहू सौहन कीने॥
साहस कै मुख सो मुख दै छिन मे हरि मान महा सुख लीने।
एक उसासही के उससे सिगरेई सुगन्ध विदा करि दीने॥

( २० )

प्रथम सकल शुचि मञ्चन अमल बास, जावक सुदेश केश पाश को सम्हारिबो। अङ्गराग भूषण विविध मुख वास राग, कज्जल कलित लोल लोचन निहारिबो ॥ बोलनि हसनि मृदु चलनि चितौनि चारु, पल पल प्रति पतिव्रत परिपारिबो। केशौदास सो बिलास करहु कुवंरि राधे, इहि बिधि सोरह शृङ्गारनि शृङ्गारिबो ॥

( २१ )

भाव जहा व्यभिचारी वे पै रमै पर नारी, द्विजैगन दडधारी चोरी पर पीर की। मानिनीनही के मन मानियत मान-भग, सिन्धुहि उलाघि जाति कीरति शरीर की ॥ भूलै तो अधोगति न पावत हैं केशौदास, माचही सो हैं वियोग इच्छा गग नीर की ॥ बन्ध्या बासनानि जानु बिधिना सो बाटिनिकी, ऐसी रीति राजनीति राजै रघुबीर की ॥

( २२ )

कवि कुल ही के श्रीफलन , उर अभिलाष समाज।
तिथिही को छय होत है , रामचन्द्र के राज ॥

( २३ )

लूटिबे के नाते पाप पट्टनै तौ लूटियत, तोरिबे को मोह तरु तोरि डारियतु है। घालिबे के नाते गर्व घालियत देवन के, जारिबे के नाते अघ ओघ जारियतु है। बाधिबे के नाते ताल बाधियत केशौदास, मारिबे के नाते तौ दरिद्र मारियतु है। राजा रामचन्द्रजू के नाम जग जोतियतु, हारिबे के नाते आन जन्म हारियतु है ॥

( २४ )

कुटिल कटाक्ष कठोर कुच , एकै दुख अदेय।
द्विस्वभाव अश्लेष मे , ब्राह्मण जाति अजेय ॥

# पृथ्वीराज और चम्पादे

पृथ्वीराज बीकानेर के राजा रार्जासह के भाई थे, और अकबर के दरबार मे रहा करते थे। कहा जाता है कि इन्ही की रानी किरणमयी अत्यन्त सुन्दरी थी, जिसे नवरोज के अवसर पर अकबर ने एक दूती के द्वारा वहकाकर एक कोठरी मे वन्द कर दिया और स्वय कोठरी मे घुस-कर वह बलात्कार किया चाहता था। पर किरणमयी ने उस भारत के शाहशाह को उठाकर पृथ्वी पर दे मारा और कटार निकालकर उसके गले पर रख दी। अकबर ने जब माता कहकर क्षमा मागी तब कही उसके प्राण बचे।

प्रसिद्ध देशभक्त महाराणा प्रतापसिह जब अकबर से विद्रोह कर के राज्य छोडकर वनो मे घूमते थे, तब एक दिन उनकी कन्या के हाथ से एक जङ्गली बिलाव घास की रोटी, जो वह खा रही थी, छीन कर ले गया। कन्या रोने लगी। इस घटना का राणाजी के हृदय पर ऐसा प्रभाव पडा कि उन्होने अकबर के पास सधि का प्रस्ताव लिख भेजा।

टाड साहब लिखते है—'प्रताप का पत्र पाकर अकबर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने आज्ञा दी कि राज्यभर मे नाच गान हो और आनन्द मनाया जावे। मारे हर्ष के उसने वह पत्र पृथ्वीराज को दिखलाया। पृथ्वीराज बीकानेर-नरेश रार्जासह के छोटे भाई थे, जो दुर्भाग्य से मुगलो के यहा कैद थे। वे बडे वीर, साहसी और स्वदेश प्रेमी थे। वीर ही नही, बल्कि वे एक अच्छे कवि भी थे। वे अपनी कवित्व-शक्ति से मनुष्य का मन मोह सकते थे और आवश्यकता पडने पर तलवार लेकर युद्ध मे भी विजय प्राप्त कर सकने थे। लडक-पन ही से वे प्रतापसिह की वीरता, उदारता और स्वदेश-भक्ति पर मोहित होकर उन पर बडी श्रद्धा रखते थे। उनको विश्वास नही था कि प्रतापसिह ने अकबर को ऐसा पत्र लिखा होगा। अतएव स्वाभाविक निडरता से उन्होने अकबर से कहा—"मै प्रताप को भलीभाति जानता

हू । यह पत्र उनका नही है । और तो क्या, यदि आप अपना ताज भी दे दे तो भी तेजस्वी प्रताप आपके वश मे नही होगे ।" -इसके पश्चात् उन्होने अकबर की अनुमति से प्रतापसिह को एक पत्र लिखा । पत्र कविता मे था । उस कविता को अब भी कभी-कभी राजपूत लोग बडे आनन्द से गाते है ।

पत्र की मूल प्रति कही नही मिलती । उसके कुछ दोहे प्रसिद्ध है, उन्हे हम यहा उद्धृत करते है—

घर बाकी दिन पाधरा , मरद न मूकै माण ।
घणा नरिन्दा घेरियो , रहै गिरिन्दा राण ।। १ ।।

जिसकी भूमि अत्यन्त विकट है, और दिन अनुकूल है, जो वीर अभिमान को नही छोडता, वह महाराणा बहुत राजाओ से घिरा हुआ पहाडी मे निवास करता है ।

पातल राण प्रवाड मल , बाकी घडा बिभाड ।
खूदाडै कुण है खुरा , तो ऊभा मेवाड ।। २ ।।

हे विकट सेनाओ के विध्वस करनेवाले और युद्ध मे मल्ल महाराणा प्रतापसिह ! तेरे खडे रहते मेवाड को घोडो के खुरो से खुदानेवाला कौन है ?

माई एहा पूत जण , जेहा राण प्रताप ।
अकबर सूतो ओधकै , जाण सिरा पै साप ।। ३ ।।

हे माता ! तू ऐसा पुत्र उत्पन्न कर, जैसा राणा प्रताप है । जिसको अकबर सिरहाने का साप जानकर सोता हुआ चौक उठता है ।

अइरे अकबरियाह , तेज तुहालो तुरकडा ।
नम नम नीसरियाह , राण बिना सह राजवी ।। ४ ।।

हे अकबर, तेरा तेज देखकर बडा आश्चर्य होता है, जिसके सामने महाराणा के सिवा सब राजा लोग झुक गये ।

सह गावडियो साथ , एकण बाडै वाडियो ।
राण न मानी नाथ , ताडै साड प्रतापसी ।। ५ ।।

हे अकबर ! तूने गाय रूपी सब राजाओ को एक बाड़े मे इकट्ठा कर लिया, परन्तु साड़ रूपी प्रतापसिंह तेरी नाथ को नही मानकर गरज रहा है ।

पातल पाघ प्रमाण , साभी सागा हर तणी ।
रही सदा लग राण , अकबर सूऊभी अणी ॥ ६ ॥

महाराणा सग्रामसिह के पोते प्रतापसिह की पगड़ी ही गिनती मे सच्ची है, जो अकबर के सामने अनम्र होकर उच्च रही ।

चोथो चीतोडाह , बाटो बाजती तणो ।
माथै मेवाड़ाह , थारै राण प्रतापसी ॥ ७ ॥

हे चित्तौड के स्वामी महाराणा प्रतापसिह ! हे मेवाड़पति ! पगड़ी तेरे ही सिर पर है ।

अकबर समद अथाह , तिह डूबा हिन्दू तुरक ।
मेवाड़ो तिड़ माहं , पोयण फूल प्रतापसी ॥ ८ ॥

अकबर रूपी अथाह समुद्र मे हिन्दू तुरुक सब डूब गये, परन्तु मेवाड के स्वामी महाराणा प्रताप उसमे कमल के फूल के समान रहे ।

अकबरिये इक बार , दागल की सारी दुनी ।
अणदागल असवार , चेटक राण प्रतापसा ॥ ९ ॥

अकबर ने एक ही बार मे सारी दुनिया को कलकित कर दिया । परन्तु चेटक घोड़े के असवार राणा प्रताप निष्कलक रहे ।

अकबर घोर अधार , ऊघाणा हिन्दू अवर ।
जागै जगदातार , पोहरे राण प्रतापसी ॥ १० ॥

अकबर रूपी घोर अधकार मे सब हिन्दू सा गये । परन्तु जगत् का दाता राणा प्रताप (धर्म-धन की रक्षा के लिए) पहरे पर खड़ा है ।

हिन्दूपति परताप , पत राखो हिन्दुआणरी ।
सहो विपत सताप , सत्यसपथ करि आपनी ॥ ११ ॥

हे हिन्दूपति प्रताप ! हिन्दुओ की लज्जा रक्खो । अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए सब कष्टो को सहो ।

चम्पा चीतोडाह , पोरस तणो प्रतापसी ।
सौरभ अकबर साह , अलियल आभडिया नही ॥ १२ ॥

चित्तौड चम्पा है, प्रताप उसकी सुगन्ध है । अकबर रूपी भौरा उसके पास नही फटकता । (चम्पा के फूल पर भौरा नही बैठता) ।

पातल जो पतसाह , बोलै मुखहूता बयण ।
मिहर पछम दिस माह , ऊगै कासप राववत ॥ १३ ॥

महाराणा प्रतापसिंह यदि बादशाह को अपने मुख से बादशाह कहे, तो कश्यप जी के सतान भगवान सूर्य पश्चिम दिशा मे उगे ।

पटकू मूछा पाण , कै पटकू निज तन करद ।
दीजै लिख दीवाण , इण दो महली बात इक ॥ १४ ॥

हे दीवान ! मै अपनी मूछ पर हाथ फेरू, या अपने शरीर को तलवार से काट डालू, इन दोनो मे से एक बात लिख दीजिए ।

राठौर-वीर पृथ्वीराज की कविता पढकर प्रताप को इतना साहस हुआ कि मानो उन्हे दश हजार राजपूतो की सहायता मिल गई । वे अपनी प्रतिज्ञा[1] पर दृढ हुए । पत्र के उत्तर मे महाराणा प्रताप ने नीचे लिखे दोहे भेजे थे—

तुरुक कहासी मुख पतो , इण तनसू इकलिग ।
ऊगै जाही ऊगसी , प्राची बीच पतग ॥ १ ॥

भगवान एकलिंग की शपथ है, इस शरीर से अर्थात् प्रताप के मुख से बादशाह तुरुक ही कहलावेगा और सूर्य का उदय जहा से होता है, वही पूर्व ही मे होगा ।

[1] प्रतापसिंह की प्रतिज्ञा यह थी कि वे कभी किसी यवन को सिर न झुकावेगे । एक बार एक भाट अकबर के सामने मुजरा करने गया । सामने पहुचकर उसने पगडी उतार ली । उसको नगे सिर देखकर अकबर ने कारण पूछा, तब उसने कहा—यह पगडी महाराणा प्रतापसिंह जी ने अपने हाथ से दी है । मै इसे आपके सामने झुकाना नही चाहता । यह सुनकर अकबर ने प्रतापसिंह की बडी प्रशसा की ।

खुशी हूत पीथल कमध , पटको मूछा पाण ।
पछटण है जेत पतो , कमला सिर केवाण ॥ २ ॥

हे वीर पृथ्वीराज, आप प्रसन्न होकर मूछो पर हाथ फेरिये । जब तक प्रतापसिंह है, तलवार को यवनो के सिर पर ही जानिये ।

साग मूड सहसी सको , सम जस जहर सवाद ।
भड पीथल जीतो भला , बैण तुरक सू बाद ॥ ३ ॥

राणा प्रताप सिर पर भाला सहेगा, क्योकि बराबरवाले का यश विष के समान होता है। हे भट पृथ्वीराज, आप तुरुक से बातो के युद्ध मे विजय पावे ।

अकबर के साथ विवाद होने का पता जब पृथ्वीराज की रानी को लगा, तब उसने यह दोहा लिखकर पृथ्वीराज के पास भेजा--

पति जिद की पतसाहसू , यहै सुणी मैं आज ।
कहा पातल अकबर कहा , करियो बडो अकाज ॥

हे प्राणपति ! मैंने आज यह सुना कि आपने महाराणा के सम्बन्ध मे अकबर से विवाद किया है । कहा अकबर और कहा प्रताप ! आपने बड़ा अनर्थ किया ।

इसके उत्तर मे पृथ्वीराज ने यह कवित्त लिख भेजा—

जब ते सुने है बैन तब ते न मोको चैन पाती पढि नैक सो बिलब न लगावेगा । लेकै जमदूत से समस्त राजपूत आज आगरे मे आठो याम ऊधम मचावेगो ॥ कहै पृथिराज प्रिया नैक उर धीर धरो चिरजीवी राना श्री मलेच्छन भगावेगो । मन को मरद मानी प्रबल प्रतापसिंह बब्बर ज्यो तडप अकब्बर पै आवेगो ॥

अर्थ स्पष्ट है ।

पृथ्वीराज ने महाराणा प्रताप के विषय मे और भी बहुत-से पद्य रचे थे, उनमे से एक गीत नीचे दिया जाता है—

**गीत**

नर तेथ निमाणा निलजी नारी अकबर गाहक वट अवट ।

चौहटै तिण जायर चीतोडो बेचै किम रजपूत बट ॥
रोजायता तणै नवरोजै जेथ मुसाणा जणा जण ।
हिन्दू नाथ दिलीचे हाटे पतो न खरचै क्षत्री पण ॥
परपच लाज दीठ नह व्यापण खोटो लाभ अलाभ खरो ।
रज बेचवा न आवे राणो हाटे मीर हमीर हरो ॥
पेखे आपतणा पुरुषोत्तम रह अणियाल तणै बल राण ।
खत्र बेचिया अनेक खत्रिया खत्रवट थिर राखी खूमाण ॥
जासी हाट बात रहसी जग अकबर ठग जासी एकार ।
रह राखियो खत्री ध्रम राणै साराले बरतो ससार ॥

जहा पर मानहीन पुरुष और लज्जाहीन स्त्रिया है, और अकबर जैसा ग्राहक है, उस चौपड के बाजार मे जाकर चित्तौड का स्वामी राजपूती का भाग कैसे बेचेगा ?

मुसलमानो के नवरोज के समय प्रत्येक व्यक्ति लुट गया । परन्तु हिन्दुओ का पति प्रतापसिंह उस दिल्ली के बाजार मे अपना क्षत्रियपन क्यो खरचे ?

वशलज्जा से भरी दृष्टि पर अन्य का प्रपच नही व्यापता । इसी से पराधीनता के सुख के लाभ को बुरा और अलाभ को अच्छा समझकर बादशाही दुकान पर रज बेचने के लिए हमीर का पोता राणा प्रतापसिंह कदापि नही आता ।

अपने पुरुषाओ का उत्तम कर्तव्य देखते हुये महाराणा ने भाले के बल से क्षत्रिय-धर्म को अचल रक्खा और अन्य क्षत्रियो ने अपने क्षत्रियत्व को विक्रय कर डाला ।

ठग रूपी अकबर भी एक दिन इस ससार से चला जायगा और हाट भी उठ जायगी । परन्तु ससार मे यह बात अमर रह जायगी कि क्षत्रिय-धर्म मे रह कर उस धर्म को केवल राणा प्रताप ही ने रक्खा, अब सब उसे काम मे लाओ ।

पृथ्वीराज बड़े रसज्ञ कवि थे । उनकी पहली रानी लालादे भी

कविता करती थी। ऐसी रसमयी रमणी के साथ कवि पृथ्वीराज का दिन बडे चैन से कटता था। परन्तु दुर्भाग्य से लालादे का भरी जवानी मे स्वर्गवास होगया। जब उसकी देह चिता पर जल रही थी तब पृथ्वीराज ने कहा—

तो राध्यो नहि खावस्या, रे! बासदे निसड्ड।
मो देखत तू बालिया, लाल रहदा हड्ड॥

अर्थात्, ऐ आग! मै तेरा राधा हुआ कोई पदार्थ नही खाऊगा। तूने मेरे देखते ही लालादे को जला दिया और उसका हाड ही शेष रहा।

उस दिन से वे आग की पकी हुई कोई चीज नही खाते थे। जब वे बहुत दुर्बल होगये, तब लोगो ने समझा बुझाकर उनका विवाह जैसलमेर के राव लहर राज की बेटी चम्पादे से कराया। चम्पादे बडी ही सुन्दरी और प्रसन्नमुखी थी। लालादे से भी वह गुण और रूप मे बढकर थी। पृथ्वीराज उसको बहुत प्यार करते थे। पति की सगति से चम्पादे ने भी कविता करनी सीख ली थी।

एक दिन पृथ्वीराज बालो मे कघी कर रहे थे। चम्पादे उनके पीछ खडी थी। पृथ्वीराज ने दाढी में से एक सफेद बाल निकालकर फेक दिया। तब चम्पादे मुह फेरकर हसने लगी। पृथ्वीराज ने दर्पण मे उसकी परछाईं देख कर पीछे देखा और फिर लज्जित होकर कहा—

पीथल[1] धोला[2] आविया[3], बहुली लागी खोड।
पूरे जोबन पदमणी, ऊभी[4] मूह मरोड॥
पीथल पली[5] टमुक्किया[6], बहुली लग गई खोड।
स्वामीनी[7] हांसा करे, ताली दे मुख मोड॥
पीथल पली टमुक्किया, बहुली लागी खोड।
मरवण[8] मत्त गयद ज्यो, ऊभी मुक्ख मरोड॥

---

१ पृथ्वीराज। २ सफेद। ३ आगये। ४ खडी। ५ सफेद बाल। ६ चमक आये। ७ स्वामी की। ८ कामिनी स्त्री।

यह सुनकर चम्पादे ने पृथ्वीराज के मन की ग्लानि मिटाने के लिए कहा—

> प्यारी कहे पीथल सुनो , धोला दिस मत जोय ।
> नरा, नाहरा,[१] डिगमिरा[२] , पाका ही रस होय ।।
> खेडज[३] पक्का धोरिया[४] , पथज गउधा[५] पाव ।
> नरा तुरगा बन फला , पक्का पक्का साव ।।

इसी प्रकार दोनो, राजा रानी का जीवन बडे आनन्द से बीता । पृथ्वीराज ने डिङ्गल भाषा में रुक्मणि-मङ्गल काव्य बनाया है ।

## उसमान

उसमान गाजीपुर के रहने वाले थे । इनके पिता का नाम शेखहसन था । ये जहागीर बादशाह के समय में हुए । संवत् १६७० मे इन्होंने चित्रावली नाम की एक प्रेम-कहानी लिखी, जो दोहा चौपाइयो मे है । सुनते है इन्होंने और भी कुछ ग्रन्थ लिखे है । इनके जन्म-मरण का ठीक-ठीक पता नही चलता । चित्रावली की कथा बडी मनोहर है । उसमे चित्रावली की वाटिका का वर्णन, उसका नखसिख, विरह, षट्ऋतु और बारहमासा आदि देखने योग्य है । कुवर ढूढन खड मे कवि ने कितने ही देशो और प्रदेशो का वर्णन किया है । सबसे अचम्भे की बात तो यह है कि कवि ने उसमें अगरेजो का भी वर्णन किया है । ईस्ट इडिया कम्पनी ने सन् १६१२ में सूरत में अपना गुदाम बनाया था, और सन् १६१३ का रचा हुआ यह ग्रन्थ है । गाजीपुर ऐसे छोटे नगर में रहकर अगरेजो के विषय में इतनी जानकारी रखना कवि के लिए साधारण बात नही है । हम यहा का०ना०प्र०सभा द्वारा प्रकाशित चित्रावली से कुवर ढूढनखड का कुछ अश उद्धृत करते हैं और उसी पुस्तक से कुछ उत्तम दोहे भी प्रस्तुत करते हैं—

---

१ बैलो । २ दिगम्बर, योगी, यती । ३ खेती । ४ बैलो । ५ ऊट ।

## चौपाई

जिन पच्छू दिस कीन्ह पयाना , पहिलहिं गा सो देस मुलताना ।
देखेसि सिंधी लोग सबाई , महिरावन सब सेवहिं साई ॥
हेरेसि ठट्ठा नगर सुहावा , विहग हरिन सेवैं गजावा ।
काबुल हेरि मोगल कर देसा , जहा पुहिम पति होइ नरेसा ॥
देखेसि रूम सिकदर केरा , स्याम रहा होइ सकल अधेरा ।
देखेसि मक्का विधि अस्थाना , हीय अध ते पाहन जाना ॥
हाजी सग मिलि गयउ मदीना , का भा गये जो साफ न सीना ।
गा बगदाद पीर के तीरा , जेहि निहचै तेहि सग हमीरा ॥
इस्ताम्बोल मिसर पुनि हेरा , गा लदाख लहु कीन्हेसि फेरा ।
दखिन देस को जे पगु धारा , चला ताकि सो लक पहारा ॥
पहिलेहि गै हेरिस गुजराता , सुन्दर धनी लोग सुख राता ।
गयो जाम जह कच्छी होई , लोग सुरूप सुखी सब कोई ॥
बलदीप देखा अगरेजा , जहा जाइ नहिं कठिन करेजा ।
ऊंच नीच धन सपति हेरा , मद बराह भोजन जिन केरा ॥
जहा जाइ उह बन्दर साजा , लगा सग चढि गयउ जहाजा ।

## दोहे

"मान" करहु जो करि सकहु , कथनी अकथ अपार ।
कथे न कर कछु आवइ , करनी करतब सार ॥ १ ॥
कौन भरोसा देह का , छाडहु जतन उपाय ।
कागद की जस पूतरी , पानि परे घुलि जाय ॥ २ ॥
तब लहु सहिये बिरह दुख , जब लगि आव सो वार ।
दुख गये तब सुक्ख है , जानै सब ससार ॥ ३ ॥
सब कह अमिरित पाच है , बगाली कह सात ।
केला, काजी, पान, रस , साग, माछरी, भात ॥ ४ ॥
छत्री सुनि जो ना करे , तिय अरु गाय जोहारि ।
पुहुमी कुल गारी चढ़ै , सरग होइ मुख कारि ॥ ५ ॥

लोयन जाहि कटाच्छ सर , मारि प्रान हरि लीन्ह ।
अधर बचन ततखिन दोऊ , अमिय सींचि जिव दीन्ह ॥ ६ ॥
कहा सो विक्रम सकबधी , कहा सो राजा भोज ।
हम हम करत हेराइगे , मिला न खोजे खोज ॥ ७ ॥

# मलूकदास

बाबा मलूकदासजी का जन्म लाला सुन्दरदास कक्कड खत्री के घर मे, बैसाख बदी ५, स० १६६१ मे, गाव कडा, जिला इलाहाबाद मे हुआ। इनकी भुजा इतनी लम्बी थी कि घुटने तक आ जाती थी। लडकपन मे ये गाव-गाव कम्बल बेचा करते थे। साधुओ को और गरीबो को बिना दाम लिये ही कम्बल दे दिया करते थे। कुछ दिनो के बाद ये अपना सारा समय भगवद्भजन मे ही बिताने लगे। इनकी कीर्ति दूर दूर तक फैली और हजारो लोग दर्शन को आने लगे। इनके गुरु का नाम विट्ठलदास था। वे द्रविड देश के महात्मा थे। बाबा मलूकदास सदा गृहस्थाश्रम मे रहे। इनकी एक कन्या थी। थोडी ही अवस्था मे स्त्री और पुत्री दोनो का देहान्त हो गया।

सवत् १७३९ मे, १०८ वर्ष की अवस्था मे मलूकदासजी ने चोला छोडा। शरीर छोडने से पहले ही इन्होने अपनी मृत्यु का ठीक-ठीक समय अपने चेलो को बतला दिया था।

मलूकदासजी के पन्थ की मुख्य गद्दिया कडा ( प्रयाग ), जैपुर, गुजरात, मुलतान, पटना, कलापुर, नैपाल और काबुल मे है। जगन्नाथपुरी मे भी मलूकदासजी का स्थान है। जहा इनके नाम का टुकडा अब तक मिलता है।

मलूकदासजी की कविता ज्ञान से भरी है। इनके कुछ चुने हुए पद और साखिया यहा उद्धृत की जाती है—

( १ )

दर्द दिवाने बावरे , अलमस्त फकीरा ।
एक अकीदा लै रहे , ऐसे मन धीरा ॥

प्रेम पियाला पीवते , विसरे सब साथी ।
आठ पहर यो झूमते ; ज्यो माता हाथी ॥
उनकी नजर न आवते , कोइ राजा रंका ।
बन्धन तोडे मोह के , फिरते निहसका ॥
साहब मिल साहब भये , कछु रही न तमाई ।
कह मलूक तिस घर गये , जह पवन न जाई ॥

( २ )

दीनदयाल सुनी जब ते तब ते हिय मे कछु ऐसी बसी है ।
तेरो कहाय के जाउ कहा मै तेरे हित की पट खैंच कसी है ॥
तेरोइ एक भरोस मलूक को तेरे समान न दूजो जसी है ।
एहो मुरारि पुकारि कहौ अब मेरी हसी नहि तेरी हसी है ॥

( ३ )

भील कब करी थी भलाई जिय आप जान फील कब हुआ था मुरीद कहु किसका ? गीध कब ज्ञान की किताब का किनारा छुआ व्याध और वधिक निसाफ कहु तिसका ? नाग कब माला लैके बदगी करी थी बैठ मुझको भी लगा था अजामिल का हिसका । एते बदराहो की बदी करी थी माफ जन मलूक अजाती पर एती करी रिस का ?

साखी

जहाँ जहाँ बच्छा फिरै , तहा तहा फिरै गाय ।
कहे मलूक जहँ स'तजन , तहा रमैया जाय ॥ १ ॥
अजगर करै न चाकरी , पछी करै न काम ।
दास मलूका यो कहै , सब के दाता राम ॥ २ ॥
गर्व भुलाने देह के , रचि रचि बाधे पाग ।
सो देही नित देखि के , चोच सवारे काग ॥ ३ ॥
मलुका सोई वीर है , जो जाने पर पीर ।
जो पर पीर न जानई , सो काफिर बेपीर ॥ ४ ॥

माला जपो न कर जपो, जिभ्या कहो न राम।
सुमिरन मेरा हरि करै, मै पायो विसराम ॥ ५ ॥
जग लगि थो अँधियार घर, मूस- थके सब चोर।
जब मन्दिर दीपक बरचो, वही चोर धन मोर ॥ ६ ॥
दया धर्म हिरदै बसै, बोलै अमृत बैन।
तेई ऊचे जानिये, जिनके नीचे नैन ॥ ७ ॥
आदर मान महत्व सत, बालापन को नेह।
ये चारो तब ही गये, जबहि कहा कछु देह ॥ ८ ॥
प्रभुताही को सब मरै, प्रभु को मरै न कोय।
को कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होय ॥ ९ ॥

( ४ )

ना वह रीझै जपतप कीन्हे ना आतम के जारे।
ना वह रीझै धोती नेती ना काया के पखारे॥
दया करै धरम मन राखै घर मे रहै उदासी।
अपना सा दुख सब का जानै ताहि मिलै अविनासी॥
सहै कुसबद बादहू त्यागै छाडै गर्व गुमाना।
यही रीझ मेरे निरकार की कहत मलूक दिवाना॥

( ५ )

गर्ब न कीजै बावरे, हरि गर्ब अहारी।
गर्बहिं ते रावन गया, पाया दुख भारी॥
ज़रन खुदी रघुनाथ के, मन नाहिं सुहाती।
जाके जिय अभिमान है, ताकी तोरत छाती॥
एक दया और दीनता, ले रहिये भाई।
चरन गहो जाय साधुके, रीझै रघुराई॥
यही बडा उपदेश है, परद्रोह न करिये।
कहि मलूक हर सुमिरि के, भौसागर तरिये॥

# प्रवीणराय

प्रवीणराय वेश्या थी। यह ओडछा के महाराज इन्द्रजीतसिंह के यहा रहती थी। केशवदास जी ने इसी के लिए "कवि-प्रिया" बनाई थी। यह उनकी शिष्या थी। कवि-प्रिया मे इसकी प्रशसा मे उन्होने लिखा है—

रतनाकर लालित सदा, परमानदहि लीन।
अमल कमल कमनीय कर, रमा कि राय प्रवीन॥
राय प्रवीन कि सारदा, सुचि रुचि राजत अग।
बीना पुस्तक धारिनो, राजहस सुत सग॥

यह बडी सुन्दरी थी। वेश्या होने पर भी अपने को पतिव्रता समझती थी। पढी-लिखी थी। कविता भी अच्छी करती थी। इन्द्रजीत-सिह ने सगीत का एक अखाडा बनवाया था, जिसमे परम रूपवती, हाव भाव कटाक्ष मे कुशल छ पातरे थी—प्रवीणराय, रगराय, नवरगराय, तीनतरंग, विचित्र नयना और ललित लोचना। और सब तो गाने-बजाने और नाचने मे प्रवीण थी, किन्तु प्रवीणराय इन गुणो के सिवा काव्य-रचना मे भी बडी निपुण थी। इसीसे इन्द्रजीतसिंह के हृदय में इसे सर्वोच्चस्थान प्राप्त था। इसके गुणो की प्रशसा सुन कर अकबर बादशाह ने इसे बुला भेजा। तब इसने इन्द्रजीतसिंह के पास जाकर यह सवैया कहा—

आई हौ बूझन मन्त्र तुम्हे निज स्वासनसो सिगरी मति गोई।
देह तजौ की तजौ कुलकानि हिये न लजौ लजिहै सब कोई॥
स्वारथ औ परमारथ को पथ चित्त विचारि कहौ तुम सोई।
जामे रहै प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भग न होई॥

इन्द्रजीतसिह ने प्रवीणराय को अकबर के पास नही जाने दिया। इससे रुष्ट होकर अकबर ने इन्द्रजीतसिह पर एक करोड का जुरमाना कर दिया और प्रवीणराय को जबरदस्ती बुला भेजा। तब प्रवीणराय अकबर के दरबार मे गई। वहा उसने अकबर से इस प्रकार प्रार्थना की—

बिनती राय प्रबीन की , सुनिये शाह सुजान ।
जूठी पतरी भखत है , बारी बायस स्वान ।।
अग अनग तही कुच सभु सु केहरि लक गयदहि घेरे ।
भौंह कमान तही मृग लोचन खजन क्यो न चुगै तिल नेरे ।।
है कच राहु तही उदै इन्दु सु कीर के बिम्बन चोचन मेरे ।
कोऊ न काहू सो रोस करै सु डरै डर साह अकब्बर तेरे ।।

प्रवीणराय की प्रवीणता देखकर अकबर बहुत प्रसन्न हुये और उसने उसे इन्द्रजीत ही के पास रहने दिया । केशवदास के उद्योग और महाराजा बीरबल की प्रेरणा से अकबर ने इन्द्रजीतसिह का एक करोड जुरमाना भी माफ कर दिया ।

प्रवीणराय का लिखा कोई ग्रन्थ नही मिलता । कुछ फुटकर छद मिलते है । उनमे से कुछ यहा लिखे जाते है—

( १ )

सीतल समीर ढार, मजन कै घनसार अमल अगौछे आछे मन से सुधारिहौ । दैहौं ना पलक एक लागन पलक पर मिलि अभिराम आछी तपनि उतारिहौं ।। कहत "प्रवीनराय" आपनी न ठौर पाय सुन बाम नैन या बचन प्रतिपारिहौ । जबही मिलेगे मोहिं इन्द्रजीत प्रान प्यारे दाहिनो नयन मूदि तोही सौ निहारिहौ ।।

( २ )

ऊचे ह्वै सुर बस किये , सम ह्वै नर बस कीन ।
अब पताल बस करन को , ढरकि पयानो कीन ।।

( ३ )

कमल कोक श्रीफल मजीर कलधौत कलश हर ।
उच्च मिलन अति कठिन दमक बहु स्वल्प नील धर ।।
सरवर शरवन हेम मेरु कैलाश प्रकाशन ।
निशिवासर तरुवरहि कास कुन्दन दृढ आसन ।।

इमि कहि प्रवीन जल थल अपक अविध भजित तिय गौरि सग।
कलि खलित उरज उलटे सलिल इदु शीश इमि उरज ढग॥
कूर कुरकुट कोटि कोठरी निवारि राखौ चुनि दै चिरैयन को मूदि राखों जलियो। सारग मे सारग सुनाइ के "प्रबीन" बीना सारग दै सारग की जोति करो थलियो॥ बैठि परयक पै निसक ह्वै कै अक भरौं करोगी अधर पान मैन मत्त मिलियो। मोहि मिले इन्द्रजीत धीरज नरिन्द राय एहो चद आज नेकु मद गति चलियो॥

## मुबारक

सैयद मुबारक अली बिलग्रामी का जन्म स० १६४० मे हुआ। ये अरबी, फारसी और सस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। इनकी कविता बडी सरस है। इनका रचा हुआ "अलक शतक" और "तिल शतक" प्रकाशित हो चुका है। और भी इनके बहुत-से स्फुट छन्द मिलते है।

इनकी कविता के कुछ नमूने देखिये —

कान्ह की बाकी चितौनि चुभी झुकि काल्हि ही झाकी है ग्वालि गवाछनि।
देखी है नोखी सी चोखी सी कोरनि ओछे फिरै उभरै चित जा छनि॥
मार्‌यो सभार हिये मे "मुबारक" य सहजै कजरारे मृगाछनि।
सीक लै काजर दे री गवारिन आगुरी तेरी कटैगी कटाछनि॥ १॥

पानिप के पुञ्ज सुघराई के सदनसुख सोभा के समूह और सावधान मोज के। लाजन के बोहित प्रमोहित प्रमोदन के नेह के नकीब चक्रवर्ती चित चोज के॥ दया के दिवान पतिव्रता के प्रधान पूरे नैन थे मुबारक विधान नवरोज के। सफरी के सिरताज मृगन के महाराज साहब सरोज के मुसाहब मनोज के॥ २॥

कनक बरन बाल नगन लसत भाल मोतिन के माल उर सोहै भली भाति है। चन्दन चढाई चारु चदमुखी मोहिनी सी प्रात ही अन्हाइ पगु धारे मुसकाति है॥ चूनरी विचित्र स्याम सजि कै मुबारक जू ढाकि नख सिख ते निपट सकुचाति है। चन्द्रमै लपेटि कै समेटि के नखत माना दिन को प्रणाम किये रात चली जाति है॥३॥

### अलक वर्णन

अलक मुबारक तिय बदन , लटकि परी यो साफ ।
खुसनवीस मुनसी मदन , लिख्यो काच पर काफ ॥ १ ॥
अलक डोर मुख छबि नदी , बेसरि बसी लाइ ।
दै चारा मुकतानि को , मो चित चली फदाइ ॥ २ ॥
जगी मुबारक तिय बदन , अलक ओप अति होइ ।
मनो चन्द के गोद मे , रही निसा सी सोइ ॥ ३ ॥
लगि दृग अजन ढिग अलक , देत मुबारक मोद ।
जनु सापिन सुत आपनो , भेटति भरि भरि गोद ॥ ४ ॥
चिबुक कूप मे मन परचो , छबि जल तृषा विचारो ।
कढ मुबारक ताहि तिय , अलक डोर सी डारि ॥ ५ ॥

### तिल वर्णन

सब जग पेरत तिलन को , थक्यो चित्त यह हेरि ।
तव कपोल को एक तिल , सब जग डारचो पेरि ॥ १ ॥
चिबुक कूप रसरी अलक , तिल सु चरस दृग बैल ।
वारी वैस शृंगार की , सीचत मनमथ छैल ॥ २ ॥
मन योगी आसन कियो , चिवुक गुफा मे जाय ।
रह्यो समाधि लगाय कै , तिल सिल द्वारे लाय ॥ ३ ॥
चिबुक सरूप समुद्र मे , मन जान्यो तिल नाव ।
तरन गयो बूडचो तहा , रूप कहर दरयाव ॥ ४ ॥
गोरी के मुख एक तिल , सो मोहि खरो सुहाय ।
मानहु पङ्कज की कली , भौर बिलव्यो आय ॥ ५ ॥

## रसखान

रसखान दिल्ली के पठान थे । इन्होने अपने को बादशाही खान्दान का लिखा है। कुछ लोग सैयद इब्राहीम पिहानी वाले को ही रसखान समझते है । इनका जन्म सं० १६४० और मरण १६८५ के लगभग कहा जाता है ।

युवावस्था मे ये एक बनिये के लडके पर आसक्त थे। रात-दिन उसके साथ फिरा करते थे, यहा तक कि उसका जूठा भी खाते थे। लोग इनकी हसी उडाते थे, परन्तु ये किसी की परवाह न करते थे। एक बार चार वैष्णव आपस मे बात-चीत करते समय कहते थे कि ईश्वर मे ऐसा ध्यान लगाना चाहिए, जैसा रसखान ने बनिये के लडके मे लगाया है। रसखान ने इसे सुन लिया। ये वैष्णवो से मिले। वैष्णवो ने इनके सामने ही श्रीकृष्ण का गुण-कीर्तन किया। उसी समय से ये श्रीकृष्ण के उपासक हो गये। मुसलमान होने पर भी गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने इनको अपना शिष्य कर लिया और इनकी गिनती गोसाईंजी के २५२ मुख्य शिष्यो मे होने लगी। २५२ वैष्णवो की वार्ता मे इनका भी चरित्र लिखा है।

ये बडे प्रेमी जीव थे। इश्क का लुत्फ तो इन्होने नौजवानी ही से उठाया था, इससे प्रेम की महिमा ये भलीभाति समझते थे। इन्होने स० १६७१ मे प्रेमवाटिका नामक दोहो का एक ग्रन्थ बनाया। उसके कुछ दोहे सुनिये—

दम्पति सुख अरु विषय रस, पूजा निष्ठा ध्यान।
इनतें परे बखानिये, शुद्ध प्रेम रसखान॥ १॥
मित्र कलत्र सुबन्धु सुत, इनमे सहज सनेह।
शुद्ध प्रेम इनमे नही, अकथ कथा सविसेह॥ २॥
इक अगी बिनु कारनहिं, इकरस सदा समान।
गनै प्रियहि सरबस्व जो, सोई प्रेम प्रमान॥ ३॥
डरै सदा चाहै न कछू, सहै सबै जो होय।
रहै एक रस चाहि कै, प्रेम बखानौ सोय॥ ४॥
अति सूछम कोमल अतिहिं, अति पतरो अति दूर।
प्रेम कठिन सब ते सदा, नित इकरस भरपूर॥ ५॥

अपने विषय मे इन्होने यह लिखा है—

देखि गदर हित साहिबी , दिल्ली नगर मसान ।
छिनहिं बादसा बस की , ठसक छोडि रसखान ।। १ ।।
प्रेमनिकेतन श्री बनहि , आय गोबर्धन धाम ।
लह्यो सरन चित चाहि कै , जुगल सरूप ललाम ।। २ ।।

इनकी कविता मे प्रेम की प्रधानता है । भक्त और प्रेमी होकर शृगार रस पर भी इन्होने बडी ललित कविता की है । इनकी दो पुस्तके मिलती है---सुजान रसखान और प्रेमवाटिका । सुजान रसखान मे १२९ छन्द है । प्रेमवाटिका मे ५२ दोहे है । इनके रचे हुये सुजान रसखान मे से कुछ चुनकर हम नीचे प्रकाशित करते है—

( १ )

मानस हौ तो वही रसखानि बसौ ब्रज गोकुल गाव के ग्वारन ।
जौ पसु हौं तौ कहा बस मेरो चरौ नित नन्द की धेनु मझारन ।।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरचो कर छत्र पुरन्दर धारन ।
जौ खग हौं तो बसेरा करौं मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन ।।

( २ )

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूपुर को तजि डारौ ।
आठहु सिद्धि नवौनिधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारौ ।।
रसखानि कबौ इन आखिन सो ब्रज के बन बाग तडाग निहारौ ।
कोटिन हू कलधौत के धाम करीर के कुञ्जन ऊपर वारौ ।।

( ३ )

आयो हुतो नियरे रसखानि कहा कहू तू न गई वहि ठैया ।
या ब्रज मे सिगरी बनिता सब वारति प्राननि लेत बलैया ।।
कोऊ न काहू की कानि करै कुछ चेटक सो जुकरचो जदुरैया ।
गाइगो तान जमाइगो नेह रिझाइगो प्रान चराइगो गैया ।।

( ४ )

सोहत है चदवा सिर मौर के जैसियै सुन्दर पाग कसी है ।
तैसियै गोरज भाल विराजति जैसी हिये वनमाल लसी है ।।

रसखानि बिलोकत बौरी भई दृग मूदि कै ग्वालि पुकारि हसी है
खोलिरी घूघट खोलौ कहा वह मूरति नैनन माँझ बसी है ।।

( ५ )

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावै ।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुवेद बतावै ।।
जाहि हिये लखि आनन्द ह्वै जड़ मूढ हिये रसखानि कहावै ।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ।।

( ६ )

तेरी गलीन मे जा दिन ते निकसे मनमोहन गोधन गावत ।
ये ब्रज लोग सो कौन सी बात चलाइ कै जो नहि नैन चलावत ।।
वे रसखानि जो रीझि है नेकु तौ रीझि कै क्यो बनवारि रिझावत ।
बावरी जोपै कलक लग्यो तौ निसक ह्वै क्यो नही अक लगावत ।।

( ७ )

दानी भये नये मागत दान हो जानि है कस तौ बन्धन जैहौ ।
टूटे छरा बछरादिक गोधन जो धन है सो सबै धन दैहौ ।।
रोकत हो बन मे रसखानि चलावत हाथ घनो दुख पैहौ ।
जैहौ जो भूषण काहू तिया को तो मोल छला के लला न बिकैहौ ।।

## सेनापति

सेनापति कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । ये अनूपशहर जिला बुलन्दशहर के रहने वाले थे । इनके पिता का नाय गगाधर पितामह का परशुराम और गुरु का नाम हीरामणि था । इनका जन्मकाल स० १६४६ के आसपास माना जाता है । इनके मृत्युकाल का ठीक ठीक पता नहीं चलता । सेनापति ने स्वय अपना परिचय इस प्रकार दिया है —

दीक्षित परशुराम दादो है विदित नाम
जिन कीने यज्ञ जाकी जग मे बड़ाई है ।
गगाधर पिता गगाधर के समान जाके
गगा तीर बसति अनूप जिन पाई है ।।

महाज्ञान मनि विद्या दानहू ते चिन्तामनि
हीरामनि दीक्षित ते पाई पडिताई है।
सेनापति सोई सीतापति के प्रसाद जाकी
सब कवि कान दै सुनत कविताई है॥

सेनापति ने "काव्य कल्पद्रुम" और "कवित्त-रत्नाकर" नामक दो ग्रन्थ रचे थे। कवित्त-रत्नाकर स० १७०६ मे सम्पूर्ण हुआ। इन्होने अपनी कविता की स्वय अपने मुह से प्रशसा की है। वास्तव मे इनकी कविता बडी चमत्कारपूर्ण होती थी। इनका षट्ऋतु-वर्णन तो बड़ा ही अद्भुत हुआ है। हम इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे उद्धृत करते है—

केतो करो कोय पैये करम लिखोय ताते दूसरी न, होय उर सोय ठहराइये। आवी ते सरस बीति गई है बरस अब दुज्जन दरस बीच रस न बढाइये। चिन्ता अनुचित धरु धीरज उचित सेनापति ह्वै सुचित रघुपति गुन गाइय। चारि बरदानि तजि पाय कमलेच्छ के पायक मलेच्छन के काहे को कहाइये॥ १॥

महा मोह कन्दिन मै जगत जकन्दनि मै दिन दुख ददनि मै जात है विहाय कै। सुख को न लेस है कलेस सब भातिन को सेनापति याही ते कहत अकुलाय कै। आवै मन ऐसी घरबार परिवार तजौ डारौ लोक लाज कै समाज बिसराय कै। हरिजन पुन्जनि मै वृन्दावन कुन्जनि मै रहौ बैठि कहूं तरवर तर जाय कै॥ २॥

पान चरनामृत को गान गुन गानन को हरि कथा सुने सदा हिये को हुलसिबो। प्रभु के उतीरन की गूदरी औ चीरन की भाल भुज कठ उर छापन को लसिबो॥ सेनापति चाहत है सकल जनम भरि वृन्दावन सीमा तें न बाहर निकसिबो। राधा मन रजन की सोभा नैन कजन की माल गरे गुन्जन की कुन्जन को बसिबो॥ ३॥

धातु सिलदारु निरधारु प्रतिमा को सार सो न करतार है विचार बीच गेह रे। राखि दीठि अन्तर जहा न कुछ अन्तर है जीभ को निरन्तर जपावत हरे हरे। अन्जन विमल सेनापति मन रन्जन दै जपि के निरन्जन

परम पद लेहु रे। करि न सन्देह रे वही है मन देहरे कहा है बीच देहरे कहा है बीच देहरे ॥ ४ ॥

नाही नाही करैं थोरे मागे सब देन कहै मगन को देखि पट देत बार बार है। जिनके लखत भली प्रापति की घरी होत सदा सब जन मन भाय निरधार है ॥ भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य कन कन जोरे दान पाट परिवार है। सेनापति बचन की रचना बिचारि देखो दाता और सूम दोऊ कीन्हे एक सार है ॥ ५ ॥

नूतन जोबन वारी मिली हो जोबन वारी, सेनापति बनवारी मन म बिचारिये। तेरी चितवन ताके चुभी चित वनिता के उचित वलिता के मया के पग धारिये ॥ सुधि न निकेतन की चढी उनके तन की पीर मीन केतन की जाइ कै निवारिये। तो तजि अनवरत वाके और न वरत कीजै लाल नव रत बाल न बिसारिये ॥ ६ ॥

फूलन सो बाल को बनाइ गुही बेनी लाल भाल दीनी बेदी मृगमद की असित है। अङ्ग अग भूषन बनाइ ब्रजभूषन जू बोरी निज कर तै खवाई अतिहित है ॥ ह्वै कै रस बस जब दीबे को महावर के सेनापति स्याम गह्यो चरन ललित है। चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आखिन सों कही प्रानपति ! यह अनुचित है ॥ ७ ॥

जो पै प्रानप्यारे परदेस को पधारे ताते विरह ते भई ऐसी ता तिय की गति है। करि कर ऊपर कपोलहिं कमल नैनी सेनापति अनमनि बैठियै रहति है ॥ कागहिं उडावै कबौ कबौ करै सगुनौती कबौ बैठि अवधि के बासर गिनति है। पढी पढी पातो कबौ फेरि कै पढति कबौ बैठि प्रीतम के चित्र मे स्वरूप निरखति है ॥ ८ ॥

जनक नरिन्द नन्दिनी को बदनारविन्द सुन्दर बखानो सेनापति बेद चारि कै ॥ बरनी न जाइ जाकी नेकहू निकाई लोनुराई करि पकज निसक डारे मारि कै ॥ बार बार जाकी बराबरि को विधाता अब रचि पचि विधु को बनावत सुधारि कै। पूनो का बनाय जब जानत न वैसो भयो कुहू के कपट तब डारन बिगारि कै ॥ ९ ॥

चल्यो हनुमान रामबान के समान जान सीता सोध काज दसकधर नगर को। राम को जुहारि बाहुबल को सभारि करि सब ही के ससै निरवारी डारि डर को ।। लागी है न वार फादि परचो पारावार कौन सेनापति कविता बखाने वेगचर को। खोलत पलक जैसे एक ही पलक बीच दृगनि को तारो दौरि मिलै दिनकर को ।। १० ।।

रावन को वीर सेनापति रघुबीर जू की आयो है सरन छाड़ि ताही मद अध को। मिलत ही ताको राम कोप कै करी है ओप नाम जोय दुर्जन दलन दीनबधु को ।। देखो दानवीरता निदान एक दान ही मे कीन्हे दोऊ दान को बखाने सत्य सध को। लका दसकदर की दीनी है विभीषन को सका विभीषन की सो दीनी दसकध को ।। ११ ।।

**बसत**

लाल लाल टेसू फूलि रहे है विलास सग श्याम रग भई मानो मसि में मिलाये है। तहा मधु काज आइ बैठे मधुकर पुज मलय पवन उपवन वन धाये है ।। सेनापति माधव महीना मे पलास तरु देखि देखि भाव कविता के मन आये है । आधे अग सुलगि सुलगि रहे आधे मानो विरही दहन काम क्वैला परचाये है ।। १२ ।।

केतक असोक नव चपक बकुल कुल कौन धौ वियोगिन को ऐसो बिकरालु है। सेनापति सावरे की सुरत की सुरति की सुरति कराय करि डारतु बिहालु है ।। दच्छिन पवन एती ताहू की दवन जऊ सूनो है भवन परदेज प्यारो लालु है। लाल है प्रबाल फूले देखत बिसाल जऊ फूले और साल पै रसाल उर सालु है ।। १३ ।।

**ग्रीष्म**

वृष को तरनि तेज सहसौ किरनि कर ज्वालन के जाल विकरालु बरसतु है। तचति धरनि जग जरत धरनि सीरी छाह को पकरि पथी पछी विरमतु है ।। सेनापति नेक दुपहरी के ढरत होतु धमका विषम यो न पातु खरकतु है। मेरे जान पौनो सीरी ठौर को पकरि कोनो घरी एकु बैठि कहू वा मे बितवतु है ।। १४ ।।

सेनापति तपन तपत उतपति तैसो छायो रतिपति ताते विरह बरतु है। लुवन की लपटै ते चहु ओर लपटै पै ओढे सलिल पटै न चैनै उपजतु है॥ गगन गरद धूधि दसौ दिसा रही रूधि मानो नभ भारकी भसम बरसतु है। बरनि बताई छिति व्योम को तताई जेठ आयो आततताई पुटपाक सो करतु है॥ १५॥

## पावस

दूरि जदुराई सेनापति सुखदाई देखो आई ऋतु पावस न पाई प्रेम पतिया। धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी औ दरकी सुहागिन की छोह भरी छतिया॥ आई सुधि बर की हिये मे आनि खरकी सुमिरि प्रान प्यारी यह प्रीतम की बतिया। बीती औधि आवन की लाल मन भावन की डग भई बावन की सावन की रतिया॥ १६॥

सेनापति उनये नये जलद सावन के चारि हू दिसान घुमरत भरे तोइ के। सोभा सरसाने न बखाने जात कहु भाति आने है पहार मानो काजर के ढोइ के॥ घन सो गगन छयो तिमिर सघन भयो देखि न परत गयो मानो रवि खोइ के। चारि मास भरि घोर निसा को भरम करि मेरे जान याही ते रहत हरि सोइ के॥ १७॥

## शरद

विविध बरन सुर चाप ते न देखियत मानो मनि भूपन उतारि धरे भेष है। उन्नत पयोधर बरसि रसु गिरि रहे नीके न लगत फीके सोभा के न लेस है॥ सेनापति आये ते सरदरितु फूलि रहे आसपास कास खेत खेत चहु देस है। जीवन हरन कुभजोनि के उदै ते भए बरषा विरिंच ताके सेत मानो केस है॥ १८॥

कातिक की राति थोरी थोरी सियराति सेनापति को सुहाति सुखी जीवन के गन है। फूले है कुमुद फूली मालती सघन बन फूलि रहे तारे मानो मोती अनगन है॥ उदित विमल चद चादनी छिटकि रही राम कैसो जस अध ऊरध गगन है। तिमिर हरन भयो सेत है बरन सब मानहु जगत छीरसागर मगन है॥ १९॥

### हेमत

सूरे तजि भाजी बात कातिक मे जब सुनी हिम की हिमाचल ते चमू उतरति है। आये अगहन कीनो गहन दहन हू को तितहुते चली कहू धीर न धरित है ॥ हिय मे परी है हूल दौरि गहि तजी तूल अब निज मूल सेनापति सुमिरति है। पूस मे तिया के ऊचे कुच कनकाचल मे गढ वै गरम भई सीत सो लरति है ॥ २० ॥

आयो सखी पूसौ भूलि कत सो न रूसौ केलिही सौ मन मूसौ जीव ज्यो सुख लहतु है। दिन की घटाई रजनी की अघटाई सीतताई हू को सेनापति बरनि कहतु है ॥ याही ते निदान प्राप्त वेगि उदै होत नाहि द्रोपदी के चीर कैसो राति को महतु है। मेरे जान सूरज पताल तपतालै माझ सीत को सतायो कहलाइ कै रहतु है ॥ २१ ॥

### शिशिर

सिसिर में ससि को सरूप पावे सविताऊ घामहु मे चादनी की दुति दमकति है। सेनापति होति सीतलता है सहस गुनी रजनी की झाई बासर मे झमकति है ॥ चाहत चकोर सूर ओर दृग छोर करि चकवा की छाती तजि धीर धसकति है। चद के भरम होत मोद है कुमोदिनी को ससि सक पकजनी फूलि न सकति है ॥ २२ ॥

सिसिर तुषार के बुखार से उखारतु है पूस बीते होत सून हाथ पाइ ठिरिकै। द्योस की छुटाई की बडाई बरनी न जाइ सेनापति गाई कछू सोचि कै सुमिरि कै ॥ सीत ते सहसकर सहस चरन ह्वै के ऐसे जातु भाजि तम आवत है घिरि कै। जौलो कोक कोकी को मिलत तौलो होत राति कोक अधबीच ही ते आवतु है फिरिकै ॥ २३ ॥

## सुन्दरदास

सुन्दरदास जातिके "दूसर" गोती खडेलवाल वनिये थे। इनके पिता का नाम परमानन्द और माता का सती था। इनका जन्म चैत्रसुदी ९ स० १६५३ वि० को द्योसा ( जयपुर राज्य ) मे हुआ। जब सुन्दरदास छः

वरस के हुये, तब दादूदयाल द्यौसा मे पधारे थे। उसी समय से दादूदयाल के शिष्य होगये और उनके साथ रहने लगे। सवत् १६६० मे दादूदयाल का शरीरान्त होने तक ये नाराणा मे रहे। फिर जगजीवन साधु के साथ अपने माता-पिता के घर द्यौसा मे आ गये। वहा स० १६६३ तक रहकर फिर जगजीवन के साथ काशी चले आये। काशी मे ये उन्नीस बरस अर्थात् तीस बरस की अवस्था तक सस्कृत, वेदान्त, दर्शन और पुराण आदि पढते रहे। सस्कृत के अतिरिक्त सुन्दरदासजी हिन्दी, फारसी गुजराती और मारवाडी आदि भाषाये भी अच्छी तरह जानते थे।

स० १६८२ मे सुन्दरदासजी काशी लौटे। उस समय इनके साथ और भी साधू थे। उनमे एक फतहपुर ( शेखावाटी ) का भी था। ये उसी के साथ फतहपुर चले गये। फतहपुर मे इनके गुरुभाई प्रागदास पहले ही से मौजूद थे। अतएव फतहपुर के साधु-भक्त महाजनो की प्रार्थना से ये भी वही ठहर गये। फतहपुर के नवाव अलिफ खा, दौलत खा और ताहिर खा के साथ भी इनका बडा मेल हो गया था। अलिफ खा भी भाषा के कवि थे।

स० १६८८ मे प्रागदास का देहान्त होजाने पर इनका चित्त फतहपुर मे बहुत कम लगता था। इससे ये प्राय· देशाटन के लिए चले जाया करते थे।

सुन्दरदासजी डीलडौल मे वडे सुन्दर, गोरे रङ्ग के, तेजस्वी और लम्बे थे। आखे वडी सुन्दर और चमकदार थी। वोलते बहुत मधुर थे। स्वभाव ऐसा अच्छा था कि जो इनसे मिलता, वस, वह इनका भक्त ही हो जाता। वालको से ये वडा प्रेम रखते थे। ये वाल ब्रह्मचारी थे। स्त्री-चर्चा से इनको वडी घृणा थी। ये स्वच्छता को वहुत पसद करते थे। इसीमे देश-देश के मलिन व्यवहार की इन्होने खूब ही दिल्लगी उडाई है। गुजरात के लिए —"आभड छोत अतीतसो कीजिये, बिलाईरु कूकुर चाटत हाडी," मारवाड़ के लिये— 'वृच्छन नीर न उत्तम

चीर सुदेशन में गत देश है मारू," दक्षिण के लिए—"राधत प्याज बिगारत नाज न आवत लाज करैं सब भच्छन," पूर्व के लिये—"ब्राह्मण क्षत्रिय वैसरु सूदर चारोहि बर्न के मच्छ बघारत" फतहपुर की स्त्रियो के लिए—"फूहड नार फतेहपुर की" आदि वाक्यो से इनका मनोभाव प्रकट होता है। मालवा और उत्तरा खड इन्हे बहुत प्रिय थे।

सुन्दरदास बाल-कवि थे। इनकी कविता से प्रकट होता है कि ये अच्छे ज्ञानी और काव्य-कला मर्मज्ञ थे। अन्य सतो की बानी की अपेक्षा मुझे इनकी कविता मे अधिक भाव समझ पडा है। इन्होने वेदान्त पर अच्छी कविता की है। इनके रचे छोटे-मोटे ग्रथो की सख्या ४० से अधिक है।

कुछ के नाम ये हैं--हरिबोल चितावनी, साखी, सवैया, सुन्दर साख्य, तर्कचिन्तामणि, ज्ञान विलास, सुन्दर विलास, सहजानन्द, अद्भुत उपदेश आदि।

सुन्दरदास ने कार्तिक सुदी ८ बृहस्पतिवार सवत् १७४६को सागानेर (जयपुर के पास) मे शरीर छोडा। शरीर छोडते समय इन्होने ये दोहे कहे थे —

मान लिये अत करण, जे इन्द्रन के भोग।  
सुन्दर न्यारो आतमा, लगो देह को रोग॥  
वैद्य हमारे राम जी, औषधि हू हरि नाम।  
सुन्दर यहै उपाय अब, सुमिरण आठौ जाम॥  
सुन्दर सशय को नही, बडो महुच्छव एह।  
आतम परमातम मिलो, रहो कि बिनसो देह॥  
सात बरस सौ मे घटै, इतने दिन की देह।  
सुन्दर आतम अमर है, देह खेह की खेह॥

सुन्दरदासजी की जहा दाह-क्रिया की गई थी, वहा एक गुमटी बनी है। उसमे सफेद पत्थर पर यह लिखा है—

संवत सत्रह सै छीयाला। कार्तिक सुदी अष्टमी उजाला।
तीजे पहर भरस्पति वार। सुन्दर मिलिया सुन्दर सार॥

फतहपुर के आश्रम मे अब भी सुन्दरदास के कपडे और उनके हाथ की लिखी पुस्तके आदि चीजे रक्खी है। जब मैं फतहपुर मे था, तब एक दिन मेरे सुहृदय मित्र बाबू केशवदासजी नेटविया मुझे सुन्दरदास का आश्रम और इनके वस्त्र आदि दिखाने ले गये थे।

इनके कुछ छन्द नीचे लिखे जाते है—

कौन कुबुद्धि भई घट अन्तर तू अपने प्रभु सू मन चोरै।
भूलि गयो विषया सुख मे सठ लालच लागि रह्यो अति थोरै॥
ज्यू कोउ कंचन छार मिलावत लेकरि पत्थर सू नग फोरै।
सुन्दर या नरदेह अमूलक तीर लगी नवका कित बोरै॥ १॥

गेह तज्यो पुनि नेह तज्यो पुनि खेह लगाइ के देह सवारी।
मेघ सहै सिर सीत सहै तन धूप समै जु पंचागिनि बारी॥
भूख सहै रहि रूख तरे पर सुन्दरदास समै दुख भारी।
डासन छाडिके कासन ऊपर आसन मारिपै आस न मारी॥ २॥

काहू सो न रोष तोष काहू सो न राग द्वेष काहू सो न बैर भाव काहू सो न घात है। काहू सो न बकवाद काहू सो नही विषाद काहू सो न सङ्ग न तौ काहू पच्छपात है॥ काहू सो न दुष्ट बैन काहू सो न लेन देन ब्रह्म को विचार कछू और न सुहात है। सुन्दर कहत सोई ईसन को महाईस सोई गुरुदेव जाके दूसरी न बात है॥ ३॥

बोलिये तौ तब जब बोलिवे की सुधि होइ न तौ मुख मौन गहि चुप होइ रहिये। जोरिये तौ तब जब जोरिबे की जानि परै तुक छन्द अरथ अनूप जामे लहिये॥ गाइये तौ तब जब गाइवे को कण्ठ होइ स्रौन के सुनत ही मन जाइ गहिये। तुक भंग छन्द भंग अरथ मिलै न कछु सुन्दर कहत ऐसी बानी नही कहिये॥ ४॥

पतिही सूं प्रेम होइ पतिही सू नेम होइ पतिही सू छेम होइ पति ही सूं रत है। पति ही है जज्ञ जोग पतिही है रस भोग पति ही सू

मिटै सोग पतिही को जत है ।। पतिही है ज्ञान ध्यान पतिही है पुन्य दान पतिही है तीर्थ न्हान पति ही को मत है। पति बिनु पति नाहि पति बिनु गति नाहि सुन्दर सकल विधि एक पतिव्रत है ।। ५ ।।

ब्रह्म ते पुरुष अरु प्रकृति प्रकट भई प्रकृति ते महत्तत्व पुनि अहकार है। अहकार हूते तीन गुण सत रज तम तमहू तें महाभूत विषय पसार है ।। रजहू ते इन्द्री दस पृथक पृथक भई सत्तहूं तें मन आदि देवता विचार है। ऐसे अनुक्रम करि सिष्य सू कहत गुरु सुन्दर सकल यह मिथ्या भ्रम जार है ।। ६ ।।

सुनत नगारे चोट विकसै कमल मुख अधिक उछाह भूल्यो मायहू न तन मे। फेरे जब साग तब कोई नहि धीर धरै कायर कपायमान होत देखि मन मे ।। कूदि के पतग जैसे परत पावक माहि ऐसे टूटि परै बहु सावत के घन में। मारि घमसान करि सुन्दर जुहारै स्याम सोई सूर-बीर रोपि रहै जाइ रन मे ।। ७ ।।

पाव रोपि रहै रण माहि रजपूत कोऊ हय गज गाजत जुरत जहा दल है। बाजत जुझाऊ सहनाई सिन्धु राग पुनि सुनतहि कायर की छूटि जात कल है ।। झलकत वरछी तिरीछी तरवार वहै मार मार करत परत खलभल है। ऐसे जुद्ध मे अडिग्ग सुन्दर सुभट सोई घर माहि सूरमा कहावत सकल है ।। ८ ।।

आसन वसन वहु भूषण सकल अङ्ग सम्पति विविध भाति, भरचो सब घर है। श्रवण नगारो सुनि छिनन में छाडि जात ऐसे नहि जानै कछु मेरो वहा मर है ।। तन मे उछाह रण माहि टूक टूक होइ निर्भय निसक वाके रचहू न डर है। सुन्दर कहत कोऊ देह को ममत्व नाहि सूरमा को देखियत सीस बिनु धर है ।। ९ ।।

कामिनी की देह अति कहिये सघन वन जहा सु तौ जाय कोऊ भूलि कै परत है। कुञ्जर है गति कटि केहरि की भय यामे बेनी कारी नागिन सी फन को धरत है ।। कुच है पहार जहां काम चोर वैठो तहा

साधि कै कटाक्ष बान प्रान को हरत है ॥ सुन्दर कहत एक और अति भय तामे राक्षसी बदन खाव खाव ही करत है ॥ १० ॥

देखहु दुरमति या ससार की ।
हरि सो हीरा छाडि हाथ ते, बाधत मोट बिकार की ॥
नाना विधि के करम कमावत, खबरि नही सिर भार की ।
झूठे सुख मे भूलि रहे है, फूटी आख गवार की ॥
कोइ खेती कोइ बनजी लागै, कोइ आस हथ्यार की ।
अध धुध मे चहु दिसि ध्याये, सुधि बिसरी करतार की ॥
नरक जानि कै मारग चाले, सुनि सुनि बात लबार की ।
अपने हाथ गले मे वाही, पासी माया जार की ॥
बारम्बार पुकार कहत हौं, सोहै सिरजनहार की ।
सुन्दरदास बिनस करि जैहै, देह छिनक मे छार की ॥११॥

पुरुष प्रकृति सयोग जगत उप्रजत है ऐसे ।
रवि दर्पण दृष्टान्त अग्नि उपजत है तैसे ॥
सुई होहिं चैतन्य यथा चुम्बक के सगा ।
यथा पवन सयोग उदधि मे उठहिं तरगा ॥
अरु यथा सूर सयोग पुनि चक्षु रूप को गहत है ।
यो जड़ चेतन सयोग तें सृष्टि उपजती कहत है ॥१२॥

गज क्रीड़त अपने रङ्गा, बन मे मदमत्त अनङ्गा ।
बलवन्त महा अधिकारी, गहि तरवर लेइ उपारी ।
इक मनुष तहा कोउ आवा, तिहि कुञ्जर देखन पावा ।
उन ऐसी बुद्धि विचारी, फिर आवा नग्र मझारी ।
तब कह्यो नृपति सौ जाई, इक गज वन माझ रहाई ।
जौ लै आवै गज भाई, देहौ तव वहुत वधाई ।
तब विदा होइ घर आवा, मन मे कछु फिकिर उपावा ।
तव वुद्धि विधाता दीनी, कागद की हथिनी कीनी ।
तव दूत तहा लै जाही, गज रहत जहा वन माही ।

तह खन्दक कीना जाई, पतरे तृन दीन छवाई।
तृन ऊपर मृतिका नाखी, तब ऊपर हथिनी राखी।
हथिनी को देख स्वरूपा, सठ धाय पर्‍यो अधकूपा।
धाइ पर्‍यो गज कूप मे, देखा नहिं विचारि।
काम-अंध जानै नही, कालबूत की नारि॥१३॥

दूभर रैनि बिहाय अकेली सेजरी।
जिनके सग न पीव बिरहिनी सेजरी॥
बिरहै सकल वाहि विचारी सेजरी।
सुन्दर दुख अपार न पाऊ सेजरी॥१४॥

तो सही चतुर तू जान परवीन अति
परै जानि पिंजरे मोह कूवा॥
पाइ उत्तम जनम लाइ लै चपल मन
गाइ गोविन्द गुन जीति जूवा॥
आपही आपु अज्ञान नलिनी बध्यो
विना प्रभु विमुख कै बेर मूवा।
दास सुन्दर कहै परम पद तौ लहै
राम हरि राम हरि बोल सूवा॥१५॥

सुन्दर जो गाफिल हुआ, तौ वह साईं दूर।
जो बन्दा हाजिर हुआ, तौ हाजरा हजूर॥१६॥
रसु सोई अमृत पिवै, रन सोई जिहि ज्ञान।
सुप सोई जो बुद्धि बिन, तीनौं उलटे जान॥१७॥
लालन मेरा लाडला, रूप बहुत तुझ माहिं।
सुन्दर राखै नैन में, पलक उघारै नाहिं॥१८॥
सुन्दर पछी बिरछ पर, लियो बसेरा आनि।
राति रहे दिन उठि गये, त्यौं कुटुम्ब सब जानि॥१९॥
लौन पूतरि उदधि मे, थाह लेन कौं जाइ।
सुन्दर थाह न पाइये, बिचही गई बिलाइ॥२०॥

# बिहारीलाल

कविवर बिहारीलाल ककोर कुल के चौबे ब्राह्मण थे। उनका जन्म अनुमान से सं० १६६० में ग्वालियर के निकट बसुआ गोविन्दपुर में हुआ। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सं० १७२० में इनकी मृत्यु हुई।

बिहारीलाल जयपुर के महाराज जयसिंह के यहां रहा करते थे। एक बार जयसिंह अपनी छोटी रानी के प्रेम में इतने अनुरक्त हो गये कि उन्होंने बाहर निकलना ही बन्द कर दिया। इससे दरबारियों में बड़ी व्याकुलता फैली। तब उनकी प्रेरणा से बिहारीलाल ने यह दोहा लिखकर किसी तरह महाराज के पास भिजवाया—

> नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहि बिकास यहि काल।
> अली कली ही में बिंध्यो, आगे कवन हवाल॥

दोहे का गूढ़ अभिप्राय समझकर महाराज बाहर चले आये। उस दिन से दरबार में बिहारीलाल का सम्मान बढ़ चला। इनको एक अशरफी प्रति दिन मिला करती थी। जयपुर में ही इन्होंने सतसई बनाई, जो अपने ढंग की एक ही पुस्तक है। शृङ्गार रस का ऐसा मनोहर ग्रंथ अभी तक हिन्दी-साहित्य में दूसरा नहीं है। इसकी लगभग तीस टीकाएं हो चुकी हैं। इतने पर भी रसिकों की तृप्ति नहीं हुई है। अब इसकी एक और टीका पंडित पद्मसिंह शर्म्मा की लिखी हुई प्रकाशित हो रही है। दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं। यह टीका अब तक की सब टीकाओं में उत्तम मानी जाती है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने इस टीका के लिए टीकाकार पंडित पद्मसिंह को १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक देकर सम्मानित किया है। कहा नहीं जा सकता कि शर्म्मा जी की इस टीका से रसिकों की प्यास बुझेगी या बढ़ेगी। अभी हाल में लाला भगवानदीन ने "बिहारी बोधिनी" नाम से सतसई की एक और टीका प्रकाशित की है। अभी अयोध्या जी में, सुनते हैं बाबू जगन्नाथदास जी रत्नाकर बिहारी सतसई की एक विस्तृत टीका और तैयार कर रहे हैं।

सतसई मे कुल ७१६ दोहे हैं। एक-एक दोहे मे बिहारीलाल ने इतना चमत्कार भर दिया है कि उसमे कवियो की कल्पना-शक्ति की खासी झलक दिखाई पडती है। यो तो विहारीलाल के सभी दोहे अशर्फियो के मोल के हैं, परन्तु स्थानाभाव से हम उन सब को प्रकाशित करने मे असमर्थ हैं। उनमे से कुछ चुने हुए दोहे नीचे लिखे जाते हैं—

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तनु की झाई परे, श्याम हरित द्युति होय ॥ १ ॥
मकराकृत गोपाल के, कुडल सोहत कान।
धस्यो मनो हियघर समर, ड्योढी लसत निसान ॥ २ ॥
अधर धरत हरि के परत, ओठ दीठ पट जोति।
हरित बास की बासुरी, इन्द्रधनुष रग होति ॥ ३ ॥
अपने अग के जानिके, यौवन नृपति प्रवीन।
स्तन मन नयन नितम्ब को, बडो इजाफा कीन ॥ ४ ॥
बिहसि बुलाय बिलोकिउत, प्रौढ तिया रस घूमि।
पुलकि पसीजति पूत को, पिय चूम्यो मुख चूमि ॥ ५ ॥
कजनयनि मजन किये, बैठे ब्यौरति बार।
कच अगुरिन बिच दीठि दै, चितवति नन्दकुमार ॥ ६ ॥
पहुचति डटि रन सुभट लौ, रोकि सके सब नाहिं।
लाखनहू की भीर मे, आखि वही चलि जाहिं ॥ ७ ॥
छिनकु उघारति छिन छवति, राखति छिनकु छिपाय।
सब दिन पिय खडित अधर, दर्पन देखति जाय ॥ ८ ॥
चाह भरी अति रिस भरी, विरह भरी सब बात।
कोरि सदेसे दुहुनि के, चले पौरि लौ जात ॥ ९ ॥
युवति जोन्ह मे मिल गई, नेकु न होति लखाइ।
सौंधे के डोरे लगी, अली चली सग जाइ ॥ १० ॥
तू रहि सखि हौही लखौ, चढि न अटावलि बाल।
बिनही ऊगे ससि समुझि, देहै अर्घ अकाल ॥ ११ ॥

नाक चढै सीबी करै, जितै छबीली छैल।
फिरि फिरि भूल उहै गहै, पिय ककरीली गैल॥ १२॥
अलि इन लोयन को कछू, उपजी बड़ी बलाय।
नीर भरे नितप्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाय॥ १३॥
इन दुखिया अँखियान को, सुख सिरजोई नाहिं।
देखत बनै न देखते, बिन देखे अकुलाहिं॥ १४॥
लरिका लेबे के मिसुनि, लगर मो ढिग आय।
गयो अचानक आगुरी, छाती छैल छुवाय॥ १५॥
डग कुडगति सी चलि ठठकि, चितई चली निहारि।
लिये जात चित चोरटी, वहै गोरटी नारि॥ १६॥
फेर कछू करि पौरते, फिर चितई मुसक्याय।
आई जामन लेन को, नेहै चली जमाय॥ १७॥
यद्यपि सुन्दर सुघर पुनि, सगुनो दीपक देह।
तऊ प्रकास करै तितौ, भरिये जितो सनेह॥ १८॥
जो चाहत चटक न घटै, मैलो होय न मित्त।
रज राजस न छुवाइये, नेह चीकने चित्त॥ १९॥
अनियारे दीरघ नयनि, किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरे कछू, जिहि बस होत सुजान॥ २०॥
बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मे न।
हरिनी के नैनान ते, हरिनी के ये नैन॥ २१॥
बेसर मोती धनि तुही, को पूछै कुल जाति।
पीबो कर तियो अधर को, रस निधरक दिन राति॥ २२॥
तो लखि मो मन जो गही, सो गति कही न जात।
ठोडी गाड़ गड्यो तऊ, उड्यो रहत दिन रात॥ २३॥
जहा जहा ठाड्यो लख्यो, स्याम सुभग सिरमौर।
उनहू बिन छिन गहि रहत, दृगनि अजहु वहि ठौर॥ २४॥

चिरजीवो जोरी जुरै, क्यो न सनेह गभीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के वीर ॥ २५ ॥
सोहत ओढे पीतपट, स्याम सलोने गात।
मनो नीलमन सैल पर, आतप परयो प्रभात ॥ २६ ॥
छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यो जोवन अङ्ग।
दीपति देह दुहून मिलि, दिपत ताफता रग ॥ २७ ॥
दृगन लगत बेधत हियो, विकल करत अग आन।
ये तेरे सब ते बिषम, ईछन तीछन बान ॥ २८ ॥
झूठे जानि न सग्रहे, मन मुह निकसे बैन।
याही ते मानो किये, बातन को बिधि नैन ॥ २९ ॥
जटित नीलमनि जगमगति, सीक सुहाई नाक।
मनो अली चपक कली, बसि रस लेत निसाक ॥ ३० ॥
बेसरि मोती दुति झलक, परी ओठ पर आय।
चूनो होय न चतुर तिय, क्यो पट पोछो जाय ॥ ३१ ॥
ललित स्याम लीला ललन, चढी चिबुक छवि दून।
मधु छाक्यो मधुकर परयो, मनो गुलाब प्रसून ॥ ३२ ॥
दुरत न कुच बिच कचुकी, चुपरी सादी सेत।
कवि अकन के अर्थ लौ, प्रगट दिखाई देत ॥ ३३ ॥
अजी तरयो नाही रह्यो, स्रुति सेवत इक अग।
नाक बास बेसर लह्यो, बसि मुकतन के सग ॥ ३४ ॥
वाहि लखे लोयन लगै, कौन युवति की जोति।
जाके तन की छाह ढिग, जोन्ह छाह सी होति ॥ ३५ ॥
दृग अरुझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाठि दुरजन हिये, दई नई यह रीति ॥ ३६ ॥
क्यो बसिये क्यो निबहिये, नीति नेह पुर नाहि।
लगा लगी लोयन करै, नाहक मन बधि जाहि ॥ ३७ ॥

नैना नेकु न मानही, कितौ कहौ समझाय।
तन मन हारे हू हसे, तिन सो कहा बसाय ॥ ३८ ॥
लटकि लटकि लटकत चलत, डटत मुकुट की छाह।
चटक भर्‌यो नट मिलि गयो, अटक भटक बट माह ॥ ३९ ॥
लाज लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं।
ये मुहजोर तुरग लौं, ऐंचत हू चलि जाहि ॥ ४० ॥
सन सूखौ बीत्यो बनौ, ऊखौ लई उखारि।
अरी हरी अरहरि अजौ, धर धरहरि हिय नारि ॥ ४१ ॥
कहा कहौ वाकी दसा, हरि प्रानन के ईस।
विरह ज्वाल जरिबो लखे, मरिबो भयो असीस ॥ ४२ ॥
निस अँधियारी नीलपट, पहिरि चली पिय गेह।
कहो दुराई क्यो दुरै, दीप सिखा सी देह ॥ ४३ ॥
ल्याई लाल बिलोकिये, जिय की जीवनमूलि।
रही भौन के कोन मे, सोन जुही सी फूलि ॥ ४४ ॥
कोटि जतन कोऊ करौ, तन की तपनि न जाय।
जौ लौ भीजे चीर लौं, रहै न प्यौ लपटाय ॥ ४५ ॥
भौहनि त्रासति मुख नटति, आखिन सो लपटाति।
ऐचि छुड़ावति कर इची, आगे आवति जाति ॥ ४६ ॥
बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौह करै भौहन हसै, देन कहै नटि जाय ॥ ४७ ॥
मिलि मिलि चलि चलि मिलि चलत. आगन अथयो भानु।
भयो मुहूरत भोर के, पौरिहि प्रथम मिलानु ॥ ४८ ॥
तनक झूठ निसवादिली, कौन बात पर जाय।
तिय मुख रति आरम्भ की, नहिं झूठिये मिठाय ॥ ४९ ॥
छतो नेह कागद हिये, भई लखाइ न टाक।
बिरह तचे उघर्‌यो सु अब, सेहुड़ को सो आक ॥ ५० ॥

करके मीड़े कुसुम लौ, गई विरह कुम्हिलाय।
सदा समीपिन सखिन हू, नीठि पिछाना जाय॥ ५१॥
औंधाई सीसी सुलखि, विरह बरति बिललात।
बीचहिं सूखि गुलाब गो, छीटौ छुयो न गात॥ ५२॥
तच्यो आच अति विरह की, रह्यो प्रेमरस भीजि।
नैनन के मग जल बहै, हियो पसीजि पसीजि॥ ५३॥
बिछुरे जिये सकोच यह, बोलत बने न बैन।
दोऊ दौरि लगे हिये, किये निचौ हैं नैन॥ ५४॥
अहे दहेंडी जिनि धरै, जिनि तू लेहि उतारि।
नीके है छीके छुये, ऐसी ही रहि नारि॥ ५५॥
तौ लगि या मन सदन मे, हरि आवै केहि वाट।
विकट जटे जौ लौ निपट, खुलै न कपट कपाट॥ ५६॥
पत्राही तिथि पाइये, वा घर के चहु पास।
नितप्रति पून्यो ही रहत, आनन ओप उजास॥ ५७॥
पाय महावर देन को, नायन वैठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी, एडी मीडत जाय॥ ५८॥
मानहु विधि तनु अच्छ छवि, स्वच्छ राखिबे काज।
दृग पग पोछन को कियो, भूषन पायनदाज॥ ५९॥
बाल छबीली तियन मे, बैठी आप छिपाय।
अरगटही फानूससो, परगट होत लखाय॥ ६०॥
पहिर न भूषन कनक के, कहि आवन यहि हेत।
दर्पन कैसे मोरचे, देह दिखाई देत॥ ६१॥
कागज पर लिखत न बनत, कहत सदेस लजात।
कहिहै सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात॥ ६२॥
जब जब वे सुधि कीजिये, तब तब सब सुधि जाहिं।
आखिन आख लगी रहै, आखे लागति नाहिं॥ ६३॥

सघन कुंज छाया सुखद , सीतल मन्द समीर ।
मन ह्वै जात अजौ वही , वा जमुना के तीर ॥ ६४ ॥
इत आवत चलि जात उत , चली छ सातिक हाथ ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै , लगी उसासनि साथ ॥ ६५ ॥
करी विरह ऐसी तऊ , गैल न छाडत नीच ।
दीन्हे हू चसमा चखनि , चाहै लखै न मीच ॥ ६६ ॥
नासा मोरि नचाय दृग , करी ककाकी सौंह ।
काटेसी कसकत हिये , गडी कटीली भौंह ॥ ६७ ॥
रस सिंगार मञ्जन किये , कजन भजन दैन ।
अंजन रंजन हू बिना , खंजन गंजन नैन ॥ ६८ ॥
भूषन भार सभारही , क्यो यह तनु सुकुमार ।
सूधो पाय न परत महि , सोभा ही के भार ॥ ६९ ॥
मैं बरजी कै बार तू , उत कत लेत करोट ।
पखुरी लगे गुलाब की , परिहै गात खरोट ॥ ७० ॥
गोरी गदकारी परत , हसत कपोलन गाड़ ।
कैसी लसत गवार यह , सुन किरवा की आड़ ॥ ७१ ॥
फिर घर को नूतन पथिक , चले चकित चित भागि ।
फूल्यो देखि पलास बन , समुहै समुझि दवागि ॥ ७२ ॥
कहलाने एकत रहत , अहि मयूर मृग बाघ ।
जगत तपोवनसो कियो , दीरघ दाघ निदाघ ॥ ७३ ॥
प्यासे दुपहर जेठ के , थके सबै जल सोधि ।
मरुधर पाय मतीरहू , मारू कहत पयोधि ॥ ७४ ॥
विखम वृखादित की तृखा , जियत मतीरनि सोधि ।
अमित अपार अगाध जल , मारौ मूड पयोधि ॥ ७५ ॥
पावस घन अंधियार मे , रहो भेद नहिं आन ।
राति दिवस जान्यो परे , लखि चकई चकवान ॥ ७६ ॥

अरुन सरोरुह कर चरन , दृग खजन मुख चद ।
समय आय सुन्दर शरद , काहि न करत अनद ॥ ७७ ॥
जेती सम्पति कृपन की , तेती तू मति जोर ।
बढत जाय ज्यो ज्यो उरज , त्यो त्यो हियो कठोर ॥ ७८ ॥
कोटि यतन कोऊ करै , परै न प्रकृतिहि बीच ।
नल बल जल ऊचो चढै , अन्त नीच को नीच ॥ ७९ ॥
तन्त्री नाद कवित्त रस , सरस राग रति रग ।
अनबूडे बूडे तरे , जे बूडे सब अग ॥ ८० ॥
कैसे छोटे नरन तें , सरत बडनि के काम ।
मढो दमामो जात है , कहि चूहे के चाम ॥ ८१ ॥
अति अगाध अति ऊथरो , नदी कूप सर बाय ।
सो ताको सागर जहा , जाकी प्यास बुझाय ॥ ८२ ॥
जगत जनायो जिहि सकल , सो हरि जान्यो नाहि ।
ज्यो आखिन सब देखिये , आख न देखी जाहि ॥ ८३ ॥
मीत न नीति गलीत ह्वै , जो धरिये धन जोरि ।
खाये खरचे जो बचै , तौ जोरिये करोरि ॥ ८४ ॥
दुसह दुराज प्रजान मे , क्यो न करै दुख द्वन्द ।
अधिक अधेरो जग करत , मिलि मावस रवि चन्द ॥ ८५ ॥
घर घर डोलत दीन ह्वै , जन जन याचत जाय ।
दिये लोभ चसमा चखनि , लघु पुनि बडो लखाय ॥ ८६ ॥
बसै बुराई जासु मन , ताही को सन्मान ।
भलो भलो कहि छाडिये , खोटे ग्रह जप दान ॥ ८७ ॥
कहै यहै श्रुति समृतिहू , सबै सयाने लोग ।
तीन दबावत निकट ही , राजा पातक रोग ॥ ८८ ॥
इक भीजे चहले परे , बूडे बहे हज़ार ।
कितने अवगुन जग करत , नै बै चढती बार ॥ ८९ ॥

बुरौ बुराई जो तजं, तौ मन खरो सकात।
ज्यो निकलक मयक लखि, गनै लोग उतपात ॥ ९० ॥
सीतलताऽरु सुगन्ध की, महिमा घटी न मूर।
पीनसवारे जो तज्यो, सोरा जानि कपूर ॥ ९१ ॥
बढत बढत सपति सलिल, मन सरोज बढि जाइ।
घटत घटत पुनि ना घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ ॥ ९२ ॥
सगति सुमति न पावई, परे कुमति के धध।
राखो मेलि कपूर मे, हीग न होय सुगध ॥ ९३ ॥
सबै हसत करतार दै, नागरता के नाव।
गयो गरब गुन को सबै, बसे गमेले गाव ॥ ९४ ॥
को कहि सकै बडेन सो, लखे बडीयो भूल।
दीने दई गुलाब की, इन डारन ये फूल ॥ ९५ ॥
चले जाहु ह्या को करै, हाथिन को व्योपार।
नहि जानत यहि पुर बसै, धोबी श्रौड कुम्हार ॥ ९६ ॥
नर की श्ररु नल नीर की, एकै गति करि जोय।
जेतो नीचो ह्वै चलै, तेतो ऊचो होय ॥ ९७ ॥
गिरिते ऊचे रसिक मन, बूडे जहा हजार।
वहै सदा पसु नरन को, प्रेम-पयोधि पगार ॥ ९८ ॥
जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सो बीति बहार।
श्रब श्रलि रही गुलाब मे, श्रपत कटीली डार ॥ ९९ ॥
इहि श्राशा श्रटक्यो रहै, श्रलि गुलाब के मूल।
हुइ है बहुरि बसन्त ऋतु, इन डारन वे फूल ॥१००॥
पट पाखे भख काकरे, सदा परेई सङ्ग।
सुखी परेवा जगत मे, एकै तुही बिहग ॥१०१॥
मरत प्यास पिंजरा परचो, सुश्रा समय के फेर।
श्रादर दै दै बोलियतु, वायस बलि की बेर ॥१०२॥

नहिं पावस ऋतुराज यह , तज तरुवर मति भूल ।
अपत भये विन पाइ है , क्यो नव दल फल फूल ॥१०३॥
वे न यहा नागर बडे , जिन आदर तौ आब ।
फूल्यो अनफूल्यो भयो , गवई गाव गुलाब ॥१०४॥
कर ले सूघि सराहि कै , रहै सबै गहि मौन ।
गन्धी गन्ध गुलाब को , गवई गाहक कौन ॥१०५॥
करि फुलेल को आचमन , मीठो कहत सराहि ।
चुप करि रे गन्धी चतुर , अतर दिखावत काहि ॥१०६॥
कनक कनक ते सौगुनी , मादकता अधिकाय ।
वहि खाये बौराय जग , यहि पाये बौराय ॥१०७॥
बडे न हूजे गुनन बिन , बिरद बडाई पाय ।
कहत धतूरे सो कनक , गहनो गढो न जाय ॥१०८॥
कन देव्यो सौप्यौ ससुर , वहू थुरहथी जानि ।
रूप रहिचढे लखि लग्यो , मागन सब जग आनि ॥१०९॥
गुरुजन दूजे व्याह को , नित उठि रहत रिसाय ।
पति की पति राखत वधू , आपुन बाझ कहाय ॥११०॥
परतिय दोष पुरान सुनि , हसि मुलकी सुखदानि ।
कसकरि राखी मिश्र हू , मुह आई मुसुकानि ॥१११॥
वहुधन ले अहसान के , पारो देत सराहि ।
वैदवधू हसि भेद सो , रही नाह मुख चाहि ॥११२॥
या अनुरागी चित्त की , गति समझै नहिं कोय ।
ज्यो ज्यो बूडै श्याम रग , त्यो त्यो उज्जल होय ॥११३॥
दीरघ सास न लेइ दुख , सुख साई मति भूल ।
दई दई क्यो करत है , दई दई सु कबूल ॥११४॥
थोरेई गुन रीझते , विसराई वह बानि ।
तुमहू कान्ह मनो भये , आज काल के दानि ॥११५॥

अरे हंस या नगर मे , जैयो आप विचारि ।
कागन सो जिन प्रीति कर , कोयल दई बिडारि ॥११६॥
यदपि पुराने बक तऊ , सरवर निकट कुचाल ।
नये भये तो का भयं , ये मनहरन मराल ॥११७॥
संगति दोष लगे सबन , कहे जु साचे बैन ।
कुटिल बंक भ्रूसंग मे , कुटिल बंक गति नैन ॥११८॥
सतसैया के दोहरे , ज्यो नावक के तीर ।
देखत के छोटे लगं , घाव करैं गम्भीर ॥११९॥
व्रज भाषा बरनी कविन , बहु विधि बुद्धि विलास ।
सब की भूषन सतसई , करी बिहारीदास ॥१२०॥
संवत ग्रह ससि जलधि छिति , छठ तिथि बासर चन्द ।
चैत मास पख कृष्ण मे , पूरन आनन्द कन्द ॥१२१॥
जन्म लियो द्विजराज कुल , प्रगट बसे व्रज आय ।
मेरो हरो कलेस सब , केसव केसवराय ॥१२२॥
माहूं दीजै मोष , ज्यो अनेक अधमनि दियो ।
जो बांधे ही तोष , तौ बांधो अपने गुनन ॥१२३॥
मै समुझ्यो निरधार , यह जग काचो काच सो ।
एकै रूप अपार , प्रतिबिंबित लखिये जहां ॥१२४॥
सीस मुकुट कटि काछनी , कर मुरली उर माल ।
यहि बानिक मो मन बसो , सदा बिहारीलाल ॥१२५॥

## चिन्तामणि

चिन्तामणि महाकवि भूषण के बडे भाई थे । इनका जन्मकाल सं० १६६६ के लगभग अनुमान किया जाता है । ठाकुर शिवसिंह ने इनके बनाये पांच ग्रन्थ लिखे है—छन्द विचार, काव्य विवेक, कवि कुल कल्पतरु, काव्य प्रकाश और रामायण । ये कुछ दिनो तक नागपुर के सूर्यवंशी भोसला मकरन्दशाह के यहां रहे । राजा महाराजाओ के यहा इनका अच्छा मान था ।

इनकी कविता के कुछ नमूने यहा देखिये—

चोखी चरचा ज्ञान की , आछी मन की जीति।
सगति सज्जन की भली , नीकी हरि की प्रीति ।। १ ।।

सरद ते जल की ज्यो दिन ते कमल की ज्यो, धन ते ज्यो थल की निपट सरसाई है । घन ते सावन की ज्यो आप ते रतन की ज्यो, गुन त सुजन की ज्यो परम सुहाई है ।। चिन्तामनि कहै लाछे अच्छरन छन्द की ज्यो, निसागम चन्द की ज्यो दृग सुखदाई है । नगते ज्यो कचन बसन्त तें ज्यो बन की, यो जोबन ते तनकी निकाई अधिकाई है ।। २ ।।

कोटि विलास कटाक्ष कलोल बढावै हुलास न प्रीतम हीतर ।
यो मनि यामे अनूपम रूप जो मैनका मैन वधू कहि ईतर ।।
सुन्दरि सारी सुफेद ये सोहत यो छबि ऊचे उरोजन की तर ।
जोबन मत्त गयन्द के कुम्भ लसै जनु गग तरगनि भीतर ।।३।।
आखिन मूदिबे के मिस आनि अचानक पीठि उरोज लगावै ।
केहू कहू मुसुकाइ चितै अगराइ अनूपम अग दिखावै ।।
नाह छुई छल सो छतिया हसि भौह चढाइ आनन्द बढावै ।
जोबन के मद मत्त तिया हित सो पति को नित चित्त चुरावै ।।४।।

## भूषण

कानपुर जिले में यमुना नदी के बाए किनारे पर तिकवापुर एक गाव है । उस गाव के पास ही "अकबरपुर बीरबल" नाम का एक अच्छा-सा मौजा है । जहा अकबरशाह के सुप्रसिद्ध मत्री बीरबल का जन्म हुआ था। उसी तिकवापुर गाव में रत्नाकर त्रिपाठी नाम के एक कान्यकुब्ज कश्यप-गोत्री ब्राह्मण रहते थे । उनके चार पुत्र हुए—चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, और नीलकठ (उपनाम जटाशङ्कर) चारो भाई कवि थे। उनमें भूषण वीररस के बडे प्रतिभा-शाली कवि हुए । इनके रचे हुए चार ग्रथ सुने जाते है— शिवराज भूषण, भूषण हजारा, भूषण उल्लास, दूषण उल्लास । परन्तु अब केवल शिवराज भूषण और कुछ स्फुट छद ही मिलते

हैं। हिन्दी-साहित्य सम्मेलन ने भूषण की जितनी कवितायें मिल सकी हैं, सबको "भूषण-ग्रथावली" के नाम से टीकासहित प्रकाशित किया है।

भूषण बडे प्रतिभाशाली और वीर कवि थे। ये हिन्दुओ के जातीय कवि थे। हिन्दू-जाति की उन्नति और ऐश्वर्य के ये उत्कट अभिलाषी थे। इनके समान अपनी कविता मे जातीयता का ध्यान रखनेवाला हिन्दी के पुराने कवियो मे कोई नही हुआ और इनके समान वीर-कवि तो अब तक कोई न हुआ। यह दन्तकथा प्रसिद्ध है कि भूषण पहले बहुत निकम्मे थे। इनके भाई चिन्तामणि कमाते थे और ये घर बैठे मौज उडाया करते थे। एक दिन भोजन करने के समय इन्होंने अपनी भावज से नमक मागा। भावज ने ताना मारकर कहा—क्या नमक कमाकर लाये हो, जो उठा करके दू ? यह बात इनको ऐसी लगी कि ये उसी समय भोजन छोडकर घर से निकल गये। चलते समय इन्होने भावज से कहा—अच्छा अब नमक कमाकर लावेगे, तभी भोजन करेंगे। कहा जाता है कि इसके पश्चात् साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने मे इन्होंने बडा परिश्रम किया। और जब अच्छी कविता करने लगे तब ये चित्रकूटाधिपति हृदयराम सोलकी के पुत्र रुद्रराम के पास गये। ये प्रतिभावान् थे ही, रुद्रराम ने इनकी कविता का चमत्कार देख इन्हे कवि भूषण की उपाधि दी। इस नाम से ये इतने प्रसिद्ध हुए कि अब इनके मुख्य नामका पता ही नही चलता। वहा से ये औरगजेब के दरबार मे गये, जहा इनके बड़े भाई चिन्तामणि रहते थे। चिन्तामणि ने बादशाह से इनका परिचय कराया। औरङ्गजेब ने इनको कविता सुनने की इच्छा प्रकट की। इस पर इन्होने कहा—आप हाथ धोकर बैठिये, तब मैं कविता सुनाऊगा, क्योकि शृङ्गार रस की कविता सुनकर आपका हाथ ठौर कुठौर पडा होगा, इससे वह अपवित्र होगया है। मेरी कविता सुनकर आप का हाथ मोछो पर चला जायगा। हाथ न धोने से मोछ अपवित्र हो जायगी। औरङ्गजेब ने यह सुनकर क्रोध से कहा—यदि हाथ मोछ पर न गया तो तेरा सिर कटवा लूगा। भूषण ने निर्भयता से कहा—हा। निदान औरङ्गजेब हाथ धोकर बैठा और

भूषण ने कविता पढनी प्रारम्भ की। भूषण की वीररसमयी ओजस्विनी कविता सुनकर औरङ्गजेब को सचमुच जोश आया और वह मोछ पर ताव देने लगा। बस, भूषण की प्रतिज्ञा पूरी हुई। औरङ्गजेब ने भूषण को बहुत पुरस्कार दिया। उस दिन से दरबार मे इनकी प्रतिष्ठा बढ चली। स० १७२३ में शिवाजी दिल्ली गये। उस समय भूषण दिल्ली ही में थे। औरङ्गजेब का हिन्दू-द्वेष देखकर उनका चित्त उससे बहुत विरक्त था। परन्तु शिवाजी को हिन्दू-जाति और धर्म की रक्षा के लिए खडा देखकर उनको बडी आशा हुई। शिवाजी के दिल्ली से चले जाने पर एक दिन औरङ्गजेब ने कवियो से कहा—तुम लोग मेरी झूठी बढाई किया करते हो, सच्ची बात कहो। अन्य कवि तो चुप रहे, परन्तु भूषण से न चुप न रहा गया। इन्होने दो कवित्त में उसकी खासी निन्दा की। इससे औरङ्गजेब बहुत ही बिगडा और वह भूषण को मारने उठा। परन्तु दरबारियो के समझाने से रुक गया। भूषण उसी समय से दिल्ली छोडकर शिवाजी के दरबार मे चले गये। वहा इनका बडा सम्मान हुआ। लाखो रुपये, घोडे, हाथी और गाव इनको मिले। ये शिवाजी के साथ कई लडाइयो मे भी उपस्थित थे। ऐसी कहावत है कि वहा से इन्होने एक लाख रुपये का नमक खरीदकर अपनी भावज के पास भेजा था।

शिवाजी के यहा से भूषण स० १७३१ मे घर लौटे। राह मे आते समय महाराज छत्रसाल बुन्देला के यहा भी गये थे। छत्रसाल ने चलते समय इनकी पालकी का डडा अपने कधे पर रखकर इनका सम्मान बढाया था। शिवाजी और छत्रसाल जैसे स्वाभाविक वीर थे, वैसे भूषण भी सोने मे सुगध होगये। कविता द्वारा जितना सम्मान भूषण को मिला, उतना हिन्दी के किसी कवि को नही मिला।

भूषण का जन्म अनुमान से स० १६७० मे और मरण १७७२ में हुआ। भूषण अब इस ससार मे नही है। सैकडो वर्ष पहले ही वे विधि-विधान से विवश हो चले गये। परन्तु उनके हृदय का चित्र कविता-रूप

मे अब भी हमारे सम्मुख है। भूषण अजर और अमर की भाति हमारे साथ चल रहे है। वे एक पुष्प की तरह विकसित होकर अनन्त काल के लिए सुगध छोड गए। भगवान् फिर इस देश मे शिवाजी ऐसे वीर और भूषण ऐसे सुकवि उत्पन्न करे।

हिन्दी मे भूषण ही वीर रस के सर्वोत्तम कवि है। इससे हमने इन की कुछ अधिक कविताए उद्धृत की है। भूषण की कुछ चुनी हुई कविताए आगे दी जाती है—

आए दरबार बिललाने छरीदार देखि जापता करनहार नेकहू न मनके। भूषण भनत भौसिला के आय आगे ठाढे बाजे भए उमराय तुजक करन के॥ साहि रह्यो जकि सिव साहि रह्यो तकि और चाहि रह्यो चकि बने ब्योत अनबन के। ग्रीषम के भानु सो खुमान को प्रताप देखि तारे सम तारे गए मूदि तुरकन के॥ १॥

इन्द्र जिमि जम्भ पर बाडव सुअम्भ रावन सदम्भ पर रघुकुल राज है। पौन बारिवाह पर सम्भु रतिनाह पर ज्यो सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है॥ दावा द्रुम दड पर चीता मृगझुण्ड पर भूषण वितुण्ड पर जैसे मृग-राज है। तेज तम अस पर कान्ह जिमि कस पर त्यो मलिच्छ बस पर सेर सिवराज है॥ २॥

ऐसे बाजिराज देत महाराज सिवराज भूषण जे बाज की समाजै निदरत है। पौन पाय हीन, दृग घूघट मे लीन, मीन जल मे बिलीन क्यो बराबरी करत है॥ सब ते चलाक चित्त तेऊ कुलि आलम के रहै उर अन्तर मै धीर न धरत है। जिन चढि आगे को चलाइयतु तीर तीर एक भरि तऊ तीर पीछे ही परत है॥ ३॥

अफजलखान को जिन्होने मयदान मारा. बीजापुर गोलकुण्डा मारा जिन आज है। भूषण भनत फरासीस त्यो फिरगी मार हबसी तुरुक डारे उलटि जहाज है॥ देखत मै रुसतमखा को जिन खाक किया सालकी सुरति आजु सुनी जो अवाज है। चौकि चौकि चकता कहत चहुधा ते यारो लेत रहौ खबरि कहा लौ सिवराज है॥ ४॥

पंज प्रतिपाल भूमिभार को हमाल चहु चक्क को अमाल भयो दडक जहान को। साहिन को साल भयो ज्वाल को जवाल भयो हर को कृपाल भयो हार के विधान को ॥ वीर रस ख्यात शिवराज भुवपाल तुव हाथ को बिसाल भयो भूषन बखान को। तेरो करवाल भयो दच्छिन को ढाल भयो हिन्द को दिवाल भयो काल तुरकान को ॥ ५ ॥

दुरजन दार भजि भजि वेसम्हार चढी उत्तर पहार डरि सिवाजी नरिन्द ते। भूषन भनत विन भूषन बसन, साधे भूखन पियासन है नाहन को निन्दते ॥ बालक अयाने बाट बीच ही बिलाने कुम्हिलाने मुख कोमल अमल अरबिन्द ते। दृगजल कज्जल कलित बढ्यो कढ्यो मानो दूजा सोत तरनितनूजा को कलिन्द ते ॥ ६ ॥

छूट्यो है हुलास आम खास एक सग छूट्यो हरम सरम एक सग बिनु ढग ही। नैनन ते नीर धीर छूट्यो एक सग छूट्यो सुख रुचि मुख रुचि त्योही बिन रग ही ॥ भूषन बखानै सिवराज मरदाने तेरी धाक बिललाने न गहत बल अगही। दक्खिन के सूबा पाय दिल्ली के अमीर तजै उत्तर की आस जीव आस एक सगही ॥ ७ ॥

बचैगा न समुहाने बहलोल खा अयाने भूषन बखाने दिल आनि मेरा बरजा। तुझते सवाई तेरा भाई सलहेरि पास कैद किया साथ का न कोई बीर गरजा ॥ साहिन के साहि उसी औरग के लीन्हे गढ जिसका तू चाकर औ जिसकी तू परजा। साहि का ललन दिली दल का दलन अफजल का मलन सिवराज आया सरजा ॥ ८ ॥

पूरब के उत्तर के प्रबल पछाह हू के सब बादशाहन के गढ कोट हरते। भूषन कहै यो अवरग सो वजीर, जीत्ति लीबे को पुरतगाल सागर उतरते ॥ सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज हजरत हम मरिबे को नाहि डरते। चाकर है उजुर कियो न जाय नेक पै कछू दिन उबरते तो घने काज करते ॥ ९ ॥

बैर कियो सिव चाहत हो तबलो अरि बाह्यो कटार कठैठो।
यो ही मलिच्छहि छाडै नही सरजा मन तापर रोस मे पैठो ॥

भूषन क्यो अफजल्ल बचै अठपाव कै सिंह को पाव उमैठो।
बीछू के घाय धुक्योई धरक्क ह्वै तौ लग धाय धराधर बैठो ॥१०॥

बिना चतुरंग संग बानरन लै कै बाधि वारिधि को लंक रघुनन्दन जराई है। पारथ अकेले द्रोन भीषम सो लाख भट जीति लीन्ही नगरी विराट मे बडाई है॥ भूषन भनत ह्वै गुसलखाने मे खुमान अवरंग साहिबी हथ्याय हरि लाई है। तौ कहा अचभो महाराज सिवराज सदा वीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है॥ ११ ॥

लोमस की ऐसी आयु होय कौन हू उपाय तापर कवच जो करनवारा धरिये। ताहू पर हूजिये सहसबाहु, तापर सहसगुनो साहस जो भीमहु ते करिये॥ भूषन कहे यो अवरगजू सो उमराव नाहक कहौ तौ जाय दच्छिन मे मरिये। चलै न कछू इलाज भेजियत वे ही काज ऐसो होय साज तौ सिवा सो जाय लरिये॥ १२ ॥

ब्रह्म के आनन ते निकसे ते अत्यन्त पुनीत तिहू पुर मानी।
राम युधिष्ठिर के बरने बलमीकहु व्यास के अंग सोहानी॥
भूषन यो कलि के कविराजन राजन के गुन गाय नसानी।
पुन्य चरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी ॥१३॥

दान समै द्विज देखि मेरुहू कुबेरहू की सम्पति लुटाइबे को हियो ललकत है। साहि के सपूत सिव साहि के बदन पर सिव की कथान मे सनेह झलकत है॥ भूषन जहान हिन्दुवान के उबारिबे को तुरकान मारिबे को बीर बलकत है। साहिन सो लरिबे की चरचा चलत आनि सरजा के दृगन उछाह छलकत है॥ १४ ॥

काहू के कहे सुने ते जाही ओर चाहे ताही ओर इकटक घरी चारिक चहत है। कहे ते कहत बात कहे ते पियत खात भूषन भनत ऊंची सासन जहत है॥ पौढे है तो पौढे, बैठे बैठे, खरे खरे, हमको है, कहा करत, यो ज्ञान न गहत है। साहि के सपूत सिव साहि तव बैर इमि साहि सब रात-दिन सोचत रहत है॥१५॥

आजु यहि समै महाराज सिवराज तुही जगदेव जनक जजाति अम्ब-

रीक सो । भूषन भनत तेरे दान जल-जलधि में गुनिन को दारिद गयो बहि खरीक सो ।। चद कर कजलक, चादनी पराग, उड वृन्द मकरन्द बुन्द पुज के सरीक सो । कन्द सम कयलास, नाक गग नाल, तेरे जस पुण्डरीक को अकास चचरीक सो ।।१६।।

चित अनचैन आसू उमगत नैन देखि बीबी कहै बैन मिया कहियत काहिनै । भूषन भनत बूझे आये दरबार ते कपत बार बार क्यो सम्हार तन नाहिनै ।। सीनो धकधकत पसीनो आयो देह सब हीनो भयो रूप न चितौत बाए दाहिनै । सिवाजी की सङ्क मानि गयेहौ सुखाय तुम्है जानियत दक्खिन को सूबा करो साहिनै ।।१७।।

मार करि पातसाही खाकसाही कीन्ही जिन जेर कीन्ही जोर सो लै हद्द सब मारे की । खिसि गई सेखी फिसि गई सूरताई सब हिसि गई हिम्मति हजारो लोग सारे की ।। बाजत दमामे लाखो धौसा आगे घहरात गरजत मेघ ज्यो बरात चढे भारे की । दूलहो सिवाजी भयो दच्छिनी दमामे वारै दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की ।।१८।।

चकित चकत्ता चौकि चौकि उठै बार बार दिल्ली दहसति चितै चाह करषति है । बिलखि वदन बिलखात बिजैपुर पति फिरत फिरगिन की नारी फरकति है ।। थर थर कापत कुतुबशाह गोलकुण्डा हहरि हवस-भूप भीर भरकति है । राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि केते बादसाहन की छाती दरकति है ।।१९।।

मालवा उजैन भनि भूषन भेलास ऐन सहर सिरोज लौं परावने परत हैं । गोडवानो तिलगानो फिरगानो करनाट रुहिलानो रुहिलन हिये हहरत है ।। साहि के सपूत सिवराज तेरी धाक सुनि गढपति वीर तेऊ धीर न धरत है । बीजापूर गोलकुण्डा आगरा दिली के कोट बाजे बाजे रोज दरवाजे उघरत है ।।२०।।

राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी मैं । राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की धरा मैं धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं ।। भूषन सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की

देस देस कीरति बखानी तव सुनी मैं । साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी दिल्ली दल दाबि के दिवाल राखी दुनी मैं ॥२१॥

सारस से सूबा करवानक से साहजादे मोर से मुगल मीर धीर ही धचैं नही । बगुला से बगस बलूचियो बतक ऐसे काबुली कुलङ्ग याते रन मे रचैं नही ॥ भूषन जू खेलत सितारे मे शिकार शिवा साहि को सुवन जाते दुवन सचैं नही । बाजी सब बाज से चपेटैं चगु चहू ओर तीतर तुरुक दिल्ली भीतर बचैं नही ॥२२॥

"सिवा की बडाई औ हमारी लघुताई क्यो कहत बार बार" कहि पातसाह गरजा । सुनिये "खुमान हरि तुरुक गुमान महिदेवन जे वायो" कवि भूषन यो अरजा ॥ तुम वाको पाय कै जरूर रन छोरो वह रावरे वजीर छोरि देति करि परजा । मालुक तिहारो होत याहि मे निबेरो रन कायर सो कायर औ सरजा सो सरजा ॥२३॥

फिरगाने फिकिरि औ हद्द सुनि हबसाने भूषन भनत कोऊ सोवत न घरी है । बीजापुर बिपत्ति बिडारि सुनि भाज्यो सब दिल्ली दरगाह बीच परी खरभरी है ॥ राजन के राज सब साहिन के सिरताज आज सिवराज पातसाही चित धरी है । बलख बुखारे कसमीर लौ परी पुकार धाम धाम धूम धाम रूम साम परी है ॥२४॥

दारा की न दौर यह रार नही खजुवे की बाधिबो नही है कैधो मीर सहबाल को । मठ विस्वनाथ को न बास ग्राम गोकुल को देवी को न देहरा न मन्दिर गोपाल को ॥ गाढे गढ लीन्हे अरु बैरी कतलान कीन्हे ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को । बूडति है दिल्ली सो सम्हारै क्यो न दिल्लीपति धक्का आनि लायो सिवराज महा-काल को ॥२५॥

कत्ता की कराकनि चकत्ता को कटक काटि कीन्ही सिवराज वीर अकह कहानिया । भूषन भनत तिहु लोक मे तिहारी धाक दिल्ली औ बिलाइत सकल बिललानिया ॥ आगरे अगारन ह्वै फादत कगारन छ्वै

बांधती न बारन मुखन कुम्हलानिया । कीबी कहे कहा औ गरीवी गहे भागी जांहि वीवी गहे सूथनी सु नीवी गहे रानिया ॥२६॥

छूटत कमान और तीर गोली बानन के मुसकिल होत मुरचान हू की ओट मै । ताही समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो दावा बांधि पर हला वीर भट जोट मे ॥ भूषन भनत तेरी किस्मत कहा लौ कहौ हिम्मत यहा लगि है जाकी भट झोट मे । ताव दै दै मूछन कगूरन पै पाव दै दै अरि मुख घाव दै दै कूदे परे कोट मे ॥२७॥

जीत्यो सिवराज सलहेरि को समर सुनि सुनि असुरन के सु सीने धरकत है । देव लोक नाग लोक नर लोक गावे जस अजहू लौ परे खग्ग दात खरकत है । कटक कटक काटि कोट से उडाय केते भूषन भनत मुख मोरे सरकत है । नरभूमि लेटे अध कटे कर लेटे परे रुधिर लपेटे पठनेटे फरकत है ॥२८॥

सवन के ऊपर ही ठाढो रहिबे के जोग ताहि खरो कियो जाय जारन के नियरे । जानि गैरमिसिल गुसीले गुसा धारि उर कीन्हो ना सलाम ना वचन बोले सियरे ॥ भूषन भनत महावीर बलकन लाग्यो सारी पातसाही के उडाय गये जिगरे । तमकते लाल मुख सिवा को निरखि भये स्याह मुख नौरग सिपाह मुख पियरे ॥२९॥

देवल गिरावते फिरावते निशान अलि ऐसे डूबे राव राने सबे गए लव की । गौरी गनपति आप औरन को देत ताप आपके मकान सब मार गये दवकी ॥ पीरा पयगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत सिद्ध की सिधाई गई रही बात रबकी । कासिहु ते कला जाती मथुरा मसीद होती सिवा जी न होतो तो सुनति होति सब की ॥३०॥

ऊचे घोर मन्दिर के अन्दर रहनवारी ऊचे घोर मन्दिर के अन्दर रहाती है। कन्द मूल भोग करै कन्द मूल भोग करै तीन वेर खाती सो तो तीन वेर खाती है । भूषन सिथिल अङ्ग भूखन सिथिल अङ्ग विजन डुलाती ते वे विजन डुलाती है । भूषन भनत सिवराज वीर तेरे त्रास नगन जडाती ते वै नगन जडाती है ॥३१॥

सोधे को अधार किसमिस जिनको अहार चारि को सो अक लक चन्द सरमाती हैं। ऐसी अरि नारी सिवराज वीर तेरे त्रास पायन मे छाले परे कन्द मूल खाती हैं ॥ ग्रीषम तपनि एती तपती न सुनी कान कज कैसी कली बिनु पानी मुरझाती है। तोरि तोरि आछे से पिछौरा सो निचोरि मुख कहै "अब कहा पानी मुकतो मे पाती है" ॥३२॥

डाढी के रखैयन की डाढो सी रहति छाती बाढी मरजाद जस हद्द हिन्दुवाने की। कढि गई रैयत के मन की कसक सब मिट गई ठसक तमाम तुरकाने की। भूषन भनत दिल्लीपति दिल धकधका सुनि सुनि धाक सिवराज मरदाने की। मोटी भई चडी बिनु चोटी के चवाय मुण्ड खोटी भई सम्पति चकत्ता के घराने की ॥३३॥

वेद राखे विदित पुरान राखे सारयुत राम नाम राख्यो अति रसना सुघर मे। हिन्दुन का चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की काधे मे जनेऊ राख्यो माला राखी गर मे ॥ मीडि राखे मुगल मरोडि राखे पातसाह बैरी पीसि राखे वरदान राख्यो कर मे। राजन की हद्द राखी तेग बल सिवराज देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मे ॥३४॥

## मतिराम

मतिराम भूषण के सगे भाई थे। इनका जन्म स० १६७४ के लगभग और मरण स० १७७३ के लगभग हुआ। ये बूदी के महाराज राव भाऊसिह के यहा रहा करते थे। ये शृङ्गार रस के अच्छे कवि थे।

इनके रचे ललित ललाम, रसराज, छन्दसार पिगल और साहित्य-सार आदि ग्रन्थ है।

इनके कुछ छन्द नीचे लिखे जाते है—

जगत विदित बूदी नगर, सुख सम्पति को धाम।
कलिजुगहू मे सत्यजुग, तहा करत विश्राम ॥ १ ॥
पढत सुनत मन दै निगम, आगम स्मृति पुरान।
गीत कवित्त कलान के, जह सब लोग सुजान ॥ २ ॥

सरद बारिधर के लसत, अमल धौरहर धौल।
चित्रित चित्रित सिखर जह, इन्द्रधनुष से नील ॥ ३ ॥
महलनि ऊपर जह बने, कचन कलस अनूप।
निज प्रभानि सौ करत है, गगन पीत अनुरूप ॥ ४ ॥
जह विमान-वनितान के, श्रमजल हरत अनूप।
सौध पताकनि के वसन, होइ बिजन अनुरूप ॥ ५ ॥
वीना वेनु निनाद मृग, मोहि अचल करि चन्द।
सौंध सिखर ऊपर जहा, दम्पति करत अनन्द ॥ ६ ॥
जहा छहौ ऋतु मे मधुर, सुनि मृदङ्ग मृदु सोर।
सङ्ग ललित ललनानि के, नृत्य करत गृह मोर ॥ ७ ॥
मरकत लाल प्रवाल मनि, मुकुत हीर अवदात।
ललित राजपथ मे जहा, जरकस वसन विकात ॥ ८ ॥
मद जल बरषत भूमि के, जलधर सम मातङ्ग।
बिना परनि के खग जहा, सुन्दर तरल तुरङ्ग ॥ ९ ॥
सदा प्रफुल्लित फलित जह, द्रुम बेलिन के वाग।
अलि कोकिल कलधुनि सुनत, लहत श्रवन अनुराग ॥१०॥
कमल कुमुद कुवलयन के, परिमल मधुर पराग।
सुरभि सलिल पूरे जहा, वापी कूप तडाग ॥११॥
शुक चकोर चातक चुहिल, कोक मत्त कलहस।
जह तरवर सरवरन के, लसत ललित अवतस ॥१२॥
अक्षैवट वालक उदर, ज्यो ससार समाय।
सकल जगत पानिप रह्यौ, बूदी मे ठहराय ॥१३॥
तामे प्रतिबिम्बित मनौं, सम्पति जुत सुरलोक।
घर घर नर नारी लसै, दिव्य रूप के ओक ॥१४॥
चन्द्रमुखिन के भौह जुग, कुटिल कठोर उरोज।
बाननि सौं मन को जहा, मारत एक मनोज ॥१५॥

जहां चित्त चोरी करै, मधुर बदन मुसकानि।
रूप ठगत है दृगन को, और न दूजो जानि ॥१६॥
ता नागरी को प्रभु बडो, हाडा सुरजनराव।
रच्यो एक सब गुननि को, वर विरचि समुदाव ॥१७॥

बाजत नगारे जहां गाजत गयन्द, तहां सिंह सम कीनो बीर सगर विहार है। कहै मतिराम कवि लोगनि कौ रीझि करि, दीने ते दुरद जे चुवत मदधार हैं॥ शत्रुसाल नन्दराव भावसिंह तेग त्याग, तोसे और औनितल आजु न उदार है। हाथिन बिदारिबे को हाथ है हथ्यार तेरे, दारिद बिदारिबे को हाथियै हथ्यार है ॥१८॥

चरन धरै न भूमि बिहरै तहांई जहां, फूले फूले फूलन बिछायो परजंक है। भार के डरनि सुकुमार चारु अगनि में, करत न अँगराग कुंकुम को पंक है। कहै मतिराम देखि वातायन बीच आयो, आतप मलीन होत बदन मयंक है। कैसे वह बाल लाल बाहर बिजन आवै, बिजनबयार लागे लचकत लंक है ॥१९॥

जूथपति बैठ्यो पानी पोषत प्रबलमद कलभ करेनु कनि लीनै संग सुखते। ग्रह गह्यो गाढे बैर पीछले के बाढे भयो बलहीन विकल करन दोह दुखते। कहै मतिराम सुमिरत ही समीप लखे ऐसी करतूति भई साहिब सुरुख ते। दोऊ बाते छूटी गजराज की बराबर ही पाव ग्राह मुख ते पुकार निज मुखते ॥२०॥

सोने कैसे बेली अति सुन्दर नवेली बाल, ठाढी ही अकेली अलबेली द्वार महिया। मतिराम अखिया सुधा की बरषासी भई, गई जब दीठि वाके मुखचन्द्र पहिया॥ नेक नीरे जाइ करि बातनि लगाय करि, कछू मन पाइ हरि वाकी गही बहिया। सैननि चरचि लई गौननि थकित भई नैननि में चाह करै बैननि में नहिया ॥२१॥

गुच्छनि के अवतंस लसै सिखिपच्छनि अच्छ किरीट बनायो।
पल्लव लाल समेत छरी कर-पल्लव में मतिराम सुहायो॥

गुञ्जनि के उर मजुल हार निकुञ्जनि ते कढि बाहिर आयो ।
आज को रूप लखे ब्रजराज को आजही आखिन को फल पायो ॥२२॥
कुन्दन को रग फीको लगै झलकै अति अगनि चारु गोराई ।
आखिन में अलसानि चितौनि मे मजु विलासन की सरसाई ॥
कोटिन मोल विकात नही मतिराम लहै मुसुकान मिठाई ।
ज्यो ज्यो निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यो त्यो खरी निकरै सुनिकाई ॥२३॥
खेलत चोर मिहीचनी आजु गई हुती पाछिले द्योस की नाई ।
आली कहा कहौ एक भई मतिराम नई यह बात तहाई ॥
एकहि भौन दुरे एक सगही अगसो अग छुवायो कन्हाई ।
कम्प छूट्यो तन स्वेद बढ्यो तनुरोम उठ्यो अखिया भरि आई ॥२४॥
केलि की राति अघाने नही दिनही मे लला पुनि घात लगाई ।
प्यास लगी कोउ पानी देजाइयो भीतर बैठि के बात सुनाई ॥
जेठ पठाई गई दुलही हसी हेरे हरै मतिराम बुलाई ।
कान्ह के बोल पै कान न दीन्ही सु गेह की देहरि पै धरि आई ॥२५॥
आपने हाथ सो देत महावर आपहि बार शृगारत नीके ।
आपनही पहिरावत आनि कै हारि सवारि के मौलसिरी के ॥
हौ सखि लाजन जात गडी मतिराम स्वभाव कहा कहौ पीके ।
लोग मिले घर घेरे कहै अवही ते ये चेरे भये दुलही के ॥२६॥
प्यार पगी पगरी पियकी वसि भीतर आपने सीस सवारी ।
एते मे आगन ते उठिकै तह आइ गये मतिराम विहारी ॥
देखि उतारनि लागि तिया पिय सौहनि सो वहुरी न उतारी ।
नैन नचाइ लजाइ रही मुसुकाइ लला उर लाइ पियारी ॥२७॥

पियत रहै अवरानि को , रस, अति मधुर अमोल ।
ताते मीठो कढत है , वाल वदन ते बोल ॥२८॥
नैन जोरि मुख मोरि हसि , नैसुक नेह जनाय ।
आग लेन आई हिये , मेरे गई लगाय ॥२९॥

प्रीतम को मन भावती, मिलत प्रेम उत्कण्ठ।
बाहि न छूटै कठ ते, नाहि न छूटै कण्ठ ॥३०॥

## कुलपति मिश्र

कुलपति मिश्र आगरे के रहनेवाले चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। चतुर्वेदी ब्राह्मणो मे मिश्र, शुक्ल आदि सभी आस्पद होते है। इनके पिता का नाम परशुराम मिश्र था। इनका जन्म अनुमान से सवत् १६७७ विक्रम मे हुआ। इनका रचा हुआ एक ग्रथ "रस रहस्य" मिलता है, वह स०१७२७ मे समाप्त हुआ था। इनके मरण काल का कुछ पता नही चलता।

कुलपति मिश्र सस्कृत के बडे विद्वान् थे। मम्मट के आधार पर रस-रहस्य में इन्होने काव्य के कई अङ्गो की विद्वत्तापूर्ण आलोचना की है। काव्य के दोष, गुण, अलङ्कार, रस आदि का वर्णन रस-रहस्य में अच्छा है। यह ग्रथ इडियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है, परन्तु बहुत अशुद्ध है। इसके सिवा द्रोण-पर्व, गुण-रस-रहस्य, सग्रह-सार, युक्ति-तरङ्गिणी और नखशिख नामक ग्रथ भी इनके रचे हुए बतलाये जाते हैं, परन्तु अभी तक कही से वे प्रकाशित नही हुए।

ये जयपुर के महाराजा जयसिह के पुत्र रामसिह के यहा रहते थे। रसरहस्य मे अलङ्कारो के उदाहरण मे रामसिह की प्रशसा के ही छन्द अधिक है। कुलपति ने अपनी कविता मे प्राकृत-मिश्रित और उर्दू-मिश्रित हिन्दी-भाषा का प्रयोग किया है।

इनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है—

( १ )

उर बेधत पानिप हरत, मुक्ता जनि बिलखाय।
नाक वास लहि है गुनी, दे अधरन सिर पाय॥

( २ )

दान बिन धनी सनमान बिन गुनी ऐसे विष बिन फनी अनी सूर न सहत है। मत्र बिन भूप ऐसे जल बिन कूप जैसे लाज बिन कामिनि के

गुननि कहत है ॥ वेद बिन यज्ञ जप जोग मन बस बिन ज्ञान बिन योगी मन ऐसे निबहत है । चंद बिन निशा प्राणप्यारी अनुराग बिन सील बिन लोचन ज्यो सोभा को लहत है ॥

( ३ )

दिसि पूरि प्रभा करिकै दसहू गुन कोकन के अति मोद लहै ।
रंगि राखी रसा रग कुंकुम के अलि गुञ्जत ते जस पुञ्ज कहै ॥
निस एक ह्वै पङ्कज की पतनीन के वाके हिये अनुराग रहै ।
मनो याही ते सूरज प्रात समै नित आवत है अरुनाई लहै ॥

( ४ )

नीति विना न बिराजत राज न राजत नीति जू धर्म बिना है ।
फीको लगै बिन साहस रूप रु लाज विना कुल की अबला है ॥
सूर के हाथ बिना हथियार गयंद बिना दरबार न भा है ।
मान विना कविता की न ओर है दान बिना जस पावै कहा है ॥

## जसवन्तसिंह

जसवन्तसिंह जोधपुर के महाराज, महाराज गजसिंह के द्वितीय पुत्र और अमरसिंह के छोटे भाई थे । इनका जन्म स० १६८२ मे हुआ । ये स० १६९५ मे अपने पिता के स्वर्गवासी होने पर सिंहासनासीन हुए। औरंगजेब के इतिहास से जसवन्तसिंह के जीवन का बहुत सम्बन्ध है जो इतिहास पढनेवालो से छिपा नही है । इनका देहान्त स०१७३८मे, काबुल मे हुआ । कहते है, औरङ्गजेब ने इन्हे विष दिलाकर मरवा डाला था ।

जसवन्तसिंह भाषा के बडे मर्मज्ञ कवि थ । इन्होने इन ग्रन्थो की रचना की है—भाषा-भूषण, अपरोक्ष सिद्धान्त, अनुभव-प्रकाश, आनन्द-विलास, सिद्धान्त-बोध, सिद्धान्त-सार, प्रबोध चन्द्रोदय नाटक । भाषा-भूषण के सिवा इनके शेष ग्रन्थ वेदान्त सम्बन्धी है। भाषा-भूषण २६१ दोहो का अलकार का ग्रन्थ है ।

जसवन्तसिंह की कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है—

मुख शशि वा शशि सो अधिक , उदित जोति दिन राति ।
सागर ते उपजी न यह , कमला अपर सोहाति ॥ १ ॥
नैन कमल ये ऐन हैं , और कमल केहि काम ।
गमन करत नीकी लगै , कनक-लता यह बाम ॥ २ ॥
धरक दुरै आरोप ते , सुद्धापन्हुति होय ।
उर पर नाहिं उरोज ये , कनक-लता फल दोय ॥ ३ ॥
परजस्ता गुन और को , और विषे आरोप ।
होय सुधाधर नाहिं ये , बदन सुधाधर ओप ॥ ४ ॥

## बनवारी

बनवारी स० १६९० के लगभग हुए । शाहजहा के दरबार मे सलाबतखा ने अमरसिह को "गवार" कह दिया था । इसी पर क्रुद्ध होकर अमरसिह ने उसे दरबार ही मे मार डाला ।

अमरसिह जोधपुर के महाराज गजसिह के बडे पुत्र और औरङ्गजेब के सुप्रसिद्ध सहायक जसवन्तसिह के बडे भाई थे । उद्धत स्वभाव होने के कारण स० १६९१ मे अमरसिह को गजसिह ने राज पाने के अधिकार से च्युत करके राज से निकाल दिया था । इसीसे गजसिह के बाद जसवन्तसिह को जोधपुर की गद्दी मिली। अमरसिह शाहजहा के पास चले आये। शाहजहा ने उन्हे अपने दरबार मे अच्छा पद दिया था । एक बार अमरसिह ने शाहजहा से कुछ दिनों की छुट्टी ली । पर रानी के प्रेम ने उन्हे ऐसा विवश किया कि वे ठीक समय पर छुट्टी समाप्त करके दरवार में हाजिर न हो सके । शाहजहा का एक मुख्य दरबारी अमरसिंह से कुछ द्वेष रखता था । उसने अमरसिंह के प्रति बहुत-सी बे-सिर-पैर की शिकायते सुनाकर बादशाह के कान खूब भरे । और जब वे दरबार मे हाजिर हुए तब उनकी सलाह से गैरहाजिरी के लिए उन पर एक बडा जुरमाना किया गया । अमरसिह इस अपमान को सह न सके । और उन्होने भरे दरबार मे क्षत्रियोचित निर्भयता के साथ बादशाह की आज्ञा का प्रतिवाद किया । बादशाह तो चुपचाप सुनता रहा, पर सलाबतखा ने

जोश मे आकर अमरसिंह को "गवार" कह दिया। अमरसिंह ने तलवार निकालकर भरे दरबार मे सलावतखा का सिर काट लिया। शाहजहा सिंहासन छोड भागा। दरबारी भी रफूचक्कर हुए। जिन्होने कुछ रोक-थाम की, अमरसिंह ने उन्हे तलवार के घाट उतारा। वहा से निकलकर अमरसिंह अपने महल मे आये और कुछ दिनो तक फिर दरबार मे न गये।

शाहजहा तो क्रुद्ध था ही, दरबारियो ने उसके कान और भरे। सब ने मिलकर अमरसिंह के एक निकट सम्बन्धी को इसलिये तैयार किया कि वह किसी तरह से अमरसिंह को दरबार में लावे। दरबार में उन पर यथाविधि अपराध लगाकर, उन्हे दड दिया जायगा। उसने अमरसिंह से मिलकर बहुत ऊचा-नीचा समझाकर, उन्हे दरबार मे आकर शाहजहा से मिलने के लिए राजी किया। उसने झूठमूठ यह भी कहा कि शाहजहा ने तुम्हारा अपराध क्षमा कर दिया है।

अमरसिंह उसकी बातो मे आगये। वे उसके साथ दरबार की ओर चले। शाहजहा के सामने पहुचने के लिए जो द्वार था, वह इतना नीचा था कि बिना सिर झुकाये कोई उसके अन्दर प्रवेश नही कर सकता था। शाहजहा को यह भय था कि शायद अमरसिंह उसे सलाम न करेंगे। इसलिए यह युक्ति की गई थी कि जब अमरसिंह द्वार में प्रवेश करने के लिये सिर झुकावेंगे तब उसे सलाम समझकर शाहजहा की ओर से उसकी स्वीकृति जाहिर कर दी जायगी।

अमरसिंह ताड गये। उन्होने पहले द्वार के अन्दर सिर न डालकर पैर डाला। इतने में पीछे से उनके सम्बन्धी (शायद अर्जुनसिंह) ने तलवार मारकर उनका सिर धड से जुदा कर दिया। वह अमरसिंह का सिर लेकर खुशी-खुशी शाहजहा के सामने हाजिर हुआ और कोई बडा पुरस्कार पाने की आशा से शाहजहा और उसके दरबारियो की ओर सतृष्ण नेत्रो से देखने लगा। शाहजहा को उस पर बडा क्रोध आया। क्योकि यद्यपि वह अमरसिंह से रुष्ट हो गया था, पर उनकी वीरता पर वह हृदय से मुग्ध भी था। उसने अमरसिंह की हत्या करनेवाले को घोर तिरस्कार और यन्त्रणायुक्त मृत्यु दण्ड दिया।

अमरसिह की विधवा रानी ने सती होने की इच्छा प्रकट की। लाश मागने पर शाहजहा ने कहला भेजा कि अमरसिह के पुत्र मे कुछ शक्ति हो तो वह आकर लाश ले जाय।

अमरसिह के एक ही पुत्र था। उसका नाम रामसिह था। रामसिह की अवस्था उस समय १५ वर्ष से अधिक नही थी। शाहजहा का व्यग सुनकर रानी चुप हो रही, पर रामसिह ने माता के चरणो पर सिर रख कर कहा,—"मा, अब तो मुझे यह प्रमाणित करना ही होगा कि मै वीर-पिता का वीर-पुत्र हू।" यह कहकर रामसिह कुछ विश्वस्त और वीर राजपूतो को साथ लेकर राजमहल की ओर चला, जहा शाहजहा ने लाश को कडे पहरे मे रखवा दिया था। वीर बालक रामसिह ने पहरे वालो को एक कडी लडाई मे परास्त करके लाश को घोडे पर रक्खा और मा के सामने लाकर रख दिया। शाहजहा अपने महल की खिडकी से यह सब हाल देख रहा था। रामसिह की वीरता पर वह हृदय से मोहित हो गया। उसने उसी वक्त रानी के पास सवार भेजकर कहलाया कि बादशाह खुद अमरसिह की रथी के साथ स्मशान तक आरहे है। शाहजहा अपने सब दरबारियो को साथ लेकर धूमधाम से शरीक हुआ। उसने रामसिह को गोद मे लेकर कहा,—"तुम्हारा तेज देखने के लिए ही मैने लाश को रोकवा रक्खा था। तुम वीर-पिता के वीर-पुत्र हो, तुमको दरबार मे अमरसिह का स्थान दिया जायगा।" शाहजहा अमरसिह को याद करके कुछ समय तक आसू गिराता रहा। रानी उसके सामने ही अमरसिह की लाश के साथ सती होगई।

अमरसिह के सम्बन्ध की यह कथा लोक मे ऐसी ही प्रसिद्ध है। इस घटना को लेकर दो एक काव्य भी रचे गये है। बनवारी ने अपने छन्दों मे सलावतखा के मारे जाने भर का जिक्र किया है।

बनवारी ने शृङ्गाररस की कविता भी की है, और लोग उसे भी पसन्द करते है। इनका लिखा कोई ग्रन्थ हमारे देखने मे नही आया। यहा इनके कुछ छन्द लिखे जाते है—

( १ )

धन्य अमर छिति छत्रपति , अमर तिहारो नाम ।
शाहजहा की गोद मे , हत्यो सलाबत खान ॥

( २ )

उत गवार मुख ते कढी , इत निकसी जमधार ।
"वार" कहन पायो नही , कीन्हो जमधर पार ।।

ग्रानि कै सलाबत खा जोरि कै जनाई बात तोरि धर पजर करेजे जाय करकी । दिल्लीपति साह को चलन चलिबे को भयो गाज्यो गजसिह को सुनी है बात बर की ।। कहै बनवारी बादसाहि के तखत पास फरकि फरकि लोथ लोथिन सो ग्ररकी । करकी बडाई कै बडाई बाहिबे की करौं बाढि की बडाई कै बडाइ जमधर की ।। ३ ।।

नेह बरसाने तेरे नेह बरसाने देखि यह बरसाने वर मुरली बजावेगे । साज् लाल मारी लाल करै लालसारी देखिबे की लालसारी लाल देखे मुख पावेगे ।। तू ही उरवसी उर बसी नहि ग्रौर तिय कोटि उरबसी तजि तोसो चित्त लावगे । सेज बनवारी बनवारी तन आभरन गोरे तनवारी बनवारी ग्राज ग्रावेगे ।। ४ ।।

# गोपालचन्द्र मिश्र

गोपालचन्द्र मिश्र का जन्म छत्तीसगढ मे स० १६९० के लगभग माना जाता है । इनके पिता का नाम गगाराम ग्रौर पुत्र का माखनचन्द्र था । माखनचन्द्र भी ग्रच्छे कवि थे । रामप्रताप काव्य का ग्राधा गोपाल-चन्द्र ने लिखा था, ग्रौर शेष उनकी ग्राज्ञा से माखनचन्द्र ने लिखकर ग्रन्थ को पूर्ण किया ।

छत्तीसगढ की प्राचीन राजधानी रतनपुर के हैहयवशी राजा राजसिंह के दरबार मे गोपालचन्द्र का बडा मान था । कहा जाता है कि इनको राजा राजसिह ने अपना दीवान बना लिया था । राजा की इच्छानुसार इन्होने स० १७४६ मे "खूब तमाशा" नामक काव्य की रचना की ।

इनके रचे हुए ग्रन्थो के नाम ये है—

खूब तमाशा (१७४६), जैमिनी अश्वमेध (१७५२), सुदामाचरित्र (१७५५), भक्ति चिन्तामणि (१७५९), रामप्रताप, छन्दविलास (पिंगल)।

यहा इनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते है—

( १ )

सोई नैन नैन जो बिलोके हरि मूरति को, सोई बैन बैन जे सुजस हरि गाइये। सोई कान कान जामे सुनिये गुनानुवाद, सोई नेह नेह हरि जू सो नेह लाइये॥ सोई देह देह जामे पुलकित रोम होत, सोई पाव पाव जामे तीरथन जाइये। सोई नेम नेम जे चरन हरि प्रीति बाढे, सोई भाव भाव जो गोपाल मन भाइये॥

( २ )

दान सुधा जल ते जिन सीच सतोगुन बीच बिचार जमायो।
बाढि गयो नभमडल लौ महिमडल घेर दसो दिसि छायो॥
फूल घने परमारथ फूलनि पुण्य बडे फल ते सरसायो।
कीरति वृक्ष बिसाल गुपाल सु कोविद वृन्द बिहग बसायो॥

## चारों दिशाओं के सुख दुःख

### दोहा

रूप विशेष विशेष धन, भूमि सुहावन देस।
जाय करौं याते अबै, पूरब को परदेस॥

### कवित्त

ताफताऽरु बाफता मुसज्जर औ साफ मखमलऽरु मुकेसी पट नाना सुखदाइये। सरस कृपान तरकसऽरु कमान बान जरकसी चीरा हीरा जहा जाइ लाइये॥ सुकवि "गुपाल" फुलवारी धाम धाम अम्ब श्रीफल कदम्ब पौडा पानन को खाइये। बडे होत केस, मिले तन्दुल असेस, प्यारी पूरब के देस मे विशेष सुख पाइये॥

**सोरठा**

लगै चोर ठगवाइ , पेट चलै पानी लगै ।
कीजै कबहु न जाइ , पूरब के परदेस को ।।

**कबित्त**

पानी लगि जात बहु फूलि जात गात पुनि पेट चलि जात कछु खाइ जात जबहू । जादू करि करिकै सभोग सुख काज पशु पच्छी करि राखै नारि नरन को अबहू ।। ब्राह्मन बनिक मीन मास मधु खात तेल हरद लगाय न्हात नारी नर सबहू । फासी देकै हाल मारि डारै ठगजाल यातें जैये न "गुपाल" दिसि पूरब की कबहू ।।

**दोहा**

दयावान धनवान पुनि , लोग बडे गुनवान ।
याते दच्छिन देस को , करिये सदा पयान ।।

**कबित्त**

चीरा चीर सालू सेला समला बहारदार जरकसी काम जहा होत नाना भाति है। सुकवि "गोपाल" लाल रतन प्रवाल मन मानिक बिसाल मोती महगी सुजाति है ।। मेवा औ मिठाई फल फूल मूल मुक्त गज तरुनी अनूप रूप झलकत गात है । देखे बनै बात सदा सोभा सरसात प्यारी दच्छिन दिसा के गुन कहे नहि जात है ।।

**दोहा**

दक्षिण पिय सुन कान दे , दक्षिण दक्षिण जात ।
लक्षण लक्षण गक्षि के , लक्षण ही लगि जात ।।

**कबित्त**

घोटू लौ उघारी निरलज्ज रहे नारी मास मदिरा अहारी द्विज होइ अनाचारी है । सुकवि "गुपाल" प्याज लहसुन खात बहु लूटै ठग चोर प्रजा रहै न सुखारी है ।। लोग निरहेत भानिजे को व्याहि बेटी देत रीति बिपरीति सब देखत मे न्यारी है । बढत अगारी होति बडी बडी ख्वारी दिसि दक्षिण मझारी जात होत दुख भारी है ।।

दोहा

राखे दक्षिण ते अबै, जो दिसि पश्चिम जात।
ताके अब सुन लीजिये, प्यारी! मुख अवदात॥

कबित्त

लोग दयावान तिय सुन्दर सुजान मीठी बोलनि निदान नीर लगै न तहा कहू। वृषभ बिसाल ऊचे पुलकार वस्त्र विधि विविध प्रकारन है सूत के जहा कहू॥ सुकवि "गुपाल" ताते तरल तुरग मिलै, मधुर मतीर भूख लगत जहा कहू। पार नही लहू जिय सोचत ही रहू प्यारी पच्छिम दिसा के सुख बरनि कहा कहू॥

दोहा

मरत रैन दिन बारि बिन, भटकि भटकि नर नारि।
करिये नही पयान पिय, पश्चिम ओर निहारि॥

कबित्त

धूरिन के थल सावे ढोल के ढमक्के जल तरु बिन थल तहा सोभा नही यामे है। चावरऽरु गेहू रस गोरस न फूल फल मोठ बाजरी को खाय दिवस बितामे है॥ रहत मलीन धर्म कर्म करि हीन लोग पहरत पीन पट ऊनन के जामे है। सुकवि "गुपाल" कछु कहत न आवे जात जेते दुख होत सदा पश्चिम दिसा मे है॥

दोहा

हरिद्वार ते कै परसि, बद्रिनाथ केदार।
होत कृतारथ जीव यह, उत्तर खड मझार॥

कबित्त

लायची लवग दाख दाडिम बदाम सेव सालम अगूर पिस्ता खैये उठि भोर को। कस्तूरी केसरि जावित्री जायफल दालचीनी देवदारु की सुगधि चहुओर को॥ साल औ दुसाले धुस्मा नाना पसमीना ओढि देखत रहत आछि तियन की मोर को। कहत "गुपाल" प्यारी सुनिये निहोर मोपै कह्यो नहि जात सुख उत्तर की ओर को॥

दोहा

सदा सीत भयभीत नर , व्याघ्र सिंह वृष घोर ।
कीजै नही पयान पिय , उत्तर दिसि की ओर ।।

कबित्त

बिकट पहार झार घने सिंह स्यार निरबाह नही होत रथ वहल को जामे है । गिलटी रुगिल्लर अनेक रोग होत जहा चारिहु बरन जीव हिंसक हरामे है ।। सुकवि "गोपाल" सदा सीत भयभीत लोग बरफ के मारे दुरे रहत गुफा मे है । राह मे न गामे चल्यो जात न निसा में याते बहु दुख यामे जात उत्तर दिसा मे है ।।

दोहा

गाम इजारो छाडि के , खेती करिहौं बाम ।
सब जग जाके करे ते , खात पियत निज धाम ।।

कबित्त

साझहू सबेरे दही दूध के रहत सुख लीयो करै स्वाद ये रसाल नई नई को । नित प्रति रहै सातो पौंनि पै हुकुम सरकार मे रहत भलो बस्सा ठकुरई को ।। जीवै जग जाते जग जीव को कनूका मिलै मिलै भली बात यह काम मरदई को । कहत "गुपाल" बीस नह की कमाई यात सबहीते भला यह पेसा किसनई को ।।

दोहा

खेती करत किसान के , मोते दुख सुनि लेउ ।
हर लै कै पिय खेत मे , भूलि पाव मति देउ ।।

कबित्त

कारी होत देह सहे सीत घाम मेह नित रहै लेह देह सुख नही खान पान को । बरहे मे वास राखे ब्यौहरे की आस ईतिभीति ते उदास गिरि मान नय मान को ।। राजै देत पोता हर जोता सुख सोता नाहि खोता दिन योंही रहै लेसन सयान को । देह मे न चाम रहै हाथ मे न दाम याते कहत "गुपाल" काम कठिन किसान को ।।

# बेनी

बेनी नाम के दो तीन कवि होगये है। एक बेनी असनी के बन्दीजन थे। उनका समय स० १६९० कहा जाता है। वे दिल्लगी की कविताए बनाने मे बडे निपुण थे। दूसरे बेनी जि० रायबरेली मे बेती गाव के बन्दीजन थे। शिवसिह सरोज मे उनका समय स० १८४४ लिखा है। और तीसरे बेनी लखनऊ के वाजपेयी थे। उनका समय शिवसिह सरोज मे स० १८७६ लिखा है। तीसरे बेनी कविता मे अपना नाम "बेनी प्रबीन" रखते थे। दिल्लगी की कविताए प्राय सब असनीवाले बेनी की बनाई हुई है। पहले और दूसरे बेनी की बहुत सी कविताओ मे यह निर्णय करना कठिन है कि कौन किसकी बनाई हुई है। तीसरे बेनी की कविता "बेनी प्रबीन" के नाम से सहज मे ही पहचानी जा सकती है। यहा हम पहले और दूसरे बेनी की कुछ कविताए और नमूने के लिए एक कवित्त "बेनी प्रबीन" का भी उद्धृत करते है —

कारीगर कोऊ करामात कै बनाय लायो लीनी दाम थोरो जानि नई सुघरई है। रायजू को रायजू रजाई दई राजी ह्वै के सहर मे ठौर ठौर सोहरत भई है। बेनी कवि पाय के अघाय रहे घरी द्वैक कहत न बने कछु ऐसी मति ठई है। सास लेत उडिगो उपल्ला और भितल्ला सबै दिन द्वै के बातो हेत रूई रह गई है ॥ १ ॥

आध पाव तेल मे तयारी भई रोशनी की आध पाव रूई मे पोशाक भई बर की। आध पाव छाले के गिनौरा दियौ भाइन को मागि मागि लायो है पराई चीज घर की। आधी आधी जोरि बेनी कवि की बिदाई कीनी ब्याहि आयो जब त न बोले बात थिरकी। देखि देखि कागद तबीअत सुमादी भई सादी कहा भई बरबादी भई घर की ॥ २ ॥

सेर चार चाउर पसेरिक पिसान माड्यो तापै खरे डाटे कोउ साने बडी घानी ना। बहू को बुलाय मसलहत सिखाय कान पैठ जा रसोई कोऊ परसे बेगानी ना ॥ बेनी कवि कहै कहा आये आज यावे यहा देखि

सुनि परे कहू अन्न की निसानी ना। कीनी मेहमानी जुरयो पान औ न पानी बकैं आपैं बड़ो दानी कोऊ जानी कोऊ जानी ना ॥ ३ ॥

हावभाव विविध दिखावे भली भातिन सो मिलत न रतिदान जागे सग जामिनी। सुबरन भूषण सवारे ते विफल होत जाहिर किये ते हसे नर गजगामिनी ॥ रहे मन मारे लाजे लागत उघारे बात मन पछतात न कहत कहू भामिनी। बेनी कवि कहै बडे पापन ते होत दोउ सूम को सुकवि औ नपुसक को कामिनी ॥ ५ ॥

सभु नैन जाल औ फनी को फूतकार कहा जाके आगे महाकाल दौरत हरौलीते। सातो चिरजीवी पुनि मारकडे लोमस लो देख कम्पमान होत खोले जब झोलीते ॥ गरल अनल औ प्रलै को दावानल भल बेनी कवि छेदि लेत गिरत हथोलीते। वचन न पावे धनवन्तरि जो आवे हर गोविन्द बचावै हरगोविन्द की गोली ते ॥ ५ ॥

बार-बार लीखे लगी लाखन जुआ के जोट आखिन वरौनिन मे कीचर छपानो है। कानन कनोई नाक चपटी चुवत टरैं कारे कारे दतन में कीट लपटानो है ॥ मूड पै मकर जारो दौलत अधारो लगै ओढे मैलवारो फटो बसन पुरानो है। बोलत हा थूक के फुहारे चले फूहरि के पाद पाद पीसत पिसान हू उड़ानो है ॥ ६ ॥

गडि जात बाजी औ गयन्द गन अडि जात सुतुर अकडि जात मुसकिल गऊ की। दावन उठाय पाय धोखे जो धरत होत आप गरकाप रहि जात पाग मऊ की ॥ बेनी कवि कहै देखि थर थर कापे गात रथन के पथ न विपद बरदऊ की। बार बार कहत पुकार करतार तोसो मीच है कबूल पै न कीच लखनऊ की ॥ ७

चूक सी लगत चाखे लूक सो लगावै कठ ताप सरसावै है अपूरब अराम के। रस का न लेस चोपी रेसा हैं विसेस छाडि दीन्हे सब देस पकसाने परे घाम के ॥ बुरे वदसूरत बिलाने बदबोयदार बेनी कहै बकला बनाये मानो चाम के। कौडी के न काम के सु आये बिन दाम के है निपट निकाम है ये आम दयाराम के ॥ ८ ॥

चींटी की चलावै को मसा के मुख आय जाय सास की पवन लागे कोसन भगत है। ऐनक लगाय मरू मरू कै निहारे परै अनु परमानु की समानता खगत है। बेनी कवि कहै हाल कहा लौ बखान करौ मेरी जान ब्रह्म को बिचारिबो सुगत है। ऐसे आम दीन्हे दयाराम मन मोद करि जाके आगे सरसो सुमेरु सी लगत है॥ ९॥

बियन बिलोकत ही मुनि मन डोलि उठे बोलि उठे बरही बिनोद भरे बन बन। अकल बिकल ह्वै बिकाने रे पथिक जन ऊर्द्ध मुख चातक अधोमुख मराल गन॥ बेनी कवि कहत मही के महाभाग भये सुखद सयोगिन बियोगिन के ताप तन। कज-पुञ्ज गजन कृषीदल के रजन सो आये मानभजन ये अजन बरन धन॥ १०॥

करि की चुराई चाल सिंह को चुरायो लक शशि को चुरायो मुख नासा चोरी कीर की। पिक को चुरायो बैन मृग को चुरायो नैन दसन अनार हासी बीजरी गम्भीर की॥ कहै कवि बेनी बेनी व्याल को चुराइ लीनी रती-रती शोभा सब रति के शरीर की। अब तो कन्हैया जू को चितहू चुराइ लीन्ही छोरटी है गोरटी या चोरटी अहीर की॥ ११॥

ऊची चोली चिक्क मिसी दातन मे बातन मे बार बार हेरि हेरि मन मुसकाने है। मुख के न दरस परस मरदूमिन के लै रहै मुकुर और अतर अग साने है॥ बेनी कवि कहै आहिऊहि मे प्रवीन बडे निपट निकाम कहू काहू के न माने है। अजस के खाने जिन्हे कवि न बखाने जिन ऐसे धरे बाने ते जनाने सम जाने है॥ १२॥

पृथु नल जनक जजाति मानधाता ऐसे केते भये भूप यश छिति पर छाइगे। काल चक्र परे सक्र सैकरन होत जात कहा लौ गनावो विधि बासर बिताइगे॥ बेनी साज सम्पति समाज साज सेना कहा पायन पसारि हाथ खोले मुख बाइगे। छुद्र छितिपालन की गिनती गिनावै कौन रावन से बली तेऊ बुल्ला से बिलाइगे॥ १३॥

वेद मत सोधि सोधि देखि कै पुरान सबै सन्तन असन्तन को भेद को बतावतो। कपटी कपूत कूर कलि के कुचाली लोग कौन रामनाम हू

की चरचा चलावतो ।। वेनी कवि कहै मानो मानो रे प्रमान यही पाहन से हिये कौन प्रेम उमगावतो । भारी भवसागर में कैसे जीव होते पार जो पै रामायण न तुलसी बनावतो ।। १४ ।।

वदन सुधाकरै उघारत सुधाकरै प्रकास वसुधा करु सुधाकरै मुधा करै। चरन धरा धरै मृणालऊ धराधरै सू ऐसे अधराधरै ये विम्व अधराधरै ।। वैनी दृग हा करै निहारत कहा करै सु बेनी कविता करै त्रिवेनी समता करै । सुरत मे सी करै सु मोहनै बसी करै विरचिहु यसी करै सु सौतिन मर्मी करै ।। १५ ।।

मानव बनाये देव दानव बनाये यक्ष किन्नर बनाये पशु पक्षी नाग कारे हैं । दुरद बनाये लघु दीरघ बनाये केते सागर उजागर बनाये नदी नारे हैं । रचना सकल लोक लोकन बनाये ऐसी जुगुति मे वेनी परबीनन के प्यारे हैं । राधे को बनाय विधि धोयो हाथ जाम्यो रग ताको भयो चन्द्र कर भारे भये तारे हैं ।। १६ ।।

वाजी के सुपीठ पै चढायो पीठि आपनी दै कवि हरिनाथ को कछोहा मान सोदरै। चक्कवै दिल्ली के जे अथक्क अकवर सोऊ नरहरि पालकी को आपने कधा धरै ।। वेनी कवि देनी की (औ) न देनी की न मोको सोच नावै नैन नीचे लखि बीरन को कादरै । राजन को दीबो कविराजन को काज अब राजन को लाज कविराजन को आदरै ।। १७ ।।

## सुखदेव मिश्र

सुखदेव मिश्र कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इनका जन्म स० १६९० के लगभग माना जाता है। ये कम्पिला के रहने वाले थे, और उसी नगर मे इनका विवाह भी हुआ था । इनके वंशधर अब भी दौलतपुर, जिला रायवरेली मे वर्तमान है । स्वरचित वृत्तविचार नामक ग्रन्थ मे इन्होने अपने जन्मस्थान कम्पिला का और अपने पूर्वजो का विस्तृत वर्णन लिखा है ।

कुछ दिन तक कम्पिला मे विद्याध्ययन करने के वाद ये काशी चले

गये और वहाँ एक संन्यासी से साहित्य पढने लगे । वहा से सस्कृत और भाषा-साहित्य के पूर्ण विद्वान् होकर ये असोथर जिला फतेपुर के राजा भगवतराय खीची के यहा चले गये । वहा इनका बडा सम्मान हुआ । वहा कुछ दिन रहने के बाद ये क्रमश औरङ्गजेब के मन्त्री फाजिल अली, अमेठी के राजा हिम्मतसिंह, मुरारिमऊ के राजा देवीसिंह के यहा गये और सर्वत्र इन्होने पूरा सन्मान पाया । राजा देवीसिंह के कहने ही से ये कम्पिला छोडकर सकुटुम्ब दौलतपुर मे आगये ।

इन्होने निम्नलिखित ग्रथो की रचना की है—

वृत्त-विचार, छन्द-विचार, फाजिलअली-प्रकाश, रसार्णव, शृङ्गारलता, अध्यातम-प्रकाश, दशरथराय और नखशिख । वृत्त-विचार और छन्द-विचार पिङ्गल के ग्रथ है । मिश्र जी ने सस्कृत और प्राकृत मे भी कविताए रची थी, परन्तु अब उनका कही पता नही चलता ।

इनकी कुछ कविताये यहा उद्धृत की जाती है—

ननद निनारी सासु मायके सिधारी अहै रैनि अधियारी भरी सूझत न करु है । पीतम को गौन सुखदेव न सुहात भौन दारुन बहत पौन लाग्यो मेघ झरु है । सङ्ग ना सहेली, बैस नवल अकेली, तन परी तलबेली महा लायो मैन सरु है । भई अधरात, मेरो जियरा डेरात, जागु जागु रे बटोही इहा चोरन को डरु है ॥१॥

जोहै जहा मगु नन्दकुमार तहा चली चन्दमुखी सुकुमार है ।
मोतिन ही को कियो गहनो सब फूलि रही जनु कुन्द की डार है ॥
भीतर ही जु लखी सु लखी अब बाहर जाहिर होत न दार है ।
जोन्हसी जोन्है गईमिलि यो मिलिजात ज्यो दूधमे दूधकी धार है॥२॥

यो कछु कीन्ही अचानक चोट जु ओट सखीन सकी कै दुकूल है ।
देह कपै मुँह पीरी परी सो कह्यो नहिं जो ह्वै गयो हिय सूल है ॥
माझ उरोज मे आनि लग्यो अगिरात जही उचक्यो भुजमूल है ।
कौन है ख्याल ? खेलार अनोखे! निसक ह्वै ऐसे चलैयत फूल है ॥३॥

मीन की बिछुरता कठोरताई कच्छप की हिये बाय करिबे को कोल

ते उदार हैं। बिरह बिदारिबे का बली नरसिंह जू सो बामन सो छली बलिदाऊ अनुदार हैं ॥ द्विज सो अजीत बनवीर बलदेव ही सो राम सो दयाल सुखदेव या विचार है। मौनता मे बौध कामकला मे कलकी चाल प्यारी के उरोज ओज दसौ अवतार हैं ॥४॥

मन्दर महिन्द गधमादन हिमालय मे जिन्हे चल जानिये अचल अनुमाने ते। भारे कजरारे तैसे दीरघ दतारे मेघ मडल बिहुडें जेवे शुण्डा दड ताने ते ॥ कीरति विशाल छितिपाल श्री अनूप तेरे दान जो अमान का ँ वनत बखाने ते। इतै कवि मुख जस आखर खुलत उतै पाखर समेत पील खुलै पीलखाने ते ॥५॥

## सबलसिंह चौहान

सबलसिंह चौहान का जन्म सवत् १७०० के लगभग और मरण सवत् १७६२ के लगभग अनुमान किया जाता है । शिवसिंह ने इनको "इटावा के किसी गाव का जमीदार" लिखा है। इन्होने महाभारत के अठारहो पर्वो की कथा दोहे चौपाई मे लिखी है। कई पर्वो मे इन्होने उनके रचे जाने का सवत् भी दिया है। भीष्म पर्व स० १७१८ में, स्वर्गारोहण १७८१ मे रचा गया। इससे मालूम होता है कि सारा महाभारत इन्होने ६५ वर्षों में समाप्त किया होगा । इन्होने लगातार परिश्रम नही किया होगा, जब जी मे कुछ उमङ्ग उठी, तब कुछ लिख डाला। भाषा महाभारत के सिवा इनका लिखा हुआ रूपविलास पिङ्गल, षटऋतु बरवे और भाषा ऋतुपसहार भी कहे जाते हैं। महाभारत में इन्होने युद्धो का वर्णन बडा रोचक किया है। महाभारत में चक्रव्यूह युद्ध मे अभिमन्यु के अन्तिम प्रयास की कथा का वर्णन सुनिये, ये कैसा करते है --

अभिमनु घेरे आय सब , मारत अस्त्र अनेक ।
जिमि मृगगण के यूथ मह , डरत न केहरि एक ॥

लैके सूल कियो परिहारा। वीर अनेक खेत मह मारा ॥
जूझी अनी भभरि कै भागे। हसिके द्रोण कहन अस लागे ॥

धन्य धन्य अभिमनु गुनआगर । सब क्षत्रिन मह बडो उजागर ॥
धन्य सहोद्रा जग मे जाई । ऐसे वीर जठर जनमाई ॥
धन्य धन्य जग मे पितु पारथ । अभिमनु धन्य धन्य पुरुषारथ ॥
एक वीर लाखन दल मारे । अरु अनेक राजा सहारे ॥
धनु काटे शङ्का नहिं मन मे । रुधिर प्रवाह चलत सब तन मे ॥
यहि अन्तर बोले कुरुराजा । धनुष नाहिं भाजत केहि काजा ॥
एक वीर को सबै डरत है । घेरि क्यो न रथ धाय धरत है ॥
बालक देखु करि यह करणी । सेना जूझि परी सब धरणी ॥

दुर्योधन या विधि कह्यो , कर्ण द्रोण सो बैन ।
बालक सब सेना बधी , तुम सब देखत नैन ॥

यह कहि कै दुर्योधन आये । शब्द वीर आगे ह्वै धाये ॥
क्षत्री घेरो अभिमनु रन मे । मानहु रवि आच्छादित घन मे ॥
लै के खड्ग फरी गहि हाथा । काट्यो बहु क्षत्रिन को माथा ॥
अभिमनु धाइ खड्ग परिहारे । सम्मुख ज्यहि पावै त्यहि मारे ॥
भूरिश्रवा वाज दश छाटे । कुवर हाथ को खड्गहि काटे ॥
तीन बाण सारथि उर मारे । आठ बाण ते अश्व सहारे ॥
सारथि जूझि गिरे मैदाना । अभिमनु वीर चित्त अनुमाना ॥
यहि अन्तर सेना सब धाये । मारु मारु कै मारन आये ॥
रथ को खैंच कुवर कर लीन्हे । ताते मारु भयानक कीन्हे ॥
अभिमनु कोपि खम्भ परिहारे । यक यक घाव वीर सब मारे ॥

अर्जुनसुत इमि मारु किय , महावीर परचड ।
रूप भयानक देखियतु , जिमि जम लीन्हे दण्ड ॥

क्रोधित होइ चहू दिशि धाये । मारि सबै सेना विचलाये ॥
यहि विधि किये भयानक भारत । साहस धन्य धन्य पुरुषारथ ॥
ऐसी मारु खम्भ सो कीन्हे । दश सहस्र राजा वध लीन्हे ॥
मारि सबै राजा विचलाये । कर लै गदा कुरुपति धाये ॥
शत बान्धव नृप सगहि आये । अरु अनेक राजा मिलि धाये ॥

चहु दिशि महारथी सब घेरे । क्षत्री सवै वीर बहुतेरे ॥
नाना अस्त्र सबहि परिहारे । निकट न जाहि दूरि ते मारे ॥
दुर्योधन कह देखन पाये । गहे खम्भ अभिमनु तब धाये ॥
जुरे वीर क्षत्री बहुतेरे । खम्भ घाव ते बधेउ घनेरे ॥
जब नरेस के निकटहिं आये । द्रोण गुरू दश बाण चलाये ॥
गुरू द्रोण अति क्रोध कै, मारे बाण अचूक ।
कुवर हाथ को खम्भ तब, काटि कियो दो टूक ॥
खम्भ कटे अभिमनु भे कैसे । मणि विनु फणिक विकल जग जैसे ॥
क्रोधित भये सहोद्रानन्दन । चरण घात कै तोरेउ स्यन्दन ॥
रथते कूदि कुवर कर लीन्हे । चका उठाय रणहि शुभ कीन्हे ॥
चका कुवर कर शोभित कैसे । हरि कर चक्र सुदर्शन जैसे ॥
रुधिर प्रवाह चलत सब अङ्गा । महा शूर मन नेकु न भङ्गा ॥
गहि कै चका चहू दिशि धावै । जेहि पावै तेहि मारि गिरावै ॥
दुर्योधन पर चका चलाये । गमा रोपि कुरुनाथ बचाये ॥
क्षत्री घेरि लगे शर मारन । जुरे आइ केते हथियारन ॥
दुस्सासनसुत गदा प्रहारे । अभिमनु के शिर ऊपर मारे ॥
जूझे कुअर परे तब धरनी । जग मह रही सदा यह करणी ॥
धन्य धन्य सब कोउ कहै, कुअर रहो मैदान ।
पै गुरु द्रोण मलीन मुख, कहे बचन परिमान ॥

## कालिदास त्रिवेदी

कालिदास त्रिवेदी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इनका जन्म अनुमान से सं० १७१० के लगभग बनपुरा गाव (जिला कानपुर) में हुआ । इनकी पुस्तको से इनके जन्म का कुछ पता नही चलता । इनके पुत्र कवीन्द्र और पौत्र दूलह भी बडे प्रसिद्ध कवि हुये । कालिदास औरगजेब के दल में किसी राजा के साथ स० १७४५ की बीजापुर-गोलकुण्डा वाली लड़ाई मे गये थे । इनके लिखे हुए केवल तीन ग्रन्थो का अभी तक पता चला

है—बधू-विनोद, कालिदास-हजारा, जजीरा। बधू विनोद नायिका-भेद का ग्रन्थ हैं। हजारा मे हिन्दी के पुराने २१२ कवियो के एक हजार छन्द संग्रह किये गये है। जजीरा मे ३२ घनाक्षरी छद बडे अद्भुत है। इनके रचे हुए राधा माधव बुधमिलन विनोद नामक एक और ग्रन्थ का भी नाम सुना जाता है।

इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे लिखे जाते है—

गढन गढी से गढि महल मढी से मढि बीजापुर ओप्यो दलि मलि सुघराई मे। "कालिदास" कोप्यो वीर औलिया अलमगीर तीर तरवारि गह्यो पुहुमी पराई मे॥ बूद ते निकसि महिमडल घमड मची लोहू की लहरि हिमगिरि की तराई मे। गाडि कै सु झडा आड कीन्ही बादशाहत ताते डकरी चमुण्डा गोलकुण्डा की लडाई मे॥ १॥

चूमो कर कज मजु अमल अनूप तेरो रूप के निधान कान्ह मो तन निहारि दे। कालिदास कहै मेरे पास हरि हेरि हरि माथे धरि मुकुट लकुट कर डारि दे॥ कुवर कन्हैया मुख चन्द की जुन्हैया चारु लोचन चकोरन की प्यासन निवारिदे। मेरे कर मेहदी लगी है नदलाल प्यारे लट उरझी है नकबेसर सभारि दे॥ २॥

प्रथम समागम के औसर नवेली बाल सकल कलानि पिय प्यारे को रिझायो है। देखि चतुराई मन सोच भयो प्रीतम के लखि परनारि मन सभ्रम भुलायो है। कालिदास ताही समै निपट प्रवीन तिया काजर लै भीतिहू मे चित्रक बनायो है। व्यात लिखी सिंहिनी निकट गजराज लिख्यो योनि ते निकसि छौना मस्तक पै आयो है॥ ३॥

## आलम और शेख

ठाकुर शिवसिंह ने आलम को सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है, और इनका जन्म स० १७१२ बतलाया है। ये औरगजेब के समय मे थे, और औरगजेब के पुत्र शाहजादा मुअज्जम के पास रहा करते थे। एक बार आलम ने शेख नामक रगरेजिन को अपनी पगडी रगने को दी। भूल

से एक कागज का टुकडा, जिसमे आलम ने आधा दोहा लिखकर फिर किसी समय उसे पूरा करने के लिए बाध दिया था, वधा ही रह गया। पगडी धोते समय शेख ने उस कागज के टुकडे को खोल कर पढा। उसमें यह लिखा था—

"कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।"

शेख ने उसके नीचे "कटि को कचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन" लिखकर, पगडी धोकर उसी मे बाध दिया। जब आलम को वह पगडी मिली और उन्होन दोहे की पूर्ति हुई देखी, तब उसी समय वे शेख के घर गये, और उन्होने उसे एक आना पगडी की रगाई और एक हजार रुपये दोहे की पूर्ति कराई दी। उसी दिन से दोनो मे प्रेम हो गया। यहा तक कि आलम न मुसलमानी मत ग्रहण करके शेख से विवाह कर लिया। आलम और शेख दोनो की कविताए प्रेम के चमत्कार से पूर्ण हैं। शेख के गर्भ से आलम के एक पुत्र भी था, जिसका नाम जहान था। एक दिन मुअज्जम ने हसी मे शेख से पूछा—"क्या आलम की औरत आपही है?" शेख ने तुरन्त उत्तर दिया—हा, "जहापनाह, जहान की मा मैं ही हू"। मुअज्जम इससे बहुत लज्जित हुआ।

कोई-कोई ऊपर के दोहे के स्थान पर शेख द्वारा नीचे लिखे कवित्त के चतुर्थ चरण की पूर्ति होनी बतलाते है। तीन चरण आलम ने बनाये थे, चौथे चरण की पूर्ति शेख ने की—

प्रेम रग पगे जगमगे जगे जामिनि के जोबन की जोति जगि जोर उमगत है। मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत हैं झूमत है झुकि झुकि झपि उघरत हैं।॥ आलम सो नवल निकाई इन नैननि की पाखुरी पदुम पै भवर थिरकत हैं। चाहत हैं उडिबे को देखत मयङ्कमुख जानत है रैनि ताते ताहि मे रहत है॥

पडित नकछेदी तिवारी ने इसी घटना-सम्बन्धी एक और ही कवित्त लिखा है। वह यह है—

घट जमानिका है कारे कारे केश निशि खुटिला जराय जरे दीपक

उजारी है। बाजत मधुर मृदबानी सो मृदङ्ग धुनि नैना नटनागर लकुट लट धारी है ।। आलम सुकवि कहै रति विपरीत समै श्रम बिन्दु अजुलि पुहुप भरि डारी है। अधर सु रङ्गभूमि नृपति अनग आगे नृत्य करै वसर की मोती नृत्यकारी है ।।

इनमे से चाहे जिस छन्द की पूर्ति पर आलम रीझे हो, परन्तु इसमे सदेह नही कि दोनो बडे प्रेमी जीव थे। इन दोनो प्रेमियो की जितनी कविताए मिलती है, सब मे बडा चमत्कार है। शेख के कवित्तो म श्री कृष्णचद्र के प्रति उसकी बडी भक्ति झलकती है। आलम और शेख की कविताओ का एक सग्रह "आलमकेति" नाम से प्रकाशित हुआ है। इसके सिवा माधवानल-कामकदला नामक ग्रथ भी इन्ही का रचा हुआ कहा जाता है। इधर उधर पुस्तको मे कुछ फुटकर छन्द भी मिलते है। पाठको के विनोदार्थ कुछ छन्द हम नीचे प्रकाशित करते है—

रति रन विषे जे रहे है पति सनमुख तिन्है बकसीस बकसी है मै बिहसि कै। करन को ककन उरोजन को चन्द्रहार कटि माहि किकिनी रही है अति लसि कै ।। "शेख" कहै आदर सो आनन को दीन्हो पान नैनन मे काजर बिराजै मन बसि कै। एरे बैरी बार ये रहे है पीठि पाछे ताते बार बार बाधति हौ बार-बार कसि कै ।।१।।

कैधो मोर सोर तजि गये री अनत भाजि कैधो उत दादुर न बोलत है ये दई। कैधो पिक चातक बधिक काहू मारि डारे कैधो बक पाति उत अतगति ह्वै गई ।। "आलम" कहत आली अजहू न आये कत कैधो उत रीति विपरीति विधि ने ठई। मदन महीप की दोहाई फिरिबे ते रही जूझि गये मेघ कैधो बीजुरी सती भई ।।२।।

जा थल कीन्हे बिहार अनेकन ता थल काकरी बैठि चुन्यो करै।
जा रसना सो करी बहु बातन ता रसना सो चरित्र गुन्यो करै ।।
आलम जौन से कुजन मे करी केलि तहा अब सीस धुन्यो करै।
नैनन मे जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करै ।।३।।

चद को चकोर देखै निसि दिन को न लेखै, चद बिन दिन छवि

लागत अध्यारी है । "आलम" कहत आली अलि फूल हेत चलै, काटे सी कटीली वेलि ऐसी प्रीति प्यारी है ।। कारो कान्ह कहत गवारी ऐसी लागति है, मोहि वाकी स्यामताई लागत उज्यारी है । मन की अटक तहा रूप को बिचार कहा, रीझिबे को पैडो तहा बूझि कछु न्यारी है ।।४

पैडो सम सूधो बैडो कठिन किवार द्वार द्वारपाल नही तहा सबल भगति है । "शेख" भनि तहा मेरे त्रिभुवन राय है जू दीनबधु स्वामी सुरपतिन को पति है ।। बैरी को न बैर बरियाई को न परवेस हीने का हटक नाही छीने को सकति है । हाथी की हकार पल पाछे पहुँचन पावै चीटा की चिघार पहले ही पहुचति है ।। ५ ।।

## लाल

लाल का पूरा नाम गोरेलाल पुरोहित था । भूषण की तरह ये भी बडे वीर-कवि थे । इनका जन्म स० १७१४ के लगभग माना जाता है । ये महाराजा छत्रसाल के दरबार मे रहा करते थे । बुन्देलखड मे प्रसिद्ध है कि महाराजा छत्रसाल के साथ किसी लडाई मे गये थे, और वही लड कर मारे गये । इन्होने छत्रप्रकाश, विष्णुविलास और राजविनोद नामक तीन ग्रथ रचे । "छत्रप्रकाश" मे दोहा चौपाइयो मे महाराज छत्रसाल की जीवनी बडी हा उत्तमता से लिखी गई है । यह पुस्तक काशी ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित हुई है । महाराज छत्रसाल शिवाजी महाराज के समय मे बुन्देलखण्ड मे हुए थे । ये एक साधारण स्थिति से बढते-बढते बुन्देलखण्ड के राजा हो गये । इन्होने पाच सवार और २५ पयादो को लेकर औरगजेब ऐसे कट्टर बादशाह का सामना किया और अपने साहस के बल पर यवनो का बुन्देलखण्ड से पैर उखाड दिया । लाल की कविता के कुछ नमूने देखिये—

दान दया घमसान में , जाके हिये उछाह ।
सोई वीर बखानिये , ज्यो छत्ता छितिनाह ।।

जिन मे छिति छत्री छवि जाये । चारिहु युगन होत जे आये ।।

भूमि भार भुज दडिन थम्भे । पूरन करे जु काज अरम्भे ॥
गाय वेद द्विज के रखवारे । जुद्ध जीति जे देत नगारे ॥
छत्रिन की यह वृत बनाई । सदा जग की खाय कमाई ॥
गाय वेद विप्रन प्रतिपाले । घाउ ऐडधारिन पर घाले ॥
उद्यम ते सपति घर आवै । उद्यम करै सपूत कहावै ॥
उद्यम करै सग सब लागै । उद्यम ते जग मे जस जागै ॥
समुद उतरि उद्यम ते जैये । उद्यम ते परमेश्वर पैय ॥
जब यह सृष्टि प्रथम उपजाई । जग वृति क्षत्रिन तब पाई ॥
यह ससार कठिन रे भाई । सवल उमडि निर्बल को खाई ॥
छत्रिक राजसपति के काजै । बधुन मारत बधु न लाजै ॥
कछू कालगति जानि न जाई । सब मे कठिन कालगति भाई ॥
सदा प्रवृद्धि वृद्धि है जाकी । तासो कैसे चले कजाकी ॥
साहस तजि उर आलस माडै । भाग भरोसे उद्यम छाडै ॥
ताहि तजै जग सपति ऐमे । तरुनी तजै वृद्धपति जैसे ॥
बिपति माह हिम्मत ठिक ठाने । बढती भये छिमा उर आने ॥
वचन सुदेस सभनि मे भाखै । सुजस जोरिव मे रुचि राखै ॥
जुद्धनि जुरे अकेले जैसे । सहज सुभाय बडेन के ऐसे ॥
जाकी धरम रीति जग गावै । जो प्रसिद्ध बलवन्त कहावै ॥
जाहि जोट भैयन की भावै । करत अनारवीन बनि आव ॥
लै अवतार बडे कुल आवै । जद्ध न जुरै जगत जस गावै ॥
सत्य बचन जाके ठिक ठाये । प्रीति जोग ये सात गनाये ॥

## गुरु गोविन्दसिंह

गुरु गोविन्दसिंह सिक्खो के दसवें गुरु थे। इनका जन्म स० १७२३ जेष्ठ शुक्ला सप्तमी, शनिवार को अर्द्धरात्रि के समय पटना नगर मे हुआ। इनके पिता का नाम गुरु तेगबहादुर और माता का गूजरी जी था। इनका विवाह सात ही वर्ष की अवस्था में लाहौर निवासी हरियश खत्री की कन्या से हुआ।

किसी समय गुरु गोविन्दसिंह हिन्दू जाति की ढाल हुए थे। इन्होने पंजाब में, हिन्दू जाति और धर्म की रक्षा के लिये एक वीर जाति ही उत्पन्न करदी। विद्वानो का ये बडा आदर करते थे। स्वयं भी बडे मेधावी, देशकालज्ञ और रणनिपुण थे। भादो वदी ४ स० १७६४ की आधी रात मे सोते समय अताउल्ला और गूलखा नामक दो सगे भाई पठानो ने गोदावरी नदी के किनारे अविचल नामक नगर मे इनके पेट में कटार भोंक दी। क्योकि उन पठानो के पिता को गुरु ने युद्ध मे मार डाला था। गुरु साहब चीखकर जाग उठे, और उन्होने उसी समय तलवार उठाकर लपककर ऐसा हाथ मारा कि खा के दो टुकड़े हो गये। घाव से अधिक रक्त निकलने के कारण वही इनके भी प्राण गये।

गुरु गोविन्दसिंह संस्कृत और फारसी के विद्वान् और हिन्दी के कवि थे। इन्होने जाप, सुनीतिप्रकाश, ज्ञानप्रबोध, प्रेम, सुमार्ग, बुद्धि सागर, विचित्र नाटक और ग्रंथ साहब के कुछ अंश की रचना की। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है—

निरजुर निरूप हो कि सुन्दर सरूप हो कि भूपन से भूप हो कि दाता महा दान हो। प्रान के बचैया दूध पूत के दिवैया रोग सोग के मिटैया किधौ मानी महामान हो॥ विद्या के विचार हो कि अद्वैत अवतार हो कि सिद्धता का सूर्त हो कि सिद्धता की सान हो। जोवन के जाल हो कि कालहू के गाल हो कि सत्रुन के सूल हो कि मित्रन के प्रान हो॥१॥

खूक मलहारी गज गदह विभूति धारी गिदुआ मसान वास करचोई करत हैं। घूघू मठ वासी लगे डोलत उदासी मृग तरवर सदीव मोन साधेई मरत है॥ विन्दु के सिधैया ताहि ताज की बढैया देत बन्दरा सदीव पाय नागे ही फिरत है। अगना अधीन काम क्रोध मे प्रवीन एक ज्ञान के विहीन छीन कैसे के तरत है॥२॥

धन्य जियो तिह को जग मुख तें हरि चित्त मे युद्ध विचारे।
देह अनित्त न नित्त रहै जसु नाव चढे भवसागर तारे॥

धीरज धाम बनाइ इहै तन बुद्धि सु दीपक ज्यो उजियारै ।
ज्ञानहि की बढनी मनो हाथ लै कायरता कनवार बुहारै ॥३॥
का भयो जो सबही जग जीत सु लोगन को बहु त्रास दिखायो ।
और कहा जु पै देश विदेसन माहि भले गज गाहि बधायो ॥
जो मन जीतत है सब देस वहै तुमरे नृप हाथ न आयो ।
लाज गई कछु काज सर्यो नहि लोक गयो परलोक गमायो ॥४॥

## घनआनन्द

घनआनन्द जाति के कायस्थ और निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव थे । दिल्ली मे रहते थे और मुहम्मदशाह के मुशी थे । गानविद्या और काव्य-रचना मे बडे प्रवीण थे , स० १७९६ मे जब नादिरशाह ने मथुरा को लूटा, ये उसी समय मारे गये । इनका जन्म स० १७४६ के लगभग माना जाता है । ये नागरीदासजी के समकालीन थे । वृन्दावन मे दोनो का सत्सग हुआ करता था ।

श्रीकृष्णचन्द्र मे इनका सच्चा प्रेम था ।

मीरमुशी की हालत मे घनआनन्दजो सुजान नाम की एक वेश्या पर आसक्त थे । एक दिन बादशाह ने इन्हे ध्रुपद गाने को कहा । इन्होने इन्कार कर दिया, पर सुजान के कहने से भरे दरबार मे गा दिया । गाते समय पीठ बादशाह की तरफ और मुह सुजान की तरफ कर लिया था । गाने से बादशाह खुश तो बहुत हुआ, पर बेअदबी माफ न कर सका । उसने घनआनन्द को दिल्लीसे निकाल दिया । चलते समय इन्होने सुजान से साथ चलने को कहा । उसने अस्वीकार किया । ये उसके विरह मे व्याकुल वृन्दावन पहुचे, वहा राधाकृष्ण के रग मे रग गये । इनके प्राय सभी छन्दो मे सुजान शब्द आया है । इनके सवैये छन्द बडे ही मनोहर हैं । इनके रचे हुए ग्रन्थो के नाम ये हैं – सुजानसागर, घनानन्द कवित्त, रस-केलिवल्ली, कृपाकाण्ड निबन्ध, कोकसार विरहलीला । इनकी कविता मे प्रेम और विरह का वर्णन बडा मनोहर हुआ है । भक्तिरस की कविता

भी इन्होने अच्छी की है। इनकी कुछ कविताओ का सग्रह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "सुजान-शतक" नाम से किया है। उसमे सौ से अधिक सवैया, कवित्त, छप्पय और दोहे है।

यहा इनकी कविता के कुछ नमूने दिये जाते है—

( १ )

पहिले अपनाय सुजान सनेह सो क्यो फिर नेह को तोरियै जू।
निरधार आधार दै धार मझार दई गहि बाह न बोरियै जू॥
घनआनद आपने चातक को गुन बाधि कै मोह न छोरियै जू।
रस प्याय कै ज्याय बढाय कै आस बिसास मे क्यो विष घोरियै जू॥

( २ )

अति सूधो सनेह को मारग है जहा नेको सयानप बाक नही।
तहा साचे चलै तजि आपनपौ झिझकै कपटी जो निसाक नही॥
घनआनद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तै दूसरो आक नही।
तुम कौन धौ पाटी पढे हौ लला मन लेहु पै देहु छटाक नही॥

( ३ )

पर कारज देह को धारे फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा समान करौ सब ही विधि सज्जनता सरसौ॥
घनआनद जीवन दायक हौ कछू मोरियौ पीर हिये परसौ।
कबहू वा बिसासी सुजान के आगन मो असुवान को लै बरसौ॥

( ४ )

तब तो दुरि दूरहि ते मुसकाय बचाय कै और की दीठि हसे।
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी रचाय कै नैनन मे सरसे॥
अब तो उर माहि बसाय कै मारत एजू बिसासी कहा धौ बसे।
कछु नेह निबाहन जानत है तो सनेह की धार में काहे धसे॥

( ५ )

हमसौ हित्त कै कित कौ नित ही चित बीच बियोगहि पोइ चले।
सु अखैबट बीज लौ फैलि परचो बनमाली कहा धौ समोइ चले॥

घनआनंद छाह बितान तन्यो हमै ताप के आतप खोइ चले।
कबहू तेहि मूल तौ बैठिये आइ सुजान जो बीजहि बोइ चले॥

( ६ )

गुरनि बतायो राधामोहन हू गायो सदा सुखद सुहायो बृन्दावन गाढे गहुरे। अद्भुत अभूत महि मडन परे तो परे जीवन को लाहु हाहा क्यो न ताहि लहुरे॥ आनद को घन छायो रहत निरन्तर ही सरस सुदेय सो पपीहा पन बहुरे। जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी पावन पुलिन पै पतित परि रहुरे॥

## देव

देव बडे प्रेमी कवि थे। इनका जन्म स० १७३० वि० मे इटावे मे हुआ। ये सनाढच ब्राह्मण थे। ये ७२ ग्रथो के रचयिता कहे जाते है। हिन्दी के पुराने कवियो मे इतनी अधिक सख्या मे ग्रथ किसी ने नही रचे। अबतक इनके रचे हुए निम्नलिखित ग्रथो का पता लगा है—

( १ ) भाव विलास, ( २ ) अष्टयाम, ( ३ ) भवानी विलास, (४) सुन्दरी सिन्दूर, (५) सुजान विनोद, (६) प्रेम तरङ्ग, (७) राग रत्नाकर, (८) कुशल विलास, (९) देव चरित्र, (१०) प्रेम चन्द्रिका (११) जाति विलास, (१२) रसविलास, (१३) काव्य रसायन, (१४) सुखसागर तरङ्ग, (१५) देव माया प्रपच (नाटक) (१६) वृक्ष विलास, (१७) पावस विलास, (१८) ब्रह्मदर्शन पचीसी, (१९) तत्व दर्शन पचीसी, (२०) आत्मदर्शन पचीसी, (२१) जगदशन पचीसी, (२२) रसानन्द लहरी, (२३) प्रेम दीपिका, (२४) सुमिल विनोद, (२५) राधिका विलास, (२६) नीति शतक, (२७) नखशिख।

इनके ग्रन्थ प्राय सब शृङ्गार रस पर है। इनकी भाषा विशुद्ध ब्रज-भाषा है। इनकी रचना मे प्रसाद, माधुर्य, अर्थव्यक्तता और ओज आदि गुणो का अच्छा चमत्कार देखने मे आता है। इनकी कविता मे कही-कही बहुत गूढ-बारीक भाव ऐसे मिलते है जो पढते ही समझ मे न आने से कुछ रूखे से जान पडते है। परन्तु कुछ विचार करने से उनमे मनोहर

रहस्य भरा हुआ मिलता है। उर्दू कवियो मे गालिब की कविता मे भी ऐसी ही विलक्षणता पाई जाती है। देव का अपनी भाषा पर पूरा अधिकार दिखाई पडता है।

देव की कविता से ऐसा बोध होता है कि इन्होने सारे भारतवर्ष की यात्रा की थी। क्योकि इनकी कविता मे भारत की प्रत्येक जाति की—प्रत्येक प्रान्त की स्त्रियो का विलास वर्णित है, जो प्रत्यक्ष देखे बिना नही हो सकता।

इन्होने स० १७४६ के लगभग औरगजेब के बडे पुत्र आजमशाह को भाव विलास और अष्टयाम सुनाया था। आजमशाह ने इन ग्रन्थो की प्रशसा भी की थी। फिर ये क्रमश भवानीदत्त वैश्य, कुशलसिह (फफूद इटावा निवासी) राजा उद्योतसिह, राजा भोगीलाल, पिहानी के अकबरअली खा आदि के आश्रय मे रहे। परन्तु किसी आश्रयदाता ने इनका यथोचित सम्मान नही किया। मेरी राय मे आश्रयदाताओ से सम्मान न पाने के कारण इनकी कविता का जटिल होना ही है।

देव बडे विलासी और रसिक थे। शोभा और शृगार के बडे चाहक थे। इसमें सन्देह नही कि इनकी प्रतिभा ऊचे दरजे की थी, परन्तु खद है कि सिवा प्यारी और प्यारे के हाव भाव, कटाक्ष, सयोग, वियोग, हास-परिहास वर्णन के लोक-हित-साधन की चर्चा ये बहुत कम कर सके। इसी कारण से इनकी पुस्तको का आदर और प्रचार भी हिन्दू समाज मे कम हुआ। जीवन के अन्त समय मे इन्होने वैराग्य पर भी कुछ कविताए लिखी। परन्तु वे इन्द्रिय-शैथिल्य के कारण लिखी गई जान पडती है, समाज-हित की स्वाभाविक कामना से नही। देव की जीवनी का निचोड हमे यही जान पडता है कि ये विषयी और शृगारी कवि थे, परन्तु थे सूक्ष्मदर्शी। इनको गाने-बजाने का भी बडा शौक था। इनका मरणकाल स० १८०२ के लगभग अनुमान किया जाता है। नमूने के तौर पर इनके कुछ छन्द यहा लिखे जाते है—

कुल की सी करनी कुलीन की सी कोमलता सील की सी सपति

सुसील कुल कामिनी । दान को सो आदर उदारताई सूर की सी, गुन की लुनाई गज गति गजगामिनी ।। ग्रीषम को सलिल सिसिर कैसो घाम "देव" हेमत हसत जलदागम की दामिनी । पूनो को सो चन्द्रमा प्रभात को सो सूरज सरद को सो बासुर बसन्त की सी जामिनी ।। १ ।।

सूरजमुखी सो चन्द्रमुखी को विराजै मुख कदकली दन्त नासा किंशुक सुधारी सी । मधुप से लोयन मधूक दल ऐसे ओठ श्रीफल से कुच कच बेलि तिमिरारी सी ।। मोती वेल कैसे फूली मोतिन मे भूषण सुचीर गुल-चादनी सो चपक की डारी सी । केलि के महल फूलि रही फुलवारी "देव" ताही मे उज्यारी प्यारी भूली फुलवारी सी ।। ४ ।।

डार द्रुम पालन विछौना नव पल्लव के सुमन झगूला सोहे तन छवि भारी दै । पवन झुलावै केकी कीर बतरावे "देव" कोकिल हलामे हुल-सावै करतारी दै ।। पूरति पराग सो उतारा करै राई नोन कज कली नायिका लतानि सिर सारी दै । मदन महीप जू को बालक बसन्त ताहि प्रात हिये लावत गुलाव चटकारी दै ।। ३ ।।

नीलपट तन पर घन से घुमाय राखौ दन्तन की चमक छटा सी बिचरित हौ । हीरन की किरन लगाइ राखौ जुगुनू सी कोकिला पपीहा पिक बानी सो भरति हौ ।। कीच असुवान के मचाय कवि "देव" कहै बालम बिदेश को पधारिवो हरति हौं । इन्द्र कैसो धनु साज वेसर कसत आज रहुरे वसन्त तोहि पावस करति हौ ।। ४ ।।

आवन सुनो है मनभावन को भावती ने आखिन अनन्द आसू ढरकि ढरकि उठै । "देव" दृग दोउ दौरि जात द्वार देहरी लो केहरी सी सासै खरी खरकि खरकि उठै ।। टहलै करति टहलै न हाथ पाय रगमहलै निहारि तनी तरकि तरकि उठै ।सरकि सरकि सारी दरकि दरकि आगी औचक उच्चै है कुच फरकि फरकि उठै ।। ५ ।।

प्रेम चरचा है अरचा है कुल नेमन रचा है चित और अरचा है चित चारी को । छोड्यो परलोक नरलोक वरलोक कहा हरख न सोक ना अलोक नरनारी को ।। घाम मित मेंह न विचारै सुख देहहु को प्रीति ना

सनेह उरु बन ना अध्यारी को । भूलेहु न भोग बडी विपति वियोग व्यथा जाग हू ते कठिन सयोग परनारी को ।। ६ ।।

दुहू मुख चद और चितवे चकोर दोऊ चितै चितै चौगुनो चितैबो ललचात है । हासनि हसत बिन हासी विहसत मिले गातनि सो गात बात बातनि मे वात है ।। प्यारे तन प्यारी पेखि पेखि प्यारी पिय तन पियत न खात नेकहू न अनखात है । देखि ना थकत देखि देखि ना सकत 'देव" देखिबे की घात देखि देखि न अघात है ।। ७ ।।

बरुनी बघम्बर मे गूदरी पलक दोऊ कोये राते बसन भगोहे भेख रखिया । बूडी जलही मे दिन जामिनी रहति भौहे धूम शिर छायो बिरहानल बिलखिया ।। आसू ज्यो फटिक माल लाल डोरे सेल्ही सजि भई है अकेली तजि चेली सग सखिया । दीजिये दरस "देव" लीजिये सजोगिन कै जोगिन ह्वै बैठी वा बियोगिन की अखिया ।। ८ ।।

सखी के सकोच गुरु सोच मृगलोचनि रिसानी पियसो जु उन नेकु हसि छुयो गात । देव वै सुभाय मुसुकाय उठि गये यहि सिसिक सिसिक निसि खोई रोय पायो प्रात ।। को जानै री बीर बिनु बिरही बिरह बिथा हाय हाय करि पछिताय न कछू सोहात । बडे बडे नैनन सो आसू भरि भरि ढरि गोरो गोरो मुख आजु ओरो सो बिलानो जात ।। ९ ।।

कोई कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ कोई कहौ रंकिनी कलकिनी कुनारी हौ । कैसो नर लोक परलोक बर लोकनि मे लीन्ही मै अलोक लोक लोकनि ते न्यारी हौ ।। तन जाउ, मन जाउ, "देव" गुरुजन जाउ, प्रान किन जाउ, टेक टरति न टारी हौ । वृन्दावन वारी वनवारी की मुकुट वारी पीतपट वारी वहि मूरति पै वारी हौ ।। १० ।।

जब ते कुवर कान्ह रावरी कलानिधान कान परी वाके कहू सुजस कहानी सी । तब ही ते देव देखी देवता सी हसति सी रीझति सी खीझति सी रूठति रिसानी सी ।। छोही सी छली सी छीन लीनी सी छकी छिन सी जकी सी टकी सी लगी थकी थहरानी सी । बीधी सी बधी सी विष बूडति बिमोहित सी बैठी वाल वकति बिलोकति बिकानी सी ।। ११ ।।

बालम बिरह जिन जान्यो न जनम भरि बरि बरि उठै ज्यों ज्यों बरसै बरफ राति । बीजनो ढुरावती सखी जन त्यो सीतहू मैं सौति के सराप तन तापनि तरफराति । देव कहैं स्वासन ही असुवा सुखात मुख निकसे न बात ऐसी सिसकी सरफराति । लोटि लोटि परत करोट पट पाटी लै लै सूखे जल सफरी ज्यो सेज पै फरफराति ॥ १२ ॥

देव जू जौ चित चाहिये नाह तौ नेह निबाहिये देह हरयो परै।
जौ समझाइ सुझाइये राह अमारग मे पग धोखे धरयो परै ॥
नीके मे फीके ह्वै आसू भरो कत उचे उसास गरयो क्यो भरयो परै ।
रावरो रूप पियो अखियान भरयो सो भरयो उबरयो सो ढरयो परै ॥१३॥

चोट लगी इन नैनन की दिनहू इन खोरिन सो कढती हौ ।
देखन मे मन मोहि लियो छिपि ओट झरोखन के झकती हौ ॥
"देव" कहै तुम हौ कपटी तिरछी अखिया करि कै तकती हौ ।
जानि परै न कछू मन की मिलिहौ कबहू कि हमै ठगती हौ ॥१४॥

भेस भये विष भावते भूखन भूख न भोजन की कछु ईछी ।
मीचु की साध न सोधे की साध न दूध सुधा दधि माखन छीछी ॥
चदन तौ चितयो नहिं जात चुभी चित माहिं चितौनि तिरीछी ।
फूल ज्यो सूल सिलासम सेज बिछौननि बीच बिछी जनु बीछी ॥१५॥

जाके न काम न क्रोध विरोध न लोभ छ्वै नहिं छोभ को छाहौ ।
मोह न जाहि रहै जग बाहिर मोल जवाहिर ता अति चाहौ ॥
बानी पुनीत त्यो देवधुनी रस आरद सारद के गुन गाहौ ।
सील ससी सविता छविता कविता हि रचै कवि ताहि सराहौ ॥१६॥

कचन बेलि सी नौल बधू जमुनाजल केलि सहेलिनि आनी ।
रोमवली नवली कहि देव सु गोरे से गात, नहात सुहानी ॥
कान्ह अचानक बोलि उठे उर बाल के ब्यालवधू लपटानी ।
धाइ कै धाइ गही ससवाइ दुहू कर झारति अग अयानी ॥१७॥

बारे बडे उमडे सब जैबे को तौन तुम्हे पठवो बलिहारी ।
मेरे तो जीवन देव यही धनु या ब्रज पाई मै भीख तिहारी ॥

जानै न रीति अथाइन की नित'गाइनि मे ब्रन भूमि निहारी ।
याहि कोऊ पहिचानै कहा कछु जानै कहा मेरो कुजबिहारी ॥१८॥
प्रेमपयोधि परो गहिरे अभिमान को फेन रह्यो गहिरे मन ।
कोप तरगनि सो बहिरे पछिताय पुकारत क्यो बहिरे मन ॥
देव जू लाज जहाज ते कूदि रह्यो मुख मूदि, अजौ रहिरे मन ।
जोरत तोरत प्रीति तुही अब तेरी अनीति तुही सहि रे मन ॥१९॥

आई हुती अन्हवावन नाइनि सोधे लिये वह सूधे सुभायनि ।
कचुकी छोरी उतै उपटैबे को ईगुर से अग की सुखदायनि ॥
"देव" सरूप की रासि निहारति पाय ते सीस लौं सीस तेपायनि ।
ह्वै रही ठौर ही ठाढी ठगी सी, हसै कर ठोडी धरे ठकुरायनि ॥२०॥

ऐसो जो हौ जानतो कि जैहै तू विषै के सग ए रे मन मेरे, हाथ पाव तेरे तोरतो । आजु लौ हौ कत नरनाहन की नाही सुनि, नेह सो निहारि हारि बदन निहारतो ।। चलन न देतो "देव" चचल अचल करि, चाबुक चितावनीन मारि मुह मोरतो । भारी प्रेम पाथर नगारो है गरे सो बाधि राधावर विरुद के वारिधि मे बोरतो ॥ २१ ॥

## श्रीपति

श्रीपति कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इनका निवासस्थान काल्पी था । इन्होने स० १७७७ मे काव्य सरोज' नामक ग्रथ बनाया । इसके सिवा विक्रमविलास, कवि कल्पद्रुम, सरोज कलिका, अलकार गगा आदि ग्रथ भी इनके रचे हुये कहे जाते है । ये अच्छे कवि थे । इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है—

उर्द के पचाइबे को हीग अरु सोठ जैसे केरा को पचाइबे को घिव निरधार है । गोरस पचाइब को सरसो प्रबल दण्ड आम के पचाइबे को नीबू को अचार है ॥ श्रीपति कहत परधन के पचाइबे को कानन छुआय हाथ कहिवो नकार है । आज के जमाने बीच राजा राव जाने सबै रीझि के पचाइबे को वाह वा डकार हैं ॥ १ ॥

सारस के नादन को बाद न सुनात कहू नाहक की बकबाद दादुर महा करै। श्रीपति सुकवि जहा ओज ना सरोजन की फूल ना फूलत जाहि चित दै चहा करै॥ बकन की बानी की विराजत है राजधानी काई सो कलित पानी फेरत हहा करै। घोघन के जाल जामे नरई सेवाल व्याल ऐसे पापी ताल को मराल लै कहा करै॥२॥

ताल फीको अजल कमल बिन जल फीको कहत सकल कवि हवि फीको रूम को। बिन गुन रूप फीको ऊसर को कूप फीको परम अनूप भूप फीको बिन भूम को॥ श्रीपति सुकवि महावेग बिन तुरी फीको जानत जहान सदा जोह फीको धूम को। मेह फीको फागुन अबालक को गेह फीको नेह फीको तिय को सनेह फीको सूम को॥३॥

तेल नीको तिल को फुलेल अजमेर ही को साहब दलेल नीको सैल नीको चंद को। विद्या को विवाद नीको रामगुण नाद नीको कोमल मधुर सदा स्वाद नीको कद को॥ गऊ नवनीति नीको ग्रीषम को शीत नीको श्रीपति जू मीत नीको बिना फरफद को। जातरूप घट नीको रेशम को पट नीको बसीवट नट नीको नन्द को॥४॥

चोरी नीकी चोर की सुकवि की लबारी नीकी गारी नीकी लागती ससुरपुर धाम की। नाही नीकी मान की सयान की जबान नीकी तान नीकी तिरछी कमान मुलतान की। तातहू की जीति नीकी निगम प्रतीति नीकी श्रीपति जू प्रीत नीकी लागे हरिनाम की। रेवा नीकी बानखेत मुदरी सुवा की नीकी मेवा नीकी काबुल की सेवा नीकी राम की॥५॥

कीरति किशोरी गोरी तेरे गात की गुराई बीज सी सुहाई तेरे विधुकर जाल सी। सहज सुवास सखी केसर सी केतकी सी कौल सी सुखद अति अमल मराल सी। "श्रीपति" निदाघ नवनीति मखमल सम सर्व ऋतु गरम परम मिही साल सी। कनक प्रवाल सी नवीन दिनपाल सी कपूर की मसाल सी सलोनी लाल माल सी॥६॥

रोहिनी रमन की मरीची सी सुखद सीची सोहनी सरस महा मोहनी के थल सी। "श्रीपति" सुकवि छवि रवि वाल कर सी है मैन के

मुकुर सो अमलगग जल सी ।। गोरी गरबीली तेरे गात की गुराई आगे चपला निकाई अति लागत सहल सी । माखन महल सी पराग के चहल सी गुलाब के पहल सी नरम मखमल सी ।।७।।

हारिजात वारिजात मालती बिदारि जात वारि जात पारिजात सोधन में करी सी । माखन सो मैन सी मुरारी मखमल सम कोमल सरस तन फूलन की छरी सी ।। गहगही गरुवी गुराई गोरी गोरे गात श्रीपति बिल्लौर सीसी ईंगुर सौ भरीसी । विज्जु थिर धरी सी कनक रेख करी सी प्रबाल छविहरी सी लमत लाल लरी सी ।।८।।

कैसे रतिरानी के सिधोरे कवि "श्रीपति" जू जैसे कलधौत के सरोरुह सवारे है । कैसे कलधौत के सरोरुह सवारे कहि जैसे रूपनट के बटा से छवि ढारे है ।। कैसे रूप नटके बटा से छवि ढारे कहु जैसे काम भूपति के उलटे नगारे है । कैसे काम भूपति के उलटे नगारे कहु जैसे प्राणप्यारी ऊचे उरज तिहारे है ।।९।।

## वृन्द

वृन्द औरङ्गजेब के दरबारी कविथे। औरङ्गजेब का पोता अजीमुश्शान ब्रजभाषा और उर्दू का अच्छा कवि और कवियो का आश्रयदाता था । उसने वृन्द को औरङ्गजेब से माग लिया था । वह बङ्गाल, बिहार और उडीसे का सूबेदार था, और ढाके मे रहा करता था । वृन्द को भी वह अपने साथ ढाके ही मे रखता था ।

वृन्द ने सात सौ दोहो की दृष्टान्त सतसई या वृन्दविनोद सतसई नाम की पुस्तक लिखी है । उसके अन्त मे कवि ने स्वय लिखा है—

समय सार दोहानि को , सुनत होय मन मोद ।
प्रकट भई वह मतसई , भाषा वृन्दविनोद ।।
अति उदार, रिझवार जग , शाह अजीमुश्शान ।
सतसैया सुनि वृन्द को , कीनी अति सनमान ।।
सवत ससि रस वार ससि , कातिक सुदि ससिवार ।
साते ढाका सहर मे , उपज्यो यहै विचार ।।

अन्तिम दोहे से सतसई का निर्माणकाल स० १७६१, कार्तिक शुक्ला सप्तमी, सोमवार निकलता है। और यह भी पता चलता है कि सतसई ढाका शहर मे लिखी गई।

वृन्दावननिवासी गोस्वामी किशोरीलाल जी ने वृन्द कवि के विषय मे काकरौली-नरेश स्व० श्री गोस्वामी वालकृष्णलालजी से सुनी हुई कुछ बाते प्रकाशित की है। उनमे से कुछ ये है--

'यह कवि गौड ब्राह्मण कुल में मथुरा प्रात के किसी गाव मे पैदा हुआ था। इसने कहा और कितनी शिक्षा पाई, इसका कुछ पता नही। किसी तरह यह औरङ्गजेब के दरबार मे पहुच गया, और दरबारी कवि बना लिया गया। एक दिन यह मथुरा के उस पार श्रीगोकुल जी के ठाकुर श्री गोकुलनाथ जी के दर्शनो को गया। और वहा के तत्कालीन गोस्वामीजी का शिष्य हो गया। इसीसे इसने अपनी सतसई के मङ्गला चरन मे "श्री गुरुनाथ प्रभाव ते" इत्यादि कहकर वस्तु निर्देशात्मक मङ्गलाचरण किया है। श्री गोकुलनाथजी की गद्दी के आरभ से लेकर आज तक जितने शिष्य हुये है, उन सब का संक्षिप्त इतिवृत वहा के बही-खातो मे लिखा हुआ है। सिहोर के श्रीयुत गोविन्द गिल्लाभाई कहते है कि "वृन्द का जन्म मारवाड में जोधपुर तावा के मेडता गाव मे हुआ है। उनके वशज आजकल मेडता मे जयपुर मे, और किसनगढ मे रहते है।" उन्होने वृन्द कवि के बनाये सब ग्रन्थो के नाम और चित्र देकर उनका जीवनचरित्र छपाया है।

"वृन्द कवि ने दृष्टान्त सतसई के अतिरिक्त और भी कोई काव्य-ग्रथ बनाया होगा। कारण, उसकी छाप के कवित्त, सवैये और पद आदि भी सुनने मे आते है।"

सतसई के सिवा वृन्द-रचित "भाव पचासिका" नाम की एक और पुस्तक सुनी जाती है। इसका नाम हमे भारतजीवन प्रेस की पुस्तको के सूचीपत्र मे मिला था। पर पुस्तक हमारे देखने मे नही आई। याद पडता है कि भारतजीवन के सूचीपत्र मे यह भी जिक्र था कि पुस्तक

सवैया छन्दो मे है। मिश्रबन्धुओ ने अपने विनोद मे वृन्द-रचित "शृङ्गार-शिक्षा" नाम की एक और पुस्तक का उल्लेख किया है।

वृन्द का जन्म-सवत् १७४२ के लगभग माना जाता है। क्योकि वृन्द ने १७६१ मे सतसई लिखी। १७४२ को जन्म-संवत् मानने से उस समय उनकी आयु १९ वर्ष की हुई। सतसई लिखने के पहले वे शिक्षा पाकर औरगजेब के दरबार मे पहुचे। वहा कुछ दिन रहकर अपनी कवित्व-शक्ति का परिचय देकर ही वे अजीमुश्शान के कृपापात्र हुए होगे। इतना सब १९ वर्ष की आयु में किसी दैवी शक्ति ही से सभव है। दृष्टान्त-सतसई जैसा अनुभवपूर्ण ग्रन्थ लिखने के समय वृन्द की आयु ३० वर्ष से कम न रही होगी। अतएव वृन्द का जन्म सवत् १७३० के लगभग मानना चाहिये।

वृन्द की कविता नीति-विषयक है। हिन्दी मे वृन्द के समान किसी कवि ने नीति पर सुदर दोहे नही लिखे। दोहो की भाषा बडी सरल है, और बोलचाल मे दृष्टान्त के ढङ्ग पर शहरो से लेकर गावो तक उनका प्रचार भी बहुत है। दोहो के सिवा वृन्द की अन्य कविता भी बहुत सरस है। उनका एक प्रसिद्ध सवैया यहा लिखा जाता है—

जो कछु वेद पुरान कही सुनि लीनी सबै जुग कान पसारे।
लोकहु मे यह ख्यात प्रथा छिन मे खल कोटि अनेकन तारे॥
"बृन्द" कहै गहि मौन रहै किमि हौ हठ कै बहु बार पुकारे।
बाहर ही के नही सुनौ हे हरि! भीतर हू ते अहौ तुम कारे॥

यह सवैया भावपचासिका का जान पडता है। आगे दृष्टान्त-सतसई से कुछ दोहे चुनकर लिखे जाते है—

नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध मे, रस शृगार न सुहात॥ १॥
फीकी पै नीकी लगै, कहिये समय बिचारि।
सब को मन हर्षित करै, ज्यों विवाह मे गारि॥ २॥

जो जाको गुन जानही , सो तिहिं आदर देत ।
कोकिल अवहि लेत है , काग निवोरी हेत ॥ ३ ॥
जाही ते कछु पाइये , करिये ताकी आस ।
रीते सरवर पै गये , कैसे बुझत पियास ॥ ४ ॥
गुन हो तऊ मगाइये , जो जीवन सुख भौन ।
आग जरावत नगर तऊ , आग न आनत कौन ॥ ५ ॥
रस अनरस समझे न कछु , पढ़ै प्रेम की गाथ ।
बीछू मन्त्र न जानही , साप पिटारे हाथ ॥ ६ ॥
कैसे निवहै निवल जन , कर सवलन सो गैर ।
जैसे बस सागर विषै , करत मगर सो बैर ॥ ७ ॥
दीवो अवसर को भलो , जासो सुधरै काम ।
खेती सूखे बरसिवो , घन को कौने काम ॥ ८ ॥
अपनी पहुच विचारि कै , करतब करिये दौर ।
तेते पाव पसारिये , जेती लावी सौर ॥ ९ ॥
पिसुन छल्यो नर सुजन सो , कसत विसास न चूकि ।
जैसे दाध्यो दूध को , पीवत छाछहिं फूकि ॥ १० ॥
विद्याधन उद्यम बिना , कहौ जु पावै कौन ।
विना डुलाये ना मिले , ज्यो पखा की पौन ॥ ११ ॥
ओछे नर की प्रीति की , दीनी रीति बताय ।
जैसे छीलर ताल जल , घटत घटत घट जाय ॥ १२
बुरे लगत सिख के बचन , हिये विचारो आप ।
करुवी भेषज बिन पिये , मिटै न तन की ताप ॥ १३
गुरुता लघुता पुरुष की , आश्रय वशते होय ।
करी वृन्द मे विंध्य सो , दर्पन मे लघु सोय ॥ १
रहे समीप बडेन के , होत बडो हित मेल ।
सबही जानत बढ़त है , वृक्ष बराबर बेल ॥ १

होय बडेरु न हूजिये , कठिन मलिन मुख रङ्ग ।
मर्दन वधन छत सहत , कुच इन गुननि प्रसग ॥ १६ ॥
कहू जाहु नाहि न मिटत , जो विधि लिख्यो लिलार ।
अकुश भय करि कुभ कुच , भये तहा नख मार ॥ १७ ॥
फेर न ह्वै है कपट सो , जो कीजे व्यौपार ।
जैसे हाडी काठ की , चढै न दूजी बार ॥ १८ ॥
करिये सुख को होत दुख , यह कहो कौन सयान ।
वा सोने को जारिये , जासो टूटे कान ॥ १६ ॥
नयना देय बताय सब , हिय को हेत अहेत ।
जैसे निर्मल आरसी , भली बुरी कहि देत ॥ २० ॥
अति परचै ते होत है , अरुचि अनादर भाय ।
मलयागिरि की भीलनी , चदन देति जराय ॥ २१ ॥
भले बुरे सब एक सो , जौ लौ बोलत नाहि ।
जानि परतु है काक पिक , ऋतु वसत के माहि ॥ २२ ॥
निष्फल श्रोता मूढ पै , कविता वचन विलास ।
हाव भाव ज्यो तीयके , पति अधे के पास ॥२३॥
हितहू की कहिये न तिहि , जो नर होय अबोध ।
ज्यो नकटे को आरसी , होत दिखाये क्रोध ॥ २४ ॥
सबै सहायक सबल के , कोउ न निबल सहाय ।
पवन जगावत आग को , दीपहि देत बुझाय ॥ २५ ॥
कछु बसाय नहि सबलसो , करै निबल पर जोर ।
चले न अचल उखार तरु , डारत पवन झकोर ॥ २६ ॥
रोष मिटे कैसे कहत , रिस उपजावन बात ।
ईधन डारे आगमो , कैसे आग बुझात ॥ २७ ॥
जो जेहि भावे सो भलो , गुन को कछु न विचार ।
तज गजमुकता भीलनी , पहिरति गुञ्जा हार ॥ २८ ॥

दुष्ट न छाडे दुष्टता , कैसे हू सुख देत ।
धोये हू सौ बेर के , काजर होत न सेत ॥ २९ ॥
कहु अवगुन सोइ होत गुन , कहु गुन अवगुन होत ।
कुच कठोर त्यो है भले , कोमल बुरे उदोत ॥ ३० ॥
जाको जैसो उचित तिहि , करिये सोइ बिचारि ।
गीदर कैसे ल्याइ है , गजमुक्ता गज मारि ॥ ३१ ॥
जैसे बधन प्रेम को , तैसो बध न और ।
काठहि भेदै कमल को , छेद न निकरै भौर ॥ ३२ ॥
जे चेतन ते क्यो तजै , जाको जासो मोह ।
चुबक के पीछे लग्यो , फिरत अचेतन लोह ॥ ३३ ॥
जो पावै अति उच्च पद , ताको पतन निदान ।
ज्यो तपि तपि मध्याह्नलौ , अस्त होतु है भान ॥ ३४ ॥
जिहि प्रसग दूषन लगे , तजिये ताको साथ ।
मदिरा मानत है जगत , दूध कलाली हाथ ॥ ३५ ॥
जाके सग दूषण दुरै , करिये तिहि पहिचानि ।
जैसे समझे दूध सब , सुरा अहीरी पानि ॥ ३६ ॥
मूरख गुन समझै नही , तौ न गुनी मे चूक ।
कहा घटचो दिन को विभौ , देखै जौ न उलूक ॥ ३७ ॥
करै बुराई सुख चहै , कैसे पावै कोइ ।
रोपै बिरवा आक की , आम कहा ते होइ ॥ ३८ ॥
बहुत निबल मिल बल करै , करै जु चाहै सोय ।
तिनकन की रसरी करी , करी निबन्धन होय ॥ ३९ ॥
साच झूठ निर्णय करै , नीति निपुन जो होय ।
राजहस बिन को करै , छीर नीर को दोय ॥ ४० ॥
दोषहि को उमहै गहै , गुन न गहै खललोक ।
पियै रुधिर पय ना पियै , लागि पयोधर जोक ॥ ४१ ॥

कारज धीरै होतु है, काहै होत अधीर।
समय पाय तरुवर फलै, केतक सींचो नीर ॥ ४२ ॥
क्यो कीजै ऐसो जतन, जाते काज न होय।
परबत पर खोदै कुआ, कैसे निकसै तोय ॥ ४३ ॥
वीर पराक्रम ना करे, तासो डरत न कोइ।
बालकहू को चित्र को, बाघ खिलौना होइ ॥ ४४ ॥
उत्तम जन सो मिलत ही, अवगुन सो गुन होय।
घनसग खरो उदधि मिलि, बरसै मीठो तोय ॥ ४५ ॥
करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर परत निसान ॥ ४६ ॥
भली करत लागति बिलम, बिलम न बुरे बिचार।
भवन बनावत दिन लगै, ढाहत लगत न बार ॥ ४७ ॥
कुल सपूत जान्यौ परै, लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात ॥ ४८ ॥
छोटे मन में आय है, कैसे मोटी बात।
छेरी के मुह मे दियो, ज्यो पेठा न समात ॥ ४९ ॥
होत निबाह न आपनो, लीने फिरे समाज।
चूहा बिल न समात है, पूछ बाधिये छाज ॥ ५० ॥
अपनी प्रभुता को सवै, बोलत झूठ बनाय।
वेश्या बरस घटावही, योगी बरस बढाय ॥ ५१ ॥
कछु कहि नीच न छेडियै, भलो न वाको सग।
पाथर डारे कीच मे, उछरि बिगारै अग ॥ ५२ ॥
ऊपर दरसै सुमिल सा, अन्तर अनमिल आक।
कपटी जन की प्रीति है, खीरा की सी फाक ॥ ५३ ॥
सब सो आगे होय कै, कबहु न करिये बात।
सुधरे काज समाज फल, बिगरे गारी खात ॥ ५४ ॥

बुरो तऊ लागत भलो , भली ठौर पर लीन ।
तिय नैननि नीको लगे , काजर जदपि मलीन ॥ ५५ ॥
गुरुमुख पढ्यो न कहतु हैं , पोथी अर्थ विचारि ।
सो शोभा पावै नही , जार-गर्भ-युत नारि ॥ ५६ ॥
छमा खड्ग लीने रहै , खल को कहा बसाय ।
अगिन परी तृनरहित थल , आपहि ते बुझि जाय ॥ ५७ ॥
ओछे नर के पेट मे , रहै न मोटी बात ।
आध सेर के पात्र मे , कैसे सेर समात ॥ ५८ ॥
बचन रचन का पुरुष के , कहै न छिन ठहराय ।
ज्यो कर पद मुख कछप के , निकसि निकसि दुर जाय ॥ ५९ ॥
जूवा खेले होतु हैं , सुख सम्पति को नास ।
राजकाज नल ते छुट्यो , पाडव किय बनवास ॥ ६० ॥
सरस्वति के भडार की , बडी अपूरब बात ।
ज्यो खरचै त्यो त्यो बढै , बिन खरचै घट जात ॥ ६१ ॥
बिरह पीर ब्याकुल भए , आयो पीतम गेह ।
जैसे आवत भाग ते , आग लगे पर मेह ॥ ६२ ॥
भले बस को पुरुष सो , निहुरै बहु धन पाय ।
नवै धनुष सदबश को , जिंहि द्वै कोटि दिखाय ॥ ६३ ॥
लोकन के अपवाद को , डर करिये दिन रैन ।
रघुपति सीता परिहरी , सुनत रजक के बैन ॥ ६४ ॥
कहा कहौं विधि को अविधि , भूले परे प्रबीन ।
मूरख को सम्पति दई , पडित सपतिहीन ॥ ६५ ॥
वह सपति केहि काम की , जिन काहू पै होउ ।
नित्य कमावै कष्ट करि , बिलसै औरहि कोउ ॥ ६६ ॥
तृनहू ते अरु तूलते , हरुवो याचक आहि ।
जानतु है कछ मागि है , पवन उडावत नाहिं ॥ ६७ ॥

सेइय नृप गुरुतिय अनिल , मध्य भाग जग माहि ।
है विनाश अति निकट ते , दूर रहे फल नाहि ।। ६८ ।।

# बैताल

बैताल कवि का जन्म स० १७३४ मे हुआ । ये विक्रमशाह के दरबार मे रहते थे । इन्होने अपने छन्द प्राय विक्रम को सम्बोधन करके बनाये हैं । ये नीति-विषयक बडी अच्छी कविता करते थे । इनका रचा हुआ कोई ग्रथ नही मिलता । केवल थोडे-से स्फुट छन्द मिलते है । उनमे से कुछ छन्दो को हम नीचे प्रकाशित करते है—

जीभि जोग अरु भोग जीभि बहु रोग बढावै ।
जीभि करै उद्योग जीभि लै कैद करावै ।।
जीभि स्वर्ग लै जाय जीभि सब नरक दिखावै ।
जीभि मिलावै राम जीभि सब देह धरावै ।।
निज जीभि ओठ एकत्र करि बाट सहारे तोलिये ।
बैताल कहै विक्रम सुनो जीभि सभारे बोलिये ।।१।।

टका करै कुलहूल टका मिरदङ्ग बजावै ।
टका चढै सुखपाल टका सिर छत्र धरावै ।।
टका माय अरु बाप टका भैयन को भैया ।
टका सास अरु ससुर टका सिर लाड लडैया ।।
अब एक टके बिनु टकटका रहत लगाये रात दिन ।
बैताल कहै विक्रम सुनो धिक जीवन एक टके बिन ।।२।।

मरै बैल गरियार मरै वह अडियल टट्टू ।
मरै करकसा नारि मरै वह खसम निखट्टू ।।
बाभन सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै ।
पूत वही मरि जाय जु कुल में दाग लगावै ।।
अरु बे नियाव राजा मरै तबै नीद भरि सोइये ।
बैताल कहै विक्रम सुनो एते मरे न रोइये ।। ३ ।।

राजा चचल होय मुलुक को सर करि लावै ।
पडित चचल होय सभा उत्तर दै आवै ॥
हाथी चचल होय समर मे सूडि उठावै ।
घोडा चचल होय झपटि मैदान दिखावै ॥
है ये चारो भले राजा पडित गज तुरी ।
बैताल कहै विक्रम सुनो तिरिया चचल अति बुरी ॥ ४ ॥

दया चट्ट ह्वै गई धरम धँसि गयो धरन मे ।
पुण्य गयो पाताल पाप भो बरन बरन मे ॥
राजा करै न न्याय प्रजा की होत खुवारी ।
घर घर मे बेपोर दुखित भे सब नर नारी ॥
अब उलटि दान गजपति मगै सील सतोष कितै गयो ।
बैताल कहै विक्रम सुनो यह कलजुग परगट भयो ॥ ५ ॥

मर्द सीस पर नवै मर्द बोली पहिचानै ।
मर्द खिलावै खाय मर्द चिन्ता नहिं मानै ॥
मर्द देय औ लेय मर्द को मर्द बचावै ।
गाढे सकरे काम मर्द के मर्दै आवै ॥
पुनि मर्द उनहिं को जानिये दुखसुख साथी दर्द के ।
बैताल कहै विक्रम सुनो लच्छन है ये मर्द के ॥ ६ ॥

चोर चुप्प ह्वै रहै रैन अँधियारी पाये ।
सत चुप्प ह्वै रहै मढी मे ध्यान लगाये ॥
बधिक चुप्प ह्वै रहै फासि पछी लै आवै ।
छैल चुप्प ह्वै रहै सेज पर तिरिया पावै ॥
बर पिपर पात हस्ती स्रवन कोइकोइ कवि कुछकुछ कहै ।
बैताल कहै विक्रम सुनो चतुर चुप्प कैसे रहै ॥ ७ ॥

ससि बिन सूनी रैन ज्ञान बिन हिरदै सूनो ।
कुल सूनो बिन पुत्र पत्र बिन तरुवर सूनो ॥

गज सूनो इक दंत ललित बिन सायर सूनो ।
बिप्र सून बिन वेद और बिन पुहुप बिहूनो ॥
हरिनाम भजन बिन संत अरु घटा सून बिन दामिनी ।
बैताल कहै विक्रम सुनो पति बिन सूनी कामिनी ॥ ८ ॥
बुधि बिन करे बेपार दृष्टि बिन नाव चलावे ।
सुर बिन गावे गीत अर्थ बिन नाच नचावे ॥
गुन बिन जाय विदेश अकल बिन चतुर कहावे ।
बल बिन बाधे युद्ध हौस बिन हेत जनावे ॥
अनइच्छा इच्छा करे, अनदीठी बाता कहे ।
बैताल कहै विक्रम सुनो, यह मूरख की जात है ॥ ९ ॥
पग बिन कटे न पथ बाहु बिन हटे न दुर्जन ।
तप बिन मिले न राज्य भाग्य बिन मिले न सज्जन ॥
गुरु बिन मिले न ज्ञान द्रव्य बिन मिले न आदर ।
बिना पुरुष सिंगार मेघ बिन कैसे दादुर ॥
बैताल कहै विक्रम सुनो, बोल बोल बोली हटे ।
धिक्क धिक्क ये पुरुष को मन मिलाइ अन्तर कटे ॥ १० ॥

## उदयनाथ [कवीन्द्र]

कवीन्द्र उदयनाथ कालिदास त्रिवेदी के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १७३६ के लगभग हुआ। ये अमेठी के राजा हिम्मतसिंह और उनके पुत्र गुरुदत्तसिंह के पास रहा करते थे। ये भगवन्त राय खीची और बूंदी के राव बुद्धसिंह के यहा भी गये थे, और वहा इन्हे बडा सम्मान भी मिला था। इनका रस चन्द्रोदय नामक ग्रथ बहुत प्रसिद्ध है। इनकी कविता ब्रजभाषा मे शृगार विषयक अच्छी है।

इनके कुछ छन्द यहा उद्धृत किये जाते है—

कुजन ते मग आवत गावत राग बनावत देवगिरी को ।
सो सुनि कै वृषभानुसुता तलफै जिमि पजर जीव चिरी को ॥

तार थकै नहिं नैनन ते सजनी असुआन की धार भिरी को।
मार मनोहर नन्दकुमार के हार हिये लखि मौलसिरी को ॥

छिति छमता की परमिति मृदुता की कैधो ताकी है अनीति सौति जनता की देह की। सत्य की सता है, सील तरु की लता है रसता है कै विनीत परनीत निज नेह की ॥ भनत कविन्द सुर नर नाग नारिन की सिच्छा है कि इच्छा रूप रच्छन अछेह की। पतिव्रत पारावार बारी कमला है साधुता की कै सिला है कै कला है कुल गेह की ॥ २ ॥

कैसी ही लगन जामे लगन लगाई तुम प्रेम की पगनि के परेखे हिये कसके। केतिको छपाय के उपाय उपजाय प्यारे तुमते मिलाप के बढाये चोप चसके ॥ भनत कविन्द हमे कुंज मे बुलाय कर बसे कित जाय दुख देकर अबस के। पगनि मे छाले परे नाघिबे को नाले परे तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के ॥ ३ ॥

ऐसे मै न मैन के न देखे ऐन सैन के जगैया दिन रैन के जितैया सौति सीन के। कमल कलीन मुकलित जु करनहार कानन की कोरन लौ कोरन रगीन के ॥ भनत कविन्द भावती के नैन चायक से देखे मैन पायक से नायक नवीन के। साचे है अमीन के अमीन मानो मीन के बखानै को मृगीन के खगीन पन्नगीन के ॥ ४ ॥

राजै रस मै री तैसी बरसा समै री चढी चचला नचैरी चकचौधा कौधा वारै री। व्रती व्रत हारै हिये परत फुहारै कछू छोरै कछू धारै जलधर जलधारे री ॥ भनत 'कविन्द" कुंज भौन पौन सौरभ सो काके न कपाय प्रान परहथ पारै री। काम के तुका से फूल डोलि डोलि डारे मन औरे किये डारै ये कदम्बन की डारै री ॥ ५ ॥

सहर मझारत पहर एक लाग जैहै छोर मे नगर के सराय है उतारे की। कहत कविन्द मृग माझि ही परैगी साझ खबर उडानी है बटोही ठुक मारे की ॥ घर के हमारे परदेस को सिधारे याते दया के बिचारे हम रीति राह बारे की। उतरो नदी के तीर वर के तरे ही तुम चौको जिन चौकी तहा पाहरू हमारे की ॥ ६ ॥

# नेवाज

नेवाज नाम के दो-तीन कवि पाये जाते है। एक नेवाज महाराज छत्रसाल बुदेला के यहा थे। ये जाति के ब्राह्मण थे। दूसरे नेवाज बिलग्राम के जुलाहे थे। तीसरे नेवाज शिवसिह के कथनानुसार गाजीपुर के भगवत राय खीची के यहा थे। दूसरे और तीसरे नेवाज साधारण कवि थे। अतएव हम यहा प्रथम नेवाज ही की चर्चा करते है।

ठाकुर शिवसिह ने इनका जन्म स० १७३९ माना है और जन्मस्थान अतर्वेद बतलाया है। ये छत्रसाल के समय मे थे, इसके प्रमाण मे ठाकुर साहब ने एक दोहा लिखा है—

तुम्है न ऐसी चाहिये, छत्रसाल महराज।
जह भगवत गीता पढी, तह कवि पढत नेवाज॥

यह दोहा मालूम होता है, भगवत के स्थान पर नेवाज के नियत हो जाने पर बना था।

नेवाज ब्राह्मण थे। शकुन्तला नाटक के सिवा इनका रचा हुआ कोई ग्रथ नही मिलता। कही-कही पुस्तको मे इनके फुटकर छद मिलते है। नेवाज बडे रसिक कवि थे। कही-कही भावो मे इन्होने बडी अश्लीलता भर दी हैं। इनके कुछ छन्द नीचे लिखे जाते है—

देखि हमै सब आपस मे जो कुछ मन भावे सोई कहती है।
ए घरहाई लोगाई सबै निसि द्योस नेवाज हमै दहती है॥
बाते चबाव भरी सुनि कै रिसि आवत पै चुप ह्वै रहती है।
कान्ह पियारे तिहारे लिए सिगरे ब्रज को हसिबो सहती है॥ १॥

पीठि दै पौढि दुराय कपोल को मानै न कोटि पिया उत पोढत।
बाहन बीच हिये कुच दोऊ गहे रसना मन ही मन सोचत॥
सोवत जानि निवाज पिया कर सो कर दै निज ओर करोटत।
नीबी विमोचत चौकि परी मृगछौना सी बाल बिछौना पै लोटत॥२

पारथ समान कीन्हो भारत मही मै आनि बाधि सिर बाना ठान्यो

सरम सपूती को। कोर कोर कटि गयो हटि कै न पग दयो लयो रन जीति किरवान करतूती को॥ भनत "नेवाज" दिल्लीपति सो सहादत खा करत बखान एती मान मजबूती को। कतल मरद्द नद्द सोनित सो भरि गयो करि गयो हद्द भगवन्त रजपूती को॥ ३॥

आगे तौ कीन्ही लगाली लोयन कैसे छिपे अजहू जौ छिपावति।
तू अनुराग कौ सोध कियो ब्रज की बनिता सब यो ठहरावति॥
कौन सकोच रह्यो है "नेवाज" जौ तू तरसै उनहूं तरसावति।
बवरी जो पै कलक लग्यो तौ निसक ह्वै क्यो नहिं अक लगावति॥४

## रसलीन

सैयद गुलाम नबी बिलग्रामी का उपनाम रसलीन था। बिलग्राम जिला हरदोई मे एक मशहूर कस्बा है। वहा वहुत दिनो से बडे-बडे विद्वान मुसलमान होते आये है,और अब भी वर्तमान है। रसलीन वही के रहने वाले थे। इनका जन्म अनुमान से स० १७४६ के लगभग हुआ था। इनके रचे हुए दो ग्रथ मिलते है, अग-दर्पण और रस-प्रबोध। अग-दर्पण मे नखशिख का वर्णन है और रस-प्रबोध मे रसो का। मुसलमान होकर ब्रजभाषा मे ऐसी सुन्दर रचना करने के लिए रसलीन धन्यवाद के पात्र है। शिवसिंह ने इनको अरबी-फारसी का आलम फाजिल और भाषा कविता मे वडा निपुण बताया है। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है—

मुखससि निरखि चकोर अरु, तन पानिप लखि मीन।
पद पकज देखत भवर, होत नयन रसलीन॥ १॥
धरति न चौकी नग जरी, याते उर मे लाइ।
छाह परे पर पुरुष की, जिन तिय धरम नसाइ॥ २॥
चख चलि श्रवन मिल्यो चहत, कच वढि छुवन छवानि।
कटि निज दरव धरयो चहत, वक्षस्थल मे आनि॥ ३॥
सौनिन मुख निसि कमल भो, पिय चख भये चकोर।
गुरुजन मन सागर भये, लखि दुलहिनि मुख ओर॥ ४॥

रमनी मन पावत नही, लाज प्रीति को अत ।
दुहू ओर ऐचो रहै, ज्यो बिबि तिय को कत ॥ ५ ॥
लिखी बिरचि राख्यो हुतौ, यह सयोग इक सग ।
कुच उतग तिय उर चढै, पिय उर चढै अनग ॥ ६ ॥
यो तिय नैननि लाज ज्यो, लसत काम के भाय ।
मिल्यो सलिल में नेह ज्यो, ऊपर ही दरसाय ॥ ७ ॥
मुकुत भये घर खोय कै, कानन बैठे जाय ।
घर खोवत हे और को, कीजै कौन उपाय ॥ ८ ॥

# घाघ

घाघ कन्नौज निवासी थे । इनका जन्म स० १७५३ मे कहा जाता है । ये कब तक जीवित रहे, न तो इसका ठीक-ठीक पता है, और न इनका या इनके कुटुम्ब ही का कुछ हाल मालूम है । इन्होने कविता का कोई ग्रन्थ लिखा या नही, यह भी अभी तक अज्ञात है । पर इनके सामयिक नीति-सम्बन्धी छद इतने लोक-प्रिय है कि गावो मे बातचीत करते समय लोग उन्हे कहावतो की तरह प्रयोग करते है । किसानो मे खेतीबारी के बहुत-से काम इनके छदो के आधार पर ही होते है । इनसे यह जान पडता है कि ये बडे अनुभवी और प्रतिभावान् कवि थे ।

कहते है कि घाघ का गाव गगा जी के जिस किनारे पर था, ठीक उसके सामने दूसरे किनारे पर लालबुझक्कड़ का गाव था ।

घाघ बुद्धिमान्, अनुभवी और प्रत्युत्पन्नमति थे । उनके गाव वाले उनका आदर भी बहुत करते थे । घाघ ने भी लोगो की साधारण बोल-चाल मे छद रचकर उनमे ज्ञान का विकास किया था । घाघ की प्रतिष्ठा और यश देखकर लाल बुझक्कड से न रहा गया । वे भी उनके समान अपने ज्ञान की धाक जमाने के लिए उद्योग करने लगे । पर उनमे घाघ की-सी प्रतिभा नही थी । सयोग से उनके गाव वाले भी वैसे ही समझ-बूझ के थे । उन्हे कोई भी नई बात देखकर आश्चर्य होता था और वे

लालबुझक्कड के पास यह बूझने के लिए दौडे जाते थे कि "यह क्या है ?" लालबुझक्कड को अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए कुछ न कुछ बूझना ही पडता था, इसलिये उनके नाम के साथ बुझक्कड उपाधि जुड गई। लाल उनका असली नाम था,

एक बार लालबुझक्कड के गाव वाले को राह मे हाथी के पैर के चिह्न मिले। वह चकराया कि "यह क्या है, जो लगातार दूर तक चला गया है ?" इतनी बडी शका का समाधान लालबुझक्कड के सिवा और कौन कर सकता था ? वह अपना कामकाज छोडकर इस शका की निवृत्ति के लिए लालबुझक्कड के पास पहुचा। लालबुझक्कड ने शङ्का सुनते ही हसते हुए तत्काल उत्तर दिया—

लालबुझक्कड़ बूझते, और न बूझै कोय।
पैर मे चक्की बाध के, हरिना कूदा होय॥

इस तरह उन्होने अपनी प्रखर-बुद्धि से गाव वाले का समाधान कर दिया।

एक दिन एक गाव वाले को कही राह मे एक कोल्हू पडा हुआ मिला। कोल्हू पुराना होकर काम का न रहा होगा और किसी ने उसे लापरवाही से फेक दिया होगा। गाव वाले की समझ मे यह बात न आई कि यह क्या पदार्थ है। वह लालबुझक्कड के घर पहुचा। लाल-बुझक्कड ने सर्वज्ञ की तरह मुसकुराते हुए कहा—

लालबुझक्कड बूझते, वे तो है गुरु ज्ञानी।
पुरानी होकर गिर पडी, खुदा की सुर्मादानी॥

इसी तरह लालबूझक्कड ने अपनी आशु कविता का चमत्कार दिखा कर घाघ को परास्त करने का प्रयत्न किया। पर आज हम घाघ को जहा किसानो मे एक मित्र की भाति सम्मति देते हुए पाते है, वहा लालबुझक्कड को विदूषक की तरह अपना बेसिर-पैर की बातो से हसा-हसाकर उनकी थकावट मिटाते और जी वहलाते हुए देखते है।

पर कविता की भाषा से घाघ कन्नौज के निवासी नही जान पड़ते।

कुछ लोग इन्हे फतहपुर जिले के किसी गाव का निवासी वतलाते है, उनका यंह भी कहना है कि घाघ की पुत्र-वधू कन्नौज की थी । उसने भी कुछ रचनाए की है, और घाघ की बातो का मजाक उडाते हुये खडन किया है । कहा जाता है कि उससे ही झेपकर घाघ घर छोड कर कन्नौज जा बसे । यहा घाघ के कुछ छन्द लिखे जाते है—

बनियक सखरज ठकुरक हीन । बयदक पूत व्याधि नहिं चीन ।
पडित चुपचुप बेसवा मइल । कहै घाघ पाचो घर गइल ॥ १ ॥
नसकट खटिया दुलकन घोर । कहे घाघ यह विपत क ओर ॥
बाछा बैल पतुरिया जोय । ना घर रहे न खेती होय ॥ २ ॥
भुइया खेड हर ह्वै चार । घर ह्वै गिहिथिन गऊ दुधार ॥
अरहर की दाल जडहन का भात । गागल निबुआ औ घिव तात ॥
सहरस खड दही जो होय । बाके नैन परोसै जोय ॥
कहे घाघ तब सब ही झूठा । उहा छाडि इहवे बैकुठा ॥ ३ ॥
कुच कट पनही बतकट जोय । जो पहलौठी बिटिया होय ॥
पातरि कृषी बौरहा भाय । घाघ कहै दुख कहा समाय ॥ ४ ॥
मुये चाम से चाम कटावे, भुइ सकरी मा सोवै ।
घाघ कहै ये तीनो भकुआ, उडरि गये पर रोवै ॥ ५ ॥
सुथना पहिरे हर जोतै, औ पौला पहिरि निरावै ।
घाघ कहै ये तीनो भकुआ, सिर बोझा औ गावै ॥ ६ ॥
उधारि काढि व्योहार चलावै, छप्पर डारैं तारो ।
सारे के सग बहिनी पठवे, तीनिउ का मुह कारो ॥ ७ ॥
आलस नीद किसानै नासै, चोरै नासै खासी ।
अखिया लीबर बेसवै नासै, तिरमिर नासै पासी ॥ ८ ॥
ना अति बरखा ना अति धूप । ना अति बकता ना अति चूप ॥
लरिका ठाकुर बूढ दिवान, ममिला बिगरे साझ बिहान ॥ ९ ॥
माघ क ऊखम जेठ क जाड । पहिले बरिखे भरिगै गाड ॥
कहै घाघ हम होब वियोगी । कुआ खोदि के धोइहै धोबी ॥ १० ॥

सावन सुकला सत्तमी, जो गरजे अधरात।
तू पिय जैहो मालवा, हौं जैहो गुजरात ॥ ११ ॥
सावन सुकला सत्तमी, चन्दा उगे तुरन्त।
की जल मिले समुद्र मे, की नागरि कूप भरन्त ॥ १२ ॥
सावन सुकला सत्तमी, छिपि के ऊगे भानु।
तब लगि देव बरीसिहैं, जब लगि देव उठान ॥ १३ ॥
सावन कृष्ण एकादसी, जेतो रोहिन होय।
तेतो समया जानियो, खरी घसै जिनि कोय ॥ १४ ॥
बहु बजार बनिहार बनि, बारी बेटा बैल।
व्योहर बढई बन बबुर, बात सुनो यह छैल ॥ १५ ॥
जो बकार बारह बसैं, सौं पूरन गिरहस्त।
औरन को सुख दै सदा, आप रहै अलमस्त ॥ १६ ॥
सावन पछिवा भादो पुरवा, आसिन बहै इसान।
कातिक कन्ता सीक न डोले, गाजे सबै किसान ॥ १७ ॥
गया पेड जब बकुला बैठा। गया गेह जब मुड़िया पैठा ॥
गया राज जह राजा लोभी। गया खेत जह जामी गोभी ॥१८॥
घर घोडा पैदल चलै, तीर चलावे बीन।
थाती धरै दमाम घर, जग मे भकुआ तीन ॥ १९ ॥
सदा न बागा बुलबुल बोलै, सदा न बाग बहारा।
सदा न ज्वानी रहती यारो, सदा न सोहबत यारा ॥ २० ॥
नीचे ओद ऊपर बदराई, कहै घाघ अब गेरुई खाई ॥
पछिवा हवा ओसावै जोई, घाघ कहैं घुन कबहु न होई ॥२१॥
सावन केरे प्रथम दिन, उगत न दीखै भान।
चार महीना बरसै पानी, याको है परमान ॥ २२ ॥
जेठ मास जो तपै निरासा, तो जानो बरसा की आसा ॥
दिवस बादरा रात को तारे, चलो कन्त जह जीवे वारे ॥२३॥

ताका भैसा गादर बैल । नारि कुलच्छनि बालक छैल ।।
इनसे बाचे चातुर लोग । राज छोड के साधै जोग ।।२४।।
सावन घोडी भादों गाय , माघ मास जो भैस बिआय ।।
कहै घाघ यह साची बात , आपै मरै कि मलिकै खाय ।।२५।।
बिन बैलन खेती करै , बिन भैयन को रार ।
बिन मेहरारू घर करै , चौदह साख लबार ।। २६ ।।
बूढा बैल बिसाहे , भीना कपडा लेय ।
आपुन करै नसौनी , दैवै दूषण देय ।। २७ ।।
बैल चौकना जोत में , औ चमकीली नार ।
ये बैरी है जान के , कुशल करै करतार ।। २८ ।।

## दास

दास का पूरा नाम भिखारीदास था । जि० प्रतापगढके टयोगा गाव मे स० १७५५ के लगभग इनका जन्म हुआ था । ये जाति के कायस्थ थे । इनके पिता का नाम कृपालदास और पितामह का वीरभान था । इनके रचे हुए काव्य निर्णय, रससाराश, विष्णुपुराण, नामप्रकाश, छन्दोर्णव और शृङ्गारनिर्णय काव्य के उत्तम ग्रन्थ है । इनकी कविता के कुछ नमूने हम नीचे उद्धृत करते है—

सुजस जनावै भगतनही से प्रेम करै चित्त अति ऊजरे भजति हरि नाम है । दीन के दुखन देखै आपनो सुखन लेखै विप्र पापरत तन मैन मोहै धाम है ।। जग पर जाहिर है धरम निबाहि रहै देव दरसन ते लहत बिसराम है । दास जू गनाये जे असज्जन के काम है समुझि देखो एई सब सज्जन के काम हैं ।। १ ।।

धूरि चढै नभ पौन प्रसग ते कीच भई जल-सगति पाई ।
फूल मिलै नृप पै पहुचै कृमि-कीटनि सग अनेक बिथाई ।।
चन्दन सग कुदारु सुगन्ध ह्वै नीच प्रसग लहै करुआई ।
दास जू देख्यो सही सब ठौरनि सगति को गुन-दोषन जाई ।। २ ।।
पडित पडिन सो सुखमडित सायर सायर कै मन मानै ।

सतहि सत भनत भलो गुनवतनि को गुनवत बखानै ॥
जा पह जा सह हेतु नही कहिये सु कहा तिहि की गति जानै ।
सूर को सूर सती को सती अरु दास जती को जती पहचानै ॥ ॥३॥
प्रानबिहीन के पाइ पलोटि अकेले ह्वै जाइ घने बन रोयो ।
आरसी अध के आगे धर्यो बहिरे को मतो करि उत्तर जोयो ॥
ऊसर में बरस्यो वहु वारि पखान के ऊपर पङ्कज बोयो ।
दास वृथा जिन साहव सूम की सेवनि मे अपनो दिन खोयो ॥४॥
दृग नासा न तो तप जाल खगी, न सुगध सनेह के ख्याल खगी ।
स्रुति जीहा विरागै न रागै पगी मति रामै रगी औ न कामै रगी ॥
तप मे ब्रत नेम न पूरन प्रेम न भूति जगी न विभूति जगी ।
जग जन्म वृथा तिनको जिनके गरे सेली लगी न नवेली लगी ॥५॥
कज सकोच गडे रहे कीच मे मीनन बोरि दियो दह नीरन ।
दास कहै मृगहू को उदास कै वास दियो है अरन्य गभीरन ॥
आपुस मे उपमा उपमेय ह्वै नैन ये निन्दित है कवि धीरन ।
खजनहू को उडाय दियो हलुके करि डारे अनङ्ग के तीरन ॥ ६ ॥
नैनन को तरसैये कहा लौ कहा लौ हिये बिरहागि मे तैये ।
एक घरी न कहू कल पैये कहा लगि प्रानन को कलपैये ॥
आवै यही अब जी मे विचार सखी चल सौतिहु के घर जैये ।
मान घटे ते कहा घटिहै जु पै प्रानपियारे को देखन पैये ॥ ७ ॥

## रसनिधि

रसनिधि का असली नाम पृथ्वीसिह था। ये दतिया राज्य के अन्तर्गत जागीरदार थे। इनके जन्म-मरण का ठीक समय निश्चित नही है, परन्तु स० १७६० मे इनका होना माना जाता है।

इनका रचा हुआ रतनहजारा अद्भुत ग्रथ है। हजारा मे कुल दोहे ही दोहे है। भावो को झलकाने मे इन्होने बड़ी बारीक बुद्धि से काम लिया है। इनके दोहे बिहारी के दोहों से टक्कर लेते है। नीचे इनके कुछ दोहे लिखे जाते है। देखिये कैसे लुभावने है—

रसनिधि वाको कहत है , याही ते करतार।
रहत निरन्तर जगत को , वाही के कर तार ॥ १ ॥
आये इसक लपेट मे , लागी चसम चपेट।
सोई आया जगत मे , और भरे सब पेट ॥ २ ॥
सज्जन पास न कहु अरे , ये अनसमझी बात।
मोम रदन कहु लोह के , चना चबाये जात ॥ ३ ॥
हित करियत यहि भाति सो , मिलियत है वहि भात।
छीर नीर तै पूछ लै , हित करिबे की बात ॥ ४ ॥
पसु पच्छीहू जानही , अपनी अपनी पीर।
तब सुजान जानौ तुम्हे , जब जानौ पर पीर ॥ ५ ॥
रूप नगर बस मदन नृप , दृग जासूस लगाइ।
नहनि मन को भेद उन , लीनौ तुरत मगाइ ॥ ६ ॥
सुन्दर जोबन रूप जो , बसुधा मे न समाइ।
दृग तारन तिल बिच तिन्है , नेही धरत लुकाइ ॥ ७ ॥
सरस रूप को भार पल , सहि न सकै सुकुमार।
याही तै ये पलक जनु , झुकि आवै हर बार ॥ ८ ॥
सुनियत मीननि मुखलगै , बसी अबै सुजान।
तेरी ये वसी लगै , मीनकेत को बान ॥ ९ ॥
जिहि मग दौरत निरदई , तेरे नैन कजाक।
तिहि मग फिरत सनेहिया , किये गरेबा चाक ॥ १० ॥
चतुर चितेरे तुव सबी , लिखत न हिय ठहराइ।
कलम छुवत कर आगुरी , कटी कटाछन जाइ ॥ ११ ॥
मन गयद छवि मद छके , तोर जजीरन जात।
हित के झीने तार सो , सहजै ही बधि जात ॥ १२ ॥
उडो फिरत जो तूल सम , जहा तहा बेकाम।
ऐसे हरुये को धरयो , कहा जान मन नाम ॥ १३ ॥

लेउ न मजनू गोर ढिग, कोऊ लै लै नाम।
दरदवन्त को नेक तौ, लैन देउ बिसराम ॥ १४ ॥
चसमन चसमा प्रेम कौ, पहिले लेहु लगाइ।
सुन्दर मुख वह मीत कौ, तब अवलोकौ जाइ ॥ १५ ॥
अद्भुत गति यह प्रेम की, बैनन कही न जाइ।
दरस भूख लागे दृगन, भूखहि देह भगाइ ॥ १६ ॥
प्रेम नगर में दृग बया, नोखे प्रगटे आइ।
दो मन को करि एक मन, भाव देत ठहराइ ॥ १७ ॥
न्यारो पैंडो प्रेम को, सहसा धरो न पाव।
सिर के पैंडे भावते, चलो जाय तौ जाव ॥ १८ ॥
अद्भुत गति यह प्रेम की, लखौ सनेही आइ।
जुरै कहू टूटै कहू, कहू गाठि पर जाइ ॥ १९ ॥
अद्भुत बात सनेह की, सुनौ सनेही आइ।
जाकी सुध आवै हिये, सबही सुध बुध जाइ ॥ २० ॥
कहनावत में यह सुनी, पोषत तनु को नेह।
नेह लगाये अब लगी, सूखन सिगरी देह ॥ २१ ॥
बोलन चितवन चलन में, सहज जनाई देत।
छिपत चतुरई कर कहू, अरे हिये को हेत ॥ २२ ॥
यह बूझन को नैन ये, लग लग कानन जात।
काहू के मुख तुम सुनी, पिय आवन की बात ॥ २३ ॥
कञ्चन से तन में यहा, भरो सुहाग बनाइ।
विरह आंच वापै कहो, सहो कौन विधि जाइ ॥ २४ ॥

## नागरीदास और बनीठनीजी

नागरीदास नाम के ब्रजभाषा के चार कवि हुए हैं। पहले नागरीदास श्री बल्लभाचार्य महाप्रभु के शिष्य थे। दूसरे नागरीदास स्वामी हरिदास की शिष्य-परम्परा में थे। तीसरे नागरीदास गोस्वामी हितहरि-

वश वा श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की सम्प्रदाय मे हुए। और चौथे नागरीदास कृष्णगढ ( राजपूताना ) के राजा थे । इनके पिता का नाम राजसिह था। इनका असली नाम सावतसिंह था। ये कविता मे अपना उपनाम नागर, नागरिया अथवा नागरीदास रखते थे । इनकी रचना कृष्णगढ मे अभी तक सुरक्षित है। ये राठौर क्षत्रिय थे । इनका जन्म पौष कृष्ण १२ स० १७५६ को हुआ। कवि होने के सिवा ये वीर भी थे। इन्होने दस वर्ष ही की अवस्था मे एक उन्मत्त हाथी को विचलित कर दिया था, और तेरह वर्ष की अवस्था मे बूदी के राव जैतसिह का समर मे वध किया था। बीस वर्ष की अवस्था मे अकेले ही एक सिह को मारा था। कई घराऊ झगड़ो के कारण स० १८१४ मे ये राजपाट छोड़कर वृन्दावन चले गये और वही रहने लगे। ये महाप्रभु वल्लभाचार्य सम्प्रदाय के शिष्य थे। स १८२१ मे भादव सुदी३ को वृन्दावन मे इन्होने शरीर छोडा। वहा इनकी छतरी है, जिसमें लेख भी है।

वृन्दावन इन्हे बहुत प्रिय था। वहा इनका सम्मान भी बहुत था। वहाँ के भक्तो मे इनकी कविता का आदर इनके जीवनकाल ही मे बहुत होगया था। इन्होने ७५ ग्रन्थो की रचना की। इनमे से अन्त के दो अब नही मिलते। ग्रन्थो के नाम ये है—

(१) सिङ्गारसार, (२) गोपी प्रेमप्रकाश, (३) पद प्रसङ्गमाला, (४) व्रजवैकुण्ठतुला, (५) व्रजसार, (६) भोरलीला, (७) प्रातरस-मञ्जरी, (८) विहारचद्रिका, (९) भोजनानन्दाष्टक, (१०) जुगलरस-मञ्जरी, (११) फूलविलास, (१२) गोधन आगमन, (१३) दोहनआनन्द, (१४) लग्नाष्टक (१५) फागविलास, (१६) ग्रीष्मविहार, (१७) पावस पचीसी, (१८) गोपी बैनविलास, (१९) रासरसलता, (२०) रैनरूपरस, (२१) शीतसार, (२२) इश्कचमन, (२३) मजलिस मडन, (२४) अरिलाष्टक, (२५) सदा की माझ, (२६) वर्षाऋतु की माझ, (२७) होरी की माझ, (२८) कृष्णजन्मोत्सव कवित्त, (२९) प्रिया जन्मोत्सव कवित्त, (३०) माझी के कवित्त (३१) रास के कवित्त, (३२) चादनी के कवित्त,

(३३)दिवारी के कवित्त,(३४)गोवर्द्धनधारन के कवित्त, (३५)होरी के कवित्त, (३६)फाग गोकुलाष्टक,(३७)हिंडोरा के कवित्त,(३८)वर्षा के कवित्त (३९) मार्ग मगदीपिका, (४०) तीर्थानन्द, (४१) फागविहार, (४२) बालविनोद, (४३) सुजनानन्द, (४४) वनविनोद (४५) भक्ति-सार, (४६) देहदसा, (४७) वैरागवल्ली, (४८) रसिक रत्नावली, (४९) कलि वैराग बल्लरी, (५०) अरिल्ल पचीसी (५१) छूटकविधि, (५२) पारायण विधि प्रकाश (५३) सिखनख, (५४) नखसिख, (५५) छूटक कवित्त, (५६) चरचरिया, (५७) रेखता, (५८) मनोरथ मञ्जरी, (५९) रामचरित्र माला, (६०) पद प्रबोधमाला, (६१) जुगल भक्ति विनोद, (६२) रसानुक्रम के दोहे, (६३) शरद की माझ, (६४) माझी फूल बीनन समेत सम्वाद, (६५) वसन्त वर्णन, (६६) फाग खेलन समेतानुक्रम कवित्त, (६७) रसानुक्रम कवित्त, (६८) निकुञ्ज विलास, (६९) गोविन्द परचई, (७०) बनजन प्रशसा, (७१) छूटक दोहा, (७२) उत्सव माला, (७३) पद मुक्तावली, (७४) बैन-विलास, (७५) गुप्तरस प्रकाश ।

अन्त की दो पुस्तके अब नही मिलती । इनकी पुस्तको का एक सग्रह 'नागर समुच्चय' नाम से ज्ञानसागर छापाखाना बम्बई ने प्रकाशित किया है। पर वह बहुत अशुद्ध है। उसमें अन्य कवियो के भी बहुत-से छन्द मिल गये है।

ये वल्लभ-सम्प्रदाय के थे। इनकी कविता बड़ी सरस, भक्तिरस-पूर्ण होती थी। हिन्दी काव्य के रसिको को इनकी पुस्तके अवश्य पढनी चाहिए। इनकी कविता के कुछ नमूने देखिये—

उज्जल पख की रैन चैन उज्जल रस दैनी।<br>
उदित भयौ उडराज अरुन द्युति मन हर लैनी॥<br>
महा कुपित ह्वै काम ब्रह्म अस्त्रहिं छोड्यो मनु।<br>
प्राची दिसितें प्रज्वलित आवति अगिनि उठी जनु॥<br>
दहन मानपुर भये मिलन को मन - हुलसावत।<br>
छावत छपा अमन्द चन्द ज्यो ज्यो नभ आवत॥

जगमगाति बन जोति सोत अमृतधारा से ।
नवद्रुम किसलय दलनि चारु चमकत तारा से ॥
स्वेत रजत की रैंन चैन चित मैंन उमहनी ।
तैसी मन्द सुगन्ध पौन दिन मनि दुख दहनी ॥
मधि नायक गिरिराज पदिक बृन्दावन भूषन ।
फटिक सिला मनि शृङ्ग जगमगति दुति निर्दूषन ॥
सिला सिला प्रति चन्द चमकि किरननि छबि छाई ।
बिच विच अम्ब कदम्ब झम्ब झुकि पायनि आई ॥
ठौर ठौर चहु फेर ढेर फूलन के सोहत ।
करत सुगन्धित पवन सहज मन मोहत जोहत ॥
बिमल नीर निर्झरत कहू झरना सुख करना ।
महा सुगन्धित सहज बास कुमकुम मद हरना ॥
कहु कहु हीरन खचित रचित मण्डल सुरासि के ।
जटित नगन कहु जुगल खम्भ झूलनि विलास के ॥
ठौर ठौर लखि ठौर रहत मनमथ सो भारी ।
बिहरत विविध बिहार तहा गिरि पर गिरधारी ॥ १ ॥
इश्क चमन महबूब का, जहा न जावे कोय ।
जावे सो जीवे नही, जिये सो बौरा होय ॥ २ ॥
जामें रस सोई हर्‍यो, यह जानत सब कोय ।
गौर स्याम द्वै रग बिन, हर्‍यो रग नहिं होय ॥ ३ ॥
ऐ तबीब उठि जाहु घर, अवस छुवै का हाथ ।
चढी इश्क की कैफ यह, उतरै सिर के साथ ॥ ४ ॥
अरे पियारे का करौ, जाहि रहो है लाग ।
क्यो करि दिल बारूद में, छिपै इश्क की आग ॥ ५ ॥
फूले फूलनि स्वेत बिच, अलि बैठे मधु लैन ।
दम्पति हित वृन्दा विपिन, धारे अगणित नैन ॥ ६ ॥

कलह कलपना काम कलेस निवारनो।
परनिन्दा परद्रोह न कबहु विचारनो॥
जग प्रपच चटसार न चित्त चढाइये।
व्रजनागर नदलाल सु निसिदिन गाइये॥ ७॥
अन्तर कुटिल कठोर भरे अभिमान सो।
तिनके गृह नहिं रहे सन्त सनमान सो॥
उनकी सगति भूलि न कबहू जाइय।
व्रजनागर नदलाल सु निसिदिन गाइये॥ ८॥
कहू न कबहू चैन जगत दुखकूप है।
हरि भक्तन को सग मदा सुखरूप है॥
इनके ढिग आनन्दित समै विताइये।
व्रजनागर नदलाल सु निसिदिन गाइये॥ ९॥

महाराजा नागरीदास की दासी बनीठनीजी भी कविता करती थी और कविता मे अपना उपनाम रसिकबिहारी रखती थी। ये सदा नागरी दासजी की सेवा मे रहती थी। इनका देहान्त स० १८२२ मे हुआ। इनके बनाये कुछ पद नीचे लिखे जाते है—

रतनारी हो थारी आखडिया।
प्रेम छकी रस बस अलसाणी जाणि कमल की पाखडिया॥
सुन्दर रूप लुभाई गति मति हो गई ज्यू मधु माखडिया।
रसिकविहारी वारी प्यारी कौन बसी निस काखडिया॥ १॥

हो झालो दे छे रसिया नागर पना।
सासा देखै लाज मरा छा आवा किण जतना॥
छैल अनोखो कयो न मानै लोभी रूप सना।
रसिकबिहारी नणद बुरी छै हो लाग्यो म्हारो मना॥ २॥

पावस रितु वृन्दावन की दुति दिन दिन दूरी दरसै है, छबि सरसै है। लूम झूम सावन घनो घन बरसै है॥

# रघुनाथ

रघुनाथ बन्दीजन महाराज काशिराज वरिबड सिंह के राजकवि थे। महाराज ने इनको काशी के समीप चौरा गाव दिया था, उसी मे ये सकुटुम्ब रहते थे।

इनके रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ मिलते है—काव्य कलाधर, रसिक-मोहन और इश्कमहोत्सव। काव्य-कलाधर की रचना स०१८०२ मे हुई। ठाकुर शिवसिंह ने लिखा है कि इन्होने सतसई की टीका भी बनाई है।

रघुनाथ ब्रजभाषा मे कविता करते थे,परन्तु इश्कमहोत्सव मे इन्होने आजकल की सी हिन्दी भाषा में कविता लिखी है।

इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है—

देख हे देख या ग्वालिन की मग नेकु नही थिरता गहती है।
आनद सो "रघुनाथ" पगी पर्गी रगन सो फिरतै रहती है॥
छोर को छोर तरौना को छ्वै कर ऐसी बडी छवि को लहती है।
जोबन आइवे की महिमा अखिया मनो कानन सो कहती है॥१॥

सूखति जाति सुनी जब सो कछु खात न पीवति कैसे धौ रैहै।
जाकी है ऐसी दसा अबही "रघुनाथ" सो औधि अधार क्यो पैहै॥
ताते न कीजिए गौन बलाइ ल्यो गौन करे यह सीस बिसैहै।
जानति हौ दृग ओट भये तिय प्रान उ सासहि के सग जैहै॥२॥

सम्पति के बढे सो प्रतिष्ठा बाढै बाढै सोच कहै रघुनाथ ताके राखिवे के रुख को। मन मागे स्वादनि लपेटि पेट परचो तासो अङ्ग मे अपार सङ्ग प्रगटो कलुष को॥ दारा सुत सखा को सनेह सो सतापकारी भारी है बचन यह बडन के मुख को। जगत को जितनो प्रपच तितनो हे दुख सुख इतनो जो सुख मानि लेनो दुख को॥३॥

देखिबो को दुति पूनो के चद की हे रघुनाथ श्री राधिका रानी।
आई बुलाय कै चौतरा ऊपर ठाढी भई सुख सौरभ सानी॥

ऐसी गई मिलि जोन्ह की जोति मे रूप की गसि न जाति बखानी।
वारन ते कछु भौहन तें कछु नैनन की छवि त पहिचानी ॥४॥

ग्वालन सग जैबो ब्रज गायन चरैबो ऐबो अब कहा दाहिने ये नैन फरकत है। मोतिन की माल वारि डारौ गुज माल पर कुजनि की सुधि आये हियो धरकत है॥ गोबर को गारो "रघुनाथ" कछू याते भारो कहा भयो पहलन मनि मरकत है। मन्दिर है मन्दर ते ऊंचे मेरे द्वारिका के ब्रज के खरिक तऊ हिये खरकत है॥५॥

सुधरे सिलाह राखै, वायु वेगी वाह राखै, रसद की राह राखै, राखे रहै बन को। चोर को समाज राखै, बजा औ नजर राखै, खबरि को काज बहुरूपी हरफन को॥ अगम भखैया राखै, सकुन लेवैया राखै, कहै रघुनाथ औ विचार बीच मन को। बाजी राखै कबहू न औसर के परे जौन ताजी राखै प्रजन को राजी सुभटन को॥६॥

फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन कहै रघुनाथ भरे चैन रस सियरे। दौरि आये भौर से करत गुनी गुन गान सिद्ध से सुजान सुख सागर सो नियरे॥ सुरभी सी खुलन सुकवि की सुमति लागी चिरिया सी जागी चिन्ता जनक के हियरे। धनुष पै ठाढे राम रवि से लसत आजु भोर कैसे नखत नरिन्द भये पियरे॥७॥

आप दरियाव पास नदियों के जाना नही दरियाव पास नदी होयगी सो धावैगी। दरखत बेलि आसरे को कभी राखत ना दरखत ही के आसरे को वेलि पावैगी। मेरे लायक जो था कहना सो कहा मैने रघुनाथ मेरी मति न्यावही को गावैगी। वह मोहताज आपकी है आप उसके न आप कैसे चलो वह आसपास आवैगी॥८॥

## गुमान मिश्र

गुमान मिश्र के जन्म-मरण का समय अभी तक ठीक-ठीक निश्चित नही हो सका। इनके विषय मे केवल इतना ही पता चलता है कि इन्होने स० १८०१ मे पिहानी के मोहमदी अधिपति अली अकबर खा की आज्ञा

से श्रीहर्ष कृत नैषध काव्य का विविध छन्दो मे अनुवाद किया। इन बातो का पता इनके अनुवादित ग्रन्थ से ही चलता है। अब इनके रचे हुए अलकार, नायिका-भेद, काव्य-रीति आदि विषयो के कई ग्रन्थ तथा कृष्णचन्द्रिका का पता लगा है, परन्तु नैषध काव्य के सिवा और सब ग्रन्थ अप्रकाशित है।

इसमे सन्देह नही कि गुमान सस्कृत भाषा काव्य के अच्छे ज्ञाता थे, परन्तु नैषधका अनुवाद उनसे अच्छा नही हो सका। कही-कही तो मूल से भी अधिक जटिल होगया है। आजकल जो वेकटेश्वर प्रेस का छपा हुआ गुमानकृत नैषध काव्य मिलता है, वह तो नितान्त अशुद्ध है। सभवत. गुमान ने ऐसी अशुद्ध रचना न की होगी।

नैषध से से इनकी कविता के कुछ नमूने यहा दिये जाते है—

नल के यश तेज विराजत है। शशि भानु वृथा छवि छाजत है॥
जब ही जब यो विधि चित्त धरै। तब छेकन को परिवेश करै॥१॥
विधि भाल दरिद्र लिख्यो जेहि के। नहि कीजत अक वृथा तेहि के॥
नल येतिकु ताहि तुरन्त दियो। जिमि टारि दरिद्र को दूरि कियो॥२॥

## दूलह

दूलह कवीन्द्र के पुत्र और कालिदास त्रिवेदी के पौत्र थे। इनके जन्म-मरण के ठीक-ठीक समय का अभी तक पता नही चला। अनुमान से इनका जन्मकाल विक्रम स० १९६१ के लगभग ठहरता है। दूलह का "कविकुल कठाभरण" नामक केवल एक ही ग्रन्थ मिलता है। उसमें कुल एक्यासी छन्द है। इनके सिवा कुछ स्फुट छन्द भी मिलते है। दूलह का काव्य-गुण पैतृक है। कालिदास से कवीन्द्र की कविता अच्छी है और कवीन्द्र से दूलह की।

दूलह की कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है—

फल बिपरीत को जतन सो "विचित्र" हरि ऊचे हेत बामन मे बलि के सदन मे। आधार बड़े ते बड़ो आधेय "अधिक" जानो चरन समाना

नाहि चौदहो भुवन में ॥ आधेय अधिक ते आधार की अधिकताई दूसरो अधिक आयो ऐसो गणनन मे । तीनो लोक तन मे अमान्यो ना गगन में वसें ते सत मन में कितेक कहो मन में ॥१॥

उत्तर उत्तर उतकरष बखानो "सार" दीरघ ते दीरघ लघू ते लघू भारी को। सब ते मधुर ऊख ऊख ते पियूप ना पियूष हू ते मधुर है अधर पियारी को ।। जहा कमिकन को क्रमै ते यथा क्रम "यथा सख्य" बैन, नैन, नैनकोन ऐसे धारी को । कोकिल ते कल, कजदल तें अदल भाव जीत्यो जिन काम की कटारी नोकवारी को ॥२॥

धरी जब वाही तब करी तुम नाही पाइ दियो पलिकाही नाही नाही कै सुहाई हौ । बोलत में नाही पट खोलत मे नाही कवि दूलह उछाही लाख भातिन लहाई हौ ॥ चुम्बन में नाही परिरम्भन मे नाहीं सब आसन विलासन में नाही ठीक ठाई हौ । मेलि गलवाही केलि कीन्ही चित चाही यह हा से भली नाही सो कहा ते सीख आई हौ ॥३॥

माने सनमाने तेई माने सनमाने सनमाने सनमाने सनमान पाइवतु है । कहै कवि दूलह अजाने अपमाने अपमान सो सदन तिनही को छाइयतु है ॥ जानत है जेऊ तेऊ जात है बिराने द्वार जान बूझ भूले तिनको सुनाइयतु है । काम बस परे कोऊ गहत गरूर तो वा अपनी जरूर जाजरूर जाइयतु है ॥४॥

## गिरिधर कविराय

गिरिधर कविराय का जन्म स० १७७० मे हुआ कहा जाता है। इन्होने बहुत-सी कुण्डलिया बनाई है, जो बडी लोकप्रिय है। इनकी कविता की भाषा से इनका जन्म-स्थान कही अवध मे जान पडता है । इनके विषय मे एक कहावत प्रसिद्ध है कि एक बार इनके पडोस मे एक बढई आ बसा । उसने एक ऐसा पलङ्ग बनाया, जिसके चारो पावो पर पखे लगे थे । जब कोई उस पलङ्ग पर लेटता, तो पखे आप से आप चलने लगते थे । बढ़ई ने वह पलङ्ग ले जाकर राजा को दिया । राजा ने उससे

वैसे ही और भी कई पलङ्ग बना लाने को कहा। गिरिधर के आगन मे बेर का एक बडा सुन्दर वृक्ष था। बढई और गिरिधर से कुछ खटपट होगई थी। इसलिए बढई ने राजा से वही बॅर का पेड लकडी के लिए मागा। राजा ने आज्ञा देदी। गिरिधर ने राजा से बहुत प्रार्थना की, कि वह पेड न दिया जाय, परन्तु राजा ने नही सुनी। इससे रुष्ट होकर गिरिधर उस राज्य को त्यागकर भ्रमण करने लगे। उसी भ्रमण के समय मे स्त्री-पुरुष ने मिलकर कुडलियो की रचना की। कहा जाता है कि जिन कुडलियोके प्रारम्भमे "साई" शब्द है, वे सब गिरिधरकी स्त्री की बनाई हुई है। गिरिधर की कुडलिया नाम से इनकी कुडलियो का संग्रह छपा हुआ मिलता है।

हम गिरिधर की कुछ कविता यहा उद्धृत करते है—

साई बेटा बाप के, बिगरे भयो अकाज।
हरिनाकस्यप कस को, गयउ दुहुन को राज॥
गयउ दुहुन को राज, बाप बेटा मे बिगरी।
दुस्मन दावागीर, हसै महिमडल नगरी॥
कह गिरिधर कविराय, युगन याही चलि आई।
पिता पुत्र के बैर, नफा कहु कौने पाई॥ १॥

बेटा बिगरे बाप सो, करि तिरियन सो नेहु।
लटापटी होने लगी, मोहि जुदा करि देहु॥
मोहि जुदा करि देहु, घरीमा माया मेरी।
लेहौं घर अरु द्वार, करौं मै, फजिहत तेरी॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो गदहा के लेटा।
समय परयो है आय, बाप से झगरत बेटा॥ २॥

साई ऐसे पुत्र से, बाझ रहे वरु नारि।
बिगरी बेटे बाप से, जाय रहै ससुरारि॥
जाय रहै ससुरारि, नारि के नाम बिकाने।
कुल के धर्म नसाय, और परिवार नसाने॥

कह गिरिधर कविराय, मातु झखै वहि ठाईं।
असि पुत्रनि नहि होय, बाझ रहतिउ बरु साईं॥ ३॥
काची रोटी कुचकुची, परती माछी बार।
फूहर वही सराहिये, परसत टपकै लार॥
परसत टपकै लार, झपटि लरिका सौचावै।
चूतर पोछै हाथ, दोउ कर सिर खजुवावै॥
कह गिरिधर कविराय, फूहर के याही धैना।
कजरौटा बरु होइ, लुकाठन आजै नैना॥ ४॥
शुक ने कह्यो सदेस, सेमर के पग लागिहौ।
पग न परै वहि देस, जब सुधि आवै फलन की॥ ५॥
साईं बैर न कीजिये, गुरु पडित कवि यार।
बेटा बनिता पवरिया, यज्ञ करावनहार॥
यज्ञ करावनहार, राजमन्त्री जो होई।
विप्र परोसी वैद्य, आप को तपै रसोई॥
कह गिरिधर कविराय, युगन ते यह चलि आई।
इन तेरह सो तरह, दिये बनि आवै साईं॥ ६॥
सोना लादन पिय गये, सूना करि गये देश।
सोना मिले न पिय मिले, रूपा ह्वै गये केश॥
रूपा ह्वै गये केश, रोय रग रूप गवावा।
सेजन को बिसराम, पिया बिन कबहु न पावा॥
कह गिरिधर कविराय, लोन बिन सबै अलोना।
बहुरि पिया घर आव, कहा करिहौ लै सोना॥ ७॥
जाकी धन धरती हरी, ताहि न लीजै सग।
जो चाहै लेतो बनै, तो करि डारु निपङ्ग॥
तो करि डारु निपङ्ग, भूलि परतीति न कीजै।
सौ सौगन्दै खाय, चित्त मे एक न दीजै॥

कहं गिरिधर कविराय, खटक जैहै नहिं ताकी।
अरि समान परिहरिय, हरी धन धरती जाकी॥ ८॥
दौलत पाय न कीजिये, सपने मे अभिमान।
चंचल जल दिन चारिको, ठाउ न रहत निदान॥
ठाउ न रहत निदान, जियत जगमें यश लीजै।
मीठे बचन सुनाय, विनय सबही की कीजै॥
कह गिरिधर कविराय, अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निशिदिन चारि, रहत सबही के दौलत॥ ९॥
गुन के गाहक सहस नर, बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुनै सब कोय॥
शब्द सुनै सब कोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को एक रंग, काग सब भये अपावन॥
कहं गिरिधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मन के।
बिनु गुन लहै न कोय, सहस नर गाहक गुन के॥ १०॥
साई सब संसार मे, मतलब का व्यवहार।
जब लग पैसा गाठ मे, तबलग ताको यार॥
तबलग ताको यार, यार संगही संग डोलै।
पैसा रहा न पास, यार मुखसे नहिं बोलै॥
कहं गिरिधर कविराय, जगत यहि लेखा भाई।
करत बेगरजी प्रीति, यार बिरला कोई साई॥ ११॥
रहिये लटपट काटि दिन, बरु घामे मा सोय।
छांह न वाकी बैठिये, जो तरु पतरो होय॥
जो तरु पतरो होय, एक दिन धोखा देहै।
जा दिन बहै बयारि, टूटि तब जर से जैहै॥
कह गिरिधर कविराय, छांह मोटे की गहिये।
पाता सब झरि जाय, तऊ छाया में रहिये॥ १२॥

साईं घोडे आछतहि, गदहन पायो राज।
कौआ लीजै हाथ मे, दूरि कीजिये बाज॥
दूरि कीजिये बाज, राज पुनि ऐसो आयो॥
सिंह कीजिये कैद, स्यार गजराज चढायो॥
कह गिरिधर कविराय, जहा यह बूझि बधाई।
तहा न कीजै भोर, साझ उठि चलिये साईं॥ १३॥
साईं अवसर के पडे, को न सहै दुख द्वन्द।
जाय बिकाने डोम घर, वै राजा हरिचन्द॥
वै राजा हरिचन्द, करै मरघट रखवारी।
धरे तपस्वी वेष, फिरे अर्जुन बलधारी॥
कह गिरिधर कविराय, तपै वह भीम रसोईं।
को न करै घटि काम, परे अवसर के साईं॥ १४॥
साईं ये न विरोधिये, छोट बडे सब भाय।
ऐसे भारी वृक्ष को, कुल्हरी देत गिराय॥
कुल्हरी देत गिराय, मारके जमी गिराई।
टूक टूक कै काटि, समुद मे देत बहाई॥
कह गिरिधर कविराय, फूट जेहि के घर आई।
हिरणाकश्यप कस, गये बलि रावण साईं॥ १५॥
लाठी मे गुण बहुत है, सदा राखिये सग।
गहिर नदी नारा जहा, तहा बचावै अग॥
तहा बचावै अग, झपटि कुत्ता कह मारै।
दुश्मन दावागीर, होय तिनहू को झारै॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो धूर के बाठी।
सब हथियारन छाडि, हाथ मह लीजै लाठी॥ १६॥
कमरी थोरे दाम की, बहुतै आवै काम।
खासा मलमल बाफता, उनकर राखै मान॥

उनपर राखै मान , बुन्द जह आडे आवै ।
बकुचा बाधै मोट , राति को झारि बिछावै ॥
कह गिरिधर कविराय , मिलत है थोरे दमरी ।
सब दिन राखै साथ , बडी मर्यादा कमरी ॥ १७ ॥

बिना बिचारे जो करै , सो पीछे पछिताय ।
काम बिगारै आपनो , जग मे होत हसाय ॥
जग मे होत हसाय , चित्त मे चैन न पावै ।
खान पान सन्मान , राग रग मनहि न भावै ॥
कह गिरिधर कविराय , दुख कछु टरत न टारे ।
खटकत है जिय माहि कियो जो बिना बिचारे ॥ १८ ॥

बीती ताहि बिसारि दे , आगे की सुधि लेइ ।
जो बनि आवै सहज मे , ताही मे चित देइ ॥
ताही मे चित देइ , बात जोई बनि आवै ।
दुर्ज्जन हसै न कोइ , चित्त मे खता न पावै ॥
कह गिरिधर कविराय , यहै करु मन परतीती ।
आगे को सुख समुझि , होइ बीती सो बीती ॥ १९ ॥

साई अपने चित्त की , भूलि न कहिये कोइ ।
तब लग मन मे राखिये , जबलग कारज होइ ॥
जबलग कारज होइ , भूलि कबहुँ नहि कहिये ।
दुरजन हसे न कोय , आप सियरे ह्वै रहिये ॥
कहै गिरिधर कविराय , बात चतुरन के ताईं ।
करतूती कहि देत , आप कहिये नहि साईं ॥ २० ॥

साईं अपने भ्रात को , कबहु न दीजै त्रास ।
पलक दूर नहि कीजिये , सदा राखिये पास ॥
सदा राखिये पास , त्रास कबहू न दीज ।
त्रासि दियो लकेश , ताहि की गति सुनि लीजै ॥

कह गिरिधर कविराय, रामसो मिलियो जाई।
पाये विभीषण राज, लंकपति बाज्यो साँई ॥ २१ ॥

साँई समय न चूकिये, यथाशक्ति संन्मान।
को जाने को आइ है, तेरी पौरि प्रमान ॥
तेरी पौरि प्रमान, समय असमय तकि आवै।
ताको तू मन खोलि, अक भरि हृदय लगावै ॥
कह गिरिधर कविराय, सबै यामे सधि आई।
शीतल जल फल फूल, समय जनि चूको साँई ॥ २२ ॥

पानी बाढो नाव मे, घर मे बाढो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम ॥
यही सयानो काम, राम को सुमिरन कीजै।
परस्वारथ के काज, शीश आगे धरि दीजै ॥
कह गिरिधर कविराय, बडेन की याही बानी।
चलिये चाल सुचाल, राखिये अपनो पानी ॥ २३ ॥

राजा के दरबार मे, जैये समया पाय।
साईं तहा न बैठिये, जह कोउ देय उठाय ॥
जह कोउ देय उठाय, बोल अनबोले रहिये।
हसिये नही हहाय, बात पूछे ते कहिये ॥
कह गिरिधर कविराय, समय सो कीजे काजा।
अति आतुर नहि होय, बहुरि अनखैहे राजा ॥ २४ ॥

कृतघन कबहु न मानही, कोटि करै जो कोय।
सर्वस आगे राखिये, तऊ न अपनो होय ॥
तऊ न अपनो होय, भले की भली न मानै।
काम काढि चुप रहै, फेरि तिहि नहि पहिचानै।
कह गिरिधर कविराय, रहत नितही निर्भय मन।
मित्र शत्रु सब एक, दाम के लालच कृतघन ॥ २५ ॥

# सूदन

सूदन मथुरा निवासी माथुर ब्राह्मण थे । इनके पिता का नाम बसन्त था । ये भरतपुर के महाराज सूरजमल के आश्रय मे रहा करते थे। इनके जन्म-मरण के ठीक ठीक समय का पता नही है। इन्होने २३४ पृष्ठो के सुजान चरित्र नामक एक ग्रन्थ की रचना की है। उसे नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी ने प्रकाशित किया है । उसमे स० १८०२ से १८१० तक सूरजमल के युद्धो का और विविध घटनाओ का वर्णन है। सूदन की कविता वीररस से पूर्ण है । प्राचीन कवियो मे भूषण और लाल के पश्चात् वीररस की कविता रचने मे सूदन ही सफल हुए है। इनका युद्ध की तैयारी का वर्णन उत्तम है। इनकी भाषा मे ब्रजभाषा और खडी बोली का मिश्रण है। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है—

सेलनु धकेला ते पठान मुख मैला होत केते भट मेला है भजाये भुव भग मे। तग के कसे ते तुरकानी सब तग कीनी दग कीनी दिली औ दुहाई देत बग मे ॥ सूदन सराहत सुजान किरवान गहि धायो धीर धारि वीरताई की उमङ्ग मे। दक्खिनी पछेला करि खेला तै अजब खेल हेला मारि गङ्ग मे रुहेला मारे जङ्ग मे ॥१॥

एकै एक सरस अनेक जे निहारे तन भारे लाज भारे स्वामिकाज प्रतिपाल के। चङ्ग लौ उडायो जिन दिली की वजीर भीर मारी बहु मीरन किये है बे हवाल के ॥ सिह बदनेस के सपूत श्री सुजानसिह सिह लौं झपटि नख दीन्हे करवाल के। वेई पटनेटे सेल सागन खखेटे भूरि धूरि सी लपेटे लेटे भेटे महाकाल के ॥२॥

बङ्गन के लाज मऊखेत की अवाज यह सुने ब्रजराज ते पठान वीर बबके। भाई अहमदखान सरन निदान जानि आयो मनसूर तौ रहै न अब दबके। चलना मुझे तौ उठ खडा होना देर क्या है ? बार बार कहे ते दराज सीने सब के। चड भुजदडवारे हयन उदडवारे कारे कारे डीलन सवारे होत रब के ॥३॥

महल सराय से रवाने बुआ बूबू करो, मुझे अफसोस वडा बडी बीबी जानी का । आलम मे माजुम चकत्ता का घराना यारो जिसका हवाल है तनैया जैसा तानी का ॥ खने खाने बीच से अमाने लोग जाने लगे आफत ही जानो हुआ औल दहकानी का । रब की रजा है हमे सहना बजा है वक्त हिन्दू का गजा है आया छोर तुरकानी का ॥४॥

आप बिस चाखै भैया षटमुख राखै देखि आसन मे राखै बस वास जाको अचलै । भूतन के छैया आसपास के रखैया और काली के नथैया हू के ध्यान हू ते न चलै ॥ बैल बाघ वाहन बसन को गयन्द खाल भाग को धतूरे को पसारि देत अचलै । घर को हवाल यहै सकर की बाल कहै लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचलै ॥५॥

पूत मजबूत बानी सुनि कै सुजान मानी सोई बात जानी जासो उर मै छमा रहै । जुद्ध रीति जानो मत भारत को मानो जैसो होय पुठवार ताते ऊन अगमा रहै ॥ बाम और दच्छिन समान बलवान जान कहत पुरान लोकरीति मो रमा रहै । सूदन समर घर दोउन की एकै विधि घर मे जमा रहै तो खातिर जमा रहै ॥६॥

## सीतल

सीतल स्वामी हरिदास की टट्टी-सम्प्रदाय के महत थे । इनका समय इस सम्प्रदाय के लोग स० १७८० के लगभग बतलाते है, मरणकाल का कुछ पता नही चलता । सीतल ने चार भागो मे गुलजार चमन नामक ग्रथ की रचना की थी । उसके तीन भाग मिलते है, जिनके नाम गुलजार चमन, आनन्द चमन और विहार चमन है । इनके विषय मे यह किम्वदन्ती सुनी जाती है कि ये शाहाबाद जिला हरदोई के समीप किसी ग्राम के निवासी थे, और लालबिहारी नाम के एक लडके पर आसक्त थे । इनकी कविता प्रेमरस से सराबोर है । कुछ छन्दो का भाव सासारिक प्रेम और भगवत्प्रेम दोनो ओर लगाया जा सकता है । लालबिहारी का नाम इनके छन्दो मे प्राय अधिक आया है । सम्भव है, इसी भ्रम मे आकर लोगो ने उपर्युक्त कल्पना की हो ।

सीतल हिन्दी के सिवा सस्कृत और फारसी भी जानते थे। इनकी कविता वर्तमान हिन्दी के ढग की है। नीचे इनके कुछ छद लिखे जाते है—

शिव विष्णु ईश बहु रूप तुई नभ तारा चारु सुधाकर है।
अम्बा धारानल शक्ति स्वधा स्वाहा जल पौन दिवाकर है॥
हम अशाअश समझते है सब खाक जाल से पाक रहे।
सुन लालबिहारी ललित ललन हम तो तेरे ही चाकर है॥१॥
कारन कारज ले न्याय कहे जोतिस मत रवि गुरु ससी कहा।
जाहिद ने हक्क हुसन यूसुफ अरहत जैन छबि बसी कहा॥
रतिराज रूप रस प्रेम इश्क जानी छबि शोभा लसी कहा।
लाला हम तुमको वह जाना जो ब्रह्म तत्व त्वम असी कहा॥२॥
मुख सरद चन्द्र पर ठहर गया जानो के बूद पसीने का।
या कुन्दन कमल कली ऊपर झमकाहट रक्खा मीने का॥
देखे से होश कहा रहवै जो पिदर बू अली सीने का।
या लाल बदख्शा पर खीचा चौका इल्मास नगीने का॥३॥
हम खूब तरह से जान गये जैसा आनन्द का कद किया।
सब रूप सील गुन तेज पुञ्ज तेरे ही तन मे बन्द किया॥
तुझ हुस्न प्रभा की बाकी ले फिर विधि ने यह फरफद किया।
चम्पकदल सोनजुही नरगिस चामीकर चपला चद किया॥४॥
मुख सरद चन्द्र पर स्रम सीकर जगमगै नखत गन जोती से।
कै दल गुलाब पर शबनम के है कनके रूप उदोती से॥
हीरे की कनिया मद लगै है सुधा किरन की गोती से।
आया है मदन आरती को घर कनक थार मे मोती से॥५॥
बरनन करने को क्या बरनू बरनूगा जेती बानी है।
ग्रह तीन उच्च के पडे हुये जानी यह यूसुफ सानी है॥
ससि भवन जीव सफरी में गुर कन्या बुध जोतिस ज्ञानी है।
इस लालबिहारी की सीतल क्या अर्द्ध चन्द्र पेशानी है॥६॥

चन्दन की चौकी चारु पड़ी सोता था सब गुन जटा हुआ।
चौके की चमक अधर विहसन मानो एक दाडिम फटा हुआ॥
ऐसे मे गहन समै सीतल एक ख्याल बड़ा झटपटा हुआ।
भूतल ते नभ, नभ ते अवनी, अग उछलै नट का बटा हुआ॥७॥

# ब्रजबासीदास

ब्रजबासीदास का जन्म स०१७९० के आसपास हुआ। ये वल्लभ सम्प्रदाय के थे। इन्होने स०१८२७, माघ शुक्ला पचमी सोमवार को ब्रजविलास प्रारम्भ किया था। इस ग्रन्थ में कुल इतने छन्द है—दोहा ८८९, सोरठा ८८९, चौपाई १०६००, हरिगीतिका १०६। इस ग्रन्थ मे भगवान कृष्ण की ब्रजलीला का वर्णन है। तुलसीदास के रामायण के ढग पर यह लिखा गया है। इसकी कविता कृष्ण-भक्तो को विशेष प्रिय है। इन्होने प्रबोध चद्रोदय का भी विविध छन्दो में अनुवाद किया है। यहा ब्रजविलास से चन्द्रमा के लिए कृष्ण के मचलने की कथा उद्धृत की जाती है—

ठाढी अजिर जसोदा रानी। गोदी लिये श्याम सुखदानी॥
उदय भयो ससि सरद सुहावन। लागी सुत को मात दिखावन॥
देखहु श्याम चद यह आवत। अति सीतल दृग ताप नसावत॥
चितै रहे हरि इकटक ताही। करते निकट बुलावत ताही॥
मैया यह मीठो है खारो। देखत लगत मोहि यह प्यारो॥
देखि मगाय निकट मै लैहो। लागी भूख चद मै खैहो॥
देहि वेगि मै बहुत भुखानो। मागत ही मागत बिरुझानो॥
जसुमति हसत करत पछतायो। काहे को मै चन्द दिखायो॥
रोवत है हरि बिनहो जाने। अब धो कैसे करिके माने॥
विविध भाति करि हरिहि भुलावै। आन बतावै आन दिखावै॥

कहत जसोदा कौन विधि, समझाऊ अब कान्ह।
भूलि दिखायो चद मै, ताहि कहत हरि खान॥

अनहोनी कहु होय, तात सुनी यह बात कहु ।
याहि खात नहिं कोय, चद खिलौना जगत को ।।
यही देत नित माखन मोको । छिन छिन देत तात सो तोको ।।
जो तुम श्याम चन्द को खैहो । बहुरो फिरि माखन कह पैहो ।।
देखत रहो खिलौना चन्दा । हठ नहि कीजै बाल गोबिन्दा ।।
मधु मेवा पकवान मिठाई । जो भावै सो लेहु कन्हाई ।।
पालागो हठ अधिक न कीजै । मै बलि रिस ही रिस तन छीजै ।।
खसि खसि कान्ह परत कनिया ते । दै ससि कहत नन्द रनिया ते ।।
जसुमति कहत कहा धौ कीजै । मागत चन्द कहा तें दीजै ।।
तब जसुमति इक जलपुट लीनो । कर मे लै तेहि ऊचो कीनो ।।
ऐसे कहि श्यामहि बहकावै । आव चन्द तोहि लाल बुलावै ।।
याही में तू तन धरि आवै । तोहि देखि लालन सुख पावै ।।
हाथ लिये तोहिं खेलत रहिये । नेक नही धरनी पर धरिये ।।
जलपुट आनि धरनि पर राख्यो । गहि आनहु ससि जननी भाख्यो ।।

लेहु लाल यह चन्द्र मै, लीनो निकट बुलाय ।
रोवै इतने के लिए, तेरी श्याम बलाय ।।
देखहु श्याम निहारि, या भाजन मे निकट ससि ।
करी इती तुम आरि, जा कारण सुन्दर सुवन ।।

ताहि देखि मुसुकाय मनोहर । बार बार डारत दोऊ कर ।।
चन्दा पकरत जल के माही । आवत कछू हाथ में नाही ।।
तब जलपुट के नीचे देखे । तह चन्दा प्रतिबिम्ब न पेखे ।।
देखत हसी सकल ब्रजनारी । मगन बालछबि लखि महतारी ।।
तबहि श्याम कुछ हसि मुसुकाने । बहुरो माता सो बिरुझाने ।।
लउगो री मा चन्दा लउगो । वाहि आपने हाथ गहूंगो ।।
यह तो कलमलात जल माही । मेरे कर मे आवत नाही ।।
बाहर निकट देखियत माही । कहो तो मै गहि लावो ताही ।।
कहत जसोमति सुनहु कन्हाई । तुव मुख लखि सकुचत उडुराई ।।

तुम तिहि पकरन चहत गुपाला । ताते ससि भजि गयो पताला ॥
अब तुमते ससि डरपत भारी । कहत अहो हरि सरन तुम्हारी ॥
बिरुझाने सोये दै तारी । लिय लगाय छतिया महतारी ॥

लै पौढाये सेज पर, हरि को जसुमति माय ।
अति बिरुझाने आज हरि, यह कहि कहि पछिताय ॥
करसो ठोंकि सुवाय, मधुरे सुर गावत कछुक ।
उठि बैठे अतुराय, चटपटाय हरि चौंकि के ॥

## सहजोबाई

सहजोबाई राजपूताना के एक प्रतिष्ठित ढूसर कुल की स्त्री थी। इन्होने अपने विषय मे एक स्थान पर लिखा है—

हरिप्रसाद की सुता नाम है सहजोबाई ।
ढूसर कुल मे जन्म सदा गुरु चरन सहाई ॥

इनके जन्मकाल का ठीक-ठीक पता नही चलता । परन्तु इन्होंने अपने गुरु साधु चरनदासजी का जन्म समय भादव सुदी ३, मगलवार स० १७६० विक्रमीय लिखा है । इससे केवल यह माना जा सकता है, कि उन्ही दिनो के आसपास इनका भी जीवन-काल है ।

सहजोबाई की कविता से प्रकट होता है कि उनमे बडी गुरु-भक्ति थी । उनकी कविता बडी मधुर और बडे मर्म की है । हम उनकी रचना के कुछ नमूने यहा उद्धृत करते है—

निसचै यह मन डूबता, मोह लोभ की धार ।
चरनदास सतगुरु मिले, सहजो लई उबार ॥ १ ॥
सहजो गुरु दीपक दियो, नैना भये अनन्त ।
आदि अन्त मध एक ही, सूझ पडै भगवन्त ॥ २ ॥
जब चेतै जब ही भला, मोह नीद सू जाग ।
साधू की सगत मिलै, सहजो ऊचे भाग ॥ ३ ॥
दीर्घ बुद्धि जिनकी महा, सील सदा ही नैन ।
चेतनता हिरदै बसै, सहजो सीतल बैन ॥ ४ ॥

ना सुख दारा सुख महल , ना सुख भूप भये ।
साधु सुखी सहजो कहै , तृश्ना रोग गये ॥ ५ ॥
साधु वृक्ष बानी कली , चर्चा फूले फूल ।
सहजो सगत बाग मे , नाना फल रहे झूल ॥ ६ ॥
बैठ बैठ वहुतक गये , जग तरवर की छाहिं ।
सहज बटाऊ बाट के , मिलिमिलिबिछुडतजाहिं ॥ ७ ॥
अभिमानी नाहर बडो , भरमत फिरत उजार ।
सहजो नन्ही बाकरी , प्यार करै ससार ॥ ८ ॥
सीस कान मुख नासिका , ऊचे ऊचे ठाव ।
सहजो नीचे कारने , सब कोउ पूजै पाव ॥ ९ ॥
भली गरीबी नवनता , सकै न कोई मार ।
सहजो रुई कपास की , काटै ना तरवार ॥ १० ॥
प्रेम दिवाने जो भये , पलट गयो सब रूप ।
सहजो दृष्टि न आवई , कहा रक कह भूप ॥ ११ ॥
मै अखण्ड व्यापक सकल , सहज रहा भरपूर ।
ज्ञानी पावे निकट ही , मूरख जानै दूर ॥ १२ ॥
जोगी पावै जोग सू , ज्ञानी लहै विचार
सहजो पावै भक्ति सू , जाके प्रेम अधार ॥ १३ ॥
साल छिमा सन्तोष गहि , पाचो इन्द्री जीत ।
राम नाम ले सहजिया , मुक्ति होन की रीत ॥ १४ ॥
जब लग चावल धान मे , तब लग उपजै आय ।
जब छिलके कू तजि निकस , मुक्ति रूप ह्वै जाय ॥ १५ ॥

# दयाबाई

दयाबाई भी साधु चरनदास की शिष्या और सहजोबाई की गुरु-बहन थी। ये चरनदासजी की सजातीय अर्थात् ढूसर जाति की थी। चरन-दासजी के जन्मस्थान मेवाड़ के डेहरा नामक गाव मे इनका भी जन्म

हुआ था। वहा से ये अपने गुरूजी के साथ दिल्ली आकर भक्ति कमाती रही। दिल्ली ही मे इन्होने शरीर छोडा।

स० १८१८ मे इन्होने अपना पहला ग्रथ दयाबोध रचा। सहजोबाई की तरह इन्होंने भी गुरु चरनदासजी की महिमा खूब गाई है। इनकी कविता बडी मधुर और प्रेम से युक्त है। हम यहा दयाबोध से कुछ दोहे उद्धृत करते हैं—

जो पग धरत सो दृढ धरत, पग पाछे नहि देत।
अहङ्कार कू मार करि, राम रूप जस लेत॥ १॥
बौरी ह्वै चितवत फिरू, हरि आवे केहि ओर।
छिन उट्ठू छिन गिरि परू, राम दुखी मन मोर॥ २॥
प्रेम पुञ्ज प्रकटै जहा, तहा प्रकट हरि होय।
दया दया करि देत है, श्रीहरि दर्शन सोय॥ ३॥
"दया कुवर" या जगत मे, नही रह्यो थिर कोय।
जैसो बास सराय को, तैसो यह जग होय॥ ४॥
तात मात तुम्हरे गये, तुम भी भये तयार।
आज काल मे तुम चलौ, दया होहु हुसयार॥ ५॥
बडो पेट है काल को, नेक न कहू अघाय।
राजा रोना छत्रपति, सब कूं लीले जाय॥ ६॥
दुख तजि सुख की चाह नहि, नहि बैकुण्ठ बेवान।
चरन कमल चित चहत हो, मोहि तुम्हारी आन॥ ७॥
साध सग मे सुख बड़ो, जो करि जाने कोय।
आधो छिन सतसग को, कलमख डारे खोय॥ ८॥

## ठाकुर

ठाकुर असनी के रहने वाले ब्रह्मभट्ट थे। इनका जन्म स० १७९२ के लगभग कहा जाता है। इनकी कविता इतनी लोकप्रिय है कि कभी-कभी उसका उपयोग कहावतो की तरह किया जाता है। ठाकुर नाम के कई कवि हुए, परन्तु सब से प्रसिद्ध असनी वाले ही है। प्रेम का वर्णन

इनकी कविता का मुख्य गुण है। नीचे हम कुछ कविताए उद्धृत करते है, उनसे ठाकुर के हृदय का बडा सुन्दर परिचय मिलता है।

वैर प्रीति करिबे की मन मे न राखै सक राजा राव देखिकै न छाती धकधाकरी। अपनी उमग की निबाहिबे की चाह जिन्हे एक सो दिखात तिन्हे बाघ और बाकरी॥ ठाकुर कहत मैं विचार कै विचार देखो यहै मरदानन की टेक बात आकरी। गही जौन गही जौन छोडी तौन छोड दई करी तौन करी बात ना करी सो ना करी॥ १॥

सामिल मे पार मे सरीर मे न भेद राखै हिम्मत कपट को उघारै तौ उघरि जाय। ऐसे ठान ठानै तौ बिनाहू जन्त्र मन्त्र किये साप के जहर को उतारै तौ उतरि जाय। ठाकुर कहत कछु कठिन न जानो अब, हिम्मत किये ते कहो कहा न सुधरि जाय। चारि जने चारिहू दिसा ते चारो कोन गहि मेरु को हिलाय कै उखारै तौ उखरि जाय॥ २॥

अन्तर निरन्तर के कपट कपाट खोलि प्रेम को झलाझल हिये मे छाइयतु है। लटी भई आप सो भई है करतूत जौन बिरह विथा की कथा को सुनाइयतु है। ठाकुर कहत वाहि परम सनेही जानि दुख सुख आपने विधि सो गाइयतु है। कैसो उतसाह होत कहत मते की बात जब कोऊ सुघर सुनैया पाइयतु है।॥ ३॥

जौलों कोऊ पारखी सो होन नहिं पाई भेंट तब ही लो तनक गरीब लो सरीरा हैं। पारखी सो भेंट होत मोल बढे लाखन को, गुनन के आगर सुबुद्धि के गभीरा है॥ ठाकुर कहत नहिं निन्दो गुनवारन को देखिबे को दीन ये सपूत सूरवीरा है। ईश्वर के आनस तें होत ऐसे मानस जे मानस सहूरवारे धूर भरे हीरा हैं॥ ४॥

सुकवि सिपाही हम उन रजपूतन के दान युद्ध वीरता मे नेकहू न सुरके। जस के करैया है मही के महिपालन के हिये के बिशुद्ध है सनेही साचे उर के॥ ठाकुर कहत हम वैरी बेवकूफन के जालिम दमाद है अदेनिया ससुर के। चोजन के चोजी महा मौजिन के महाराज हम कविराज है पै चाकर चतुर के॥ ५॥

हिलिमिलि लीजिये प्रबीनन ते आठो जाम कीजिये अराम जासो जिय को अराम है। दीजिये दरस जाको देखिबे को हौस होय कीजिये न काम जासो नाम बदनाम है। ठाकुर कहत यह मन मे विचारि देखो जस अपजस को करैया सब राम है। रूप से रतन पाय चातुरी से धन पाय नाहक गवाइबो गवारन को काम है।

कोमलता कज ते गुलाब ते सुगन्ध लैके चन्द ते प्रकाश कियो उदित उजेरो है। रूप रति आनन ते चातुरी सुजानन ते नीर लै निवानन ते कौतुक निबेरो है॥ ठाकुर कहत यो मसालो-विधि कारीगर रचना निहारि जन होत चित चेरो है। कचन को रग लै सवाद लै सुधा को बसुधा को सुख लूटि कै बनायौ मुख तेरो है॥ ९॥

ग्वारन को यार है सिंगार सुखसोभन को साचो सरदार तीन लोक रजधानी को। गाइन के सग देख आपनो बखत लेख आनन्द विशेष रूप अकह कहानी को॥ ठाकुर कहत साचो प्रेम को प्रसगवारो जा लख अनग रग दग दधिदानी को। पुण्य नदजू का अनुराग ब्रजवासिन को भाग जसुमति को सुहाग राधारानी को॥ ८॥

आपने बनाइबे को और को बिगारिबे को सावधान ह्वै के सीखे द्रोह से हुनर है। भूल गये करुनानिधान स्याम मेरे जान जिनको बनायो यह विश्व को बितर है॥ ठाकुर कहत पगे सबै मोह माया मध्य जानत या जीवन को अजर अमर है। हाय! इन लोगन को कौन सो उपाय जिन्हे लोक को न डर परलोक को न डर है॥ ९॥

लगी अन्तर मे करै बाहिरि को विन जाहिर कोऊ न मानतु है।
दुख औ सुख हानि औ लाभ सबै घर की कोउ बाहर भानतु है।
कवि ठाकुर आपनी चातुरी सो सबही सब भाति बखानतु है।
पर बीर मिलै विछुरै की विथा मिलि कै विछुरै सोई जानतु है॥१०॥
वा निरमोहिनी रूप की रासि जो ऊपर कै उर आनत ह्वै है।
बाहर बार विलोकि घरी घरी सूरति तौ पहिचानति ह्वै है॥

ठाकुर या मन की परतीति है जो पै सनेह न मानति ह्वै है।
आवत है नित मेरे लिए इतनो तो बिसेसहू जानति ह्वै है ॥११॥
यह प्रेम कथा कहिये किहि सो सो कहेसो कहा कोऊ मानत है।
पर ऊपरी धीर बधायो चहै तन रोग न वा पहिचानत है॥
कहि ठाकुर जाहि लगी कसकै सु तो को कसकै उर आनत है।
बिन आपने पाय बेवाय गये कोऊ पीर पराई न जानत है ॥१२॥
ये जे कहै ते भले कहिबो करै मान सही सौ सबै सहि लीजै।
ते बकि आपुहि ते चुप होयगी काहे को काहुवै उत्तर दीजै॥
ठाकुर मेरे' मते की यहै घनि मान कै जोवन रूप पतीजै।
या जग मैं जनमैं को जियै को यहै फल है हरि सो हित कीजै ॥१३॥
एक ही सो चित चाहिये और लौ बीच दगा को परै नहि टाको।
मानिक सो चित बेचि कै जू अब फेरि कहा परखावनो ताको॥
ठाकुर काम नही सब को इक लाखन में परबीन है जाको।
प्रीति कहा करिबे मे लगै करिकै इक ,और निबाहनो वाको ॥१४॥
वह कज सो कोमल अग गुपाल को सोऊ सबै पुनि जानती हौ।
बलि नेक रुखाई धरे कुम्हलात इतौऊ नही पहिचानती हौ॥
कवि ठाकुर या कर जोरि कह्यो इतने पै बनै नहि मानती हौ।
दृग बान ये भौह कमान कहौ अब कान लौ कौन पै तानती हौ ॥१५॥

# बोधा

बोधा का पहला नाम बुद्धिसेन था। ये सरवरिया ब्राह्मण थे। कोई कोई इनका निवास-स्थान राजापुर ( जिला बादा ) और कोई कोई फिरोजाबाद ( जिला आगरा ) बतलाते है। परन्तु फीरोजाबादी बोधा एक भिन्न कवि हुए है। पन्ना से उनका कोई सम्बन्ध नही था। उनके वशज अब तक फीरोजाबाद मे वर्तमान है। उन्होने "बागविलास" नामक काव्य-ग्रन्थ की रचना की थी, जो अब दुष्प्राप्य हो रहा है। जान पड़ता है कि पन्ना दरबार से सम्बन्ध रखने वाले बोधा राजापुर ही के

रहने वाले थे। इनके जन्म-मरण का ठीक समय अभी निश्चित नही हो सका है। शिवसिंह सरोज मे इनका जन्म-सवत् १८०४ लिखा है। अनुमान से यही ठीक जान पडता है।

पन्ना दरबार मे इनके सम्बन्धियो की अच्छी प्रतिष्ठा थी। बालकपन मे ये उन्ही के पास जाकर रहने लगे। ये हिन्दी के अतिरिक्त सस्कृत और फारसी के अच्छे पडित थे। इनके गुणो से प्रसन्न होकर पन्ना-नरेश इन्हे बहुत चाहने लगे। प्यार के कारण उन्होने ही इनका नाम बुद्धिसेन से बोधा रख दिया। दरबार मे सुभान नाम की एक वेश्या थी। बोधा ने उससे कुछ सम्बन्ध स्थापित कर लिया। जब इसका समाचार राजा साहब को मालूम हुआ, तब उन्होने बोधा को छ महीने के लिए अपने राज से निकाल दिया। इस अवसर मे इन्होने इस वेश्या के विरह मे "विरह वारीश" नामक ग्रन्थ की रचना की। छ मास के उपरान्त जब ये फिर दरबार मे गये, और राजा साहब को इन्होने अपना "विरह-वारीश" सुनाया, तब राजा ने प्रसन्न होकर इनसे वर मागने को कहा। इन्होने कहा—"सुभान अल्लाह"। राजा ने प्रसन्न होकर सुभान वेश्या इन्हे समर्पित की। अपने "इश्कनामा" मे इन्होने सुभान की बडी प्रशसा की है। पन्ना ही मे इनका देहान्त हुआ।

बोधा प्रेमी कवि थे। प्रेम के उपासक थे। प्रेम के मर्मज्ञ थे। इनकी कविता-तरगिणी मे प्रेम ही की लहर लहराती है। यहा हम इनके कुछ छन्द उद्धृत करते है—

अति खीन मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाव दै आवनो है।
सुइ बेह ते द्वार सकी न तहा परतीति को टाडो लदावनो है॥
कवि बोधा अनी घनी नेजहु ते चढि तापे न चित्त डरावनो है।
यह प्रेम को पन्थ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो है॥ १॥

एक सुभान के आनन पै कुरबान जहां लगि रूप जहा को।
कैयो सतक्रतु की पदवी लुटियै लखि कै मुसुकाहट ताको॥

सोक जरा गुजरा न जहा कवि बोधा जहा उजरा न तहा को ।
जान मिलै तो जहान मिलै नहिं जान मिलै तो जहान कहा को ।। २ ।।
लोक की लाज औ सोक प्रलोक को वारिये प्रीति के ऊपर दोऊ ।
गाव को गेह को देह को नातो सनेह मे हातो करै पुनि सोऊ ।।
बोधा सुनीति निबाह करै धर ऊपर जाके नही सिर होऊ ।
लोक की भीति डेरात जो मीत तौ प्रीति के पैडे परे जनि कोऊ ।। ३ ।।
बोधा किसू सो कहा कहिये सो बिथा सुनि पूरि रहै अरगाइ कै ।
याते भले मुख मौन धरै उपचार करै कहू औसर पाइ कै ।।
ऐसो न कोऊ मिल्यो कबहू जो कहै कछु रंच दया उर लाइ कै ।
आवतु है मुख लौ बढि कै फिरि पीर रहै या सरीर समाइ कै ।। ४ ।।
कबहू मिलिबो कबहू मिलिवो यह धीरज ही में धरैबो करै ।
उर ते कढि आवै गरे ते फिरै मन की मनही मे सिरैबो करै ।।
कवि बोधा न चाउ सरी कबहू नितही हरवासो हिरैबो करै ।
सहते ही बनै कहते न बनै मन ही मन पीर पिरैबो करै ।। ५ ।।

बिछुरे दरद न होत , खर सूकर कूकुरन को ।
हस मयूर कपोत , सुघर नरन बिछुरन कठिन ।।६।।
बोधा सब जग ढूढ्यो फिरि फिरि धाइ ।
जेहि मनही मन चाहत सो न लखाइ ।।७।।

हिलि मिलि जानै तासो मिलि कै जनावै हेत हित को न जानै ताको हितू न विसाहिये । होय मगरूर तापै दूनी मगरूरी कीजे लघु ह्वै चलै जो तासो लघुता निवाहिये ।। बोधा कवि नीति को निबेरो यही भाति अहै आपको सराहै ताहि आपहू सराहिये । दाता कहा सूर कहा सुन्दर सजान कहा आपको न चाहै ताके बाप को न चाहिए ।।८।।

वह प्रीति की रीति को जानत थो तब ही तौ बच्यो गिरि ढाहन ते।
गज ,ज चिकारि कै प्रान तज्या न जरयौ साग होलिका दाहन ते ।।
कवि बोधा कछू न अनोखी यहै का बनै नही प्रीति निवाहन तें ।
प्रहलाद की ऐसी प्रतीति करै तब क्यो न कढै प्रभु पाहन ते ।।९।।

# पदमाकर

पदमाकर का जन्म स० १८१० मे बादा मे हुआ, और स० १८९० मे ये कानपुर मे गङ्गातट पर स्वर्गवासी हुए। ये तैलङ्ग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम मोहनलाल भट्ट था। पदमाकर सस्कृत और प्राकृत के अच्छे पडित थे। ये कुछ दिनो तक जयपुर के महाराज जगतसिह के पास भी रहे थे, और उन्ही के नाम पर इन्होने जगद्विनोद नामक बडा रोचक काव्य ग्रथ बनाया। इनके रचे हुए जगद्विनोद, गङ्गालहरी, हिम्मत बहादुर विरदावली, पद्मामरण, आलीजाप्रकाश, भाषा हितोपदेश और प्रबोधपचासा ग्रन्थ हैं, पर सब प्रकाशित नही है। इन्होने राम रसायन नाम से बाल्मीकि रामायण का पद्यानुवाद भी किया था। इनके प्राय सब ग्रथ भारत जीवन प्रेस बनारस मे छप चुके है। कविता द्वारा इन्होने बडा धन प्राप्त किया था। ये सदैव राजा महाराजाओ की तरह रहा करते थे। इनकी कविता मे अनुप्रास का आनद खूब मिलता है। हम यहा इनकी कविता के कुछ नमूने प्रस्तुत करते है—

जाहिरै जागत सी जमुना जब बूडै बहै उमहै वह बेनी।
त्यो पदमाकर हीरा के हारन गङ्ग तरङ्गन सी सुखदेनी॥
पायन के रग सो रगि जात सी भाति सरस्वति सेनी।
पैरै जहाई जहा वह बाल तहा तहा ताल मे होत त्रिवेनी॥ १॥

ये अलि या बलि के अधरानि मे आनि चढी कछु माधुरईसी।
ज्यो पदमाकर माधुरी त्यो कुच दोउन की चढती उनईसी॥
ज्यो कुच त्योही नितम्ब चढे कछु ज्योही नितम्ब त्यो चातुरईसी।
जानि न ऐसी चढाचढि मे किहि धौ कटि बीच ही लूटि लईसी॥ २॥

चौक मे चौकी जराय जरी तिहि पै खरी बार बगारत सौधे।
छोरि परी है सुकचुकी न्हान को अगन तेज मे ज्योति के कौधे॥
छाइ उरोजन की छबि ज्यो पदमाकर देखत ही चकचौधे।
भागि गई लरिकाई मनौ लरिकै दुहु दुन्दुभि औधे॥ ३॥

जाहि न चाह कहू रति की सु कछू पति को पतिय न लगी है।
त्यो पदमाकर आनन मे रुचि कानन भौहै कमान लगी है ॥
देत तिया न छुवै छतिया बतियान मे तो मुसकान लगी है ।
प्रीतम पान खवाइवे को परयङ्क के पास लो जान लगी है ॥ ४ ॥

आई जु चालि गुपाल घरै ब्रजबाल विशाल मृणाल सो बाही ।
त्यो पदमाकर मूरति मे रति छू न सकै कितहू परछाही ॥
शोभित शम्भु मनो उर ऊपर मौज मनोभव की मनमाही ।
लाज बिराज रही अखियान मे प्रान मे कान्ह जबान मे नाही ॥ ५ ॥

सोरह शृगार कै नवेली के सहेलिन हू कीन्ही केलि मन्दिर मे कलपित केरे है । कहै पदमाकर सुपास हो गुलाब पास खासे खसखास खसबोईन के ढेरे है ॥ त्यो गुलाब नीरन सो हीरन के हौज भरे दम्पति मिलाप हित आरती उजेरे है । चोखी चादनीन पर चौरस चमेलिन के चन्दन की चौकी चारु चादी के चगेरे है ॥ ६ ॥

चहचही चहल चहूघा चारु चन्दन की चन्द्रन चमीन चौक चौकन चढो है आब । कहै पदमाकर फराकत फरसवन्द फहरि फुहारन की फरस फवी है फाव ॥ मोद मदमाती मनमोहन मिले के काज साजि मन मन्दिर मनोज कैसी महताब । गोल गुल गादी गुल गोल मे गुलाब गुल गजक गुलाबी गुल गिन्दुक गले गुलाब ॥ ७ ॥

कौन है तू कित जाति चली बलि बीती निशा अधराति प्रमाने ।
हौ पदमाकर भावति हौ निज भावत पै अबही मुहि जाने ॥
तो अलवेली अकेली डरै किन क्यो डरौ मेरी सहाय के लाने ।
है सखि सग मनोभव सो भट कान लो बान सरासन ताने ॥ ८ ॥

झाकतिहै का झरोखा लगो लग लागिबेको यहा झेल नही फिर ।
त्यो पदमाकर तीखे कटाक्षन कीसर कौसर सेल नही फिर ॥
नैन नही कि घलाघल के घन घावन को कछु तेल नही फिर ।
प्रीति पयोनिधि मे धसिकै हसिकै कढ़िबो हसी खेल नही फिर ॥ ९ ॥

बैन: सुधा के सुधाहँसी हसी बसुधा मे सुधा की सटा करती हैं ।
त्यो पदमाकर बारहिं बार सुबार बगारि लटा करती हैं ॥
बीर बिचारे बटोहिन पैं इक काज ही तौ यो लटा करती हैं ।
बिज्जु छटासी अटा पै चढी सु कटाछनि घालि कटा करती हैं ॥१०॥

कूलन मे केलि मे कछारन मे कुजन में क्यारिन मे कलिन कलीन किलकत है । कहै पदमाकर परागन मे पानहू में पानन मे पीक मे पलाशन पगत है ॥ द्वार मे दिशान मे दुनी मे देश देशन मे देखो दीप दीपन मे दीपत दिगत है । बीथिन मे ब्रज मे नबेलिन मे बेलिन मे बनन मे बागन मे बगरो बसंत है ॥ ११ ॥

पात बिन कीन्हे ऐसी भाति गन बेलिन के परत न चीन्हे जे ये लरजत लुञ्ज हैं । कहै पदमाकर बिसासी या बसत के सु ऐसे उतपात गात गोपिन के भुञ्ज है ॥ ऊधो यह सूधो सो सदेसौ कहि दीजो भलो हरि सो हमारे ह्या न फूले वन कुज है । किंशुक गुलाब कचनार औ अनारन की डारन पै डोलत अगारन के पुज है ॥ १२ ॥

ये ब्रजचन्द्र चलो किन वा ब्रज लूक बसत की ऊकन लागी ।
त्यो पदमाकर पेखो पलासन पावक सी मनो फूकन लागी ॥
वै ब्रजनारी बिचारी बधू बन बावरी लौ हिये हूकन लागी ।
कारी कुरूप कसाइन पै सु कुहू कुहू क्वैलिया कूकन लागी ॥१३॥

फहरै फुहारे नीर नहरै नदी सी बहै छहरै छबीन छाम छीटिन की छाटी है । कहै पदमाकर त्यो जेठ की जलाकें तहा पावे क्यो प्रवेस बेस बेलिन की बाटी है ॥ बारहू दरीन बीच चारहू तरफ तैसी बरफ बिछाई तापै शीतल सुपाटी है । गजक अगूर की अगूर से उचो है कूच आसव अगूर को अगूर ही की टाटी है ॥ १४ ॥

मल्लिकान मजुल मलिन्द मतवारे मिले मद मद मारुत मुहीम मनसा की है । कहै पदमाकर त्यो नादत नदीन नित नागर नबेलिन की नजर निशा की है ॥ दौरत दरेरे देत दादुर सुदूदे दीह दामिनी दमकनि दिसान

मे दशा की है । बद्दलनि बुन्दनि विलोको बगुलानि बाग बगलनि बेलिन बहार बरसा की है ।। १५ ।।

तालन पै ताल पै तमालन पै मालन पै बृन्दाबन बीथिन बहार बसीवट पै । कहै पदमाकर अखड रासमडल पै मण्डित उमडि महा कालिन्दी के तट पै ।। छिति पर छान पर छाजत छतान पर ललित लतान पर लाडिली के लट पै । आई भले छाई यह सरद जुन्हाई जिहि पाई छबि आजु ही कन्हाई के मुकट पै ।। १६ ।।

अगर की धूप मृगमद को सुगन्ध वंर बसन विशाल जाल अग ढाकियतु है । कहै पदमाकर सु पोन को न गौन जह ऐसे भौन उमंगि उमंगि छाकिअतु है ।। भोग औ सयोग हित सुरति हिमत ही मे एते और सुखद सहाय वाकियतु है । तान की तरग तरुणापन तर्रणि तेज तेल तूल तरुणि तमाल ताकियतु है ।। १७ ।।

गुलगुली गिल मै गलीचा है गुनी जन है चादनी है चिक है चिरागन की माला है । कहै पदमावर त्यो गजक गिजा है सजी सेज है सुराही है सुरा है और प्याला है ।। शिशिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्है जिनके अधीन एते उदित मसाला है । ताम तुकताला है बिनोद के रसाला है सुबाला है दुशाला है विशाला चित्रशाला है ।। १८ ।।

जात हती नित गोकुल मे हरि आवै तहा लखिकै मन सूना ।
तासो कहीं पदमाकर यो अरे सावरे बावरे तै हमे छूना ।।
आजधौ कैसी भई सजनी उत वा विधि बोल कढयोई कहू ना ।
आनि लगायो हियोसो हियोभरि आयो गरो कहि आयो कछूना ।।१९।।

शोभित सुमनवारी सुमना सुमनवारी कौनहू सुमनवारी को नही निहारी है । कहै पदमाकर त्यो बाधनू बसनवारी वा ब्रज बसनवारी ह्यो हरन हारी है ।। सुबरनवारी रूप सुबरनवारी सजै सुबरनवारी काम कर की सवारी है । सीकरनवारी स्वेद सीकरनवारी रति सीकरनवारी सो वसीकरनवारी है ।।२० ।।

अचल के ऐचे चल करत दृगचल को चचला ते चचल चलै न

भजि द्वारे को। कहै पदमाकर परै सी चौक चुम्बन मे छलनि छपावै कुच कुंभनि किनारे को॥ छाती के छुवे पै परी राती सी रिसाय गलबाही किये करै नाहिं नाहिं पै उचारे को। ही करति शीतल तमासे तुग ती करति सी करति रति मे बसीकरति प्यारे को॥ २१॥

फाग के भीर अभीरनि त्यो गहि गोविन्द लै गई भीतर गोरी।
भाय करी मन की पदमाकर ऊपर नाय अबीर की झोरी॥
छीन पितम्मर कम्मर तै सु बिदा दई मीड कपोलन रोरी।
नैन नचाय कही मुसुक्याय लला फिर आइयो खेलन होरी॥२२॥

कै रतिरग थकी थिर ह्वै परयक पै प्यारी परी मुख बाय कै।
त्यो पदमाकर स्वेद के बुन्द रहे मुकताहल से तन छाय कै॥
बिन्दु रचे मेहदी के लसे कर तापर यो रह्यो आनन आय कै।
इन्दु मनो अरविन्द पै राजत इन्द्रबधून से वृन्द बिछाय कै॥२३॥

रे मन साहसी साहस राख सु साहस सो सब जेर फिरैगे।
त्यो पदमाकर या सुख मे दुख त्यो दुख मे सुख सेर फिरैगे॥
वैसे ही वेणु बजावत श्याम सुनाम हमारो हू टेर फिरैगे।
एक दिना नहि एक दिना कबहू फिर वे दिन फेर फिरैगे॥२४॥

जैसो तै न मोसो कहू नेकहू डरात हुतो तैसो अब हौहू नेकहू न तोसो डरिहौ। कहै पदमाकर प्रचड जो परैगो तो उमड करि तोसो भुजदड ठोकि लरिहौ॥ चलो चलु चलो चलु बिचलु न बीच ही ते कीच बीच नीच तो कुटुम्ब को कचरिहौ। येरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि गगा के कछार मे पछार छार करिहौ॥ २५॥

जगजीवन को फल जानि परयो धनि नैननि को ठहरैयतु है।
पदमाकर ह्यो हुलसै पुलकै तनु सिन्धु सुधा के अन्हैयतु है॥
मन पैरत सो रस के नद मे अति आनन्द मे मिलि जैयतु है।
अब ऊचे उरोज लखे तिय के सुरराज के राज सो पैयतु है॥२६॥

पाली पैज पन की प्रवेश करि पावक मे पौन से सिताब सहगौन की गती भई। कहै पदमाकर पताका प्रेम पूरण की प्रकट पतिव्रत की सौगुनी

रती भई ।।' भूमिहू अकाशहू पतालहू सराहै सब जाको यश गावत पवित्र मो मती भई । सुनत पयान श्री प्रताप को पुरन्दर पै धन्य पटरानी जोधपुर मे सती भई ।।२७।।

चोरन गोरिन मे मिलि कै इतै आई है हाल गुवाल कहाकी ।
कौन बिलोकि रह्यो पदमाकर वा तिय की अवलोकनि बाकी ।।
धीर अबीर की धूधुरि मे कछु फेर सो कै मुख फेरिकै झाकी ।
कै गई काटि करेजनि के कतरे कतरे पतरे करिहा की ।।२८।।

घर ना सुहात ना सुहात बन बाहिर हू बाग ना सुहात जो खुशाल खुशबोही सो । कहै पदमाकर घनेरे धन धाम त्योही चैन ना सुहात चादनी हू योग जोही सो ।। साझ हू सुहात ना सुहात दिन माझ कछू व्यापी यह बात सो बखानत हो तोही सो । रातिहु सुहात ना सुहात परभात आली जब मन लागि जात काहू निरमोही सो ।।२९।।

बगसि वितुण्ड दिये झुण्डन के झुण्ड रिपु मुडन की मालिका दई ज्यो त्रिपुरारी को। कहै पदमाकर करोरन को कोष दये षोडसहू दीन्हे महादान अधिकारी को ।। ग्राम दये धाम दये अमित अराम दये अन्न जल दीने जगती के जीवधारी को । दाता जयसिह दोय बातै तौ न दीनी कहू बैरिन को पीठि और दीठि परनारी को ।।३०।।

सम्पति सुमेर की कुबेर की जो पावै ताहि तुरत लुटावत विलम्ब उर धारै ना । कहै पदमाकर सुहेम हय हाथिन के हलके हजारन के बितर बिचारै ना ।। दीन्हे गज बकस महीप रघुनाथ राय याहि गज धोखे कहू काहू देइ डारै ना । याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही गिरिते गरेते निज गोद ते उतारै ना ।।३१।।

देव नर किन्नर कितेक गुन गावत पै पावत न पार जा अनन्त गुन पूरे को । कहै पदमाकर सु गाल के बजावत ही काज करि देत जन जाचक जरूरे को ।। चन्द की छटान जुन पन्नग फटान जुत मुकुट बिराजै जटा जूटन के जूरे को । देखो त्रिपुरारिकी उदारता अपार जहा पैये फल चार फूल एक दै धतूरे को ।।३२।।

आनद के कन्द जग ज्यावत जगतबन्द्य दसरथनन्द के निबाहेई निबहिये कहै पदमाकर पवित्र पन पालिबे को चौर चक्रपानि के चरित्रन को चहिये ।। अवधबिहारी के बिनोदन मे बीधि बीधि गीधा गुह गोधे के गुनानुवाद गहिये । रैन दिन आठो जाम राम राम राम राम सीताराम सीताराम सीताराम कहिये ।।३३।।

हानि अरु लाभ ज्यान जीवन अजीवनहू भोगहू वियोगहू सयोगहू अपार है । कहै पदमाकर इते पै और केते कहो तिनको लख्यो न वेदहू मे निरधार है ।। जानियत याते रघुराय की कला को कहू काहू पार पायो कोऊ पावत न पार है । कौन दिन कौन छिन कौन घरी कौन ठौर कौन जाने कौन को कहा धो होनहार है ।।३४।।

व्याधहू ते बिहद असाधु हौ अजामिल लौ ग्राह ते गुनाही कहो तिनमे गिनाओगे । स्योरी हौ न सूद्र हौ न केवट कहू को त्यो न गोतमी तिया हौ जापै पग धरि आओगे ।। राम सो कहत पदमाकर पुकारि तुम मेरे महापापन को पारहू न पाओगे । झूठोही कलक सुनि सीता ऐसी सती तजी हौ तो साचोहू कलकी ताहि कैसे अपनाओगे ।। ३५ ।।

## लल्लूजीलाल

लल्लूजीलाल गुजराती ब्राह्मण, आगरे मे रहते थे । ये स० १८६० मे वर्तमान थे । कुछ दिनो तक ये कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज मे नौकर थे । वही इन्होने व्रजभाषा मिश्रित वर्तमान बोलचाल की भाषा मे भागवत दशम स्कध की कथा के आधार पर प्रेमसागर नामक एक ग्रथ लिखा । कथा गद्य मे है । कही कही हिन्दी के कुछ दोहे, चौपाइया भी है । वर्तमान गद्य के जन्मदाता ये ही कहे जाते है । प्रेमसागर के सिवा इनके रचे हुए निम्नलिखित ग्रथ है—लतायफ हिन्दी, भाषा हितोपदेश, सभाविलास, माधवविलास, सतसई की टीका, भाषा व्याकरण, मसादिरे भाषा, सिंहासन बत्तीसी, बैताल पच्चीसी, माधवानल और शकुतला । इनके रचे पद्यो के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है—

चूक कछू बालकसो परै । साधु न कबहू मन मे धरै ॥
घट घट माहि ज्योति ह्वै रहै । ताही सो जग निर्गुण कहै ॥
आपहि सिरजै आपहि हरै । रहै मिल्यो बांध्यो नहि परै ॥
भू आकाश वायु जल जोति । पचतत्व ते देह जो होति ॥
प्रभु की शक्ति सबनि मे रहै । वेद माहि विधि ऐसे कहै ॥
सहसव आहुति वली बखान्यो । परशुराम ताको बल भान्यो ॥
वेणु रूप रावण हो भयो । गर्व आपने सोऊ गयो ॥
भौमासुर वाणासुर कस । भये गर्व ते ते विध्वस ॥
श्रीमद गर्व करो जिन कोय । त्यागे गर्व सो निर्भय होय ॥
सुनौ मुनीस सोई बड भागी । जो सुर धेनु विप्र अनुरागी ॥
जा घर चरन साधु के परै । ते नर सुख सम्पति अनुसरै ॥
याचक कहा न मागई, दाता कहा न देय ।
गृहसुत सुन्दरि लोभ नहि, तन धन दे जस लेय ॥

## जयसिंह

जयसिह रीवा के महाराज थे । इनका जन्म स० १८२१ मे हुआ । १८९१ तक इन्होने राज्य किया । अपने जीवनकाल ही मे इन्होने राज्याधिकार अपने पुत्र विश्वनाथसिंह को सौप दिया था । ये लगभग १०० वर्ष तक जीवित रहे ।

जयसिंह बडे भक्त और सच्चे वैष्णव थे, यह इनकी रचना से अच्छी तरह बोध होता है। इन्होने १८ ग्रथो की रचना की थी । उनमे से कुछ के नाम ये है— कृष्णतरङ्गिणी, हरे चरितामृत, अयवेदान्त प्रकाश, निर्णय सिद्धान्त, गङ्गालहरी, हरिचरित्रचन्द्रिका। इनकी रचना सरस और अलकारपूर्ण होती थी । इनके ग्रथो मे हरिचरित्रचन्द्रिका इस समय हमारे सामने है । हम उसी में से कुछ छद उद्धृत करके पाठको के सामने रखते है—

वर्षा गई सरद ऋतु आई । नवल बधू सम सुखद सोहाई ॥
कमल वदन खञ्जन चख छाजे । सुरग सुमन बर बसन बिराजै ॥

कल मराल नव नूपुर बाजत। सुनि मुनि मानस मान विभाजत॥
फूली कास सु दुति धरि धाई। पतिव्रता कीरति जिमि पाई॥
बरसर लसहि सरोरुह फूले। सुकृती भूप प्रजागन तूले॥
महि जल सूखो प्रगटी महि इमि। नसत पखंड लसत श्रुति पथ जिमि॥
सरि सर जल इमि निर्मल छाजत। जिमि तजि विषय विरागी राजत॥

ककुभ कुटज आदिक बिना, विकसे कुसुम निकाय।
जिमि खल मद मथि नृप नगर, राख्यो सुजन बसाय॥

जल बिन जलद सेत छवि छाजत। सब धन दै जिमि दाता राजत॥
निर्मल भयो गगन घन फूटे। जिमि हिय विषय बासना छूटे॥
लसत इंदु उडगन मिलि ऐसो। नृप नय निपुन प्रजा जुत जैसो॥
परसि चांदनी यो छिति सोही। सती सो सौति पाइ जिमि जोही॥
जनमनरंजन खंजन कैसे। पूरब पुण्य समय फल जैसे॥
जलचर नित जल घटत न जानहि। आयु कमत जिमि जन नहिं मानहिं॥
रवि संताप शरद शशि नाशत। मोह नसत जिमिज्ञान प्रकाशत॥
छन छबि छबि नहिं गगन प्रकासै। तोषित हिय जिमि तृष्णा नासै॥

परसि कमल कुबलय बहत, वायु ताप नसि जाइ।
सुनत बात हरि गुननि जुत, जिमि जन पाप पराइ॥

कहु कहु बंधक सुमन सुहाये। जनु अनुरागी जन मन भाये॥
मदन मराल मिलो तजि मोरनि। अलि तजि चित्र कुसुम जनि कोलनि॥
बाल मराल मंजु धुनि करही। सामवेद मुनिवर उच्चरही॥
प्रफुलित उपवन जूही जाती। मनु नभ उडु पाती दरसाती॥
घन समीप सुरधनु न देखाही। जिमि न सुजन ढिग दुर्जन जाही॥
क्षुद्र नदी घटि चन्नी बनाई। जिमि खल विभव नसे नै जाई॥
सूखी कीच महीतल माही। ज्यो सत हिय कामादि सुखाही॥
पूरण अन्न सहित छिति छाजै। जिमि धनयुत दाता मति राजै॥

बन बाटिका उपवन मनोहर फूल फल तरु मूल से।
सर सरित कमल कलाप कुवलय कुमुद वन विकसे गसे॥

सुख लहत यो फल चखत मनु पीयत मधुप सो नीति सो।
मनु मगन ब्रह्यानन्द रस जोगीस मुनिगन प्रीति सो।।
कूजि रहे खग कुल मधुप, गुञ्जि रहे चहु ओर।
तेहि बन शिशु गोगन सकल, प्रविशे नन्दकिशोर।।

## रामसहाय दास

रामसहायदास के पिता का नाम भवानीदास था। इनका जन्म और मरण किस सवत् मे हुआ, इसका अभी तक कुछ पता नही चला है। भारतजीवन प्रेस, काशी मे इनका एक ग्रथ "शृगार सतसई" नाम से छपा है। वह प्रकाशक को स० १८९२ का हस्तलिखित मिला था। इनका कविताकाल स० १८७७ माना जाता है। इन्होंने अपने विषय मे अपने पिता के नाम के सिवा और कुछ नही लिखा। शृगारसतसई के सिवा वृत्त तरगिनी, ककहरा, राम सप्तसतिका और वाणी भूषन नामक ग्रन्थ भी रामसहायदास के रचे हुए सुने जाते है।

शृगारसतसई मे सात सौ दोहे बिहारी सतसई के टक्कर के है। वास्तव मे ये बिहारी के दोहो को लक्ष्य करके बनाये गये मालूम होते है।

शृगारसतसई से यहा कुछ दोहे उद्धृत किये जाते है—

सतरोहै मुख रुख किये, कहै रुखौहै बैन।
रैन जगे के नैन ये, सने सनेहु दुरै न।। १ ।।
खजन कज न सरि लहै, बलि अलि को न बखानि।
एनी की अखियान ते, ये नीकी अखियानि।। २ ।।
गुलुफन लौ ज्यो त्यो गयो करि करि साहस जोर।
फिर न फिर्यो मुरवानि चपि, चित अति खात मरोर।। ३ ।।
पोखि चन्दचूडहि अली, रही भली विधि सेइ।
खिनखिन खोटति नखनछद, न खनहु सूखन देइ।। ४ ।।
सीस झरोखे डारि कै, झाकी घूघुट टारि।
कैवर सी कसकै हिये, बाकी चितवनि नारि।। ५ ।।

बेनि कमान प्रसून सर , गहि कमनैत बसन्त ।
मारि मारि बिरहीन के , प्रान करैगी अन्त ॥ ६ ॥
मनरंजन तव नाम को , कहत निरंजन लोग ।
जदपि अधर अंजन लगे , तदपि न नीरस जोग ॥ ७ ॥
सखि संग जात हुती सुती , भट भेरो-भो जानि ।
सतरौंही भौंहन करी , बतरौंही अखियानि ॥ ८ ॥
भौंह उचै अखिया नचै , चाहि कुचै सकुचाय ।
दरपन में मुख लखि खरी , दरप भरी मुसुकाय ॥ ९ ॥
ल्याई लाल निहारिये , यह सुकुमारि विभाति ।
कुचके उचके भार ते , लचकि लचकि कटि जाति ॥ १० ॥

## ग्वाल

ग्वाल मथुरा निवासी ब्रह्मभट्ट सेवाराम के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १८४८ में और मरण १९२८ वि० में सुना जाता है। ये जगदम्बाके उपासक थे और शिवजी की भी आराधना किया करते थे। सं० १८७० में इन्होंने एक शिवमंदिर बनवाया था, जो मथुरा में अब तक है।

ग्वाल बालकपन में जब अपने गुरु दयालजी के पास पढ़ रहे थे, तब एक बार ये गुरुजी से प्रणाम करना भूल गये। गुरुजी ने इन्हें घमंडी कहकर निकाल दिया। इन्होंने बहुत अनुनय विनय की, पर गुरुजी प्रसन्न न हुए, तब ये यमुनातट के निकट गाय चराने लगे। कहा जाता है कि वन में इन्हें एक तपस्वी मिले, जिनकी ये तन मन से सेवा करने लगे। उनके लिए ये घर से भोजन भी ले जाया करते थे। एक दिन यमुना बहुत बढ़ी थी, तब भी उसके प्रबल प्रवाह को पार करते हुए ये भोजन लेकर तपस्वी महाराज की सेवा में जा उपस्थित हुए। इनकी भक्ति से तपस्वी बहुत प्रसन्न हुए। उनकी कृपा से इनकी बुद्धि का अपूर्व विकास हुआ और कवित्व-शक्ति जागृत हुई। इनकी प्रतिभा यहाँ तक बढ़ चली थी कि एक समय में ये आठ काम कर लेते थे। जैसे गप्प [illegible], [illegible]

बनाना, शिष्यो को पढाना, जगदम्बा, जगदम्बा कहते रहना, शतरज खेलना, अदृष्ट कथन करना, आगत पुरुषो से बात-चीत का सिलसिला कायम रखना, समस्यापूर्ति करना आदि। ये शतरज के अच्छे खिलाडी थे।

इनके दो पुत्र थे, खेमचन्द और रूपचन्द। दोनो पिता के समान ही कविता करते थे। ग्वाल का आना जाना पजाब मे बहुत रहता था। पंजाब के सिवा अन्य प्रान्तो मे भी इन्होने भ्रमण किया होगा, इसी से प्रान्ताय भाषाओ मे भी इनके छद मिलते है। कहा जाता है कि महाराजा रणजीतसिह के दरबार मे भी इनकी पहुच थी और महाराजा ने इनको कुछ जमान जायदाद भी दी थी, जो इनकी मृत्यु के बाद ले ली गई। ये कभी महाराज के साथ भ्रमण मे भी जाया करते थे।

इनके रचित ग्रन्थो की सख्या ६०, ७० तक कही जाती है। जिनमे से निम्नलिखित ग्रन्थ कही न कही से प्रकाशित हो चुके है—

१—रसरग, २—भक्त भावन, ३—नेह निबाहन, ४—कुब्जाष्टक, ५—कृष्णाष्टक, ६—रामाष्टक, ७—गणेशाष्टक, ८—गणेशाष्टक (दूसरा), ९—राधिकाष्टक, १०—गोपी पचीसी, ११—दृगशतक, १२—श्रीकृष्ण जी का नखशिख, १३—यमुना लहरी, १४—हमीरहठ, १५—कवि हृदय विनोद।

अप्रकाशित पुस्तको मे कुछ के नाम ये है—रसिकानन्द, साहित्यानद, कविदर्पण, साहित्यदर्पण, साहित्यदूषण, श्रृगार दोहा, श्रृगार कवित्त, कवित्त ग्रन्थ माला, वशी बीसा।

इनकी कविता चमत्कारपूर्ण होती थी। यहा इनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते है—

गीधे गीध तारि कै सुतारि कै उतारि कै जू धारि कै हिये मे निज बात जटि जायगी। तारि कै अवधि करी अवधि सुतारिबे की विपति विदारिबे की फास कटि जायगी॥ ग्वाल कवि सहज न तारिबो हमारो गिनो कठिन परैगी पाप पाति पटि जायगी। याते जो न तारिहो तुम्हारी सौंह रघुनाथ अधम उधारिबे की साख घटि जायगी॥ १॥

फुटकर

ईरषा की सैन लिये कलिजुग जब आयो झूठ के नगारे सो बजत दिन रात है। काम क्रोध लोभ मोह तेग तीर धनु नेजा अदया अखड तोप चड घहरात है॥ ग्वाल कवि गब्बर गसीले गोल गोला चलै टोला कूर बचनो के पूर लहरात है। हूजियो हुश्यार यार साच के मवासे माहि पाप की पताका आसमान फहरात है॥ १२॥

देखा कलिजू के राजनीति को तमासो यह बासो कियो आय हर एक की अकल पै। खानदानवारे पानदान लिये दौरत है तान गानवारे बैठे जोवत महल पै॥ ग्वाल कवि कहै चारु चतुरन को चैन है न ऐस में रहत लैस कूर चढे बल पै। मलमल धारे जे वै धूर रहे मलमल मल-खानबारे सोवैं सेज मखमल पै॥ १३॥

जाकी खूब खूबी खूब खूबन कै खूबी इहा ताकी खूब खूबी खूब खूबी नभ गाहना। जाकी बदजाती बदजाती इहा चारन मैं ताकी बदजाती बदजाती ह्वाँ उराहना॥ ग्वाल कवि येही परसिद्ध सिद्ध ते है जग वही परसिद्ध ताकी इहा ह्वा सराहना। जाकी इहा चाहना है ताकी वहा चाहना है जाकी इहा चाहना है ताकी वहा चाहना॥ १४॥

चाहिये जरूर इनसानियत मानस कौ नौबत बजे पै फेर भेद बजनो कहा। जात औ अजात कहा हिन्दू औ मुसलमान जाते कियो नेह फेर ताने भजनो कहा॥ ग्वाल कवि जाके लिये सीस पै बुराई लई लाजहू गमाई कहो फेर लजनो कहा। यातो रग काहूके न रगिये सुजान प्यारे रग तो रगेई रहै फेर तजनो कहा॥ १५॥

जिसका जितेक साल भर मे खरच तिसे चाहिये तौ दूना पै सवायो तो कमा रहै। हूर या परी सी नूर नाजनी सहूरवारी हाजिर हमेश होय तौ दिल थमा रहै॥ ग्वाल कवि साहब कमाल इल्म सोहबत हो याद मे गुसैया के हमेश विरमा रहै। खाने को हमा रहै न काहू की तमा रहै जो गाठ मे जमा रहै तो खातिर जमा रहै॥ १६॥

गङ्गा के न गौरि के गिरीस के न गोविन्द के गोत के न जोत के न

जाये राहगीर के। काहू के न सगी रतिरगी भैन भानजी के जी के अति खोटे सोटे खैहे जमवीर के ॥ ग्वाल कवि कहे देखो नारी को खसम जानै धर्म को पसम जानै पातक सरीर के। निमकहराम वदकाम करै ताजे-ताजे वाजे वाजे वेसहूर गुरू के न पीर के ॥ १७ ॥

किये है करार सो बिसार दये दगादार नन्द के कुमार सङ्ग को मजोगिनी बनै। कौन मुख लैके तोहि ऊधव पठायो इहा कैसे कही वाने हाय लङ्क लोगिनी बनै ॥ ग्वाल कवि याते एक बात तू हमारी सुन चुनि कै कहः है यह तोय भोगिनी बनै। कूबरी को कूब काटि लाय दै सितावी हमै टोपी करि ताकी तब गोपी जोगिनी बनै ॥ १८ ॥

सुन्दर सरसं सूहे सोसनी गुलावी पीरे नाफर नरङ्गा आवी तूसी सजि लायो है। मूगिया सवज कांही कासनी सुन्हेरी सेत सन्दली सरवती औ नील दरसायो है ॥ अगरई किसमिसी जोजई कपूरी स्याह तीजन कू वाम हेत कामवर छायो है। चतुर प्रवीन सखी अचरज भयो आज सावन मे इन्द्र रगरेज वनि आयो है ॥ १९ ॥

दिया है खुदा ने खूब खुसी करो ग्वाल कवि खाव पिओ देव लेव यही रह जाना है। राजा राव उमराव केते वादशाह भये कहा ते कहा को गयो लाग्यो ना ठिकाना है ॥ ऐसी जिन्दगानी के भरोसे पै गुमान ऐसे देस देस घूमि-घूमि मन वहलाना है। आये परवाना पर चले ना वहाना इहा नेकी करि जाना फेरि आना है न जाना है ॥ २० ॥"

# दीनदयाल गिरि

वावा दीनदयाल गिरि काशी के पश्चिम द्वार पर विनायक देव के पास रहते थे। ये दसनामी सन्यासियो मे थे। इनके जन्मकाल का कुछ ठीक पता नही चलता। जाति का भी ठीक निश्चय नही। इतना अवश्य निश्चित है कि वनारस के आसपास के किसी ब्राह्मण या क्षत्रिय कुल मे इनका जन्म हुआ था। ये वडे सहृदय और उदार थे। साम्प्रदायिक दुराग्रह इनमे छू भी नहीं गया था। स्वभाव अत्यन्त सरल और विनोदप्रिय

था। ये बात बात मे लोकोक्तियो का प्रयोग करके लोगो को खूब हसाते थे। बडे दयावान थे। दूसरे का दु ख नही देख सकते थे। पर स्वाभिमान की मात्रा कम नही थी। कितने ही दु ख मे रहने पर भी किसी से कुछ मागते न थे। काशी-नरेश तथा तत्कालीन अन्य राजा महाराजा समय-समय पर गुप्त रूप से इनकी सहायता करते थे। कवियो का आना-जाना बराबर लगे रहने से इनकी आर्थिक दशा अच्छी न रहती थी। अमेठी के राजा साहब इन्हे अपने यहा ले जाना चाहते थे, पर ये काशी छोड़कर कही न गये। मणिकर्णिका घाट के निकट छप्पन विनायक पर इनका देहान्त हुआ। प० विजयानन्द त्रिपाठी ने इनका मृत्युकाल स० १९२२ बतलाया है। अन्य जानकारो के कथन से भी यही ठीक जान पडता है। यह भी सुनने मे आया है कि ये बहुत वृद्ध होकर मरे।

बाबा दीनदयाल के ग्रन्थो से यह पता चलता है कि ये उच्च श्रेणी के कवि थे। इनकी कविता की भाषा और भाव दोनो सरस और स्वच्छ है। शिवसिह सरोजकार ने इनके सम्बन्ध मे लिखा है कि "ये कवि सस्कृत के बडे महान् पडित थे और उन्होने भाषा साहित्य मे अन्योक्ति कल्पद्रुम नामक ग्रन्थ बहुत ही सुन्दर बनाया है और अनुराग बाग और बाग-बहार ये दो ग्रन्थ भी इनके बहुत विचित्र है।"

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने इनकी एक ग्रन्थावली प्रकाशित की है। इनके जीवन की बहुत-सी बाते हमने उसी से ली है। ग्रन्थावली मे कुल पाच ग्रन्थ है, अनुराग बाग, दृष्टान्त तरङ्गिणी, अन्योक्ति-माला, वैराग्य दिनेश और अन्योक्ति कल्पद्रुम। शिवसिह सरोज मे इनके एक और ग्रन्थ बागबहार का नाम दिया हुआ है, पर अभी तक उसका पता नही चला है। शायद अनुराग बाग ही का दूसरा नाम बाग बहार हो। अनुराग बाग स० १८८८ मे, दृष्टान्त तरगिणी १८७९ मे, वैराग्यदिनेश १९०६ मे और अन्योक्ति-कल्पद्रुम १९१२ मे रचा गया। अन्योक्ति-माला का निर्माण-काल पुस्तक मे वर्णित नही है।

अन्योक्ति-कल्पद्रुम इसका परिवर्द्धित और सशोधित सस्करण जान पडता है।

इनकी कविता के कुछ नमूने यहा दिये जाते हैं—

**घनाक्षरी**

छोड्यो गृहकाज कुललाज को समाज सबै एक व्रजराज सो कियो री प्रीतिपन है। रहत सदाई सुखदाई पदपकज मे चचरीक नाई भाई छाडे नाहि छन है॥ रतिपति मूरति विमोहन को नेम धरि लिखै प्रेम रग भरि मति के सदन है। कुअर कन्हाई की लुनाई लखि माई मेरो चेरो भयो चित औ चितेरो भयो मन है॥

**दोहे**

जा मन होय मलीन सो, पर सपदा सहै न।<br>
होत दुखी चित चोर को, चितै चद रुचि रैन॥ १॥<br>
तूठे जाके फल नही, रूठे बहु भय होय।<br>
सेव जु ऐसे नृपति को, अति दुरमति ते लोय॥ २॥<br>
वहु छुद्रन के मिलन ते, हानि वली की नाहि।<br>
जूथ जम्बुकन ते नही, केहरि कहु नसि जाहि॥ ३॥<br>
पराधीनता दुख महा, सुख जग मे स्वाधीन।<br>
सुखी रमत सुक बन विषे, कनक पीजरे दीन॥ ४॥<br>
नहा नहीं कछु भय जहा, अपनी जाति न पास।<br>
काठ विना न कुठार कहु, तरु को करत विनास॥ ५॥<br>
नही रूप कछु रूप है, विद्या रूप निधान।<br>
अधिक पूजियत रूप ते, विना रूप विद्वान॥ ६॥<br>
सरल सरल ते होय हित, नही सरल अरु वक।<br>
ज्यो सर सूधहि कुटिल धनु, डारै दूर निसक॥ ७॥<br>
केहरि को अभिषेक कव, कीन्हो विप्र समाज।<br>
निज भुज बल के तेज ते, विपिन भयो मृगराज॥ ८॥

इक बाहर इक भीतरे, इक मृदु दुहु दिसि पूर।
सोहत नर जग त्रिविध ज्यों, बेर बदाम अगूर ॥ ९ ॥
वचन तजैं नहिं सतपुरुष, तजैं प्रान बरु देस।
प्रान पुत्र दुहु परिहरयो, वचन हेत अवधेस ॥ १० ॥

## कुंडलिया

जिनतरुको परिमिल परसि, लियो सुजस सब ठाम।
तिन भञ्जन करि आपनो, कियो प्रभञ्जन नाम ॥
कियो प्रभञ्जन नाम, बडो कृतघन बरजोरी।
जब जब लगी दवागि, दियो तब झोंकि झकोरी ॥
बरनै दीनदयाल, सेउ अब खल थल मरुको।
ले सुख सीतल छाह, तासु तोरयो जिन तरुको ॥ १ ॥

केतो सोम कला करो, करो सुधा को दान।
नही चन्द्रमनि जो द्रवै, यह तेलिया पखान ॥
यह तेलिया पखान, बडी कठिनाई जाकी।
टूटी याके सीस, बीस बहु बाँकी टाकी ॥
बरनै दीनदयाल, चद तुमही चित चेतो।
कूर न कोमल होहि, कला जो कीजे केतो ॥ २ ॥

बरखै कहा पयोद इत, मानि मोद मन माहिं।
यह तो ऊसर भूमि है, अंकुर जमिहै नाहिं ॥
अंकुर जमिहै नाहिं, बरष शत जो जल दैहै।
गरजै तरजै कहा, वृथा तेरो श्रम जैहै ॥
बरनै दीनदयाल, न ठौर कुठौरहि परखै।
नाहक गाहक बिना, बलाहक ह्यां तू बरखै ॥ ३ ॥

भौरा अन्त बसन्त के, है गुलाब इहि रागि।
फिरि मिलाप अति कठिन है, या बन लगे दवागि ॥
या बन लगे दवागि, नही यह फूल लहैगो।
ठौरहि ठौर भ्रमात, बडो दुख तात सहैगो ॥

बरनै दीनदयाल , किते दिन फिरिहै दौरा ।
पछतैहै कर दये , गये ऋतु पीछे भौरा ॥ ४ ॥
रभा झूमत हौ कहा , थोरे ही दिन हेत ।
तुमसे केते ह्वै गये , अरु ह्वै है यहि खेत ॥
अरु ह्वै है यहि खेत , मूल लघु साखा हीने ।
ताहू पै गज रहै , दीठि तुम पै प्रति दीने ॥
बरनै दीनदयाल , हमै लखि होत अचम्भा ।
एक जन्म के लागि , कहा झुकि झूमति रम्भा ॥ ५ ॥
नाही भूलि गुलाव तू , गुनि मधुकर गुन्जार ।
यह बहार दिन चार की , वहुरि कटीली डार ॥
बहुरि कटीली डार , होहिगी ग्रीषम आये ।
लुवै चलेगी सग , अग सब जैहै ताये ॥
बरनै दीनदयाल , फूल जौलो तो पाही ।
रहे घेरि चहु फेरि , फेरि अलि ऐहै नाही ॥ ६ ॥
टूटे नख रद केहरी , वह बल गयो थकाय ।
हाय जरा अब आइ कै , यह दुख दियो बढाय ॥
यह दुख दियो बढाय , चहू दिसि जबुक गाजै ।
ससक लोमरी आदि , स्वतन्त्र करै सब राजै ॥
बरनै दीनदयाल , हरिन विहरै सुख लूटे ।
पगु भयो मृगराज , आज नख रद के टूटे ॥ ७ ॥
पैही कीरति जगत मे , पीछे धरो न पाव ।
छत्री कुल के तिलक हे , महा समर या ठाव ॥
महा समर या ठाव , चलै सर कुन्त कृपानै ।
रहे वीर गन गाजि , पीर उर मे नहि आनै ॥
बरनै दीनदयाल , हरखि जौ तेग चलैहो ।
ह्वैहो जीते जसी , मरे सुरलोकहि पैहो ॥ ८ ॥

भारी भार भरयो बनिक , तरिबो सिन्धु अपार ।
तरी जरजरी फसि परी , खेवनहार गवार ॥
खेवनहार गवार , ताहि पर पौन झकोरै ।
रुकी भवर मे आय , उपाय चलै न करोरै ॥
बरनै दीनदयाल , सुमिर अब तू गिरधारी ।
आरत जन के काज , कला जिन निज सभारी ॥ ९ ॥
आछी भाति सुवारि कै , खेत किसान बिजोय ।
नत पीछे पछतायगो , समै गयो जब खोय ॥
समै गयो जब खोय , नही फिर खेती ह्वैहै ।
लैहै हाकिम पोत , कहा तब ताको दैहै ॥
बरनै दीनदयाल , चाल तजि तू अब पाछी ।
सोउ न सालि सभालि , बिहगन ते विधि आछी ॥ १० ॥
सोई देस बिचार कै , चलिये पथी सुचेत ।
जाके जस आनन्द की , कविवर उपमा देत ॥
कविवर उपमा देत , रङ्क भूपति सम जामे ।
आवागवन न होय , रहै मुद मङ्गल तामे ॥
बरनै दीनदयाल , जहा दुख सोक न होई ।
ए हो पथी प्रबीन , देस को जैयो सोई ॥ ११ ॥
कोई सङ्गी नहि उतै , है इतहा को सङ्ग ।
पथी लेहु मिलि ताहि ते , सबसो सहित उमङ्ग ॥
सबसो सहित उमङ्ग , बैठि तरनी के माही ।
नदिया नाव सयोग , फेरि यह मिलिहै नाही ॥
बरनै दीनदयाल , पार पुनि भेट न होई ।
अपनी अपनी गैल , पथी जैहै सब कोई ॥ १२ ॥
ग्राहै प्रबल अगाध जल , या मे तीछन धार ।
पथी पार जो तू चहै , खेवनहार पुकार ॥

खेवनहार पुकार , वार नहिं कोऊ साथी ।
और न चले उपाव , नाव बिन एहो पाथी ॥
बरनै दीनदयाल , नही अब बूडै थाहे ।
रहे महामुख बाय , ग्रसन को भारो ग्राहे ॥ १३ ॥
राही सोवत इत कितै , चोर लगे चहु पास ।
तो निज वनके लेन को , गिनै नीद की स्वास ॥
गिनै नीद की स्वास , बास बसि तेरे डेरे ।
लिये जात बनि मीत , माल ये साझ सबेरे ॥
बरनै दीनदयाल , न चीन्हत है तू ताही ।
जाग जाग रे जाग , इतै कित सोवत राही ॥ १४ ॥
हारे भूली गैल मे , गे अति पाय पिराय ।
सुनो पथ अब तो रह्यो , थोरो सो दिन आय ॥
थोरो सो दिन आय , रहे है सग न साथी ।
या वन है चहु ओर , घोर मतवारे हाथी ॥
बरनै दीनदयाल , ग्राम सामीप तिहारे ।
सूधे पथ को जाहु , भूलि भरमो कित हारे ॥ १५ ॥
चारो दिसि सूझै नही , यह नदधार अपार ।
नाव जर्जरी भार बहु , खेवनहार गवार ॥
खेवनहार गवार , ताहि पर है मतवारो ।
लिये भौर मे जाय , जहा जलजन्तु अखारो ॥
बरनै दीनदयाल , पथी बहु पौन प्रचारो ।
पाहि पाहि रघुबीर , नाम धरि धीर उचारो ॥ १६ ॥
देखो पथिक उघारि कै , नीके नैन विवेक ।
अचरज है बाग मे राजत है तरु एक ॥
राजत है तरु एक , मूल ऊरध अध साखा ।
द्वै खग तहा अचाह , एक इक बहुफल चाखा ॥

बरनै दीनदयाल , खाय सो निबल बिसेखो ।
जो न खाय सो पीन , रहै अति अद्भुत देखो ॥ १७ ॥

# रणधीरसिंह

जौनपुर नगर से २४ मील पश्चिम सिंगरामऊ एक गाव है । वह एक रियासत का मुख्य स्थान है । रियासत न तो बहुत बडी-ही है और न बहुत साधारण ही है । आज से लगभग सवा सौ वर्ष पहले वहा ठाकुर सग्रामसिंह राज करते थे । उनके पिता का नाम ठाकुर शिवबक्स-राय सिंह था, जो ठाकुर सग्रामसिंह की बाल्यावस्था मे ही स्वर्गवासी हो गये थे । ठाकुर सग्रामसिंह का जन्म स० १८३५ वि० मे सिङ्गरामऊ मे हुआ । स० १८९० मे उन्होने काशी मे शरीर त्याग किया । वे बडे वीर थे । उन्होने ब्रिटिश-सरकार के एक बहुत बडे बागी को स्वय बाहुबल से पकड कर सरकार के हवाले किया था । उसके उपलक्ष्य मे सरकार उन्हे बारह सौ रुपया वार्षिक दिया करती थी । ठाकुर सग्रामसिंह बड़े विद्या-व्यसनी थे । वे एक अच्छे कवि थे । और गुणियो का यथोचित आदर करते थे । वेदान्त शास्त्र के वे अच्छे ज्ञाता थे । छद लक्षण, नायका भेद, अलकार तथा विविध विषयो का उत्तम रचनाओ से विभूषित उनका काव्यार्णव नामका काव्य-ग्रन्थ बहुत उत्तम बना है । वह स० १९२१ मे लेथो मे छपा हुआ है ।

राय रणधीरसिंह ठाकुर सग्रामसिंह के पौत्र थे । इनके पिता का नाम ठाकुर गजराजसिंह था । ठाकुर गजराजसिंह जी भी कवियो का अच्छा सत्कार करते थे, परन्तु वे स्वय भी कविता करते थे या नही, यह मुझे नही मालूम ।

राय रणधीरसिंह का जन्म स० १८७८ वि० मे हुआ । पिता के स्वर्गवासी होने पर स० १९१४ मे उनको राज्याधिकार मिला । सन् १८५७ के विद्रोह मे उन्होने ब्रिटिश-सरकार की बडी सहायता की थी, उसके बदले मे उनको रायबहादुर की उपाधि मिली थी ।

राय रणधीर सिंह साहसी, उदार और बडे प्रजाहितैषी थे । प्रजा को उन्होने कभी नही सताया । उनकी सभा पडितो और दूर दूर के कवियो से भरी रहती थी । कविता का उनको व्यसन था : उन्होने पाच ग्रन्थो की रचना की है—१—नामार्णव, २—काव्य रत्नाकर, ३—सालिहोत्र, ४—भूषण कौमुदी, ५— रागमाला । उनके रचे हुए गीत उनकी रियासत मे अब तक बडे प्रेम से गाये जाते है । स० १९५२ वि० मे अयोध्याजी मे उन्होने शरीर त्याग किया । उनके विषय मे शिवसिंह ने अपने सरोज मे लिखा है—"ये राजा कवि कोविदो का बडा सम्मान करते है । इनके बनाये हुए भूषण-कौमुदी, काव्यरत्नाकर ये दोनो ग्रन्थ देखने योग्य है ।" इससे प्रकट होता है कि उनकी कीर्ति कम-से कम शिवसिंह सेंगर के कान तक तो अवश्य ही पहुच चुकी थी ।

राय रणधीरसिंह के कुटुम्बी ठाकुर रघुराजबहादुर सिंह के द्वारा मुझे राय रणधीर सिंह के हस्तलिखित और लेथो मे छपे हुए काव्य-ग्रथ देखने को मिले । इसके लिए मैं ठाकुर रघुराजबहादुर सिंह का बहुत कृतज्ञ हू । राय रणधीरसिंह के कुटुम्बियो और गद्दीधरो को उनके ग्रन्थो को सुन्दरतापूर्वक और सस्ता छपवाकर उनकी कीर्ति को चिरस्थायी बना देना चाहिये । हस्तलिखित पुस्तको को छपवा देना ही उचित है । क्योकि यदि हस्तलिखित प्रति खो गई तो लेखक के कितने दिनो का परिश्रम, जिसे उसने अपना कलेजा घुला घुलाकर किया है, सहज मे नष्ट हो जायगा ।

राय रणधीरसिंह की कविता के कुछ नमूने हम नीचे उद्धृत करते है—

नामार्णव पिंगल—यह स० १८९४ वि० मे बना । इसमे एक-एक वस्तु के कई-कई नाम नाना छन्दो मे लिखे गये है । साथ-ही-साथ छन्दो के लक्षण और उदाहरण भी है । पिंगल ग्रन्थो मे जितने विषय होने चाहिए, उतने तो है ही, कुछ अन्य बाते जो पद्य-रचयिताओ के लिए ज्ञातव्य है, इस पुस्तक मे वर्णित है । एक उदाहरण देखिये—

### अग्निनाम-कुण्डलिया छन्द

सिंहविलोकित रीति दै , दोहा पर रोलाहि ।
आदि अंतजुरि जमकयुत , कुंडलिया कहि ताहि ॥
अनल बन्हि पावक दहन , ज्वलन शिखी वृषभानु ।
शुक्र धनञ्जय, बातसख , ऊषर अग्नि कृषानु ॥
ऊषर अग्नि कृषानु आनु बुध चित्रभानु इमि ।
धूमध्वज जलजोनि , विभावसु बीतिगोत्र तिमि ॥
जातवेद जुत आनि , निसाचर तूल तुल्य दल ।
काली जू भ्रुव भग , आजु जारत क्रोधानल ॥

काव्य-रत्नाकर—स० १८९७ वि० मे बना । यह नायिकाभेद और अलकार का ग्रन्थ है । रचना अच्छी है । ग्राम्यवधू का वर्णन देखिये—

गेह काज करति छिनक दौरि हेरै द्वार छिनक उठाय घट जाती जल लैन को । चकबक ताकती इतै उतै बिलोकि काहू मूरि मुसुकाय ललचाय जोरि नैन को ॥ मैन मदमाती अठिलाती छाती ऊची करि खोलति छिपाती चली जाती देती सैन को । लेजूरी गिराती फेरि फेरि फिरि आती लेन पथ मै फिराती त्यो बढाती जाती चैन को ॥

सालिहोत्र—यह स० १९१२ वि० मे लिखा गया । इसमे घोडों की पहिचान, उनके गुण दोष, रोग और औषधियो का वर्णन है । उत्तम अश्व का लक्षण इस प्रकार कहा गया है—

तालू रसना अधर अरुन विराजत है उज्जल अरुन स्याम इक रग अग है । लोचन विसाल लम्बी ग्रीव मुख मजुल है कच घुघुरारे बडे स्रुति सुठि तंग है ॥ सूच्छम त्वचा है, चौडे उर, पातरे चरन, पूंछ लघु गति लोल, लागी वासु सग है । विरले न दत, सिर ऊचे, बक देखियत लच्छन ये जामे सोई उत्तम तुरग है ॥

### घोडे के रोग की दवा

जो घोडे को देखिये , फूल्यो उदर सिवाय ।
पटकि पटकि लोटै धरनि , ताको जतन बताय ॥

बैठे उठे घोड तनि आवे । हरै राई, लोन खिलावै ॥
यहि तें जो कुरकरी न छूटै । तौ दूसर औषधि लै कूटै ।
हँसि मूल को तुचा मगावै । पातर करि कै ताहि पिलावै ॥

रागमाला—यह सं० १९४६ वि० का छपा है । इसमे राय रणधीर सिंह के रचे हुए भजन और गीत, विविध राग रागिनियो मे है । नमूने के तौर पर एक भजन हम यहा उद्धृत करते है ।

**( ध्रुपद राग, पर्ज ताल, चौताल )**

आली री अनग अग जनु धारे बनमाली ठाढो है निकुज मध्य प्यारी री । गल सोहै मोती माल, केसर को तिलक भाल मोर पख सीस मानो चद्र की पत्यारी री ॥ पीत बसन लसित अग सरसित सुखमा सुढग जलधर ज्यो लीन्यो विद्युत अलोल सग बसी रवित मंजु अधर सुरस धारि रनधीर लेतो है अनन्त तान न्यारी री ॥

भूषण-कौमुदी—यह ग्रन्थ स० १९१७ वि० मे बना । इस ग्रन्थ मे महाराज जसवन्तसिह के भाषा-भूषण नामक ग्रन्थ पर टीका लिखी गई है । टीका अच्छी है । इस ग्रन्थ के प्रारम्भ का तीसरा छन्द इस प्रकार है—

मजुल सुरगवर शोभित अचित चारु फल मकरन्द कर मोदित करन है । प्रमित विराग ज्ञान केसर सरस देस विरद असेस जसु पासु प्रसरन है ॥ सेवित नृदेव मुनि मधुप समाज ही के रनधीर ख्यात द्रुत दच्छिन भरत है । ईस हृदि मानस प्रकासित सहाई लसै अमल सरोजवर स्यामा के चरन है ॥

## विश्वनाथसिंह

रीवा-नरेश महाराजा विश्वनाथ सिंह महाराजा जयसिंह के पुत्र और महाराजा रघुराज सिंह के पिता थे । इनका जन्म स० १८४६ में हुआ । ये सं० १८९१ में गद्दी पर बैठे और स० १९११ तक राज करते रहे । ये अच्छे कवि थे और सुकवियो का अच्छा सत्कार करते थे । इन्होने निम्नलिखित ग्रन्थो की रचना की है—

अष्टयामका आन्हिक, आनन्द रघुनन्दन नाटक, उत्तम काव्य प्रकाश, गीता रघुनन्दन शतिका, रामायण, गीता रघुनन्दन प्रमाणिक, सर्वसग्रह, कबीर के बीजक की टीका, विनय पत्रिका की टीका, रामचन्द्र की सवारी भजन पदार्थ, धनुर्विद्या, परानीय तत्व प्रकाश, आनन्द रामायण, परम धम निर्णय, शाति शतक, वेदान्त पच शतिका, गीतावली पूर्वार्द्ध, ध्रुवाष्टक, उत्तम नीति चन्द्रिका, अवाध नीति, पाखड खडिनी, आदि मगल, बसन्त चौतीसी, चौरासी रमैनी, ककहरा, शब्द, विश्व भाजन प्रसाद, परमतत्व, सगीत रघुनन्दन, गीता रघुनन्दन, तत्वमस्य सिद्धान्त भाषा, ध्यान मजरी, विश्वनाथ प्रकाश । संस्कृत मे—राधावल्लभी भाष्य, सर्वसिद्धान्त, आनन्द रघुनन्दन (दूसरा), दीक्षा निर्णय, भुक्ति मुक्ति सदानन्द सन्दोह, रामचन्द्रान्हिक सतिलक, राम परत्व, धनुर्विद्या, सगीत रघुनन्दन (दूसरा) ।

नमूने के रूप मे इनका ध्रुवाष्टक यहा उद्धृत किया जाता है—

जो बिन कामहि चाकर राखत ऐन अनेक बृथा बनवावै ।
आमद ते अधिको करे खर्च रिनै करि ब्यौहरै ब्याज बढावै ॥
बूझत लेखा नही कछुऐ नहि नीति की रीति प्रजानि चलावै ।
भाखत है विसुनाथ ध्रुवै वहि भूपति के घर दारिद आवै ॥ १ ॥
निश्चय धर्म विचार भयो दबि भाइन भृत्यनि नाहि चलावै ।
मत्रिय आदि सुलच्छन हीन औ आलसी होय सलाह बतावै ॥
मानि सँकोच करै व्यवहार बृथा ही इनाम की रीति बढावै ।
भाखत है बिसुनाथ ध्रुवै वह भूपति ना कबहू कल पावै ॥ २ ॥
नारिन की जु सलाह करै अरु भाइन मत्री स्वतन्त्र बनावै ।
बर के चाकर राखे रहै और अधर्म की राह सदा मन लावै ॥
मत्री कह्यो हित मानै नही अरु साह को सासन नाम न आवै ।
भाखत है बिसुनाथ ध्रुवै कछु काल मे भूप सुराज गवावै ॥ ३ ॥
झूठी सुनै तहकीक करै नहि ओछेन सगति मे मन लावै ।
रीझ पचाय डरे रन को बिसना जु अठारहो खूब बढावै ॥

ठट्ठा मे प्रीति कुपात्र मे दान कवीन हु जान गुमान जनावै ।
भाखत है विसुनाथ ध्रुवै अस भूपति ना कवहू जस पावै ॥ ४ ॥
चाकर दै धन वाचे जोई अठयो तिहि भागहि धर्म लगावै ।
साह लिये धरै सातयो भाग छठे सुता व्याह हितै रखवावै ॥
पाचए वित्त वढै धरि चौथ्यहि तीन ते खर्च करै छ वढावै ।
भाखत है विसुनाथ ध्रुवै तेहि भूपति भौन न दारिद आवै ॥ ५ ॥
भाइन भृत्यन विष्णु सो रैयत भानु सो सत्रुन काल सो भावै ।
सत्रु वली से वचै करि वुद्धि औ असो धर्महि नीति चलावै ॥
जीतन को करे केते उपाय औ दीरघ दष्टि सबै फल पावै ।
भाखत है विसुनाथ ध्रुवै नृप सो कवहू नहि राज गवावै ॥६॥
होय नही कवहू वस काहु समै सव मे निज भाव जनावै ।
राखे रहै हुकुमै सव पै कहु मित्र वनाय न तेज गवावै ॥
साम औ दाम औ दड औ भेद की रीति करै जु मवै मन भावै ।
भाखत है विसुनाथ ध्रुवै कला षोडसी भूपति राज वढावै ॥७॥
जो हरिआह्निक मे मन लाय करै नृप आह्निकहू स्मृति भावै ।
मानै अहै प्रभु को सव है प्रभु रूप सवै निज किंकर भावै ॥
देह ते आपुहि भिन्न गनै करि सासन भक्ति प्रजान चलावै ।
भाखत है विसुनाथ ध्रुवै दोऊ लोक मै भूपति सो सुख पावै ॥८॥

# राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय

राय ईश्वरीप्रतापनारायणजी का जन्म स० १८५९ मे गोरखपुर जिले के पडरौना-राजवंश में हुआ। हिन्दी, सस्कृत और फारसी मे इनकी अच्छी गति थी। ये निम्बार्क-सम्प्रदाय के शिष्य थे। राधाकृष्ण के वडे प्रेमी उपासक थे। पडरौना में इनके वनवाये हुए वहुत सुन्दर मन्दिर, वाग और तालाव है। ये वडे उदार, दानी, भगवद्भक्त और सुविचारवान् थे। २१ वर्ष की अवस्था ही से कविता-रचना का इनको चसका लग गया था। राजा होकर राजकाज के झंझटो मे फसे रहकर भी

इन्होने बडे मनोयोग से सुन्दर कविता की है, यह इनकी प्रकृष्ट प्रतिभा का प्रमाण है। इनका स० १९२५ मे देहान्त हुआ।

इन्होने सस्कृत और हिन्दी दोनो भाषाओ मे कविता की है। कही-कही पञ्जाबी की भी झलक आ गई है। इनके रचे हुए कई ग्रन्थ कहे जाते है। अभी केवल एक ग्रन्थ "रहस्य-काव्य-शृङ्गार" वर्तमान-पडरौना-नरेश राजा ब्रजनारायण राय जी ने प्रकाशित किया है। आशा है, शेष ग्रन्थ भी शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगे।

इनकी कविता सरस और मनोहर है। ये गानविद्या मे भी बडे प्रवीण थे। इनकी कविता के कुछ नमूने यहा दिये जाते है—

मोह को जाल पसार चहु दिस सतत खेलत काल अहेरो।
भाग तू मोह मया तजि मूरख काहू को तू न कोऊ कहु तेरो॥
नश्वर या तन को समबन्ध प्रताप छुटै छिन साग सबेरो।
छोड़ि सबै भ्रमजाल निरतर श्रीबन मे बस हे मन मेरो॥१॥

कोई कहै आन कोई आपहि भगवान बनै कोई कहै दूरि कोई नेरेही लखाव रे। कोई कहै रूप औ अरूपवान कोई कहै कोई कहै निर्गुन कोई सगुन बताव रे॥ तामें मति भरमै औ भूलि के न बाद ठान तोहि क्या बिरानी पडी अपनी सुरझाव रे। अदभुत प्रताप मूरि जीवन है रसिकन की सदा रसिक भक्तन के सदन रहु बावरे॥२॥

### राग सोरठ मलार

तो बिन को यह नेह निबाहै।
ऐसा हित प्रतिपालनहारो तू ही एक सदा है॥
हसे हसत बोले बोलत हसि मिले मिलन को उमा है।
जोइ जोइ चाह प्रताप करत चित सोइ राज तू चाहै॥३॥

### राग धमार

बेसर थिरकि रही अधरन पै मोती थिरकत जात।
लखि प्रताप पिचकारी लाल जी के रहि गई हाथ की हाथ॥४॥

# पजनेस

पजनेस का जन्म पन्ना मे हुआ । शिवसिंह सरोज मे इनका जन्म-सवत् १८७२ लिखा है । इनका रचा हुआ कोई ग्रथ अभी तक प्रकाशित नही हुआ । स्वर्गीय बाबू रामकृष्ण वर्मा ने इनके कुछ छन्दो का संग्रह "पजनेस प्रकाश" नाम से प्रकाशित किया था । उसके देखने से पजनेस एक प्रतिभाशाली कवि जान पडतेहै । ये शृङ्गारी कवि थे। इनकी कविता में कही-कही अश्लील वर्णन भी आ गया है । इनकी कविता से जान पडता है कि ये सस्कृत और फारसी के भी ज्ञाता थे ।

इनका रचा एक हस्तलिखित काव्य-ग्रथ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मन्त्री बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन के पास है । उसके प्रकाशित होने पर इनकी प्रतिभा का अधिक प्रकाश प्रकट होगा ।

यहा हम इनकी कविता के कुछ उदाहरण उपस्थित करते है—

छहरै छबीली छटा छूटि छितिमडल पै उमग उजेरो महा ओज उजबक सी । कवि पजनेस कज मजुल मुखी के गात उपमाधिकात कल कुदन तबक सी ।। फैली दीप दीप दीप दीपति दीपति जाकी दीपमालिकी को रही दीपति दबक सी । परत न ताब लखि मुख महाताब जब निकसी सिताब आफताब के भभक सी ।।१।।

नवला सरूप रूप रावरे रुचिर रूप रचना बिरचि कीनी सकुच न लागी है । भन पजनेस लोल लोयन को लौको गोल गुलफ गोराई लाज सकुच न लागी है ।। सुन्दर सुजान सुखदान प्रीति प्रीतम की एकौ ना परेख अब सकुचन लागी है । औचक उचन लागी कचुकी रुचन लागी सकुचन लागी आली सकुचन लागी है ।।२।।

कवि पजनेस केलि मधुप निकेत नव दर मुख दिव्य धरी घटिका लटीकी है । विधु पर बेष चक्र चक्र रविरथ चक्र गोमती के चक्रचक्रता-कृत घटीकी है ।। नीवी तट त्रिवली वली पै दुति कोसतुण्ड कुडली कलित लामलतिका बुटीकी है । उपटीकी टीकी प्रभाटीकी वधूटी की नाभिटीकी धुर्जटी को औ कुटी सपुटीकी है ।।३।।

सापुट सरोज कैधो सोभा के सरोवर मे लसत सिङ्गार के निसान अधिकारी के। कवि पजनेस लोल चित्त विच चोरिबे को चोर इक ठौर नारि ग्रीव वरकारी के ।। मन्दिर मनोज के ललित कुभ कचन के कलित फलित कैधो श्रीफल विहारी के। उरज उठौना चक्रवाकन के छौन कैधो मदन खिलौना ये सलौना प्रानप्यारी के ।।४।।

मानसी पूजा भई, पजनेस मलेछन हीन करी ठकुराई।
रोके उदोत सबै सुर गोत वसेरन पै सिकराली बसाई ।।
जानि परै न कला कछु आज की काहे सखी अजया इक ल्याई।
पोखे मराल कहो किहि कारन ऐरी भुजगिनी क्यो पोसवाई ।।५।।
पजनेस तसद्दुकता विसमिल जुलफे फुरकत न कबूल कसे।
महबूब चुना मदमस्त सनम् अजदस्त अलावल जुल्फ बसे ।।
मजमूये न काफ सफाक रुए सम क्यामत चश्म से खू बरसे।
मिजगा सुरमा तहरीर दुता नुकते बिन वे किन ते किन से ।।६।।

## शिवसिंह सेंगर

शिवसिंह सेगर जिला उन्नाव मे काथा ग्राम के निवासी थे। इनके पिता जमीदार थे और उनका नाम रणजीतसिंह था। इनका जन्म स० १८७८ मे हुआ। ये पुलिस के इन्सपेक्टर थे। काव्य मे अधिक रुचि होने के कारण इन्होने हिन्दी, सस्कृत और फारसी की बहुत-सी पुस्तके इकट्ठी की थी।

स० १९३४ मे इन्होने "शिवसिह सरोज" नामक एक बडे ही उपयोगी ग्रन्थ की रचना की। इसमे लगभग एक हजार हिन्दी के पुराने कवियो की सक्षिप्त जीवनी और उनकी कविताओ के स्वल्प सग्रह है। कविता-कौमुदी लिखते समय हमे इस पुस्तक से बडी सहायता मिली। इसके सिवा शिवसिह ने ब्रह्मोत्तर खड और शिवपुराण का गद्यानुवाद भी किया था। ये कविता भी करते थे। नमूने के रूप मे इनके दो कवित्त यहा उद्धृत किये जाते है—

पियो जब सुधा तब पीवे को कहा है और लियो शिवनाथ तब लेइबो कहा रह्यो । जान्यो जिन रूप तब जाने को कहा है और त्याग्यो मन आस तब त्यागिबो कहा रह्यो ।। भनै शिवसिह तुम मन मे बिचारि देखो पायो ज्ञान धन तब पाइबो कहा रह्यो । भयो शिवभक्त तब ह्वैवे को कहा है और आयो मन हाथ तब आइबो कहा रह्यो ।।१।।

कहकही काकली कलित कल कठन की कजकली कालिदी कलोल कहलन मे । सेगर सुकवि ठड लागती ठिठुरवारी ठाठ सब ठटे लगि लेते टहलन मे ।। फहरै फुहारे फबि रही सेज फूलनि सो फेन सी फटिक चौतरा के पहलन मे । चादनी चमेली चम्पा चारु फूल बाग बीच बसिये बटोही मालती के महलन मे ।।२।।

# रघुराजसिंह

रघुराजसिंह रीवा के महाराज थे । इनका जन्म सवत् १८८० मे हुआ । स० १९११ मे अपने पिता महाराज विश्वनाथसिह के स्वर्गवासी होने पर ये गद्दी पर बैठे । इनकी मृत्यु स० १९३६ मे हुई । इनके १२ विवाह हुए थे । कविता महाराज रघुराजसिह की पैतृक सम्पत्ति थी । इनके पिता और पितामह भी अच्छे कवि और सत्कवियो के आश्रयदाता थे । रघुराजसिह हिन्दी और सस्कृत दोनो भाषाओ के पडित और कवि थे । दान और भक्ति मे भी इनकी बडी प्रशसा सुनी जाती है । शिकार खेलने का इन्हे बडा व्यसन था । शिकार मे इन्होने ९१ शेर, एक हाथी, १६ चीते और हजारो हरिण तथा अन्य पशुओ का वध किया था । मृत्यु-काल से ५ वर्ष पूर्व ही से इन्होने राज्यप्रबध से सम्बन्ध छोड दिया था । उस समय ब्रिटिश-सरकार राज्य की देखरेख करती थी । स० १९३३ मे इनको सतान-सुख प्राप्त हुआ ।

इनके आश्रय मे बहुत-से कवि रहा करते थे । उनमे से कुछ के नाम ये है—रसिकनारायण, रसिकबिहारी, श्री गोविन्द, बालगोविन्द और रामचन्द्र शास्त्री ।

महाराज रघुराजसिंह के रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ है--

सुन्दर शतक, विनयपत्रिका, रुक्मिणीपरिणय, आनन्दाम्बुनिधि, भक्तिविलास, रहस्य पञ्चाध्यायी, भक्तमाल, रामस्वयवर, यदुराज-विलास, विनयमाला, रामरसिकावली, गद्यशतक, चित्रकूटमाहात्म्य, मृगयाशतक, पदावली, रघुराजविलास, विनयप्रकाश, श्रीमद्भागवत माहात्म्य, राम अष्टयाम, भागवत भाषा, रघुपति शतक, गगा शतक, धर्म विलास, शभु शतक, राजरजन, हनुमतचरित्र, भ्रमर गीत, परम प्रबोध और जगन्नाथ शतक। रघुराजसिंह की कविता कही-कही बडी मनोहर हुई है। ये राम भक्त थे। राम को दास भाव से भजते थे। अपनी कविता मे कही-कही तुलसीदास की छाया भी इन्होने ली है।

यहा रुक्मिणी परिणय और रघुराजविलास से इनकी कुछ कविताए उद्धृत की जाती है—

केशव जन्म लै आज्ञा दई तब लै शिशु को वसुदेव सिधारे।<br>
गोकुल मे यशुदा के निकेत मे राखि सुतै दुहिता लै पधारे॥<br>
बाल ही मे बिकरार सुरारिन पूतना धेनुक आदि सहारे।<br>
शक्र के कोप ते राख्यो ब्रजै गिरिधारी सु सात दिनै गिरि धारे॥ १॥

जानि दुखी यदुवशिन को सग दानपती मथुरा कह आये।<br>
कसहि कूटिकै मातु पिता को छोडाय कै बन्धन मोद बढाये॥<br>
आहुक को यदुराज दियो निज बन्धुन के दुख द्वन्द मिटाये।<br>
मागध को मद मथन कै अब द्वारका द्वारकानाथ बसाये॥ २॥

दीनन पालिबो शत्रुन शालिबो घालिबो भक्तन के दुख को है।<br>
दीठि दया की प्रजा पै पसारिबो धर्म सुधारिबो चित्त वसो है॥<br>
पाप नशाइबो नीति चलाइबो कीरति बेलि बढाइबो सोहै।<br>
वृद्धन मानिबो यज्ञन ठानिबो यो जिनके गुण को सब जोहै॥ ३॥

बुद्धि लखे हिय लाजै वृहस्पति रूप लखे हिय लाजत मार है।<br>
धीरज दासरथी सो अरीनपै कोपिबो शम्भु सो शील अगार है॥

विक्रम जासु त्रिबिक्रम के सम क्षोनीक्षमा सुखसिंधु को सार है ।
तेज कृशानु प्रताप ते भानु यशैते लजै सितभान अपार है ॥ ४ ॥
कोमल बोलै कठोरे कहै किये येकहू सेवा सतै करि मानत ।
वाके सबै अपकार बिसारि निजै चित मे उपकारहिं आनत ॥
जोई कहै करै सोई सदा द्विज को निज देवता सो जिय ठानत ।
दीनन दान मुनीशन मान अरीन कृपान को देइबो जानत ॥ ५ ॥
कंचन दान मे मेरु डरै गजदान मे गोवति गौरी गजानन ।
दान तुरंग को देखि दिवाकर दाहिन वाम ह्वै जात दिशानन ॥
दान मही के मही के महीपति त्रासित जी के बिलोकत कानन ।
हेरि कुशा हरि के कर मे डर तो त्रयलोक करै चतुरानन ॥ ६ ॥
माधुरी माधव की वह मूरति देखतही दृग देखे बनेरी ।
तीनिहू लोक की जो रुचिराई सुहाई अहै तिनही के घनेरी ॥
सोभा शचीपति औ रति के पति की कछु आई न मेरे मनेरी ।
हेरि मै हारयो हिये उपमा छविहू छवि पाई बिराजित नैरी ॥ ७ ॥
ब्रज मे जेहि के मुरली ध्वनि को सुनिकै यह कौतुक होत भयो ।
परिवार बिसारि हिये हरिधारि सुगोपिका छोड़ि अवास दयो ॥
कर नूपुर कंकन पायन मे कटि किंकिणी को करि हारु लयो ।
नंदनंदन के ढिग को यो गई सरितागण सागर को ज्यो गयो ॥ ८ ॥
मुख देखतही मनमोहन को अति सोहन जोहन लागी जबै ।
नहिं नैन हिलै नहिं बैन चलै नहिं धाय मिलै नहिं शीश नवै ॥
ब्रजबालन हाल लख्यो अस लाल उताल कियो उरमाल तबै ।
रसरास विलास मे हास हुलास सो पूरण के दिय आश सबै ॥ ९ ॥
मथुरा के मनोहर मारग मे मुरली धरे मंडित ग्वालन सो ।
लखि कूबरी मोहित दै अंगराग चह्यो मिलिबो हठि लालन सो ॥
अतिरूप अनूप भयो तेहि को भई पूजित देवन बालन सो ।
रति रंभा रमा सुख दुर्लभ जो छनही मे दियो तेहि ख्यालन सो ॥१०॥

## दोहे

कल किशलय कोमल कमल, पदतल सम नहि पाय।
यक सोचत पियरात नित, यक सकुचतु झरि जाय॥ १॥
विलसति यदुपति नखनितति, अनुपम द्युति दरिशाति।
उडुपति युत उडु अवलि लखि, सकुचि सकुचि दुरिजाति॥ २॥
सविता दुहिता श्यामता, सुखसरिता नख ज्योति।
सुतल अरुणता भारती, चरण त्रिवेणी होति॥ ३॥
गुलुफ गुलुफ खोलनि हृदय, हो तौ उपमा तूल।
ज्यो इदीवर तट असित, द्वै गुलाब के फूल॥ ४॥
लाली ये डी लालकी, अति अनुपम दरशाहिं।
काम बाग की नारगी, सम कहि कवि सकुचाहिं॥ ५॥
चारु चरण की आगुरी, मो पै वरणि न जाइ।
कमल कोश की पाखुरी, पेखत जिनहि लजाइ॥ ६॥
अति अनुपम कहि जाति नहि, युगल जघ की ज्योति।
जिनहि जोहि कलकलभ को, शुड कुण्डलित होति॥ ७॥
युगल जानु यदुराज की, जोहि सुकवि रसभीन।
कहत मार श्रृङ्गार के, सपुट द्वै रचि दीन॥ ८॥
उरू सलोने श्याम के, निरखत टरत न नैन।
जैतखभ श्रृङ्गार के, मानहु विरच्यो मैन॥ ९॥
यदुपति कटि की चारुता, को करि सकै बखान।
जासु सुछवि लखि सकुचि हरि, रहत दरीन दुरान॥ १०॥
पद्मनाभ के नाभिकी, सुखमा सुठि सरसाय।
निरखि भानुजा धार को, भ्रमि भ्रमि भवर भुलाय॥ ११॥
लली कान्ह रोमावली, भली बनी छवि छाय।
मनहु काम श्रृङ्गार की, दीन्ही लीक खचाइ॥ १२॥
वर दामोदर को उदर, जेहि नहिं समता पाइ।
नवल अमल बल दल सुदल, डोलत रहत लजाइ॥ १३॥

उर अनूपम उनको लसै, सुखमा को अति ठाट ।
मनहु सुछवि हिय भरि भये, काम शृङ्गार कपाट ॥ १४ ॥
कामकरभ कर उरग वर, रस शृङ्गार द्रुमं डार ।
भुजनि जोहि जदुवीर के, देव पराभव पार ॥ १५ ॥
श्री यदुपति के भुज युगल, छाजि रहे छवि भौन ।
निरखत जिनहिं भुजङ्गवर, लजि पताल किय गौन ॥ १६ ॥
देवकिनन्दन कठ को, रच्यो न विधि उपमान ।
जे जड़ दरको पटतरहिं, तिन सम जड न जहान ॥ १७ ॥
ग्रीवा गिरिधरलाल की, अनुपम रही विराजि ।
निरखि लाज उर इरकि दर, बस्यो उदधि मह भाजि ॥ १८ ॥
मनमोहन के नैनवर, वरणि कौन विधि जाहि ।
कज खज मृग मैन शर, मीनहु जेहि सम नाहि ॥ १९ ॥
यदुपति नैन समान हित, विधि ह्वै बिरचै मैन ।
मीन कञ्ज खञ्जन मृगहु, समता तऊ लहै न ॥ २० ॥
भालपटलि नगवत की, भनति भारती नीठि ।
वशीकरन जपकरन की, मनमनोज सिधि पीठि ॥ २१ ॥
बाललाल के भाल मे, सुखमा बसी बिशाल ।
सुछवि माल शशि अरध ह्वै, निरखत होत बिहाल ॥ २२ ॥
यदुपति भौहन की सुछवि, मदन धनुष की सोभ ।
जीति लसतहै तिनहिं लखि, दृग न टरत रतलोभ ॥ २३ ॥
भौह बरुण यदुराज की, रही अंपूरुव सोहि ।
करहिं लजोहै कामधनु, शरमन लवै पोहि ॥ २४ ॥
हरिनासा को सुभगता, अटकि रही दृग माह ।
कामकीर के ठोर की, सुखमा छुवति न छाह ॥ २५ ॥
गोल कपोल अतोल है, छाये सुछवि अमान ।
मदन आरसी रसपसर, सम शर करत अजान ॥ २६ ॥

श्रवण सलोने श्याम के, छहरति छटा नवीन।
मदन महोदधि सीप की, सुखमा लीन्ही छीन ॥२७॥
राजत पुरट किरीट शिर, प्रगटत प्रभा अखंडि।
उयो मनहु गिरि नील पर, कनुपम रवि छबि मंडि ॥२८॥

## गीत

भजु मनो देवकी जठर महोदधि पूर्ण मृगांकमुदारम्।
यदुकुल कुमुद विनोद विकाशक विभु बसुदेव कुमारम्॥
नलिन नयन नलिनीरुहानन नवनीरद तनु नीलम्।
समय बिजय कर चारु चतुर्भुज शोभित सुन्दर शीलम्॥
मणिमय मुकुट मनोहर मस्तक पीत बसन बनमालम्।
कुण्डल मण्डित गण्य मण्डल चन्दन चर्चितभालम्॥
रुक्मिणी बिराजित बाम भाग मनु राग यागजवल्लभ्यम्।
सिंहासनासीन कमनीय सभा सुबिभावित सभ्यम्॥
सुर सुरेन्द्र बैरञ्च्य विरचि सुरर्षि महर्षि समाजम्।
दीन दया बितरण सदानि वरपावित जनरघुराजम्॥१॥
सखि पश्य कोशल कान्त सुखद कुमारमति सुकुमारकम्।
मैथिलनिवास बिलास बिलसित मदनमनोऽपहारकम्॥
मणि मंडपे सीतायुत सुषमाभर सीतावरम्।
सुबिवाहकर्म्म बिधान मतिकुर्वाणमद्भुत तारकम्॥
मणिमुकुट पीताम्बर सुनव्यमुखारबिंदमनिन्दितम्।
मेदुर सुघन मस्तकदिवामणिमिवतडिद्गणवन्दितम्॥
किंचित्कटाक्ष विकाश वीक्षित जानकी सुषमामुखम्।
गुरुजन निकट लज्जावश गतमधोभावितशशिमुखम्॥
जनकात्मजार्प्पितदृष्टि कंकण कलितकर धृतचन्दनम्।
रघुराज राजसमाज शोभित सानुज रघुनन्दनम्॥२॥
सखि लखन चलो नृप कुवर भलो। मिथिलापति सदन सिया बनरो॥
शिर मौर बसन तन मे पियरो। हठ हेरि हरत हमरो हियरो॥

उर सोहत मोतिन को गजरो । रतनारी अखियन मे कजरो ॥
चितये चित चोरत सखि समरो । चितये बिन जिय न जियै हमरो ॥
अलकै अलि अजब लसै चेहरो । झपि झूलि,रह्यो कटि लौ सिहरो ॥
युवती जन को जालिम जहरो । मन बैठत लखत मैन पहरो ॥
पुनि ऐहै नाहि जनक शहरो । ले रि लाचन लाहु न करु गहरो ।
यक है वहि लखत बडो अनरो । पुनि रुकत न रोकहु मन उन रो ॥
चित चहत अरी लगि जाऊ गरो । रघुराज त्यागि घर को झगरो॥३॥

मोहि तो भरोसो भूरि अपनी कमाई को ।
कबहू काहू को नही कियो है भलाई को ॥
कियो काम लोभ कोह मोह सो मिताई को ।
रोज रोज पाल्यो निज नारि नाति भाई को ॥
कबहू न पूज्यो साधु लैके आगुआई को ।
पूरी प्रीति पापिन सो नारि हू पराई को ॥
वाढ्यो है घमण्ड मोह माया ठाकुराई को ।
वेस बजवायो द्वार पाप ही बधाई को ॥
रोज रुजगार कियो जीव ही सताई को ।
सपन्यो न सोच्यो नाथ भक्ति सुखदाई को ॥
धर्म कर्म कीन्ह्यो केते लोक की वडाई को ।
कबहू न पायो पार विषै भोगताई को ॥
वाकी न रह्यो है रघुराज पतिताई को ।
मोहि ना उधारे पतितपावन नाम गाई को ॥ ४ ॥

मूरुख मानत यही वडाई ।
राजा भयो विभौ धन आधर नहि सन्तन शिर नाई ।
भोजन मैथुन ऐश करत नित दिय वय वृथा विताई ॥
ह्वै पडित पढि न्याय व्याकरण भरे घमड महाई ।
सन्त चरण परसत सकुचत शठ जोरत धन वहुताई ॥

मन्त्री भयो महामदमातो चलत भुजानि फुलाई।
सन्तन ओर तकत कबहू नहिं कालभीति बिसराई॥
धनिक भयो धन धरयो गाडि महि जानत रही सदाई।
कबहु न हरि हर जन के हेतहि कौडिहु कान लगाई॥
भयो राज सामन्त जगत जो हठि परलोक भुलाई।
करत सन्त अपकार जानि अस मीच नगीच न आई॥
कलि कुचालि कह लो मुख बरणो देखतही बनि आई।
गुरू होन सब कोउ जग चाहत शिष्य होत सकुचाई॥
सोई बडो गुरू सबको सोइ ताकी सत्य बडाई।
जो रघुराज सदा सन्तन की करत चरण सेवकाई॥ ५॥

## द्विजदेव

अयोध्या नरेश महाराजा मानसिंह का उपनाम द्विजदेव था। द्विजदेव अवध के तालुकेदारो के एसोसियेशन के सभापति थे। इनका देहान्त लगभग ५० वर्ष की अवस्था मे, स० १९३० मे हुआ।

ये शाकद्वीपी ब्राह्मण थे। कवियो और विद्वानो का ये बडा आदर करते थे। ये स्वय एक अच्छे प्रतिभाशाली कवि थे। इनका रचा हुआ कोई ग्रन्थ हमारे देखने मे नही आया। इनके उत्तराधिकारी महामहोपाध्याय महाराजा सर प्रताप नारायण सिंह के० सी० आई० ई०, उपनाम ददुआ साहब ने "रसकुसुमाकर" नामक अलङ्कार और रस सम्बन्धी हिन्दी-कविता का एक बडा सग्रह-ग्रन्थ प्रकाशित किया है। उसमे द्विजदेव के बहुत-से छन्द मिलते है। उसमे से और कुछ अन्य कविता-सग्रहो मे से इनके थाडे-से छन्द चुनकर हम नीचे प्रकाशित करते है—

जावक के भार पग परत धरा पै मन्द गन्ध भार कचन परी है छूटि अलकै। "द्विजदेव" तैसियै विचित्र बरुनी के भार आधे आधे दृगन परी है अध पलकै॥ ऐसी छवि देखि अग अग की अपार बार बार लोल लोचन सु कौन के न ललकै। पानिप के भारन सभारित न गात लङ्क लचि लचि जात कच भारन के हलकै॥१॥

भूले भूले भौर बन भावरे भरेंगे चहू फूल फूल किशुक जके से रहि जाय है। "द्विजदेव" की सौ वह कूजनि बिसारि कूर कोकिल कलंकी ठौर ठौर पछताय है॥ आवत बसन्त के न ऐहै जो पै स्याम तो पै बावरी! बलाय मो हमारेऊ उपाय है। पीहै पहिले ही ते हलाहल मगाय या कलानिधि की एकौ कला चलन न पाय है॥२॥

बाके सक हीने राते कञ्ज छवि छीने माते भुकि झुकि झूमि झूमि काहू को कछू गनै न। "द्विवदेव" की सौ ऐसी बानक बनाइ बहु भातिन बगारे चित चाह न चहूघा चैन। पेखि परे पात जो पै गातन उछाह भरे बार बार ताते तुम्हे बूझती कछूक बैन। एहो ब्रजराज मेरे प्रेमधन लूटिबे को बीरा खाइ आये किते आपके अनोखे नैन॥३॥

कारो नभ कारी निसि कारियै डरागी घटा झूकन बहत पौन आनन्द को कन्द री। "द्विजदेव" सावरी सलोनी सजी स्याम जू पै कीन्हो अभिसार लखि पावस आनन्द री॥ नागरी गुनागरी सु कैसे डरै रैनि डर जाके सग सोहै ये सहायक अमन्द री। बाहन मनोरथ उमाहै सगवारी सखी मैन मद सुभट मसाल मुखचन्द री॥४॥

काहू काहू भाति राति लागी ती पलक तहा सपने मे आनि केलि रीति उन ठानी री। आप दुरे जाय मेरे नैननि मुदाय कछु हौहू बज-मारी ढूढिवे को अकुलानी री॥ एरी मेरी आली या निराली करता की गति "द्विजदेव" नेकऊ न परत पिछानी री। जौलौ उठि आपनो पथिक पिय ढूढौं तौलौ हाय, इन आखिन ते नीदई हेरानी री॥५॥

घहरि घहरि घन सघन चहूधा घेरि छहरि छहरि विष बूद बरसा-वै ना। "द्विजदेव" की सो अब चूक मत दाव परे पातकी पपीहा तू पिया की धुनि गावै ना॥ फेरि ऐसो अवसर न ऐहै तेरे हाथ परे मटकि मटकि मोर सोर तू मचावै ना। हौं तो बिन प्रान प्रान चहत तज्योई अब कत नभ चन्द्र तू आकाश चढि धावै ना॥६॥

बोलि हारे कोकिल बुलाय हारे केकी गन सिखै हारी सखी सब जुगत नई नई। "द्विजदेव" की सो लाज बैरिन कुसग इन अगिनिही

आपने अनीती इतनी ठई ।। हाय इन कुजन ते पलटि पधारे स्याम देखन न पाई वह सूरति मुधामई । आवन समै मे दुखदाइनि भई री लाज चलन समै मे चल पलन दगा दई ।।७।।

चित चाह अबूझ कहै कितने छवि छीनी गयन्दन की टटकी ।
कवि केते कैहे निज बुद्धि उदै यह लीनी मरालन की मटकी ।।
"द्विजदेव जू" ऐसे कुतर्कन मे सब की मति योही फिरै भटकी ।
वह मन्द चले किन भोरी भटू पग लाखन की अखिया अटकी ।।८।।
सोधे समीरन को सरदार मलिन्दन को मनसा फलदायक ।
किंशुक जालन को कलपद्रुम मानिनी बालनहू को मनायक ।।
कन्त अनन्त अनन्त कलीन को दीनन के मन को सुखदायक ।
साचे मनोभव राज को साज सु आवत आज इतै ऋतुनायक ।।९।।

# रामदयाल नेवटिया

सेठ रामदयाल नेवटिया का जन्म कार्तिक शुक्ल १३ स० १८८२ मे, मडावा (शेखावाटी) मे हुआ । आपके पिता का नाम सेठ मनसाराम था । जन्म के चालीस दिन पीछे आप फतहपुर, जो मडावा से सात कोस पर है, लाये गये । फतहपुर ही आपके परिवार की निवासभूमि है ।

बालकपन ही से विद्या की ओर आपकी अधिक रुचि थी । थोडी ही अवस्था में आप व्यापक कामों मे दक्ष होगये । संवत् १८९६ मे आपके पिता का देहान्त होगया । स० १९०७ मे आप अजमेर के सेठ प्रतापमलजी मेहता के व्यापार के प्रधान संचालक होकर पूना गये । पूना मे व्यापारिक काम करते हुए भी आपने बडे परिश्रम से हिन्दी, संस्कृत, गुजराती और उर्दू मे अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया । साधारण अंगरेजी भी आप समझ लेते थे ।

स० १९१४ में आप अजमेर वापस गये और वहा से कुछ दिन बाद फतहपुर चले आये । तब से वहीं रहने लगे ।

आप बड़े विद्या-व्यसनी थे । पुस्तको से आपका बड़ा प्रेम था ।

गीता का प्रतिदिन पाठ करते थे। आपके पुस्तकालय मे हिन्दी और सस्कृत की पुस्तको का बहुत अच्छा सग्रह है।

आप बडे मिलनसार, सुशील, विनयी, सदाचारी, उदार, न्याय-प्रिय और शात पुरुष थे। अभिमान तो आपको छू भी नही गया था। मारवाडी जाति के आप रत्न थे। आपके समान विद्वान् मारवाडी जाति मे अभीतक कोई नही हुआ। आप समाज-सुधार के बडे पक्षपाती थे। गुणियो का आदर आप बडे प्रेम से करते थे।

मुझे आपके समीप रहने का कई वर्षो तक अवसर मिला था। जब कोई शास्त्रीय चर्चा छिड जाती थी तब आपके अगाध पाडित्य का चमत्कार देखकर मनमे बडा आनन्द उमड आता था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के आप मित्रो में से थे। राजा शिवप्रसाद से भी आपका पत्र-व्यवहार था।

बालकपन मे आपकी आर्थिक स्थिति बहुत साधारण थी। आपके सद्व्यवहार, कर्त्तव्यपरायणता, सत्याचरण और धर्मनिष्ठा पर लक्ष्मी भी मोहित हो गई और अपने जीवन-काल ही मे आप अपने वृहत् परिवार को करोडो की सम्पत्ति से सुखी देखकर स्वर्गवासी हुए।

आपका स्वास्थ्य बहुत सुन्दर था। सं० १९७० मे आपने गङ्गोत्री और जमनोत्री की यात्रा की थी। स० १९७४ के अत मे आप मथुरा आये। वही मेरा आपसे अन्तिम साक्षात्कार हुआ। आप चार बजे प्रात काल उठते शौच और स्नान से निवृत्त होकर पूजा पर बैठ जाते थे। पूजा-पाठ आपने अन्तिम समय तक नही छोडा। आप महीन से महीन अक्षर भी वृद्धावस्था में विना चश्मे की सहायता के पढ लेते थे। अभी थोडे ही दिन हुए, आश्विन अमावस्या, स० १९७५ में आपने इस असार ससार को परित्याग किया।

आप हिन्दी के अच्छे कवि थे। आपके रचे हुए तीन ग्रन्थ है। तीनो छप चुके है। उनके नाम ये हैं—१—प्रेमांकुर २—बलभद्रविजय, ३—लक्ष्मणामङ्गल। कविता मे आप अपना उपनाम कृष्णदास रखते

थे। नीचे हम आपकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत करते हैं—

बीत रही सब आयु तदपि बीती नहिं आशा।
अजहुं चहुं सुख भोग रोग भय बड़ा तमाशा॥
शिथिल हो गई देह वात पित कफ ने घेरा।
श्वेत केश सदेश समन का लाया नेरा॥
शक्ति-हीन इन्द्री भई, भक्ति लेश नहिं तनक मन।
तृष्णा को तज रे अधम, भजत क्यो न राधारमन॥ १॥

मैं कीनो बहु दोष, एक भरोसे आपके।
तुमही करिहौ रोष, तो पापी की कवनि गति॥ २॥

दूजो आदर ना करै, वाको कछू न दोस।
मैं तेरो तू ना सुनै, यह भारी अफसोस॥ ३॥

सिंधु होय जल विन्दु, इन्दु सम होय दिवाकर।
अनल कमल को फूल, तूल सम होय धराधर॥
माहुर मधुप समान, भूप आता जिमि जानै।
शत्रु होय निज दास, लोक आज्ञा सब मानै॥
पाप होय हरजाप सम, को दुराय नहिं भू परै।
आनन्द कन्द ब्रजचन्द्र जब, करुणानिधि किरपा करै॥ ४॥

माधव तुम बिन सब जग झूठो।
रवि, ससि, अनिल, अनल, जल थल मे तुमरो ही तेज अनूठो॥
नन्दकिशोर और नहिं जाचूं राजी रहो चाहे रूठो।
मैं हू अनन्य आपको सेवक "कृष्णदास" पै तूठो॥ ५॥

जग मे हरि बिन कोइ न संगाती।
वाको मत विसरो दिन राती॥
पल पल आयु घटै नर तेरी ज्यो दीपक बिच बाती।
चेत चेत नर चेत चतुर ह्वै गइ न लौट फिर आती॥
सब अपने स्वारथ के सङ्गी सुत वनिता अरु नाती।
"कृष्णदास" की त्रास मिटावें जनम मरन के साथी॥

# लक्ष्मणसिंह

राजा लक्ष्मणसिंह यदुवंशी क्षत्रिय थे। जन्म-भूमि आगरा, जन्म-संवत् १८८३, मृत्यु-संवत् १९५३।

राजा लक्ष्मणसिंह संस्कृत, हिन्दी, अरबी, फारसी, बंगला और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। सन् १८५७वाले सिपाही विद्रोह में इन्होंने अंग्रेजों को बड़ी मदद पहुंचाई थी,इससे सन् १८७०के प्रथम दिल्ली-दरबार में इनको गवर्नमेंट ने राजा की पदवी दी। ये २० वर्ष तक ८०० रु० मासिक पर पहले दरजे के डिप्टी कलक्टर रहे। कांग्रेस के जन्मदाता मिस्टर ह्यूम की इन पर बड़ी श्रद्धा थी। उन्हीं की कृपा से इनकी विशेष उन्नति हुई।

यद्यपि डिप्टी कलक्टरी के कामों से इन्हें अवकाश बहुत कम मिलता था, तो भी हिन्दी की ओर इनका ऐसा प्रेम था कि जो समय बचता उसे ये उसी की सेवा में लगाते थे। गवर्नमेंट की बहुतसी सरकारी किताबों का हिन्दी में उल्था करने के सिवा इन्होंने शकुन्तला, मेघदूत और रघुवंश का अनुवाद भी किया है। मेघदूत का अनुवाद पद्य में और रघुवंश का अनुवाद गद्य में है। ये ही पुस्तकें हिन्दी-जगत में इनको अजर-अमर बनाये रहेंगी। इन पुस्तकों के अनुवाद में इन्होंने अपने पांडित्य का जो चमत्कार दिखाया है वह किसी साहित्य-प्रेमी से छिपा नहीं है। भारतवर्ष तथा योरोप के विद्वानों ने भी इनको हिन्दी का कवि माना है। इनके अनुवाद में यह विशेषता है कि पद्य की कौन कहे, गद्य में भी उर्दू, फारसी का एक शब्द नहीं आने पाया है। फिर भी एक-एक पद सरस, सुपाठ्य और सरलता से भरा हुआ है।

शकुन्तला और मेघदूत के अनुवाद में से इनकी कविता की कुछ छटा हम दिखलाते हैं—

### शकुन्तला

कैसे भ्रमर चुम्बन करत।<br>
नागकेसरि को सुअङ्कन रहित रहसिहि भरत॥

सिरस फूलन कान धरि बन युवति मन को हरत।
देत शोभा परम सुन्दर सरस ऋतु लखि परत ।।

रुखन तर मुनि अन्न परचो है। शुककोटर ते यह जु गिरचो है ।।
कहू धरी चिक्कन सिल दीसे। इंगुदिफल जिन पै मुनि पीसे ।।
रहे हरिन हिल ये मनुषन ते। नैन न चौकत बोल सुनन ते ।।
सोहति रेख नदी तट बाटा। बनी टपकि जल बल्कल पाटा ।।
पवन झकोरति है जल कूला। बिटप किये जिन उज्जल मूला ।।
नव पल्लव दीखत धुधराये। होम धुआ जिन ऊपर छाये ।।
उपवन अग्र भूमि के माही। कटि के दाभ रहे जह नाही ।।
चरत फिरत निधरक मृगछौना। जिनके मन शका नेकौ ना ।२।

अधर रुचिर पल्लव नये, भुज कोमल जिमि डार।
अंगन में यौवन सुभग, लसत कुसुम उनहार ।। ३ ।।
तो मन की जानत नही, अहो मीत बेपीर।
पै मो मन को करत नित, मनमथ अधिक अधीर ।। ४ ।।
भानु मन्द कर देत, केवल गन्ध कमोदिनिहिं।
पै शशि मडल स्वेत, होत प्रात के दरस ते ।। ५ ।।

कहु दाभन ते मुख जाका छिओ जब तू दुहिता लखि पावत ही।
अपने कर ते तिन घावन पै तुही तेल हिंगोट लगावत ही ।।
जिहि पालन के हित धान समा नित मूठहिं मूठ खवावत ही।
मृगछौना सो क्यो पग तेरे तजै जिहि पूत लौ लाड लडावत ही ।। ६ ।।

प्रजा काजे राजा नित सुकृति पै उद्यत रहैं।
बडे वेद ज्ञानी हित सहित पूजे सरसुती ।।
उमा स्वामी शम्भू जगतपति नील्लोहित प्रभू।
छुटावे मोहूं को विपति अति आवागवन सो ।। ७ ।।

**मेघदूत**

सुर युवती जुरि मिलि तह आवैं। पकरि तोहिं जल यन्त्र बनावैं ।।
रघसि रघसि हीरा ककन सो। नीर झरावे तो अगन सो ।।

इन खिलवारन तें यदि तेरो । छुटकारो नहिं होय सबेरो ॥
श्रवन कठोर घोर तब कीजो । यो डरपाय उन्हे मग लीजो ॥१॥

तेरे हू आसू सखा , देगी अवस बहाय ।
सरस हृदय जन होत है , बहुधा मृदुल स्वभाय ॥ २ ॥
तू बिन बोलेहू बरसि , मेटत चातक प्यास ।
सज्जन जन उत्तर यही , पुजवत याचक आस ॥ ३ ॥

# गिरिधरदास

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता बाबू गोपालचन्द्र का उपनाम गिरिधरदास था। कविता मे वे इसी नाम का प्रयोग करते थे। कही कही गिरधारी और गिरिधारन का प्रयोग भी मिलता है । इनका जन्म स० १८९० मे और मरण स० १९१७ मे हुआ । ये हिन्दी के अच्छे कवि थे। इन्होने चालीस ग्रन्थो की रचना की थी । उनमे जरासधवध की विशेष प्रशसा सुनी जाती है। यह महा-काव्य कहा जाता है। कुल २६ वर्ष ४ महीने की आयु मे ४० ग्रन्थो की रचना बडी प्रतिभा का काम है। इनके ग्रन्थ प्राय अप्रकाशित है। दो एक ग्रन्थो को बाबू हरिश्चन्द्र ने छपवाया था। और कई ग्रन्थो का अब कही पता भी नही चलता। इनके रचित ३८ ग्रन्थो के नाम ये है—

१—वाल्मीकि रामायण—पद्यानुवाद, २—गर्ग सहिता, ३—भाषा एकादशी की चौबीसो कथा, ४—एकादशी की कथा, ५—छन्दार्णव, ६—मत्स्य कथामृत, ७—कच्छप कथामृत, ८—नृसिह कथामृत ९—बावन कथामृत, १०—परशुराम कथामृत, ११—रामकथामृत, १२—बल राम कथामृत, १३—बुद्ध कथामृत, १४—कल्कि कथामृत, १५—भाषा व्याकरण, १६—नीति, १७—जरासधवध महाकाव्य, १८—नहुष नाटक, १९—भारती भूषण, २०—अद्‌भुत रामायण, २१—लक्ष्मी नखशिख, २२—रस रत्नाकर, २३—वार्ता सस्कृत २४—ककारादि सहस्र नाम, २५—गया यात्रा, २६—गयाष्टक, २७—द्वादश दल कमल, २८—स्तुति

पञ्चाशिका, २९—सकर्षणाष्टक, ३०—दनुजारिस्तोत्र, ३१—वाराह स्तोत्र, ३२—शिवस्तोत्र, ३३—श्रीगोपालस्तोत्र, ३४—भगवत्स्तोत्र, ३५—श्री रामस्तोत्र, ३६—श्रीराधास्तोत्र, ३७—रामाष्टक, ३८—कलि कालाष्टक ।

ये अपनी रचना मे श्लेष और यमक की अच्छी बहार दिखाते थे। परन्तु नीति और शातिरस की कविता इन्होने बहुत सरल भाषा मे लिखी है। हमने इनका कोई ग्रन्थ नही देखा। सग्रह-ग्रन्थो मे कही-कही इनके रचे छन्द उद्धृत है। उन्ही मे से चुनकर कुछ छन्द नीचे लिखे जाते है—

सब केसव केसव केसव के हित के गज सोहते शोभा अपार है।
जब सैलन सैलन सैलन ही फिरै सैलन सैलहि सीस प्रहार है॥
गिरिधारन धारन सो पद के जल धारन लै बसुधारन फार है।
अरि बारन बारन बारन पै सुर बारन बारन बारन बार है॥१॥

गुरुन को शिष्यन सुपात्र भूमिदेवन को मान देहु ज्ञान देहु दान देहु धन सो। सुत को सन्यासिन को वर जिजमानन को सिच्छा देहु भिच्छा देहु दिच्छा देहु मन सों॥ सत्रुन को मित्रन को पित्रन को जग बीच तीर देहु छीर देहु नीर देहु पन सो। गिरिधरदास दासै स्वामी को अघी को आसु रुख देहु सुख देहु दुख देहु तन सो॥ २॥

बातनि क्यो समुझावति हौ मोहिं मैं तुमरो गुन जानति राधे।
प्रीति नई गिरिधारन सो भई कुज मे रीति के कारन साधे॥
घूघट नैन दुरावन चाहति दौरति सो दुरि ओट ह्वै आधे।
नेह न गोयो रहै सखि लाज सो कैसे रहे जल जाल के बाधे॥३॥

धिक नरेस बिनु देस, देस धिक जह न धरम रुचि।
रुचि धिक सत्यविहीन, सत्यधिक बिनु विचार सुचि॥
धिक विचारि बिनु समय, समय धिक बिना भजन के।
भजनहु धिक बिनु लगन, लगन धिक लालच मन के॥

मन धिक सुन्दर बुद्धि बिनु , बुद्धि सुधिक बिनु ज्ञान गति ।
धिक ज्ञान भगति बिनु भगत धिक , नहि गिरिधर पर प्रेम अति ।४।

जाग गया तब सोना क्या रे ।
जो नर तन देवन को दुर्लभ सो पाया अब रोना क्या रे ।।
ठाकुर से कर नेह आपना इद्रिन के सुख होना क्या रे ।
जब वैराग्य ज्ञान उर आया तब चादी औ सोना क्या रे ।।
दारा सुवन सदन मे पड के भार सबो का ढोना क्या रे ।
हीरा हाथ अमोलक पाया काच भाव मे खोना क्या रे ।।
दाता जो मुख मागा देवे तब कौडी भर दोना क्या रे ।
गिरिधरदास उदर पूरे पर मीठा और सलोना क्या रे ।।५।।

दोहे

धनहि राखिये विपति हित , तिय राखिय धन त्यागि ।
तजिये गिरिधरदास दोउ , आतम के हित लागि ।। १ ।।
लोभ न कबहू कीजिये , या मे बिपति अपार ।
लोभी को विश्वास नहि , करे कोऊ ससार ।। २ ।।
लोभी सरिस अवगुन नही , तप नहि सत्य समान ।
तीरथ नहि मन शुद्धि सम , विद्या सम धन आन ।। ३ ।।
सकल वस्तु सग्रह करै , आवै कोउ दिन काम ।
वखत परे पर ना मिलै , माटी खरचे दाम ।। ४ ।।
कारज करिय विचारि कै , कर्म लिखी सो होय ।
पाछे उपजै ताप नहि , निन्दा करै न कोय ।। ५ ।।
पुन्य करिय सो नहि कहिय , पाप करिय परकास ।
कहिबे सो दोउ घटत है , वरनत गिरिधरदास ।। ६ ।।
पावक बैरी रोग रिन , सेसहु रखिये नाहि ।
ए थोरे हू बढ़हि पुनि , महा जतन सो जाहि ।। ७ ।।
अलस प्रमादी रागरमि , नीति न देखत जौन ।
उर सद असद विवेक नहि , अधम अवनिपति तौन ।। ८ ।।

मिल्योरहत निजप्राप्तिहित , दगा समय पर देत ।
बन्धु अधम तेहि कहत है , जाको मुख पर हेत ॥ ९ ॥
रूपवती लज्जावती , सीलवती मृदु बैन ।
तिय कुलीन उत्तम सोई , गरिमाधर गुनऐन ॥ १० ॥
अति चचल नितकलह रुचि , पति सो नाहि मिलाप ।
सो अधमा तिय जानिये , पाइय पूरब पाप ॥ ११ ॥
जनक वचन निदरत निडर , बसत कुसगति माहि ।
मूरख सो सुत अधम है , तेहि जनमे सुख नाहि ॥ १२ ॥
सुख दुख अरु विग्रह विपति , यामे तजे न सग ।
गिरिधरदास बखानिये , मित्र सोइ वर ढङ्ग ॥ १३ ॥
सुख मे सङ्ग मिलि सुख करै , दुख मे पाछो होय ।
निज स्वारथ की मित्रता , मित्र अधम है सोय ॥ १४ ॥
आप करै उपकार अति , प्रति उपकार न चाह ।
हियरो कोमल सन्त सम , सुहृद सोइ नरनाह ॥ १५ ॥
मन सो जग को भल चहै , हिय छल रहै न नेक ।
सो सज्जन ससार मे , जाके विमल विवेक ॥ १६ ॥
उद्यम कीजै जगत मै , मिलै भाग्य अनुसार ।
मोती मिलै कि सख कर , सागर गोता मार ॥ १७ ॥
बिन उद्यम नहि पाइये , कर्म लिख्यो हू जौन ।
विनु जलपान न जाय है , प्यास गङ्ग-तट मौन ॥ १८ ॥
उद्यम मे निद्रा नही , नहि सुख दारिद माहि ।
लोभी उर सतोष नहि , धीर अबुध में नाहि ॥ १९ ॥
सुख दरिद्र सो दूर है , जस दुरजन सो दूर ।
पथ्य चलन सो दूर रुज , दूर सीतलहि सूर ॥ २० ॥
अति सरसत परसत उरज , उर लगि करत विहार ।
चिह्न सहित तन को करत , क्यो सखि हरि? नहि हार ॥ २१ ॥

गौनो करि गौनो चहत , पिय विदेस वस काजु ।
सासु पासु जोहत खरी , आखि आसु उर लाजु ॥ २२ ॥
पति देवत कहि नारि कहु , और आसरो नाहि ।
सर्ग सिढी जानहु यही , वेद पुरान कहाहि ॥ २३ ॥

## लछिराम

लछिराम का जन्म पौष शुक्ल १०, स० १८९८ को स्थान अमोढा, जिला बस्ती मे हुआ था । इनके गाव से लगा हुआ एक "चरथी" गाव है । अमोढा-नरेश ने पुत्र-जन्म के उत्सव मे इनकी कविता से प्रसन्न होकर वह गाव सदा के लिए दे दिया, और रहने के लिए एक अच्छा मकान भी बनवा दिया । उसी मे ये सपरिवार आनन्दपूर्वक रहते थे ।

१० वर्ष की अवस्था मे लासाचक, जिला सुलतानपुर-निवासी ईश कवि के पास इन्होने साहित्य पढना आरम्भ किया । पाच वर्ष वहा पढ-कर स० १९१४ मे अवधनरेश महाराजा मानसिह के पास चले गये और उन्ही से साहित्य का मर्म समझने लगे । इनकी बुद्धि बहुत तीव्र थी । इससे थोडे ही समय मे इन्होने साहित्य मे अच्छी जानकारी प्राप्त करली ।

महाराज मानसिह इन्हे बहुत चाहते थे । उन्होने इन्हे "कविराज" की पदवी दी थी । उन्ही के कारण अवध के सब राजा-रईस इनका बड़ा सम्मान करते थे । कविताद्वारा इन्हे हाथी, घोड़ा, धन, वस्त्र, गाव आदि वस्तुए समय-समय पर उपलब्ध होती रहती थी । इन्होने राजाओ की प्रशसा में अनेक ग्रन्थो की रचना की । इनके रचे हुए ग्रन्थो के नाम ये हैं—प्रताप रत्नाकर, प्रेम रत्नाकर, लक्ष्मीश्वर, रत्नाकर, राणेश्वर कल्पतरु, महेश्वर विलास, मुनीश्वर कल्पतरु, महेन्द्र भूषण, रघुवीर विलास, कमलानन्द कल्पतरु, मानसिह जङ्गाष्टक, रामचन्द्र भूषण, सरजू लहरी, हनुमत शतक, राम रत्नाकर, नायिका भेद । इनके प्राय. सब ग्रन्थ भारतजीवन प्रेस बनारस में छपे हैं ।

कविता तो इनकी ऊंचे दरजे की नही है। परन्तु सुनते है, कविता पढ़ने की इनमे विचित्र शक्ति थी। श्रोताओ के मन मे ये शीघ्र ही प्रभाव जमा लेते थे।

स० १९६१, भाद्रपद कृष्ण ११, को इन्होने अयोध्या जी मे शरीर छोड़ा।

इनके रचे कुछ छन्द हम नीचे प्रकाशित करते है—

भानुवश भूषण महीप रामचन्द्र वीर रावरो सुजस फैल्यो आगर उमङ्ग मे। कवि लछिराम अभिराम दूनो शेषहू सो चौगुनो चमकदार हिमगिरि गग मे॥ जाको भट घेरे तासो अधिक परे है और पचगुनो हीराहार चमक प्रसग मे। चन्द मिलि नौगुनो नछत्रन सो सौगुनो ह्वै सहस गुनो भो छीरसागर तरङ्ग मे॥१॥

रावन बान महाबली और अदेव और देवनहू दृग जोरचो।
तीनहू लोकन के भट भूप उठाय थके सबको बल छोरचो॥
घोर कठोर चितै सहजै लछिराम अमी जस दीपन घोरचो।
राजकुमार सरोज-से हाथन सो गहि शभु-सरासन तोरचो॥२॥

भरम गवावै झरबेरी सग नीचन ते कटकित बेल केतकीन पै गिरत है। परिहरि मालती सु माधवी सभासदनि अधम अरूसन के अग अभिरत है॥ लछिराम सोभा सरवर मे विलास हेरि मूरख मलिन्द मन पल ना थिरत है। रामचन्द्र चारु चरनाम्बुज बिसारि देश बन बन बेलिन बबूर मे फिरत है॥३॥

सजल रहत आप औरन को देत ताप बदलत रूप और बसन बरेजे मै। ता पर मयूरन के झुड मतवाले साले मदन मरारे महा झरनि मरेजे मै॥ कवि लछिराम रग सावरो सनेही पाय अरज न मानै हिय हरष हरेजे मै। गरजि गरजि बिरहीन के बिदारे उर दरद न आवै धरे दामिनी करेजे मै॥४॥

बदल्यो बसन सो जगत बदलोई करै आरस में होत ऐसो यामे कहा छल है। छाप है हरा की कै छपाए ही हरा को छाती भीतर झगा के

छाई छवि झलाझल है ।। लछिराम हौहू घाय रचिहौ बनक ऐसो आखिन खवाये पान जात क्यो अमल है । परम सुजान मनरञ्जन हमारे कहा अञ्जन अधर मे लगाये कौन फल है ।। ५ ।।

# गोविन्द गिल्लाभाई

गोविन्द गिल्लाभाई का जन्म सिहोर रियासत भावनगर मे श्रावण सुदी ११, सोमवार स० १९०५ मे हुआ था। इनके पिता का नाम गिल्लाभाई और माता का सावित्री बाई था। ये चौहान राजपूत थे। इनके पूर्वज मारवाड के पीपलोद नामक स्थान में रहते थे। वहा से वे आपस के झगडे के कारण काठियावाड़ मे जाकर बस गये। गोविन्दजी उसी कुल के रत्न थे। इन्हे बालकपन मे विद्यालय की शिक्षा बहुत कम मिल सकी। इन्होने अपने उत्कट परिश्रम से साहित्य विषयक अद्भुत ज्ञान उपार्जन किया था। बहुत दिनो तक सरकारी नौकरी करने के पश्चात् अत मे पेशन पाते थे। गुजराती साहित्य के ये अच्छे मर्मज्ञ और सुकवि थे। मातृभाषा गुजराती होने पर भी इन्होने हिन्दी मे अच्छे-अच्छे काव्य-ग्रथो की रचना की थी। स० १९२५ से इन्होने कविता करनी शुरू की। हिन्दी मे इन्होने ३२ ग्रथ लिखे थे। उनके नाम ये है—

| | ग्रन्थ | रचना-काल | छन्द-सख्या |
|---|---|---|---|
| १ | विवेक विलास | १९२५-१९७९ | ४०० |
| २ | लच्छन बत्तीसी | १६२६ | ३५ |
| ३ | विष्णु विनय पचीसी | १९३७ | २६ |
| ४ | परब्रह्म पचीसी | ,, | २६ |
| ५ | प्रबोध पचीसी | १९३७ | २६ |
| ६ | सिखनख चद्रिका | १९४१ | १५४ |
| ७ | राधा-रूप-मजरी | ,, | १०१ |
| ८ | भूपण-मजरी | १९४५ | ११७ |
| ९ | शृगार-षोडशी | ,, | ६९ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १० | भक्ति-कल्पद्रुम | १९४५ | ६५ |
| ११ | प्रवीण-सागर | ,, | ४३७ |
| १२ | श्रीराधा मुख षोडशी | १९५० | १७ |
| १३ | पयोधर पचीसी | १९५१ | २६ |
| १४ | नैन-मजरी | १९५३ | १०५ |
| १५ | छवि-सरोजिनी | १९५४ | ७० |
| १६ | प्रेम-पचीसी | ,, | ३१ |
| १७ | वक्रोक्ति-विनोद ( सटीक ) | ,, | ११७ |
| १८ | गोविन्द-ज्ञान-बावनी | १९६० | ५७ |
| १९ | पावस-पयोनिधि | १९६२ | ११५ |
| २० | शृङ्गार-सरोजिनी | १९६५ | ७७७ |
| २१ | साहित्य-चिंतामणि (प्र०भाग) | ,, | १४०० |
| २२ | षटऋतु-वर्णन | १९६६ | ९५ |
| २३ | प्रारब्ध-पचासा | १९६६ | ५३ |
| २४ | समस्या-पूर्त्ति-प्रदोप | १९५०-६५ | २२२ |
| २५ | श्लेष-चन्द्रिका (सटीक) | १९६७ | १९० |
| २६ | रत्नावली-रहस्य (सटीक) | १९७१ | १५ |
| २७ | बोध-बत्तीसी | १९७३ | ३४ |
| २८ | शब्द-विभूषण | १९७४ | २०० |
| २९ | गोविन्द हजारा (सग्रह) | १९७५ | ११०१ |
| ३० | अन्योक्ति-गोविन्द | १९७७ | ६० |
| ३१ | अलकार-अम्बुधि (अपूर्ण) | | |
| ३२ | प्रेम-प्रभाकर (सग्रह, अपूर्ण) | | ४१५ के लगभग |

हमने इनके १४ ग्रन्थो का एक सग्रह ( गोविन्द-ग्रन्थमाला ) देखा है। उससे साहित्य पर इनका विशेष अधिकार जान पडता है। खेद है कि ८ जुलाई, १९२६ को इनका देहान्त होगया।

इनके कुछ छन्द यहा उद्धृत किये जाते है—

कोऊ तो कहत छवि सर में सरोज भयो सुखमा सुभग ताकी नीको निरधार है। कोऊ तो कहत गोल आरसी अमोल ताकी आभा अभिराम अति सोहे सुखकार है॥ कोऊ तौ कहत चन्द अवनि मे उदै भयो ऐसे मुख उपमा को कहत अपार है। "गोविन्द" सुकवि पर मेरे मन जानि परचो कनकलता मे फूल लाग्यो आबदार है॥ १॥

सुधा को छिनाइ धरे अपने अधर बीच ताकी मधुराई लखि मिश्री भई मन्द है। षोडश कला को काटि रदन ललित कला बत्तिस बनाई बैठी मजु मसनद है॥ पोषन की शक्ति पुनि बिमल वचन परी लोनी सब सम्पनि यो राधे रचि फद है। "गोविन्द" सुकवि तवे कालिमा कलक धरि विचरत ब्योम फरियाद हित चद है॥ २॥

बेनी को बिलोकि ब्याल पेट को घिसत सदा, मुख को बिलोकि इन्दु हीन कला करि है। काया को बिलोकि कलधौत परे पावक मे स्रौन को निरखि सीप सागर मे परि है॥ दसन की दुति देखि दारिम दरार खात "गोविंद" गयद गति देखि धूरि धरि है। ताहि तें कहत तोको पेट तेरो ढाप प्यारी पेट न दिखाव कोऊ पेट मार मरि है॥ ३॥

बेर बेर पावक मे कञ्चन तपाय तऊ, रचक ना रग निज अग को मिटावै है। चदन सिलान पर घिसत अमित तऊ सुन्दर सुगन्ध चारो ओर सरसावै है॥ पेरत है कोल्हू मांहि ऊख को अधिक तऊ मजुल मधुरताई नेक न नसावै है। "गोविन्द" कहत तैसे कष्ट काय पाय तऊ सुजन सुभाव नाहि आप बदलावै है॥ ४॥

दहिबो शरीर अरु लहिबो परम पद चहिबो छनिक मांहि सिन्धु पार पाइबो। गहिबो गगन अरु बहिबो बयारि सङ्ग रहिबो रिपुन सङ्ग त्रास नाहि लाइबो॥ साहिबो चपेट सिह लहिबो भुजग मनि कहिबो कथन अरु चातुर रिझाइबो। "गोविन्द" कहत सोई सुगम सकल पर कठिन कराल एक नेह को निभाइबो॥५॥

लोभन ते यश अरु क्रोधन ते गुन पुनि कपट तें सत्यता के वृन्द बिनसात है। भूखन ते मरजाद ब्यसन ते बित्त पुनि आपदा ते उर निज

धीरज नसात है ।। ममता से ज्ञान अरु मद ते विनय पुनि चुगली ते सर्व महाबस बिखरात है। "गोविंद" कहत तैसे जाने जिय माँहि हमे दीनता से दुनिया मे मान मिट जात है ।। ६ ।।

सम्पति करन और दारिद दरन सदा, कष्ट के हरन भव तारन तरन है। भौन के भरन चारो फल के फरन महाताप त्रै हरन असरन के सरन है। भक्त उद्धरन और विघन हरन सदा जनम मरन महा दुख के दरन है। "गोविंद" कहत ऐसे बारिज बरन वर मोद के करन मेरे प्रभु के चरन है ।। ७ ।।

# कौमुदी-कुञ्ज

**घनाक्षरी**

भोजन ज्यो घृत बिन पथ जैसे साथी बिन हाथी बिन दल जैसे दाम बिन वान है । राव रङ्क रानी बिन कूप जैसे पानी बिन कवि जैसे बानी बिन गर बिन तान है । रसरास रीति बिन मित्र ज्यो प्रतीति बिन ब्याह काज गीत बिन मान बिन दान है । रग जैसे केसर बिन मुख जैसे बेसर बिन प्यारी बिन रैन ज्यो सुपारी बिन पान है ।। १ ।।

विद्या बिन द्विज श्रौ बगीचा बिन आमन को पानी बिन सावन सुहावन न जानी है । राजा बिन राजकाज राजनीति सोचे बिन पुन्य की बसीठी कहो कैसे धौ बखानी है । कहै "जयदेव" बिन हित को हितू है जैसे साधु बिन सङ्गति कलक की निसानी है । पानी बिन सर जैसे दान बिन कर जैसे सील बिन नर जैसे मोती बिन पानी है ।। २ ।।

गुन बिन कमान जैसे गुरु बिन ज्ञान जैसे मान बिन दान जैसे जल बिन सर है । कण्ठ बिन गीत जैसे हेत बिन प्रीत जैसे वेश्या बिन रीत जैसे फल बिन तर है । तार बिन यत्र जैसे स्याने बिन मन्त्र जैसे नर बिन नारि जैसे पुत्र बिन घर है । बानी बिन कवि जैसे मन मे विचारि देखो धर्म बिन धन जैसे पच्छी बिन पर है ।। ३ ।।

चन्द्र बिन रजनी सरोज बिन सरवर वेग बिन तुरग मतग बिना मद को । बिना सुत सदन नितबिनी सुपति बिन बिन धन धरम नृपति बिन पद को । बिन हरि भजन जगत सोहै जन कौन नोन बिन भोजन

विटप बिन छद को। "प्राणनाथ" सरस सभा न सोहै कवि बिन विद्या बिन बात न नगर बिन नद को ॥ ४ ॥

केते भये यादव सगर सुत केते भये जातहू न जाने ज्यो तरैया परभात की। बलि बेनु अबरीष मानधाता प्रह्लाद कहा लौ गनाओ कथा रावन ययात की ॥ तेऊ न बचन पाये काल कौतुकी के हाथ भाति-भाति सेना रची घने दुख घात की। चार-चार दिना को चावउ चाहै करै कोऊ अत लुटि जैहै जैसे पूतरी बरात की ॥ ५ ॥

गो द्विज को पाले सन्त मारग में चालै निज शत्रु दल घालै रण मे ते मन मोरै ना। सुखद सजीले बीरता मे गरबीले कुल एकहू न ढीले हीनताई के निहोरै ना ॥ जाको सग धारै ताको पार निरवारै दान दाया को सचारै धर्म धारै तौन छोरै ना। युद्धन की पत्री सुनि मोद लहै अत्री अति ऐसे सूर छत्री समता मे और जोरै ना ॥ ६ ॥

ऐठे ऐठे बोलै अधिकार निज खोलै कहे काम को न डोलै समझाय जब हारिये। द्विज कौन होते कुल चीकने न मोते इहि भाति भाषि सोते मे मसाल एक बारिये ॥ तुरत जगाय ताके मुख मे लगाय दीजे जनन भगाय छन एक लौ निहारिये। जानो महा खोटा चट पकरि कै झोटा ताको ऐसे सूद सोटा जोहि जूतन सुधारिये ॥ ७ ॥

न्याव नित साचे "बलदेव" रगराचे मामिला को खूब जाचे हाल बाचे ते बिसेखा मै। रुचत न रारी उपकारी श्रुति भारी भाव वश धन धारी कृतकारी रीति रेखा मै ॥ जागो यश वेश त्यो बडाई देस-देस काहू पच्छ को ना पेश औ न लेश लोभ लेखा मै। सम रङ्क भूप झगरे को करै कूप तेई ईश्वर के रूप है अनूप पच देखा मै ॥ ८ ॥

भांडन को भेंटे तिमि मेटे मरजाद दुष्ट लोभ के लपेटे बेटे काके बने काजी है। न्याव मुख देखा कियो रोखन की रेखा कियो लुच्चन मे लेखा कियो कैसे मूढ माजी है ॥ लोक में न माल परलोक त्यो न पाल कछू पूछते न हाल ठये चाल जालसाजी है। देतो ताहि राजी करै केतो कहो ना जी करै चेतो दगाबाजी करै ए तो पच पाजी है ॥ ९ ॥

सुन्दर सुभग तन सुखद मुदित मन आनद के घन धन छन हित साज है। दाया दानधारी "बलदेव" उपकारी जग भारी भीर टारी सुचि सील के समाज है ।। देसकाल जानै तिमि औषधि विधानै सब ही को सनमानै ठानै गुण सिरताज है। विसद विचारै त्यो अचारै श्री सचार चारु सेई सिद्ध भेई लघु तेई वैद्यराज है ।। १० ।।

नारी नाहि जानत अनारी कहे गारी देत तारी दै हसत है हजारन को मारा मैं । झोली बीच गोली तौन गोली-सी लगत यह तोली कई बार गई प्राणन को पारा मै ।। करनी यही है घर घरनी रिझैबे जोग बसु बैतरनी मिले हिये मे बिचारा मैं । बैठे है बधिक से बिसारे बकरूप वनि ऐसे वैद्यराज को बहावै बरिधारा मै ।। ११ ।।

आजु जो कहै तो आठ मास मे न लागे ठीक काल्हि जो कहै तो मास सोरह चलावही । पाच दिन कहे पाच बरस बिताय देहि पाच वर्ष कहै तो पचास पहुचावही ।। भाषत "प्रधान" जो वै ताहू पै न त्यागै द्वार आपन लजात फेर वाहू को लजावही । ऐसे सत्यभाषी सरदार है देवैया जहा काहे को पवैया तहा जीवत लौं पावही ।। १२ ।।

भाँडन को भोज कलावतन को कर्ण जैसे विश्वन को बेनु से उरोज रस लीबे को । बेडिन के विक्रम औ रामजनी जयचद चुगुल को चतुरभुज भारी मौज कीबे को ।। कहे "अवसेरी" मसखरन को मग जैसे चले विप-रीत धिरकार ऐसे जीबे को । सूम के रहत दुइ बातन की लगी एक ईश्वर निमित्त औ कवीश्वर को दीबे को ।। १३ ।।

जगत के कारन करन चारी बेदन के कमल मे बसे वे सुजान ज्ञान धरि कै । पोखन अवनि दुख सोखन तिलोकन के समुद में जाय सोये सेज सेस करि कै ।। मदन जरायो औ सहारचो दृष्टि ही सो सृष्टि बसे है पहार वेऊ भाजि हरबरि कै । विधि हरि हर बढ इनते न कोऊ तेऊ खाट पै न सोवै खटमलन सो डरि कै ।। १४ ।।

जानै राग रागिनी कवित्त रस दोहा छद जप तप तेग त्याग एक-सी गतन का । "महबूब" उरझि न देखि सके मित्रन की चित्त हर भाति मै

रिझैया नुकतन का ॥ जासे जी कबूलै सो न भूलै, भूलै माफ करै साफ दिल आकिल लिखैया हरफन का । नेकी से न न्यारा रहै बदी से किनारा गहै ऐसा मिलै प्यारा तो गुजारा चलै मन का ॥ १५ ॥

कूर भये कुवर मजूर भये मालदार सूर भये गुपत असूर भये जबरे। दाता भये कृपन अदाता कहै दाता हम धनी भये निधन निधन भये गबरे ॥ साचन की बात न पत्यात कोऊ जग माझ राजदरबारन बुलैये लोग लबरे । भनत "प्रवीन" अब छीन भई हिम्मत सो कलियुग अदलि बदलि डारे सिगरे ॥ १६ ॥

बारी औ खगार नाऊ धीमर कुम्हार काछी खटिक दसौधी ये हुजूर को सुहात है । कोल गोंड गूजर अहीर तेली नीच सबै पास के रहे तें कहा ऊचे भये जात है ॥ "बुद्धिसेन" राजनि के निकट हमेस बसै ,कूकर बिलार कहा गुण अधिकात है । दूरहि गयद बाधे दूर गुनवान ठाडे गज औ गुनी के कहा मोल घटि जात है ॥ १७ ॥

मद के भिखारी मीन मास के अहारी रहै सदा अनाचारी चारी लिखते लिखावते । नारी कुल धाम की न प्यारी परनारी आग विद्या पढि पढि हू कुविद्या मति धावते ॥ आखिन को काजर कलम से चुराय लेत ऐसे काम करै नेकु शकहु न आवते । जो पै सिहवाहिनी निबाहिनी न होती "चद" कायथ कलकी काके द्वारे गति पावते ॥ १८ ॥

सखी उरबसी-सी गरे पहिरे उरबसी-सी पिया उरबसी-सी छवि देखे दुख सरकि जात । कचुकी कसी-सी बहु उपमा लसी-सी रूप सुन्दर धसी-सी परयक पर थिरकि जात ॥ कहै "हरचरन" रही चमक बतीसी प्यारी जामे लगी मीसी हिये सौतिन दरिक जात । भुजे मे कसी-सी सिन्धु गग ज्यो धसी-सी जाके सीसी करिवे मे सुधा सीमी-सी ढरकि जात ॥ १९ ॥

कुन्द की कली-सी दत पाति कौमुदी-सी दीसी बिच-बिच मीसा रेख अमी-सी गरकि जात । बीरी त्यो रची-सी बिरची-सी लखै तिरछी-सी रीसी आखिया वै सफरी-सी फरकि जात ॥ रस की नदी-सी

"दयानिधि" की नदी-सी थाह चकित अरी-सी रति डरी-सी सरकि जात। फन्द में फसी-सी भरि भुज म कसी-सी जाकी सीसी करिवे मे मुधा सीसी-सी ढरकि जात ॥ २० ॥

सुनो हो विटप हम पुहुप तिहारे अहै राखिहौ हमें तो शोभा रावरी वढावेगे। तजिहौ हरषि कै तौ बिलग न मानै कछू जहा-जहा जैहै तहा दूनो जस गावेगे ॥ सुरन चढैगे नर सिरनि चढेगे नित सुकवि "अनीस" हाथ हाथन विकावेगे ॥ देस मे रहैगे, परदेस मे रहैगे, काहू भेस मे रहैगे तऊ रावरे कहावेगे ॥ २१ ॥

सुमन मै वास-जैसे सुमन मै आवै कैसे ना कह्यो चहत सो तो हा कह्यो चहत है। मुरसरि सूरतनया मे सुरसति-जैसे वेद के वचन वाचे साचे निबहत है ॥ परवा को इन्दु की कला ज्यो रहै अवर मै पर वाको अच्छ परतच्छ ना लहत है। बुद्धि अनुमान के प्रमान परब्रह्म-जैसे ऐसे कटि छीन कवि "मीरन" कहत है ॥ २२ ॥

लट की लरक पर भौह की फरकपर नैन की ढरक पर भरि-भरि ढारिये। "हरिकेस" अमल कपोल विहसन पर छाती उकसन पर निसक पसारिये ॥ गहरौही गति पर गहरौही नाभि पर हौ न हटकति प्यारे नैसुक निहारिये। एक प्रानप्यारी जू की कटि लचकीली पर ढीली-ढीली नजर सभारे लाल डारिये ॥ २३ ॥

आये सुख पावती न आये सुख पावती है हिय की न बात कछु "सेवक" जतावनी। कहू रहौ कान्ह जू मुहागिन कहावती है चाहती मै यही और न वात वनावती ॥ जाके सुख पाये सुख पावो तुम प्यारे लाल वाहू सुख दीजिये न या मै भरमावती। जामै सुख पावो तुम सोई हम करे याते हमतो तिहारे सुख पाये सुख पावती ॥ २४ ॥

खात है हरामदाम करत हराम काम घर घर तिनही के अपजस छावेगे। दोजख मे जैहै तव काटि-काटि कीडे खैहै खोपरी को गूद काग टोटनि उडावेगे ॥ कहै "करनेस" अवै घूसनि ते वाजि तजै रोजा औ

निमाज अंत जम कढ़ि लावेंगे। कब्रिन के मामले में करैं जौन खामी तौन नमकहरामी मरे कफन न पावेंगे ॥ २५ ॥

उमडि घुमडि घन आवत अटान ओट छन घन जोति छटा छटकि छटकि जात। सोर करैं चातक चकोर पिक चहू ओर मोर ग्रीव मोरि-मोरि मटकि-मटकि जात ॥ सावन लौ आवन सुनो है घनश्याम जू को आगन लौ आय पाय पटकि-पटकि जात। हिये विरहानल की तपनि अपार उर हार गजमोतिन के चटकि-चटकि जात ॥ २६ ॥

ऊचो कर करैं ताहि ऊचो करतार करैं ऊनी मन आनैं दूनी होती हरकति है। ज्यो-ज्यो धन धरैं सचैं त्यो-त्यो विधि खरो खैचै लाख भानि धरैं कोडि भाति सरकति है ॥ दौलत दूनी मे थिर काहू के न रही "क्षेम" पाछे नेकनामी बदनामी खरकति है। राजा होइ राइ होइ साइ उमराइ होइ जैसी होति नेति तैसी होति बरकति है ॥ २७ ॥

तारे भये कारे तेरे नैना रतनारे भये मोती भये सीरे तू न सीरी अजहू भई। "छीत" कहै पीतमैं चकैया मिली तू न मिली गैया तरु छूटी तेरी टेक न छूटी दई ॥ अरुनई नई तेरी अरुनई नई भई चहचही बोली आली तू न बोली ऐ बई। मद छवि भये चद फूले अरविन्द बृन्द गई री विभावरी न रिस रावरी गई ॥ २८ ॥

हाथी के दात के खिलौना बनैं भाति भाति बाघन की खाल तपी शिव मन भाई है। मृगन की खालन को ओढन है योगी यती छेरी की खाल थोरा पानी भर लाई है ॥ साबर की खालन को बाधत सिपाही लोग गैडा की खाल राजा रायन सुहाई है। कहै कवि "दयाराम" राम के भजन बिन मानुप की खाल कछू काम नहि आई है ॥२९॥

जस को सवाद जो पै सुनो कवि आनन सो रस को सवाद जो पै और को पिआइय। जीभ को सवाद बुरो बोलिये न काहू कहू देह को सवाद जो निरोग देह पाइये ॥ घर को सवाद घरनी को मन लिये रहै धन को सवाद सीस नीचे को नवाइये। कहै "द्विजराम" नर जानि कै अजान होत खैबे को सवाद जो पै और को खवाइये ॥३०॥

कौसलकुमार सुकुमार अति मारग्हू ते आली घिरि आई जिन्हें सोभा त्रिभुवन की। फूल फुलवाई मैं चुनत दोऊ भाई "प्रेम" सखी लखि आई गहे लतिका द्रुमन की॥ चरन लुनाई दृग देखे बनि आई जिन जीती कोमलाई औ ललाई पदुमन की। चलत सुभाई मेरो हियरा डराई हाय गडि मति जाय पाय पाखुरी सुमन की॥३१॥

आजु आली माथे ते सुबेंदी गिरै बार-बार मुख पर मोतिन की लरी लरकनि है। धरत ही पग कील चूरे की निकसि जात जब तब गाठि जूरे हू की सरकति है॥ जानि ना परत "प्रह्लाद" परदेस प्रिय उससि उरोजन सो आगी दरकति है। तनी तरकति कर चूरी चरकति अग सारी सरकति आख बाई फरकति है॥३२॥

म्यान सो कलमदान करते निकारि तामे स्याही जल विष मे बुझाई बार-बार है। चारु युक्ति जौहर जगावत सनेह सग अकिल अनेक तामे सिकिल सुढार है॥ "जुगुल किशोर" चलै कागद धरा पै धाय धारै ना दया को नेकु लागे वारपार है। पाइ कै गवार गाइ साफ करै साइति मे मुनसी कसाई की कलम तरवार है॥३३॥

वडे बिभिचारी कुलकानि तजि डारी निज आतम बिसारी अघ ओघ के निकेत है। जटा सीस धारे मीठे बचन उचारे न्यारे न्यारे पथ पारे सुभ पन्थ पीठ देत है॥ गावत कहानी पर वेद को न मानी ऐसे उमर बिहानी होत आये बार सेत है। कलि ठकुराई मे बिराग की बडाई करै माई-माई कहिकै लुगाई करि लेत है॥३४॥

जोर परे जोर जात भर परे भूमि जात भूमि जात योवन अनङ्ग रग रस है। कहै "हेमनाथ" सुख सम्पति बिपति जात जात दुखदारिद समूह रसवस है॥ गढ गिरिजात गरुआई औ गरब जात जात सुख साहिबी समूह सरबस है। बाग कटि जात कुवा ताल पटि जात नदीनद घटि जात पै न जात जग जस है॥३५॥

पौर के किवार देत घरे सबै गारि देत साधुन को दोष देत प्रीति ना चहत है। मागने को ज्वाब देत बात कहे रोय देत लेत देत भाज देत

ऐसे निबहत है ।। बागे हू के बंद देत बारन की गाठ देत परदन की काछ देत काम मे रहन है । एते पै सबेई कहै लाला कछु देत नाही लाला जू तो आठो याम देतई रहत है ।।३६।।

अगन बचाये शुभ चारो गन नाये अरु उक्ति उपजाय के बिसारे नाम हरि का । लोभ के अजान मे सयान सब भूलि गये कीबे परे ऐसई अधम ऐसे अरि का ।। कहै "कवि" लोग हम दान की कहा लो कहो मागे से न दियो जाय जासो ढूंक खरिका । सूम के कबित्त करि मन मे गलानि होत परै पछिताइबो छिनारि कैसो लरिका ।।३७।।

दाता घर होती तौ कदर तेरी जानी जाती आई है भले घर बधाई बजवावरी । खानें तहखानन मे आनि के बसेरो लेहु होहु न उदास चित चौगुनो बढावरी । खैहौ न खवैहौ मरि जैहौ तौ सिखाय जैहौ यहि पूत नातिन को आपनो सुभावरी । दमरी न दैहौ कबौ जाने मे 'भिखारिन' को सूम कहै सम्पति सो बैठी गीत गावरी ।।३८।।

राजन की नीति गई मीत की प्रतीति गई नारिनि की प्रीति गई जार जिय भायो है । शिष्यन को भाव गयो पचन को न्याव गयो साच को प्रभाव गयो भूठ ही सुहायो है ।। मेघन की वृष्टि गई भूमि सो तौ नष्ट भई सृष्टि पै सकल विपरीति दरसायो है। कीजिये सहाय हे कृपाकर गोबिन्द लाल कठिन कराल कलिकाल अब आयो है ।। ३९ ।।

पन्ना के पडोर गढ झन्ना के झवैया झरि झारूदार झासी के भवैया भानपुर के । कहै कवि "कुन्दन" कमायू के कुम्हार भाड दाउद के दरजी दामामी दानपुर के ।। तेली तिलगान के तबोली तेजगढ वाले भावज के भागड सोनारू मानपुर के । येते मिलि मारें जूती चुगुल चबाई शीश कालपी के कूजडे कसाई कानपुर के ।। ४० ।।

ह्वै कै महाराज हय हाथी पै चढै तो कहा जोपै बाहुबल निज प्रजनि रखायो ना । पढि-पढि पण्डित प्रवीण हू भये तो कहा विनय विवेक युत जोपै ज्ञान गायो ना ।। "अम्बुज" कहत धन धनिक भयो तो कहा दान

करि जोपै निज हाथ जस छायो ना । गरजि-गरजि घन घोरनि कियो तो कहा चातक के चोच मे जो रच नीर नायो ना ।। ४१ ।।

जामे दू अधेली चार पावली दुअन्नी आठ तामे पुनि आना रखी सोरह समात है । बत्तिस अधन्नी जामे चौसठ पईसा होत एक सो अठा इस अधेला गुनमात है । युग शत छप्पन छदाम तामे देखियत दमरी सु पाच शत बारह लखात है । कठिन समैया कलिकाल को कुटिल दैया सलग रुपैया भैया कापै दियो जात है ।। ४२ ।।

दानी कोउ नाहि न गुलाबदानी पीकदानी गोददानी धनी सोभा इन ही मे लहे है । मानत गुनी को गुनही मे प्रकटत देखो याते गुनी जन मन सावधानी गहे है । हयदान हेमदान राजदान भूमिदान सुकवि सुनाये औ पुरानन मे कहे है । अब तो कलमदान जुजदान जामदान खानदान पानदान कहिबे को रहे है ।। ४३ ।।

चन्द्रमा पै दावा जिमि करत चकोरगन घनन पै दावा कै मयूर हरपात है । भानु पर दावा कर विकसत कजपुञ्ज स्वाति वृन्द दावा कर चातक चचात है ।। सुकवि 'निहाल" जैसे करी के कपोलन पै अलिन अवलि करि नित मडरात है । ऐसे महराजन पै दावा कबिराजन को घूतन के द्वारे कहू भूतन न जात है ।। ४४ ।।

साह भाये सूमडा सु बादसाह हीन हद्द खग्गे खगूरेटन दुसाला बेच खाई है । भोले भये भूपति कनौडे धनवन्त सब मूरख महन्थ अन्ध देत ना दिखाई है । कायथ कपूत भये कूर रजपूत धूत बनिया बरूथ पेखि पुञ्ज पछिताई है । काके ढिग जाई काहि कबित सुनाई भाई अब कविताई रही फजिहति ताई है ।। ४५ ।।

सासु के बिलोके सिहिनी-सी जमुहाई लेइ ससुर के देखे बाघिनी सी मुह बावती । ननद के देखे नागिनी-सी फुफकारे बैठि देवर के देखे डाकिनी-सी डरपावती ।। भनत "प्रधान" मोछै जारती परोसिन की खसम के देखे खाव खाव करि धावती । करकसा कसाइनि कुबुद्धिनी कुलच्छनी ये करम के फूटे घर ऐसी नारि आवती ।। ४६ ।।

गृहिनि बियोग गृह त्यागिन विभूति दीन्ही योगिन प्रमोद पुनवतन छलो गयो। ग्रहनि ग्रहेश कियो शनि को सुचित्त लघु व्यालनि स्वतत्र सेस भारलें दलो गयो ॥ "फेरन" फिरावत गुनीन गृह नीच द्वार गुनन-विहीन घर बैठे ही भलो भयो। कौन-कौन बाते तेरी कहै एक आनन ते नाम चतुरानन पै चूकतै चलो गयो ॥ ४७ ॥

बार-बार बैल को निपट ऊचो नाद सुनि हुकरत बाघ बिरझानो रस रेला मे। "भूधर" भनत ताकी बास पाइ सोर करि कुत्ता कोतवाल को बगानो बगमेला मे ॥ फुकरत मूषक को दूषक भुजङ्ग तासो जङ्ग करिबे को झुक्यो मोर हद हेला मे। आपस मे पारषद कहत पुकारि कछु रारि-सी मची है त्रिपुरारि के तबेला मे ॥ ४८ ॥

कज वन मानि "मून" हस गन आइ फिरे गध बन भृङ्ग भीर भग करि डारे तै। पाके फल जानि सुक पुञ्ज पछिताने आइ पाइ कै बसत बात वृथा पात डारे तै ॥ दूरि ते बिलोकि अरुनाई अति फूलन की अमिष अकार गीध बायस बिडारे तै। एरे तरु सेमर के सिफल तिहारे कहा आस दिये पच्छिन निरास करि डारे तै ॥४९॥

समै को न जानै सीख काहू की न मानै रारि कठिन को ठाने सो अजानै भई जाति है। पीछे पछितैहै घात ऐसी नहिं पैहै टेक तेरी रहि जैहै कहा टेढी भई जाति है ॥ "मगम" मनावै तोहिं हित की सिखावै सीखजा बिन न भावै भौन ताही सो रिसाति है। मोसो अठिलाति बिन काम को हठाति प्यारी तू तो इतराति उत राति बीती जाति है ॥ ५० ॥

काके गये बसन पलटि आये बसन सू मेरो कछु बस न रसन उर लागे हौ। भौहै तिरछी है कवि "सुन्दर" सुजान सोहै कछु अलसोहै गोहै जाके रस पागे हौ ॥ परसों मे पायहुते परसो मे पाय गहि परसौं मे पाय निसि जाके अनुरागे हौ। कौन बनिता के हौ जू कौन बनिताके हौ सु कौन बनि ताकी बनिता के सग जागे हौ ॥ ५१ ॥

चोथते चकोर चहुओर जानि चन्दमुखी जो न होती डरनि दसन दुति दम्पा की। लीलि जाते बरही बिलोकि बेनी बनिता की जो न होती

गूथनि कुसुम सर कम्पा की ॥ "पूखी" कवि कहै ढिग भौहै ना धनुष होती कीर कैसे छोडते अधर बिंब झम्पा की । दाख कैसो झौरा झलकनि जोति जोबन की चाटि जाते भौंरा जो न होती रङ्ग चम्पा की ।। ५२ ।।

सोये लोग घर के वगर के केवार खोलि जानि मन माहि निज गई जुग जामिनी । चुप चाप चोरा चोरी चौकति चकित चली पीतम के पास चित चाह भरी भामिनी । पहुची सकेत के निकेत "सभु" सोभा देत ऐसी बन बीथिन बिराजि रही कामिनी । चामीकर चोर जान्यो चपलता भौर जान्यो चन्द्रमा चकोर जान्यो मोर जान्यो दामिनी ।। ५३ ।।

तन पर भार तीन तन पर भार तीन तन पर भारतीन तन पर भार हैं । पूजे देवदार तीन पूजे देवदार तीन पूजे देवदार तीन पूजे देवदार है । नीलकण्ठ दारुन दलेल खा तिहारी धाक नाकती न द्वार ते वै नाकती पहार है । आधरै न कर गहे बहिरे न सङ्ग रहे बार छूटे बार छूटे बार छूटे बार है ।। ५४ ।।

सुनो दिलजानी मेरे दिल को कहानी तुम दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूगी मै । देवपूजा ठानी मै निवाज हू भुलानी तजे कलमा कुरान साडे गुनन कहूगी मै । स्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिये तेरे नेह दाग मै निदाग हो दहूगी मै । नन्द के कुमार कुरबान ताडी सूरत पै ताड नाल प्यारे हिन्दुवानी हो रहूगी मै ।। ५५ ।।

कोऊ कहै है कलक कोऊ कहै मिन्दु पक कोऊ कहै छाया है तमोगुन के भास की । कोऊ कहै मृगमद कोऊ कहै राहु रद कोऊ कहै नीलगिरि आभा आसपास की ।। "भजन" जू मेरे जान चन्द्रमा को छीलि विधि राधे को बनायो मुख सोभा के विलास की । तादिन ते छाती छेद भयो है छपाकर के वारपार दीखत है नीलिमा अकास की ।। ५६ ।।

मलयज गारा करै अगर सिगारा करै गहि कर डारा करै माल मुकतान की । आरती उतारा करै पखा चौर ढारा करै छाहै बिसतारा करै बिसद बितान की ।। मुख सो निहारा करै दुख को बिसारा करै मनसा इसारा करै सारा अखियान की । मानिक प्रदीपन सो थारा

सजि ताराजू की आरती उतारा करै दारा देवतान की ।। ५७ ।।

कैधौ दृग सागर के आसपास स्यामताई ताही के ये अंकुर उलहि दुति बाढे है ।। कैधो प्रेमक्यारी जुग ताके ये चहूधा रची नीलमनि सरनि की बारि दुख डाढे है ।। "मूरति" सुकवि तरुनी की बरुनी न होवै मेरे मन आवै ये बिचार चित गाढे है । जेई जे निहारे मन तिनके पकरिबे को देखो इन नैनन हजार हाथ काढे है ।। ५८ ।।

एरे गुनी गुन पाइ चातुरी निपुन पाइ कीजिये न मैलो मन काहू जो कछू करी । बीरन विराने द्वार गये को सुभाव यही मान अपमान काहू रे करी कि जू करी ।। कूर औ कविन्द चले जात है सभा के बीच तोसो तो हटकि "देवीदास पलटू" करी । दरवाजे गज ठाढे कूकरी सभा के मध्य कूकरी सो कूकरी औ तू करी सो तू करी ।। ५९ ।।

भोरहि भुखात ह्वै है कन्द मूल खात ह्वै है दुति कुम्हलात ह्वै है मुख जलजात को । प्यादे पग जात ह्वै है मग मुरझात ह्वै है थकि जै है घाम लागे स्याम कृसगात को ।। "पडित प्रवीन" कहै धर्म के धुरीन ऐसे मन मे न माख्यो पीन राख्यो प्रन तात को । मात कहै, कोमल कुमार सुकुमार मेरे छौना कहू सोवत बिछौना करि पात को ।। ६० ।।

आजु हौ गई ती सभु न्योते नन्दगाव तहा सासति परी है रूपवती बनितान की । घेरि लियो तियनि तमासो करि मोहि लखै गहि-गहि गुलफ लुनाई तरवान की ।। एकै कल बोलि-बोलि औरन देखावै रीझि रीझि कोमलाई औ ललाई मेरे पान की । घूघुट उघारि एकै मुख देखि-देखि रहै एकै लगी नापन बडाई अखियान की ।। ६१ ।।

नट को न धाम नपुसक को काम नाहि ऋणी को अराम वाम वेश्या न सहेलरी । ज्वारी को न सोच मासहारी को न दया होत कामी को न नातो गोत छाया ना सहेलरी ।। "देवीदास" वसुधा मे वनिक न सुना साधु कूकर को धीरज न माया है सहेलरी । चोर को न यार बटमार को न प्रीति होत लावर ना मीत होत सौत न सहेलरी ।। ६२ ।।

जैसी तेरी कटि है तू तैसा मान करि प्यारी जैसी गति तैसी मति

हिय ते बिसारिये । जैसी तेरी भौह तैसे पथ पै न दीजै पाव जैसे नैन तैसिये बडाई उर धारिये ।। जैसे तेरे ओठ तैसे नैन कीजिये न जैसे कुच तैसे बैन नाहि मुखते उचारिये । एरी पिक बैनी सुन, प्यारे मनमोहन सो जैसे तेरी बेनी तैसी प्रीति बिसतारिये ।। ६३ ।।

गिरि कीजै गोधन मयूर नवकुजन को पसु कीजै महाराज नन्द के बगर को । नर कीजै तौन जौन राधे राधे नाम रटै, तट कीजै बर कूल कालिदी कगर को ।। इतने पै जोई कछु कीजिये कुवर कान्ह, राखिये न आन फेर हठी के झगर को । गोपी पद पकज पराग कीजै महाराज, तृण कीजै रावरेई गोकुल नगर को ।। ६४ ।।

ब्बुर बहर को बनाय बाग राखियत रूधिबे को सोऊ सुतरु काटियत है । गारी देत नीच हरिचदहू दधीचहू को आपने चना चबाय हाथ चाटियत है ।। आप महा पातकी हसत हरिहरहु को आप है अभागी भूरि भागी डाटियत है । कलि की कलुष मन मलिन किये महत मसक की पाखुरी पयोधि पाटियत है ।। ६५ ।।

डुबकी लै उझकी परचो है केस आनन पै मानो स'सिमडल पै स्याम-घन घिरिगो । करन सवारि कै उघारि दीनो "मोतीराम" लोचन लोनाई वैसी पाई है न मिरगो ।। विप्र को बुलाइ मुसकाइ अधरानन मे देन लगी दच्छिना तनिक चीर चिरिगो । गात की गोराई देखि भूली सुधि प्रोहित की लगी टकटकी टका गोमती मे गिरिगो ।। ६६ ।।

सिधु के सपूत सिधुतनया के बधु अरे बिरहीजरै है रे अमद तेरे ताप ते । तू तो दोषी दोष हू ते कालिमा कलकी भयो धारे उर छाप रिषी गौतम के साप ते ।। "लाल", कहे हाल तेरो जाहिर जहान बीच वारुनि को बासी त्रासी राहु के प्रताप तें । बाधो गयो मथो गयो पीयो गयो खार भयो बापुरो समुद्र तो-से पूत ही के पाप तें ।। ६७ ।।

मूसे पर साप राखे साप पर मोर राखे बैल पर सिह राखे वाके कहा भीति है । पूतनि को भूत राखे भूत को विभूत राखे छमुख को गजमुख यह बडी रीति है ।। काम पर बाम राखे विष को अमृत राखे आग पर

पानी राखे सोई जग जीति है । "देवीदास" देखो ज्ञानी सकर को सावधानी सब विधि लायक पै राखे राजनीति है ।। ६८ ।।

कीरति को मूल एक रैन दिन दान देबो धरम को मूल एक साच पहिचानिबो । बढिबे को मूल एक ऊचो मन राखिबो है जानिबे को मूल एक भली बात मानिबो ।। व्याधि मूल भोजन उपाधि मूल हासी "देवा" दारिद को मूल एक आलस बखानिबो । हारिबे को मूल एक आतुरी है रन माझ चातुरी को मूल एक बात कहि जानिबो ।। ६९ ।।

कौन यह देस कौन काल कौन बैरी मेरो कौन मेरे हितू ताहि ढिग ते न टारिबो । केती निज आमद खरच केतो केतो बल तेहि उनमान बैन मुह ते निकारिबो ।। सपति के आवन को कौन मेरो साधन है ताहू को उपाव अरु दाव उर धारिबो । राजनीति राजन को प्रतिदिन "देवीदास" चारि घरी राति रहे इतनो बिचारिबो ।। ७० ।।

पहले विवाद व्यवहार धन को न कीजै जाचिये न तापै आय मागे ताहि दीजिये । मित्र के घरे मे घरनी सो मिलि बैठिये न हसिये न दूरि बैठि बात छोरि लीजिये ।। कोऊ भेद पारे तो न भूले "देवीदास" कहे मन की दुराइये न ताते भये खीजिये । प्रीति खोयो चाहिये तो कीजिये परे सो प्रीति प्रीति राख्यो चाहिये तो इतनो न कीजिये ।। ७१ ।।

फूस नही फास नही छप्पर पै घास न बडेरी नही बास तहा झीगुर झरा करै । दिवार आरपार है सुराख लाख चार है त्यो कोटिन प्रमाण भूत भौन मा फिरा करै ।। मकरी के मेल है बिछौती तहा रेलपेल गिर-गिट के खेल देखि जियरा डरा करै । गोजर गिरो है साप बिच्छू सिगरो है नाथ ऐसे-ऐसे भौन है तो डेरा लै कहा करै ।। ७२ ।।

चद की मरीचिकान तोरि बियराय दीन्ह्यो कैधो हीरा फोरि कै कनूका धरि-धरि गये । कैधो काम-मदिर की झाझरी बनाइ विधि, कैधो सोनजुही के पुहुप झरि-झरि गये ।। कामिनि मनोरथ के आलवाल "सिवनाथ" मैन के मतग माते बेलि चरि-चरि गये । अमल कपोलन पै दागि नहि सीतला के डीठि गडि-गडि गई गाड परि-परि गये ।। ७३ ।।

हेरी लाल तेरे ? सखी, ऐसी निधि पाई कहा ? हेरी खगयान ? कह्यो, हौं तो नहिं पाले हैं। हेरी गिरधारी ? ह्वै हैं रामदल माहि कहूं हेरी घनश्याम ? ह्वै हैं सीत सरसाले हैं ॥ हेरी सखी कृष्णचंद्र ? चंद्र कहूं कृष्ण होत ? तब हंसि राधे कही, मोर पच्छवारे हैं । श्याम को दुराय चन्द्रावलि बहराय बोली मेरे कैसे आय हैं जो तेरे पच्छवारे हैं ? ॥ ७४ ॥

### सवैया

फूलन दे अब टेसू कदम्बन अम्बन मौरन छावन दे री।
री मधुमत्त मधूपन पुंजन कुंजन सोर मचावन दे री॥
क्यों सहि है सुकुमारि "किशोर" अली कलकोकिल गावन दे री।
आवत ही बनि है घर कन्तहि बीर बसन्तहि आवन दे री॥१॥
कानन लौं अंखियां ये तुम्हारी हथेरी हमारी कहां लगि फैलिहै।
मूंदे तऊ तुम देखति हौ यह कोरैं तिहारी कहा धौं सकेलिहै॥
कान्हर हू कौ सुभाव यहै उनको हम हाथन ही पर मेलिहै।
राधे जू मानो भलो कि बुरो अखमूंदनो साथ तिहारे न खेलिहै॥२॥
अंबुज कंज से सोहत है अरु कंचन कुंभ थपे से धये हैं।
बारे खरे गदकारे महा बटपारे लसे अरु मैन छये हैं॥
ऊंचे उजागर नागर है अरु पीय के चित्त के मित्त भये हैं।
है तो नये कुच ये सजनी पर जौलौं नए नहिं तौ लौं नये हैं॥३॥
खाय कै पान बिदोरत ओठ है बैठि सभा मे बने अलबेला।
धोती किनारी की सारी सी ओढत पेट बढाय कियो जस थैला॥
"वंशगोपाल" बखानत है सुनो भूप कहाय बने फिरे छैला।
सान करै बडी साहिबी की पर दान मे देत न एक अधेला॥४॥
होत ही प्रात जो घात करै नित पार परोसिन सो कल गाढी।
हाथ नचावत मूंड खुजावति पौरि खडी रिसि कोटिक बाढी॥
ऐसी बनी नखते सिखलौं "ब्रजचन्द" ज्यो क्रोध समुद्र ते काढी।
ईंट लिये ब्रतराति भतार सो भामिनि भौन मे भूत-री ठाढी॥५॥

लोहे की जेहरि लोहे की तेहरि लोहे की पाव पयेजनि गाढी।
नाक मे कौडी औ कान मे कौड़ी त्यो कौडिन की गजरा गति बाढी ॥
रूप मे वाको कहा लौ कहौ मनो नील के माठ मे बोरि कै काढी।
ईंट लिये बतराति भतार सो भामिनि भौन मे भूत-सी ठाढी ॥६॥
"भूप" कहै सुनियो सिगरे मिलि भिच्छुक बीच परौ जिन कोई।
कोई परौ तो निकोई करौ न निकोई करौ तौ रहौ चुप सोई ॥
जानत हौ बलि ब्राह्मन की गति भूलि कुपथ भलो नहि होई।
लेइ कोऊ अरु देइ कोऊ पर शुक्र ने आखि अकारथ खोई ॥७॥
राधिका माधव एक ही सेज पै धाइ लै सोई सुभाय सलोने।
पारे "महाकवि" कान्ह के मध्य मे राधे कहै यह बात न होने ॥
सावरे सो मिलि ह्वै है न सावरी बावरी बात सिखाई है कोने।
सोमे को रग कसौटी लगै पै कसौटी को रग लगै नहि सोने ॥८॥
बात चली चलिबे की जहा फिर बात सुहानी न गात सुहानो।
भूषण साज सकै कहि को "महाराज" गयो छुटि लाज को बानो ॥
दो कर मीडति है वनिता सुनि प्रीतम को परभात पयानो।
आपने जीवन को लखि अन्त सुआयु की रेख मिटावति मानो ॥९॥
कोऊ न आयो उहा ते सखीरी जहा "मुरलीधर" प्राणपियारे।
याही अदेसे मे बैठी हुती उहि देस के धावन पौरि पुकारे ॥
पाती दई धरि छाती लई दरकी अगिया उर आनन्द भारे।
पूछन को पिय की कुसलात मनो हिय द्वार किवार उघारे ॥१०॥
मगल होत कहै "शिवराज" कहो केहि के दुख होत बिसेखो।
कौन सभा महँ बैठि न सोहत को नहि जानत चित्त परेखो ॥
कौन निसा ससि को न उदोत भो का लखि कै बिरही दुख पेखो।
वाझक पूत बिना अखियान कुहू निसि मे ससि पूरण देखो ॥११॥
जोग अजोग बिचारे बिना सिर सौपत भार महा अति तापै।
गाडर ऊट किसान करै यह वात कहा कहि जात है कापै ॥

"सिंह" जू काग सुहावन होइ तौ काहे को कोऊ मरालहि थापै।
काम परे पछितांहिंगे वे जे गयद को भार धरै गदहा पै ॥१२॥
सासु रिसाति झकै ननदी सखि तू सिखवै सिख सीख के बैना।
दै ब्रजवास चबाव महा चहुश्रोर चलै उपहास की सैना॥
देखत सुन्दरी सावरी मूरति लोक अलोक की लीक लखै ना।
कैसी करौ हटके न रहै चलि जात तऊ लखि लालची नैना ॥१३॥
जाके लगै गृह-काज तजै अरु मात-पिता हित तात न राखै।
"सागर" लीन ह्वै चाकर चाहकै धीरज हीन अधीन ह्वै भाखै॥
व्याकुल मीन ,ज्यो नेह नवीन मे मानो दई बरछीन की साखै।
तीर लगै तरवारि लगै पै लगै जनि काहू से काहू की आखै ॥१४॥
जाके लगै सोइ जानै व्यथा पर पीर मे कोइ उपहास करै ना।
"सागर" जो चुभि जात है चित्त तौ कोटि उपाय करै पै टरै ना॥
नेकसी ककरी जाके परै वह पीर के मारे सु धीर धरै ना।
कैसे परै कल ऐरी भटू जब आखि मे आखि परै निकरै ना ॥१५॥
पेट पिराय तौ पीठहि टोवत पीठ पिराय तौ पाय निहारै।
दै पुरिया पहले विष की पुनि पीछे मरे पर रोग विचारै॥
बीस रुपैया करे कर फीस न देत जवाब न त्यागत द्वारै।
भाखे "प्रधान" ये वैद्य कसाई ह्वै दैव न मारे तो आपही मारै ॥१६॥
सूल सुजाक छई लकवा ज्वर पीनस पील को घाव घनेरे।
श्रौर जलंदर हू परमेह कहै कवि "राम" कहा लगि हेरे॥
जाके बिलोकत ही ततकाल चहूदिसि तें दुख आवत घेरे।
जापै दया करि हाथ गहै तिहि माथ गहै जमराज सवेरे ॥१७॥
साल छ-सात की दाल दराय कै साहु कह्यो यह लेहु नई है।
फूक दई लकडी बहुतेरिक साझ ते आधिक रात लई है॥
खाय लियो अकुताय कै काचही चाकरी चूल्हे निहारि गई है।
खोय दियो मुजरा दरबार की दाल दधीच की हाड भई है ॥१८॥

घोड गिरचो घर बाहरहो महाराज कछू उठवावन पाऊ।
ऐडो परो विच पैंडोई माझ चलै पग एक ना कैसे चलाऊ॥
होय कहारन को जुपै आयसु डोली चढाय यहा तक लाऊ।
जीन धरौ कि धरौ तुलसी मुख देउ लगाम कि राम कहाऊ॥१६॥
अर्थ है मूल भली तुक डार सु अच्छर पत्र को देखिकै जीजै।
छद है फूल नवो रस है फल दान के बारिसो सीचिबो कीजै॥
"दान" कहै यो प्रवीनन सो कवि की कविता रस राखि कै पीजै।
कीरति के बिरवा कवि है इनको कबहू कुम्हिलान न दीजै॥२०॥
ज्ञान घटै ठग चोर की सगति मान घटै परगेह के जाये।
पाप घटै कछु पुन्य किये अरु रोग घटै कछु औषध खाये॥
प्रीति घटै कछु मागन ते अरु नीर घटै रितु ग्रीषम आये।
नारि-प्रसग ते जोर घटै जम-त्रास घटै हरि के गुन गाये॥२१॥
ईट को बन्दन, नीम को चन्दन, नीच को नन्दन, बाम को घूसा।
माते की गान, डफाली की तान, औ गूगा को गान, कपूत को रूसा॥
रङ्क की रीझ, जुआरी की खीझ, अजान की प्रीत, जुवार को चूसा।
राजा को दूसरो, छेरी को तीसरो, रेड को मूसरो, खासर खूसा॥२२॥
साप सुशील, दयायुत नाहर, काक पवित्र औ साचो जुआरी।
पावक सीतल, पाहन कोमल, रैन अमावस की उजियारी॥
कायर धीर सती गनिका, मतवारो कहा मतवारो अनारी।
"मोतियराम" विचारि कहै नहि देखो सुनी नरनाह की यारी॥२३॥
व्याकुल काम सतावत मोहि पिया बिन नीक न लागत कोई।
प्रीतम से सपने भई भेट भलीबिधि सो लपटाय कै सोई॥
नैन उघारि पसारि कै देखो तो चौंकि परी कतहू नहि कोई।
एरी सखी दुख कासो कहो मुसकाय हसी हसि कै फिरि रोई॥२५॥
पौढी हुती पलगा पर मै निसि ज्ञानरु ध्यान पिया मन लाये।
लागि गई पलकै पल सो पल लागत ही पल मे पिय आये॥

ज्योंही उठी उनके मिलिबे कह जागि परी पिय पास न पाये।
"मीरन" और तो सोय कै खोवत मैं सखि प्रीतम जागि गवाये ॥२५॥

भात मे लोन पहीति मे पाथर डारि करै सब छूति ही छूकर।
मागेहू सो परसे न कछू खल मैले महा मल को मनो सूकर॥
व्यजन या विधि के है रचे मुख सौह किये मन आवत थूकर।
ये कबहूं नहि दूबर होत रसोई के विप्र कसाई के कूकर॥२६॥

दाम की दाल छदाम के चाउर घी अगुरीन लै दूरि दिखायो।
टोनो सो नोन धरचो कछु आनि सबै तरकारी को नोम गनायो॥
विप्र बुलाय पुरोहित को अपनी बिपती सब भांति सुनायो।
साहसी आज सराध कियो सो भलीविधि सो पुरखा फुसलायो॥२७॥

बधु विरोध करे भिगरो झगरो नित होत सुधारस चाटत।
मित्र करै करनी रिपु की धरनीधर देखि न न्याउ निपाटत॥
"राम" कहै विष होत सुधा घर नारि सती पति सो चित फाटत।
भा विधिना प्रतिकूल जबै तब ऊट चढै पर कूकर काटत॥२८॥

साल भरे पर पथ्य लियो षटमास उपास कियो फिर ऐंठचो।
"माधो" कहै नित मैल छुडावत दातन दीन्हे तुराय धौ कठचो॥
कोऊ कहूक जो देइ खवाइ तौ कै कर डारत सोच मे पैठचो।
मूड घुटाय औ मूछ मुडाय त्यो फस्त खुलाय तुला चढि बैठचो॥२९॥

चीटि न चाटत मूसे न सूघत बास ते माछी न आवत नेरे।
आनि धरे जब ते घर मे तब ते रहै हैजा परोसिन घेरे॥
माटिहू मे कछु स्वाद मिलै इन्है खाय सो ढूढत हर्रे-बहेरे।
चौकि परचो पितुलोक मे बाप सो पूत के देखि सराधके पेरे॥३०॥

आपु को वाहन बैल बली बनिताहू को वाहन सिंहहि पेखि कै।
मूसे को वाहन है सुत एक सु दूजो मयूर के पच्छ विसेखिकै॥
भूषन है कवि "चैन" फनिंद के वैर परे सब ते सब लेखिकै।
तीनहु लोक के ईश गिरीश सुयोगी भये घर की गति देखिकै॥३०॥

सूरज के रथ लागे रह्यो याके आगे भयो कई बार कन्हैया।
लोमश के लरिकाई के खेल के भूलि गयो जग को उपजैया॥
ऐसो तुरग मगाय के भूपति दान को काढ्यो दरिद्र को छैया।
भुण्डन काक लगे फिरै सग मनो यह काकभुशुडि को भैया॥३२॥
गग नही मुकता भरी माग है चन्द्र नही यह उद्यत भाल है।
नील नही मखतूल को पुज है शेष नही शिर वेनी विसाल है॥
भूति नही मलयागिरि है विजया है नही विरहा से बेहाल है।
एरे मनोज सभारि के मारियो ईश नही यह कोमल वाल है॥३३॥
पीनसवारो प्रवीन मिलै तो कहा लौ सुगन्धी सुगन्ध सुघावै।
कायर कोपि चढै रन मे तो कहा लगि चारन चाव बढावै॥
जैसे गुनी को मिलै निगुनी तो "पुखी" कहै क्योकर ताहि रिझावै।
जैसे नपुसक नाह मिलै तो कहा लगि नारि शृगार बनावै॥३४॥
जो सहजै सब काम करै सहमे त्यहि हेरि हिये कहलाकर।
ना तो जवान की नोकै बसै निरखे परै औगुन के अति आकर॥
लागै नही सग जागै न नौकरी भागै कहू नृप को लखि साकर।
चोर चटोर ये चूल्हे परै यहि भाति चमार से चूतिया चाकर॥३५॥
सीस कहै परि पाय रहौ भुज यो कहै अङ्क तै जान न दीजै।
जीह कहै वतियाई कियौ कगै स्रौन कहै उनही की सुनीजै॥
नैन कहै छवि सिन्धु सुधारस को निसिबासर पान करीजै।
पायहु प्रीतम चित्त न चैन यो भावतो एक कहा कहा कीजै॥३६॥
अम्बर बीच पयोधर देखि कै कौन को धीरज सो न गयो है।
"भजन" जू नदिया यहि रूप की नाव नही रवि हू अथयो है॥
पथिक रात वसो यहि देस भलो तुमको उपदेस दयो है।
या मग बीच लगै वह नीच जु पावक मे जरि प्रेत भयो है॥३७॥
तुम नाम लिखावती ही हम नाम कहा कहो लीजिये जू।
अब नाव चले सिगरे जल मे थल मे न चले कहा कीजिये जू॥

कवि "किंचित" औसर जो अकनी सकती नही हा पर कीजिये जू ।
हम ता अपनो वर पूजती है सपने नहिं पीपर पूजिये जू ॥३८॥
खाने का भग नहाने को गग चढै को तुरग ओढै को दुसाला ।
धर्म धुरन्धर औ महिषी पति द्वार भुले गज यूथक हाला ॥
पान पुरान सोहागिनि सुन्दरि गोद बिराजत सुन्दर बाला ।
दो मह एक तो देहु कृपानिधि द्वो मृगनैनी कि दो मृगछाला ॥३९॥

छप्पय

जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू जग सुजस न लीनो ।
जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू परकाज न कीनो ॥
जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू परपीर न जानी ।
जिहि मुच्छन धरि हाथ दीन लखि दया न आनी ॥
मुच्छ नाहिं वे पुच्छ सम कवि "भरमी" उर आनिये ।
नहिं बचन लाज नहिं दानगति तिहि मुख मुच्छ न जानिये ॥१॥
तिमिरलग लई मोल चली बाबर के हलके ।
रही हुमाऊ साथ गई अकवर के बलके ॥
जहागीर जस लियो पीठ को भार मिटायो ।
साहजहा करि न्याव ताहि को माड चटायो ॥
बलरहित भई पौरुष थक्यो भगी फिरत वन स्यार डर ।
औरङ्गजेब करिनी सोई लै दीन्ही कविराज कर ॥२॥
मरै बैल गरियार मरै वह कट्टर टट्टू ।
मरै हठीली नार मरै वह पुरुष निखट्टू ॥
सेवक मरै सु तौन जौन कछु समै न सुज्झै ।
स्वामी मर जु कौन जौन सेवा नहिं बुज्झै ॥
जजमान सूम मरि जाहि तौ काहि सुमिरि दुख रोइये ।
कवि "गड्डु" कहै मरि जाय सो जाहि सुने सुख सोइये ॥३॥
ससिकलक रावन विरोध हनुमत्त सो बनचर ।
कामधेन ते पसु जाय चिन्तामनि पत्थर ॥

अति रूपा तिय वाझ गुनी को निरधन कहिये।
अति समुद्र सो खार कमल विच कण्टक लहिये॥
जाये जु व्यास खेवट्टिनी दुर्वासा आसन डिग्यो।
कवि "गीध" कहै सुनु रे गुनी कोउ न कृष्ण निर्मल गढ्यो॥४॥
हर्सहि गज चढि चल्यो करी पर सिह विरज्जै।
सिहहि सागर धरयो सिधु पर गिरि द्वै सज्जै॥
गिरिवर पर इक कमल कमल पर कोयल वोलै।
कोयल पर इक कीर कीर पर मृगहू डोलै॥
ता ऊपर सिसु नाग के निसुदिन फनिय धरे रहै।
"कवि गङ्ग" कहै गुनिजनन सो हस भार केतो सहै॥५॥
तिलक भाल वनमाल अधिक राजत रसाल छवि।
मोर मुकुट की लटक छटक बरनत अटकत कवि॥
पीताम्बर फहराय मधुर मुसुकान कपोलन।
रच्यो रुचिर मुख पान तान गावत मृदु बोलन॥
रति कोटि काम अभिराम अति दुष्ट निकन्दन गिरिधरन।
आनन्द कन्द ब्रजचन्द प्रभु जय जय जय असरन सरन॥६॥
चातुरानन सम बुद्धि बिदित जौ होय कोटि धर।
एक एक धर प्रतिन सीस जौ होय कोटि वर॥
सीस सीस प्रति बदन कोटि करतार बनावै।
एक एक मुख माहि रसन फिर कोटि लगावै॥
रसन रसन प्रति सारदा कोटि बैठि बानी कहहि।
महिजन अनाथ के नाथ की महिमा तवहु न कहि सकहि॥७॥
गई भूमि फिर मिलै बेलि फिर जमे जरे ते।
फल फूलन ते फले फूल फूलन्त झरे ते॥
"केसव" विद्या निकट निकट बिसरी फिर आवै।
बहुरि होय धन धर्म गई सम्पति फिर पावै॥

होइ जो सील सुसील मति जगत हेतु इमि गाइये।
प्रान गयो फिर मिलत पै पत न गई फिर पाइये ॥८॥

### दोहे

प्रीतम नही बजार में, वहै बजार उजार।
प्रीतम मिले उजार मे, वहै उजार बजार ॥ १ ॥
कहा करौ बैकुण्ठ लै, कल्पवृक्ष की छाह।
"अहमद" ढाक सुहावने, जह पीतम गलबाह ॥ २ ॥
गमन समै पटुका गह्यो, छाडन कह्यो सुजान।
प्रानपियारे प्रथम ही, पटुका तजो कि प्रान ॥ ३ ॥
सरस कविन ये हृदय को, बेधत है सो कौन।
असमझवार सराहिबो, समझवार को मौन ॥ ४ ॥
पिता नीर परसै नही, दूर रहै रवि यार।
ता, अम्वुज मे मूढ अलि, अरुझि परै अविचार ॥ ५ ॥
"व्यास" बडाई जगत की, कूकर की पहिचान।
प्यार करे मुख चाटई, वैर करे तन हानि ॥ ६ ॥
"व्यास" कनक औ कामिनी, ये है करुई बेलि।
बैरी मारै दाव दै, ये मारै हसि खेलि ॥ ७ ॥
तन ताजी असवार मन, नयन पियादे साथ।
जोबन चलो सिकार को, बिरह बाज लै हाथ ॥ ८ ॥
तन कचन को महल है, तामे राजा प्रान।
नयन झरोखा पलक चिक, देखै सकल जहान ॥ ९ ॥
ढीठि डोरि सो मन कलस, काम कुआ मे डारि।
ये नयना तुव नागरी, भरत प्रेमरस वारि ॥ १० ॥
"रज्जब" जाकी चाल सो, दिल न दुखाया जाय।
यहा खलक खिजमति करै, उत है खुसी खुदाय ॥ ११ ॥
वह बृन्दावन सुखसदन, कुज कदम की छाहि।
कनकमयी यह द्वारिका, ताकी रज सम नाहि ॥ १२ ॥

जस जाग्यो सब जगत मे , भयो अजीरन तोय ।
अपजस की गोली दऊ , ततकाले सुधि होय ॥ १३ ॥
तब के नरपति वे रहे रीझे तो कछु देय ।
अब के नरपति ये भये , रीझे औ लिखि लेय ॥ १४ ॥
जो मेढा पीछे हटै , केहरिया छपकन्त ।
जो दुर्जन हसि के मिलै , तबै बचैयो कन्त ॥ १५ ॥
दगाबाज की प्रीति यो , बोलत ही मुसकात ।
जैसे मेहंदी पात मे , लाली लखी न जात ॥ १६ ॥
खेतीबारी बीनती , औ घोडे की तग ।
अपने हाथ सवारिये , लाख होय कोउ सग ॥ १७ ॥
तन तलवारा तिलछियो , तिल-तिल ऊपर सीव ।
आला घावा ऊठसी , मत कर साज नकीव ॥ १८ ॥
ना हस करके कर गहे , ना रिस करके केस ।
जैसे कन्ता घर रहे , वैसे रहे विदेस ॥ १९ ॥
निकट रहे आदर घटै , दूरि रहे दुख होय ।
"सम्मन" या ससार मे , प्रीति करौ जनि कोय ॥ २० ॥
'सम्मन" चहु सुख देह की , तौ छोडो ये चारि ।
चोरी चुगुली जामिनी , और पराई नारि ॥ २१ ॥
"सम्मन" मीठी बात सो , होत सबै सुख पूर ।
जेहि नहि सीखो बोलिबो , तेहि सीखो सब धूर ॥ २२ ॥
गोरे मुख पै तिल लसत , मै जान्यो यह हेत ।
रूप खजाने के मनो , हबसी चौकी देत ॥ २३ ॥
दन्तकथा वा दन्त की , और कही नहिं जात ।
फूलझरी सी छुटत जब , हसि-हसि बोलत बात ॥ २४ ॥
लाल माग पटिया नही , मार जगत को मार ।
असित फरी पै लै धरी , रकत भरी तरवार ॥ २५ ॥

करनी पार उतारिहै, 'धरनी" कियो पुकार।
साकित बाह्मन नहि भला, भक्ता भला चमार ॥ २६ ॥
मास अहारी जीयरा, सो पुनि कथै गियान।
नागी ह्वै घूघट करै, "धरनी" देखि लजान ॥ २७ ॥
"पलटू" ऐना सन्त है, सब देखै तेहि माहि।
टेढ सोझ मुह आपना, ऐना टेढा नाहि ॥ २८ ॥
"पलटू" ऐसी प्रीति करु, ज्यो मजीठ को रग।
टूक टूक कपडा उडै, रग न छोडै सग ॥ २९ ॥
"पलटू" बाजी लाइहो, दोऊ विधि से राम।
जो मै हारों राम को, जो जीतौं तो राम ॥ ३० ॥
जैसे काठ मे अगिनि है, फूल मे है ज्यो बास।
हरिजन मे हरि रहत है, ऐसे "पलटूदास" ॥ ३१ ॥
दुष्ट मित्र सब एक है, ज्यो कचन त्यो काच।
"पलटू" ऐसे दास को, सपने लगै न आच ॥ ३२ ॥
काम क्रोध जिनके नही, लगै न भूख पियास।
'पलटू' तिनके दरस सो, होत पाप को नास ॥ ३३ ॥
खोजत-खोजत मरि गये, तीरथ वेद पुरान।
'पलटू' सूझत है नही, भेस मे है भगवान ॥ ३४ ॥
जिन देखा सो बावला, को अब कहै सदेस।
दीन दुनी दोउ भूलिया, 'पलटू' सो दरवेस ॥ ३५ ॥
सुनि लो 'पलटू' भेद यह, हसि बोले भगवान।
दुख के भीतर मुक्ति है, सुख मे नरक निदान ॥ ३६ ॥
मरते - मरते सब मरे, मरै न जाना कोय।
'पलटू' जो जियतै मरै, सहज परायन होय ॥ ३७ ॥
'पलटू' पलक न भूलिये, इतना काम जरूर।
खाविंद कब गोहरावई, चाकर रहै हजूर ॥ ३८ ॥

'पलटू' भेद न दीजिये , यह जग बुरी बलाय ।
लिहे कतरनी काख मे करै मित्रता धाय ॥ ३९ ॥
'दरिया' सोता सकल जग , जानत नाही कोय ।
जागे मे फिर जागना , जागा कहिये सोय ॥ ४० ॥
'बुल्ला' चल्ल सुनार दे , जित्थे गहना गढ़िये लाख ।
सूरत आपो आपनी , तू इको रूप ये आख ॥ ४१ ॥
धन जननी धन भूमि धन , धन नगरी धन देस ।
धन करनी धन सुकुल धन , जहा साधु परबेस ॥ ४२ ॥
स्वर्ग सात असमान पर , भटकत है मन मूढ़ ।
खालिक तो खोया नही , उसी महल मे ढूढ ॥ ४३ ॥
ज्ञान ध्यान तहवा नही , सहज सरूप अपार ।
जन 'गुलाल' दिल सो मिलो , सोई कत हमार ॥ ४४ ॥
'भीखा' केवल एक हे , किरतिम भयो अनन्त ।
एकै आतम सकल घट , यह गति जानहिं सन्त ॥ ४५ ॥
प्रीतम प्रीति लगाइकै , दूर देस मत जाव ।
बसो हमारी नागरी , हम मागे तुम खाव ॥ ४६ ॥
जो जन जाकी सरन है , सरन गहे की लाज ।
मीन धार सन्मुख चलै , बहे जात गजराज ॥ ४७ ॥
आप छके नैना छके , और छके सब गात ।
जा तन चितवत नैन भरि , रोम रोम छकि जात ॥ ४८ ॥
साझ भई दिन अथवा , चकई दीन्हा रोय ।
चलो पिया उस देस को , जहा साझ नहिं होय ॥ ४९ ॥
ब्रज समुद्र मथुरा कमल , वृन्दावन मकरन्द ।
ब्रज-बनिता सब पुष्प है , मधुकर गोकुलचन्द ॥ ५० ॥
कदम कुज ह्वै हौ कबै , श्री वृन्दावन माह ।
'ललित किसोरी' लाडिले , विहरैगे तिहि छाह ॥ ५१ ॥

प्रीतम तुव गुन बेलरी , पसरी मो उर माहि ।
नेह नीर सो नित बढै क्यो हू सूखत नाहि ॥ ५२ ॥
कागद भीजत नयन जल , कर कॉपत मसि लेत ।
पापी विरहा मन बसत , बिथा लिखन नहि देत ॥ ५३ ॥
बायस राहु भुजग हर , लिखत तिया तत्काल ।
लिख-लिखपोछतिफिरलिखति , काग्न कौन जमाल ॥ ५४ ॥
पालक मेथी धनिया , सोवा चाहत यार ।
सकुची मुरी पियाज सग , गाजर अस व्यवहार ॥ ५५ ॥
कच्चौरी पिय ऐ सखी पक्कौरी पिय नाहि ।
बराबरी कैसे करौ , पूरी परती नाहि ॥ ५६ ॥
अमिली बरसो हो रही , पीपर पास न जाउ ।
जामुनी भेद न पावही , तासो मै हठ लाउ ॥ ५७ ॥
नारगी हौ पिय सो , यह अनारपन मोहि ।
जो मै पीवै सेवती , सदा सदाफल होहि ॥ ५८ ॥
तोता कत निसदिन रटौ , तूती निपट अजान ।
लाल कहे सो कीजिये , तज मैना की बान ॥ ५९ ॥
सूख छुहारो तन भयो , गिरी परै सब देह ।
किसमिस लिखू सदेसरा , नौज लग्यौ यह नेह ॥ ६० ॥
कर छुई बरटोई नही , तवा टोकनी नाहि ।
चौके गरुवे थारिया , रस न रसोई माहि ॥ ६१ ॥
पान झरते इमि कहे , सुन तरवर बनराय ।
अब के बिछुरे कब मिले , दूर परेगे जाय ॥ ६२ ॥
अलकावलि मे देखिये , गोरे मुख की लोय ।
ज्यो रूखन मे चादनी , झिलमिल-झिलमिल होय ॥ ६३ ॥
गुजा ऐसे हो रहे , मुकता बेसर बाल ।
नैन ओर के स्याम सब , अधर ओर के लाल ॥ ६४ ॥

आजु सखी हम इमि सुन्यो , पहु फाटक पिय गौन ।
पहु अरु हियरे होड है , पहले फाटै कौन ॥ ६५ ॥
आजु दुइज परदेस पिय , ससि निकस्यो इहि ओर ।
मम नयना अरु पीय के , आइ भये इक ठौर ॥ ६६ ॥
मख ग्रीषम पावस नयन , जिय महिया जडकाल ।
पिय बिन तन मे तीन ऋतु , कबहु न मिटति जमाल ॥ ६७ ॥
जब लगि हिय मे धर सकी , तब लगि धरी जु धीर ।
"मीरन" अब कैसी बनी , अधिक पिरानी पीर ॥ ६८ ॥
तेरे बिरह समुद्र मे , हौ जहाज भई कन्त ।
तन मन जोबन डूबियो , प्रेम ध्वजा फहरन्त ॥ ६९ ॥
बिरह दही पनघट गई , तपन न तऊ सिराय ।
भरै धरै सिर गागरी , रीती ह्वै ह्वै जाय ॥ ७० ॥
तुम बिन एती को करै , कृपा जु मेरे नाथ ।
मोहिं अकेली जानि कै , दुख राख्यो है साथ ॥ ७१ ॥
"मीरन" प्यारे इमि कह्यो , सपने देखौ मोहिं ।
तुम बिन नीद न आवई , कैसे देखौ तोहिं ॥ ७२ ॥
कीकर पाकर तार , जामन फलसा आमिला ।
सेव कदम कचनार , पीपल रत्ती तू न तज ॥ ७३ ॥
सारग लै सारग चली , सारग पै गई दीठ ।
सारग लै सारग धरी , सारग गई पईठ ॥ ७४ ॥
सारग ने सारग गह्यो , सारग बोल्यो आय ।
जो सारग सारग कहै , सारग मुख ते जाय ॥ ७५ ॥
बसे बनज बिकसे बनज , निकसे बनज निसङ्क ।
बनज माल बिन लगति है , वन जमाल हरि अङ्क ॥ ७६ ॥
का नहिं अबला करि सकै , का न समुद्र समाय ।
काह न पावक जरि सकै , काल काहि नहिं खाय ॥ ७७ ॥

सुत नहिं अबला करि सकै, मन न समुद्र समाय।
धर्म न पावक मे जरै, नाम काल नहिं खाय ॥ ७८ ॥
पान पुराना घी नया, औ कुलवन्ती नारि।
चौथी पीठ तुरग की, सरग निसानि चारि ॥ ७९ ॥

## बरवै

अधम उधारन नमवा सुनि कर तोर।
अधम काम की बटिया गहि मन मोर ॥ १ ॥
मन बच कायक निसिदिन अधमी काज।
करत-करत मन भरिगा हो महाराज ॥ २ ॥
बिलगराम का बासी मीर जलील।
तुम्हरि सरन गहि गाहे ये निधिशील ॥ ३ ॥
बालमु हेरि हियरवा उपजै लाज।
पाख मास मो जानि न परिहै गाज ॥ ४ ॥
पिय से अस मन मिलयू जस पय पानि।
हसनि भई सवतिया लै बिलगानि ॥ ५ ॥
पीतम तुम कचलोहिया हम गज बेलि।
सारस कै अस जोरिया फिरहु अकेलि ॥ ६ ॥
पात-पात करि ढूढ्यो सब बन बीनि।
किहि बन बस मो बालम पर्‌यो न चीनि ॥ ७ ॥
बालम सुरति बिसरिगै कहत सदेस।
एकहु पथिक न बहुरा कस वह देस ॥ ८ ॥
पात-पात करि लूटिसि बिपिन समाज।
राजनीति यह कसिकसि कस ऋतुराज ॥ ९ ॥
भावै चन्द न चन्दन सुरभि समीर।
भावै सेज सुहावनि बालम तीर ॥१०॥
ऋतु कुसुमाकर आकर बिरह बिसेखि।
ललित लतान मितान बितानिनि देखि ॥११॥

जेठ मास सखि सीतल बर कै छाह।
करुई नीद सिर्हनवा पिय कै बाह ॥१२॥
पिय कर परस सरस अति चन्दन पक।
भावक रजनि सुहावन दरस मयक ॥१३॥
यदि च भवति बुध मिलन किं त्रिदिवेन।
यदि च भवति शठ मिलन किं निरयेन ॥१४॥
अहिरिन मन की गहिरिनि उतरु न देइ।
नैना करै मथनिया मन मथि लेइ ॥१५॥
तपन तपै ऋतु ग्रीषम तीषन घाम।
ताकि तरुनि तन सीतल ग्योवै काम ॥१६॥
छाह सघन तरु भावै बालम साथ।
की प्रिय परम सरोवर सीतल पाथ ॥१७॥
हरिपद रुचिर तरनिया चढ मन मोर।
तर भवसागर अबही दिन रहे थोर ॥१८॥
हलुवा अस हलुवनिया गलवा लाल।
लाल-लाल द्वै जोबना नैन रसाल ॥१९॥
खेल फाग धन बहुरी धूरि उडानि।
गावौ बालम बरवा ऋतु नियरानि ॥२०॥
निसिदिन बसै हिरदवा मिलन न होय।
जिमि पानी के चन्दहि छुवै न कोय ॥२१॥
पात-पात करि ढूढ्यो सब बन बीन।
घटहि हुते मोरे बालम परे न चीन ॥२२॥
सूरज पै सिर ऊपर कतहु न छाह।
ठाढी पथहि निहारौ कत मेरो नाह ॥२३॥
बालम की सुधि आवत यह गति मोर।
निकसि-निकसि जिय पैसत ज्यो चक डोर ॥२४॥

बिरहिन ढूढन बन गई बाघ भिटान्
बघेवा सूघि न खायसि बिरहिन जान
नित उठि जाहु पनघटवा आवहु रोय।
बालम की अनुहरवा दिखहु न कोय ॥२६॥
बोली आनि कोइलिया मधुरी बानि।
महुवा रोवै ठाढ आम बौरान ॥२७॥
हरद बरन मोरी देहिआ पियहि बियोग।
कौन बिथा मोहि बूझहु बाउर लोग ॥२८॥
भइ न भेट बालम सन भटकिहु आइ।
धाइ-धाइ बन खाय देखि नहि जाइ ॥२९॥

**पद**

प्राणी तू हरि सो डर रे।
तू क्यो रहा निडर रे ॥

गाफिल मन रह चेत सवेरा, मन में राख फिकर रे।
जो कुछ करे वेग तू कर ले, सिर पर काल जबर रे ॥
काले-गोरे तन पर भूला, तन जायेगा जर रे।
यम के दूत पकरकर घीसे, काढे बहुत कसर रे ॥
"अजधूले" प्रभु-पद नौका चढि, भौसागर को तर रे।
हर भज हर भज हर भज प्राणी, हरि को भजन तू कर रे ॥१॥

हुआ है मस्त मन्सूरा चढा सूली न छोडा हक।
पुकारा इश्कबाजो को अहै मरना यही बरहक ॥
जो बोले आशिका यारा हमारे दिल मे है जी शक।
अहै यह काम शूरो का लगाये पीर से अब तक ॥
शमस तबरेज की सीफत जहा में जाहिरा अब तक।
निजामुद्दीन सुलताना सभी मेटे दुनी में धक ॥
निरख रहे नूर अल्लाह का रहे जीते रहे जब तक।
हुआ हाफिज दिवाना भी भये ऐसे नही हर एक ॥

सुना है इश्क मजनू का लगी लैला की रहती जक।
जलाकर खाक तन कीन्हा हुये वह भी उसी माफिक ॥
"दुलन" जन को दिया मुरशिद पियाला नाम का छकछक।
वही है शाह जगजीवन चमकता देखिये लकलक ॥२॥

गाठि परी पिय बोलै न हम से।
निसिदिन जागी मे पिया की सेजिया, नैना अलसाने निकरिगै घर से।
जो मैं जनतिउ पिय रिसिअइहैं, काहेक प्रीति लगउतिउ अस ठग से ॥
अपने पिया को मैं बेगि मनैहौ, सौ तकसीर होत प्रभु जन से।
सुनि मृदु बचन पिया मुसुकाने, "पलटुदास" पिय मिले बडे तप से ॥३॥

समझ-बूझ रन चढना साधो खूब लडाई लडना है।
दम-दम कदम परैं आगे को पीछे नाहि पछरना है ॥
तिल-तिल घाव लगै जो तन मे खेती सेती क्या टरना है।
सबद खैचि समसेर जेर करि उन पाओ को धरना है ॥
काम क्रोध मद लोभ कैद करि मन कर ठौरै मरना है।
खडा रहै मैदान के ऊपर उनकी चोट सभारना है ॥
आठ पहर असवार सुरत पर गाफिल नाही परना है।
सीस दिहा साहिब के ऊपर किसकी डर अब डरना है ॥
"पलटू" बाना रुण्ड के ऊपर अब क्या दूसर करना है ॥४॥

कोइ सफा न देखा दिल का।
साचा बना झिलमिल का ॥
कोइ बिल्ली कोइ बगुला देखा पहिरे फकीरी खिलका।
बाहर मुख से ज्ञान छाटते भीतर कोरा छिलका ॥
भजन करन मे गजब आलसी जैसे थका मजिल का।
औरन के पीसन मे सुरमा जैसे बट्टा सिल का ॥
पढ़े-लिखे कुछ ऐसेहि वैसे बडा घमड अकिल का।
जहरी बचन यो मुह से निकले साप निकलता बिल का ॥

भजन बिना सब जप-तप झूठा झूठ तवक्का फजल का ।
क्या कहिये गुरु "देव" न पाया मरहम आख के तिलका ॥ ५ ॥
काष्ठजिह्वा स्वामी (देव) ।

समझ-बूझ जिय में बन्दे क्या करना है क्या करता है ।
गुन का मालिक आपै बनता दोष राम पर धरता है ॥
अपना धरम छोडि औरो के ओछे धरम पकरता है ।
अजब नशे की गफलत आई साहिब को नहिं डरता है ॥
जिनके खातिर जान-माल से बहि-बहि के तू मरता है ।
वे क्या तेरे काम पडेगे उनका लहना भरता है ॥
'देव" धरम चाहे सो करि ले आवागमन न टरता है ।
प्यारे केवल राम से तेरा मतलब सरता है ॥ ६ ॥
काष्ठजिह्वा स्वामी (देव) ।

हरि-जन हरि के हाथ बिकाने ।
भावै कहो जग धृग जीवन है भावे कहो बौराने ॥
जाति गवाय अजाति कहाये साधु सगति ठहराने ।
मेटो दुख दारिद्र परानो जूठन खाय अघाने ॥
पाच जने परबल परपञ्ची उलटि परे बदिखाने ।
छूटी मजूरी भये हजूरी साहिब के मनमाने ॥
निरमता निरबैर सभन तें निरसङ्का निरवाने ।
"धरनी" काम राम ते अपने चरन कमल लपटाने ॥ ७ ॥

अबके बार बकस मोरे साहिब तुम लायक सब जोग हे ।
गुनह बकसिहो सब भ्रम नसिहो रखिहो अपने पास हे ॥
अछै बिरिछ तर लै बैठैहो तहवा धूप न छाह हे ।
चाद न सुरुज दिवस नहिं तहवा नहिं निसु होत विहान हे ॥
अमृतफल मुख चाखन देहो इतनी अरज हमार हे ।
भवसागर दुख दारुन मिटिहै छुटि जैहै कुल परिवार हे ॥
कह "दरिया" यह मगल मूला अनूप फूलै जहा फूल हे ॥ ८ ॥

रासरस गोविंद करत बिहार ।
सूर-सुता के पुलिन रम्य मह फूले कुन्द मदार ॥
अद्भुत सतदल विकसित कोमल मुकुलित कुमुद कल्हार ।
मलय पवन बह सारद पूरन चद मधुप झकार ॥
सुघर राय सगीत कलानिधि मोहन नन्दकुमार ।
व्रज-भामिनि सग प्रमुदित नाचत तन चरचित घनसार ॥
उभय स्वरूप सुभगता सीवा कोक कला सुखसार ।
"कृष्णदास" स्वामी गिरिधर पिय पहिरे रसमें हार ॥ ९ ॥

कहा करौ बैकुण्ठहि जाय ।
जह नहिं नद जह नही जसोदा जह नहिं गोपी ग्वाल न गाय ॥
जह नहि जल जमुना को निरमल और नही कदमन की छाय ।
"परमानन्द" प्रभु चतुर ग्वालिनी व्रजरज तजि मेरी जाय बलाय ॥१०॥

सतन को सिकरी सन काम ।
आवत-जात पनहिया टूटी बिसरि गयो हरि नाम ॥
जिनको मुख देखे दुख उपजत तिनको करिबे परी सलाम ।
"कुम्भन दास" लाल गिरिधर बिन और सबै बेकाम ॥ ११ ॥

जसोदा कहा कहौं हौं बात ।
तुम्हरे सुत के करतब मोपै कहत कहे नहि जात ॥
भाजन फोरि ढोरि सब गोरस लै माखन दधि खात ।
जो बरजौ तौ आंखि देखावै रचहु नाहिं सकात ॥
और अटपटी कह लौ बरनौ छुवत पानि सों गात ।
"दास चतुर्भुज" गिरिधर गुन हौ कहत-कहत सकुचात ॥ १२ ॥

भोर भये नव कुज सदन ते आवत लाल गोवर्द्धनधारी ।
लटपट पाग मरगजी माला सिथिल अग डगमग गति न्यारी ॥
बिन गुन माल बिराजत मुख पर नख छत द्वैज चद अनुहारी ।
"छीत स्वामि" जब चितये मो तन तब हौ निरखि गई बलिहारी ॥१३॥

प्रात समै उठि जसुमति जननी गिरिधर सुत को उबट न्हवावति ।
करि शृंगार बसन-भूषन सजि फूलन रचि पचि पाग बनावति ॥
छूटे बद बागे अति सोभित बिच-बिच चोव अरगजा लावति ।
सूथन लाल फूदना सोभित आजु कि छवि कछु कहति न आवति ॥
विविध कुसुम की माला उर धरि श्री कर मुरली बेंत गहावति ।
लै दरपन देखे श्रीमुख को "गोविंद" प्रभु चरननि सिर नावति ॥१४॥

हम भक्तन के भक्त हमारे ।
सुन अर्जुन परतिज्ञा मेरी यह व्रत टरत न टारे ॥
भक्तन काज लाज हिय धरि के पाय पियादे धाये ।
जहँ-जहँ भीर परी भक्तन को तहँ-तहँ होत सहाये ॥
जो भक्तन सो बैर करत है सो निज बैरी मेरो ।
देख विचार भक्तहित कारन हाकत हो रथ तेरो ॥
जीते जीत भक्त अपने की हारे हार बिचारो ।
"सूरस्याम" जो भक्त-विरोधी चक्र सुदर्सन मारो ॥ १५ ॥

सब सो न्यारे सब के प्यारे ऐसी रहनी रहिये ।
स्तुति अरु निन्दा छोड पराई जुगल जीभ जस गहिये ॥
दुख सुख हानि-लाभ सम बर्तन आनि परे सो सहिये ।
"भगवतचरन"सरन गहि गोविद मनवाछित सुख लहिये ॥ १६ ॥

सखी मेरे मन की को जानै ।
कासो कहू सुनै जो चित दै हित की बात बखानै ॥
ऐसो को है अन्तर्यामी तुरत पीर पहचानै ।
"नारायण" जो बीत रही है कब कोई सच मानै ॥ १७ ॥

पाछे ललिता आगे स्यामा प्यारी
ता आगे पिय मारग फूल बिछावत जात ।
कठिन कली बीन-बीन न्यारी करत
प्यारी के चरन कोमल जानि सकुचत जिय गड़िबेऊ डरात ॥

दीरघ लता करसो निरुवारत पाछे
गहे डारि सीस नाहि परसत पल्लव पात।
"सूरदास मदन मोहन" पिय की आधीनताई
देखत मेरे री नैन सिरात ॥१८॥
गौर श्याम बदनारविंद पर जिसको नीर मचलते देखा।
नैन बान मुसकान सग फस फिर नहि नेक सभलते देखा॥
"ललितकिशोरी" जुगल इश्क मे बहुतों का घर घलते देखा।
डूबा प्रेमसिधु का कोई हमने नही उछलते देखा ॥१९॥
अवधू रहिया हाटे-बाटे रूख-बिरखि की छाया।
तजिबा काम क्रोध लोभ मोह ससार की माया ॥२०॥
गोरखनाथ।

# खुसरो की कविता

## पहेलियां

श्याम बरन और दात अनेक, लचकत जैसी नारी।
दोनो हाथ से खुसरो खीचे, और केहू तू आरी॥
आरी।

पौन चलत वह देह बढावे। जल पीवत वह जीव गवावे।
है वह प्यारी सुन्दर नार। नार नही पर है वह नार॥
आग।

फारसी बोली आई ना। तुर्की ढूढी पाई ना॥
हिन्दी बोली आरसी आए। खुसरो कहे कोइ न बताए॥
आरसी।

बाला था जब सब को भाया। बढा हुआ कछु काम न आया॥
खुसरा कह दिया इसका नाव। अर्थ करो या छोडो गाव॥
दिया।

नारी से तू नर भई औ श्याम बरन भइ सोय।
गली-गली कूकत फिरे कोइलो-कोइलो लोय॥
कोयला।

सावन-भादों बहुत चलत है माघ-पूस में थोरी।
अमीर खुसरो यो कहे तू बूझ पहेली मोरी॥

मोरी।

एक नार तरवर से उतरी सर पर वाके पाव।
ऐसी नार कुनार को मैं ना देखन जाव॥

मैना।

हाड की देही उज्जल रग। लिपटा रहे नार के सग॥
चोरी की ना खून किया। वाका सिर क्यो काट लिया॥

नाखून।

बीसो का सिर काट लिया। ना मारा ना खून किया।

नाखून।

एक नार तरवर से उतरी मा सो जनम न पायो।
बाप को नाव जो वासो पूछ्यो आधो नाव बतायो॥
आधो नाव बतायो खुसरो कौन देस की बोली।
वाको नाव जो पूछ्यो मैंने अपने नाव न बोली॥

निबोली।

झिलमिल का कुआ रतन की क्यारी।
बताओ तो बताओ नहिं दूगी गारी॥

दर्पण।

आना-जाना उसका भाए। जिस घर जाये लकडी खाये।

आरी।

आवे तो अधेरी लावे। जावे तो सब सुख ले जावे॥
क्या जानू वह कैसा है। जैसा देखो वैसा है॥

आख।

हाथ मे लीजे। देखा कीजै। दर्पण।

एक राजा की अनोखी रानी। नीचे से वह पीवे पानी॥

दिया की बत्ती।

एक नार ने अचरज किया। साप मार पिंजरे मे दिया ॥
जो-जो साप ताल को खाए। ताल सूख साप मर जाए ॥

दिया की बत्ती।

एक अचम्भा देखो चल। सूखी लकडी लागे फल ॥
जो कोई इस फल को खावे। पेड छोड कहिं और न जावे ॥

बर्छी।

उज्जल बरन अधीन तन, एक चित्त दो ध्यान।
देखत मे तो साधु है, पर निपट पाप की खान ॥

बन्दूक।

एक तरुवर का फल है तर। पहले नारी पीछे नर ॥
वा फल की यह देखो चाल। बाहर खाल और भीतर बाल ॥

भुट्टा।

आगे-आगे बहिना आई पीछे-पीछे भइया।
दात निकाले बाबा आए बुरका ओढे मइया ॥

भुट्टा।

श्यामबरन पीताम्बर काधे मुरलीधर नहिं होय।
बिन मुरली वह नाद करत है, बिरला बूझे कोय ॥

भौरा।

अचरज बगला एक बनाया। ऊपर नीव तले घर छाया।
बास न बल्ली बन्धन घने। कह खुसरो घर कैसे बने ॥

बए का घोसला।

एक नार करतार बनाई। सूहा जोडा पहिन के आई ॥
हाथ लगाये वह शर्माय। या नारी को चतुर बनाय ॥

बीर बहूटी।

धूपो से वह पैदा होवे छाव देख मुर्झाये।
एरी सखी मै तुझसे पूछूँ हवा लगे मर जाये ॥

पसीना।

खेत मे उपजे सब कोई खाय । घर मे होवे घर खा जाय ।

फूट ।

एक नार कूए मे रहे । वाका नीर खेत में बहे ॥
जो कोई वाके नीर को चाखे । फिर जीवन की आस न राखे ॥

तलवार ।

डाला था सबके मन भाया । टाग उठाकर खेल बनाया ।
कमर पकड के दिया ढकेल । अब होवे वह पूरा खेल ॥

झूला ।

एक पुरुष बहुत गुन भरा । लेटा जागै सोवे खडा ॥
उलटा होकर डाले बेल । यह देखो करतार का खेल ॥

चरखा ।

नई की ढीली पुरानी की तङ्ग ।
बूझो तो बूझो नही चलो मेरे सङ्ग ॥

चिलम ।

चालीस मन की नार रखावे, सूखी जैसे तीली ।
कहने को पर्दे की बीबी,पर वह रग रगीली ॥

चिलम ।

मिला रहे तो नर रहे, अलग होय तो नार ।
सोने का-सा रङ्ग है,कोइ चतुरा करे विचार ॥

चना ।

दानाई से दात उस पै लगाता नही कोई ।
सब उसको भुनाते है पै खाता नही कोई ॥

रुपया ।

जब काटो तब ही बढे, बिन काटे कुम्हिलाय ।
ऐसी अद्भुत नार का, अन्त न पायो जाय ॥

दीपशिखा ।

एक पुरुष का अचरज लेखा । मोती फलती आखो देखा ॥

जहा से उपजे वहाँ समाय । जो फल गिरे सो जल-जल जाय ।।

फुआरा ।

बात की बात ठठोली की ठठोली ।
मरद की गाठ औरत ने खोली ।।

ताला ।

आदि कटे से सबको पारे । मध्य कटे से सबको मारे ।।
अन्त कटे से सबको मीठा । खुसरू वाको आखो दीठा ।।

काजल ।

जल कर उपजे जल मे रहे । आखो देखा खुसरू कहे ।।

काजल ।

चार अगुल का पेड सवा मन का पत्ता ।
फल लगे अलग-अलग पक जाय इकट्ठा ।।

चाक ।

पानी मे निसदिन रहे, जाके हाड न मास ।
काम करे तरवार का, फिर पानी मे वास ।।

कुम्हार का डोर ।

एक कहानी मै कहू, तू सुन ले मेरे पूत ।
बिना परो वह उड गया, बाध गले मे सूत ।।

गुड्डी ।

सर पर जाली पेट से खाली । पसली देख एक-एक निराली ।।

मोढा ।

## मुकरिया

बरस-बरस वह देस मे आवे । मुह से मुह लगा रस प्यावे ।।
वा खातिर मे खरचे दाम । ऐ सखी साजन ना सखी आम ।।
कस के छाती पकडे रहे । मुह से बोले बात न कहे ।।
ऐसा है कामिन का रगिया । ऐ सखी साजन ना सखी अगिया ।।
पडी थी मैं अचानक चढ आयो । जब उतरयो तो पसीनो आयो ।।

सहम गई नहिं सकी पुकार । ऐ सखी साजन ना सखी बुखार ॥
रात समय वह मेरे आवे । भोर भए वह घर उठ जावे ॥
यह अचरज है सब से न्यारा । ऐ सखी साजन ना सखी तारा ॥
मद भर जोर हमें दिखलावे । मुफत मरे छाती चढ आवे ॥
छूट गया सब पूजा-जप । ऐ सखी साजन ना सखी तप ॥
नंगे पांव फिरन नहिं देत । पांव से मिट्टी लगन नहिं देत ॥
पांव का चूमा लेत निपूता । ऐ सखी साजन ना सखि जूता ॥
न्हाय धोय सेज मेरी आयो । ले चूमा मुंह मुहंहिं लगायो ॥
इतनि बात पै थुक्कम थुक्का । ऐ सखी साजन ना सखि हुक्का ॥
सारी रैन मोरे संग जागा । भोर भये तब बिछुड़न लागा ॥
वाके बिछुड़त फाटे हिया । ऐ सखी साजन ना सखि दिया ॥
वह आवे तब शादी होय । उस बिन दूजा और न कोय ॥
मीठे लागैं वाके बोल । ऐ सखी साजन ना सखि ढोल ॥
जब मांगू तब जल भर लावे । मेरे मन की तपन बुझावे ॥
मन का भारा तन का छोटा । ऐ सखी साजन ना सखी लोटा ॥
जब मेरे मन्दिर में आवे । सोते मुझको आन जगावे ॥
पढत फिरत वह बिरह के अच्छर । ऐ सखी साजन ना सखी मच्छर ॥
बेर बेर सोवतहिं जगावे । ना जागू तो काटे खावे ॥
व्याकुल हुई मैं हक्की-बक्की । ऐ सखी साजन ना सखी मक्खी ॥

## दो सखुना हिन्दी

| प्रश्न | उत्तर |
|---|---|
| रोटी जली क्यों, घोड़ा अड़ा क्यों, पान सड़ा क्यों | फेरा न था |
| अनार क्यों न चक्खा, वजीर क्यों न रक्खा | दाना न था |
| गोस्त क्यों न खाया ? डोम क्यों न गाया ? | गला न था |
| राजा प्यासा क्यों ? गदहा उदासा क्यों ? | लोटा न था |
| ढोलकी क्यों न बाजी ? दही क्यों न जमी ? | मढी न थी |

| प्रश्न | उत्तर |
|---|---|
| सितार क्यो न बजा ? औरत क्यो न नहाई ? | परदा न था |
| घर क्यो अधियारा ? फकीर क्यो बिगडा ? | दिया न था |

## ढकोसले

भादो पक्की पीपली, झड-झड पडे कपास ।
बी मेहतरानी दाल पकाओगी या नगा ही सो रहू ॥ १ ॥
कोठी भरी कुल्हाडिया, तू हरीरा करके पी ।
बहुत ताउल है तो छप्पर से मुह पोछ ॥ २ ॥
पीपल पकी पपोलिया, झड-झड परे है बैर ।
सर मे लगा खटाक से, वाह बे तेरी मिठास ॥ ३ ॥
भैस चढी बबूल पर, और लप-लप गूलर खाय ।
दुम उठाकर देखा तो पूरनमासी के तीन दिन ॥ ४ ॥
गोरी के नैना ऐसे बडे जैसे बैल के सीग ॥ ५ ॥
खीर पकाई जतन से, और चरखा दिया जला ।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा ॥
लापानी पिला ॥ ६ ॥

## दूसरो की पहेलियां

हाथी हाथ् हथिनिया काधे । चले जात है बकुचा बाधे ॥
गज और गजी ।

आधा नर आधा मृगराज । जुद्ध बिआहे आवै काज ॥
आवा टूटि पेट मा रहै । बासू केरि खगिनिया कहै ॥
नरसिहा ।

लम्बी-चौडी आगुरि चारि । दुहु ओर ते डारेनि फारि ।
जीव न होय जीविका गहै । बासू केरि खगिनिया कहै ॥
कघी ।

भीतर गूदर ऊपर नागि । पानी पियै परारा मागि ॥
तिहि की लिखी करारी रहै । बासू केरि खगिनिया कहै ॥
दवात ।

अगहन पैठ चइत के प्याट । तेहि पर पडित करै झप्याट ॥
है नेरे पइहौ ना हेरे । पडित कहै बिगहपुर केरे ॥

कचौरी ।

जल मे रहै झूठ नहि भाखै , बसै सु नगर मझार ।
मच्छ कच्छ दादुर नही , पडित करौ विचार ॥

घडी ।

स्याम बरन पर हरि नही , जटा धरे नहि ईस ।
ना जानू पिया कौन है , पक लगाये सीस ॥

कसेरू ।

सीस जटा पोथी गहे , सेत बसन गल माहि ।
जोगी जगम है नही , ब्राह्मन पडित नाहि ॥

लहसुन ।

स्याम बरन पीताम्बर काधे , मुरलीधर नहि होय ।
बिन मुरली बहु नाद करत है , बिरला बूझे कोय ॥

भौरा ।

सिर पर सोहै गगजल , मुण्डमाल गल माहि ।
बाहन वाको वृषभ है , शिव कहिये कै नाहि ॥

रहट ।

देखो एक अनोखी नारी । गुन उसमे एक सबसे भारी ।
पढी नही अरु अचरज आवै । मरना जीना तुरत बतावै ॥

नाडी ।

फाटचो पेट दरिद्री नाम , उत्तम घर में वाको ठाम ।
श्री को अनुज विष्णु को सारो , पडित होय सो अर्थ विचारो ॥

शङ्ख ।

नर के पेट जो नारी बसै । पकड हिलाये खिल-खिल हसै ।
पेट फाड जो नारी गिरी । मोको लागी प्यारी खरी ॥

गिरी ।

चहू ओर फिर आई । जिन देखी तिन खाई ॥ •
खाई ।

एक नारि वह है बहुरङ्गी । घर से बाहर निकसे नगी ॥
उस नारी का यही सिगार । सिर पर नथुनी मुह पर बार ॥
तलवार ।

आधा भक्तेन मुख बसै । आधा गुनियन साथ ।
वाहि पसारी देत है । पुडी बाधि कै हाथ ॥
हरताल ।

## पहेली

सुनरी सहेली ! मेरी पहेली , बाबल घर मे रही अलबेली ।
माता पिता ने लाड से पाला , समझा मुझे उस घरका उजाला ॥
एक बहन थी एक बहनेली ॥१॥
योही बहुत दिन गुडिया खेली , कभी अकेली दुकेली ।
जिससे कहा चल तमाशा दिखला, उसने उठाकर गोदी मे लेली ॥२॥
कुछ-कुछ मोहे समझ जो आई , एक जा ठहरी मोरी सगाई ।
आवन लागे बाम्हन नाई , कोई ले रुपया कोई ले धेली ॥३॥
व्याह का मेरे समा जब आया , तेल चढाया मढा छवाया ।
सालू सूहा सभी पिन्हाया , मेहदी से रग दिये हाथ हथेली ॥४॥
सासरे के लोग आये जो मेरे , ढोल दमामे बजे घनेरे ।
सुभ घडी सुभ दिन हुए जो फेरे , सैया ने मोहे हाथ मे ले ली ॥५॥
आये बराती सब रस रग के , लोग कुटुम के सब हस-हसके ।
चावत ये यही घर से निकसे , और के घर मे जाय धकेली ॥६॥
ले के चली थी साथ जब अपने , रोवन लागे फिर सब अपने ।
कहा कि तू नहि बस की अपने , जा बच्ची ! तेरा दाताही बेली ॥७॥
सखी ! पिया के साथ गई मैं , ऐसे गई फिर वही रही मै ।
किससे वह दुख हाय ! दई मै , सैया ने मोरी बाहँ गहेली ॥८॥

सास जो चाहे सोही सुनावे , ननद भी बैठी बाते बनावे ।
क्या हैं! करू कुछ बन नहि आवे , जैसी पडी मैं वैसी ही झेली ॥ ९ ॥
जिया बियाकुल रोवत अखिया , कहा गई सब सग की सखिया ।
शौक रग गुडिया ताक पै रखिया , न वो घर है न वो हवेली ॥१०॥
वहादुर शाह "जफर" (दिल्ली के अन्तिम बादशाह)

# खेती की कहावतें

१ अग्निकोन जब बहै समीरा । पडे काल दुख सहै शरीरा ।
२ उत्तर से जल फूहौ पडे । मूस साप दोनो अवतरे ॥
पच्छिम समया नीको जानो । आगे बहै तुषार प्रमानो ॥
जो कहु बहै ईसान को कोना । आवै विस्वा दो-दो दूना ॥
जो कहु हवा अकाशै जाय । पडे न बद काल पड जाय ॥
३ सावन सूखे धान, भादौ सूखे गेहू ।
४ अद्रा बरसे पुनर्वस जाय । दीन आन कोऊ न खाय ॥
५ पानी बरसे आधा पूस । आधा गेहू आधा भूस ॥
६ सावन सूखा स्यारी । भादो सूखा उन्हारी ॥
७ सावन पहिली चौथ मे , जो मेघा बरसाय ।
तो भाखे यो भड्डुरी , साख सवाई जाय ॥
८ हथिया पूछ डोलावे । घर बैठे गेहू आवे ॥
९ हथिया बरसे चित्रा मडराय । घर बैठे किसान रिरियाय ॥
१० कर्क बुवावे काकरी , सिंह अबोनो जाय ।
ऐसा बोले भड्डुरी , कीडा फिर फिर खाय ॥
११ जो कहु मघा मे बरसै जल । सब नाजो मे होगा फल ॥
१२ चित्रा गेहू स्वाती भूसा । अनुराधा मे नाज न भूसा ॥
१३ जो कहु बरसै पूस । आधा गेहू आधा भूस ॥
१४ अद्रा रेट पुनरबस पाती । लगै चिरैया दिया न बाती ॥
१५ चटका मघा न चटका उत्तर । दूध भात मे परगा मूसर ॥

१६ मघा, भुम्मि अघा ।
१७ मघा न मारे पूर्वा सवारे । उत्तर भर खेत निहारे ॥
१८ जब जेठ चलै पुरवाई । तब सावन धूल उडाई ॥
१९ आये मेख, हरी न देख । आये मेघ, हरी-हरी देख ॥
२० चैत मे हुई फसल तैयार । काट दाय घर लाओ यार ॥
बेर किये होवे नुकसान । बेर मे नाही भला किसान ॥
२१ गेहू जौ सब पछिवा पावे । तब जल्दी मे दावा जावे ॥
२२ दो दिन पछिवा छ पुरवाई । गेहू जौ को लेव दवाई ॥
ताके बाद ओसावे सोई । भूसा दाना अलगे होई ॥
२३ चना अधपका जौ पका काटे । गेहू बाली लटका काटे ॥
२४ सात स्वाती धान उपाट ।
२५ लगी वसन्त, ऊख पकन्त ।
२६ भादौ मास तीज अधियारी । मेह न बरसे खेत बहारी ॥
न बरसे न गरजे, न चमके अधरात ।
तुम पिय जावो मालवा, हम जाये गुजरात ॥
२७ काहे पडित पढ-पढ मरो । पूस अमावस की सुधि करो ॥
मूल बिसाखा पूरबाखाड । झूरा जान लो बहरे ठाड़ ॥
२८ ढोकी बोले जाय अकास । देशी ठहरे उडे अकास ॥
२९ लालपियर जब होय अकास । तब नाही बरसा की आस ॥
३० चमकै पश्चिम उत्तर ओर । नित जानो पानी है जोर ॥
३१ चीत के बरसे तीन जाय । मोथ मास उखार ॥
३२ न होय करम लिख पूरा । पर न टरै खेत का घूरा ॥
३३ छिन पुरवैया छिन पछियाव । छिन-छिन बहै बबूला बाव ॥
बादल ऊपर बादल धावै । तब भडुर पानी बरसावै ॥
३४ पूरबा बादल पच्छिम जाय । वासे वृष्टि अधिक बरसाय ॥
जो पच्छिम से पूरब जाय । वर्षा वहुत न्यून हो जाय ॥
३५ जब निकले लका का राय । धेनु दूध न बेलो जाय ॥

३६ हस्त के बरसे तीन होय, शाली शक्कर मास।
हस्त के बरसे तीन जाय, तिल कोदौ कपास॥

३७ जो बरसे स्वाति। चरखा चलै न बोले तात॥

३८ माघ महावट पूस बिनौरा। फागुन बरसे न खोरा॥

३९ शशि ऊगत और मंगल, पूस अमावस होय।
दुगुना तिगुना चौगुना, नाज महेंगो होय॥

४० वायु चलेगी पच्छिमा। माड कहा से चखना॥
वायु चलै जो उत्तरा। माड पिवेंगे कुत्तरा॥
वायु चलेगी दखिना। डोला पानी लखना॥
वायु चलेगी पुरवा। पियो माड का कुरवा॥

४१ बुद्ध वृहस्पति दो भले, शुक्र न भले बखान।
रवि मंगल बौनी करै, द्वार न आवै धान॥

४२ नैऋत भूम बूंद ना परै। राजा परजा भूखो मरै॥

४३ पछिवा आई बादली, राड कुसुम्बी जाव।
वह बरसै यह घर करै, उन को यही स्वभाव॥

४४ पुरवाई कहर चले, राँड मूड 'से न्हाय।
वह लै आवै बादली, यह कोऊ लै जाय॥

४५ बिन भादो के बरसे। बिन माता के परसे॥

४६ ढेले पर जब चील बोलै। गली-गली मे पानी डोलै॥

४७ माघमास जो पडै न शीत। महगा नाज जानियो मीत॥

४८ धनुष पडै बागली। मेह साझ या साकली॥

४९ रात मे बोले काकुला, दिन मे बोले स्याल।
तो यो भाखे भड्डरी, निश्चय पडै अकाल॥

५० दूर गुडसा दूर पानी, नियर गुडसा नियर पानी।

५१ कातिक अमावस देखै जोसी। मगल शनी भौम को होसी॥
स्वाती नक्षत्र और पुष्पयोग। काल पडे और नासै लोग॥

५२ सावन बदी एकादशी, बादल ऊगै सूर।
तो बजावै भड्डुली, घर पर बाजै तूर॥

५३ सर्व तपै जो रोहिनी, सर्व तपै जो मूल।
पडवा तपै जो जेठ की, उपजै सातो फूल॥

५४ सोम शुक्र शनीचरी, पूस अमावस होय।
घर-घर होय बधावरी, बुरा न माने कोय॥

५५ पूस उजेली सप्तमी, अष्टमी नौमी गाज।
मेघ होय तो जान लो, अब शुभ होइ है काज॥

५६ पुष्प पुनरबस ना भरे ताल। सो फिर भरिहै अगली साल॥

५७ वायु चले ईशान। तो खाना खाय किसान॥

५८ पवन चले पुरवाई। बादल काट लगाई॥

५९ पूस मासकी सप्तमी, जो पानी नहिं देव।
आरद्रा बरष सही, जल थल एक करेव॥

६० पूस अंधेरी सप्तमी, भिन-भिन बादल होय।
सावन सुदी पूनो, बरषा अच्छी होय॥

६१ पूस बदी दशमी दिवस, बादल चमके बीज।
तो बरषे भरे भादौ, साधो खेलो तीज॥

६२ पाच मगल होवे फागुनो, पूस पाच शनि होय।
काल पडे कह भड्डरी, बीज बोओ मति कोय॥

६३ पुरवाई बहुतै बहै, विधवा पान चबाय।
वे ले आवे नीर को, वे काहू सग जाय॥

६४ सावन शुक्ला सप्तमी, चन्दा छिटिक करै।
के जल देखे कूप मे, कि कामिनि शीश धरै॥
सावन शुक्ला सप्तमी, उगत जो देखे भान।
या जल मिलि है कूप मे, या गङ्गा अस्नान॥

६५ प्रथम बयार पूरब की लीजै। ऊचे आन महाजर कीजै।
पच्छिम ब्यार चलै मरदाना। सीचो खेती आय किसाना॥

६६ सावन पहिली पचमी, जोर की चलै बयार।
तुम जाना पिय मालवा, हम जावे पितुसार॥
६७ सावन शुक्ला सत्तमी, उभरे निकले भान।
हम जाये पिति माइके, तुम कर लो गुजरान॥
६८ अद्रा भरना रोहणी, मघा उत्तरा तीन।
आन मगल आधी चले, तब लो बरसा छीन॥
६९ अद्रा तो वरसे नही, मृगशिरा पौन न जोय।
भाषै एसा भड्डुरी, बरसा बूद न होय॥
७० कृष्ण असाढी प्रतिपदा, जो उत्तर गरजन्त।
शास्त्री शास्त्री यो भखै, निश्चय काल पडन्त॥
७१ धूर असाढी विज्जुली चमक निरन्तर जोय।
सोम सुक्र और गुरु परै, भारी बरसा होय॥
७२ धुर असाढ की अष्टमी, शशि निर्मल जो दीख।
पीव जाय के मालवा, मागत फिरि है भीख॥
७३ नवी असाढी बादली, जो गरजै घनघोर।
कहे भड्डुरी ज्योतिषी, काल पडै अहु ओर॥
७४ दशी असाढी कृष्ण को, मङ्गल रोहिनी होय।
सस्ता धान बिकायगो, हाथ न छुइ है कोय॥
७५ असाढी पूनो के दिना, गाज बीज बरसन्त।
भाषै लक्षण कालिका, आनन्द मानो सन्त॥
७६ दिवस बादरा रात को तारे। चलो कन्त जह जीवे वारे॥
७७ दिन को बादर रातमे चदर। बहै रवी भद्दर भद्दर।
कहै भड्डुरी बरषा नाही। सिगरी जिन्से जाहिं सुखाहिं॥
७८ तीतर पखी बादरी, विधवा कज्जल रेख।
ये बरषै वह घर करै, या मे मीन न मेख॥
७९ दिन को बादल रात तरैया। ये नारायण कहा करैया॥
८० काले बादल डरावने, धौले बरसनहार॥

८१ दिन सात चले जो बादा । सूखे जल सातो खाडा ॥
८२ खेती करै खाद से भरै । सौ मन कोठला मे लै धरै ॥
८३ वही किसानी मे है पूरा । जो छोडे हड्डी का चूरा ॥
८४ जेकर खेते पडा न गोबर । उहि किसान का जानो दूबर ॥
८५ जोत न माने अरसी चना । कहा न माने हरामी जना ॥
८६ मँदै गेहू, ढेलै चना ।
८७ गेहू बाहे, धान बिदाहे ।
८८ गेहू गवा काहे । कातिक के चौबाहे ॥
८९ जोते खेत घास न टूटै । ताकर भाग साझ ही फूटै ॥
९० एक बात तुम सुनो हमारी । एक बैल ते भली कुदारी ॥
९१ कच्चा खेत न जोतै कोई । नाही बीज न अकुँरे होई ॥
९२ गेहू भवा काहे । सोलह दाय बाहे ॥
९३ दखिनी कुलाविनी । माघ पूस सुलाविनी ॥
माघ पूस मे दखिना । भले मेह को लखना ॥
९४ माघ उजाली तीज को, बादल बिजली देख ।
गेहू जो सयम करो, महगो होवे पेख ॥
९५ चैत मास उजाले पाख, अठवे दिवस बरसता राख ॥
नवे दिवस जब बिजली होवे, ता देश काल हलाहल होवे ॥
९६ चित्रा स्वाती बिसेखरी, जो बरखे आसाढ ।
चलो पिया परदेश अब, भारी परिहै काल ॥
९७ आसाढमास पूनो दिवस, बादल घेरे चन्द ।
तो भड्डर जोसी कहै, होवे परम अनन्द ॥
९८ चढते बरसे आद्रा, उतरत बरसे हस्त ।
कितनो राजा डाडले, आनन्द रहे गृहस्त ॥
९९ मंगल पडे तवाही, बुद्धे पडे अकाल ॥
जो अन्त होवे शनीचरी, निश्चय परिहै काल ॥
१०० भूलो बावल फिरै गवारा, कातिक मागे मेह ।

१०१ पुरवा पूनो गरजै । दिना बहत्तर बरसै ॥

१०२ सावन केरे प्रथम दिन , उगत न दीखै भान ।
चार महीना बरसै पानी , याको है परमान ॥

१०३ माघ मास में बेचो बोई । फिर बैसाख में तमसो धोई ॥
जेठ मास जो तपै निरासा । तो जानो बरषा की आसा ॥

१०४ सावन पहिली पचमी , चन्दा छिटिक करै ।
की जल देखे कूप मे , कि सुन्दरि नीर भरै ॥

१०५ चना चित्रा चौगुना , स्वाती गेहू होय ।

१०६ कोठी चढे पुकारे जई । खिचडी खाकर क्यो न बई ॥
जो कहु बोते बीघा चार । तो मै डरती कुठिला फार ॥

१०७ अगहन बवा । कहु मन कहु सवा ॥

१०८ पूस न बोये, पीस खाये ।

१०९ अगाई, सो सवाई ।

११० कातिक बोये अगहन भरे । ताको हाकिम फिर का करे ॥

१११ रोहिनी मृगसिरा जोबोये मका । उर्द मडुआ नहिं आवे टका ॥
मिरगसीर में बोये चैना । जमीदार को कुछ नहिं दैना ॥
बोये बाजरा आये पुक्ख । फिर मन कैसे भोगे सुक्ख ॥

११२ बुध बोनी, सुल लावनी ।

११३ हथिया मे हाथकुड चित्रा मे फूल । चढत सवातीझप्पा झूल ॥

११४ जब बर्र बरोठे आई । तब रबी की होय बोवाई ॥

११५ जौ छिछी गेहू सास लो , मेढक छप्पे ज्वार ।
जिन के छिछी ऊख है ,, वे फिरते घर बार ॥

११६ दिवाली को बोवे दिवालिया ।

११७ आगे गेहू पीछे धान ।‌ उसको कहिये बडा किसान ॥

११८ भुइ भई काली काहे । जीव अश अधिकाहे ॥

११९ पुक्ख पुनर्वस बोवे धान । मघा श्लेखा खेती आन ॥

१२० आधी हथिया मूर मुराई । आधी हथिया सरसो राई ॥

१२१ अगहन बोवे जौवा । होय तो होय नही खाय कौआ ॥
१२२ पहले काकड पीछे धान । उन को कहिये पूर किसान ॥
१२३ सावन सावा अगहन जौ । जितना बोवे उतना लौ ॥
१२४ मका जोधरी औ बजरी । उनको बोवे कुछ बिररी ॥
१२५ गाजर गजी और मूरी । इन को बोवे कुछ दूरी ॥
१२६ घनी-घनी जो सनई बोवे । तो सुतरी की आसा होवे ॥
१२७ गेहू गिरुई चरका धान । बिना आन के मरा किसान ॥
१२८ माघ मे बादर लाल धरै । तब जानो सच पाथर परै ॥
१२९ ऊख कवाई काहे से । स्वाती पानी पाये से ॥
१३० जब बरषा चित्रा मे होय । सिगरी खेती जाये खोय ॥
१३१ खादी कूडा ना टरै, कर्म लिखा टर जाय ॥
"रहिमन" कहे बुझाय के, खेत पास पर जाय ॥
१३२ फागुन माहिं बहै पुरवाई । तब गेहू मे गिरुई धाई ॥
१३३ चित्रा गेहू अद्रा धान । इनके गेरुई न उनके घाम ॥
१३४ अद्रा धान पुनर्बसु पतिया । गये किसान जब बई चिरैया ॥
१३५ मघ्त्रा मकडी पुरवा डास । उत्तरा मे है सब की नास ॥
१३६ हरिन फलागन काकरी, पैग-पैग कपसार ।
कहियो जाय किसान से, बोवे घनी उखार ॥
१३७ पुक्ख पुनर्बस बोवे धान । अश्लेखा जुधरी परमान ॥
मघा मसीना बोवे रेल । तब दीजे परहल मे ठेल ॥
१३८ पुक्ख पुनर्बस बोवे धान । अश्लेखा जोधरी परमान ॥
मघा मसीनो बरसे झार । हल दोजै कोठल मे डार ॥
१३९ कोठिला बैठे बोले जई । आधे अगहन काहे न बई ॥
१४० नरसी गेहू सरसी जौ । अति के बरसे चना बो ॥
१४१ कदम-कदम पर बाजरा, मेढक कूदे ज्वार ।
ऐसे जो बोवे कोई, घर-घर भरे कोठार ॥

१४२ आलू बोवे अंधेरे पाख। खेत मे डारे कूडा राख॥
समय-समय पर करै सिचाई। दूना आलू घर मे आई॥
१४३ छर्ठी भली जौ चना, छर्ठी भली कपास।
जिनकी छर्ठी ऊखडा, उनकी छोडो आस॥
१४४ जो तेरे कुनबा घना। तो क्यो न बोये चना॥
१४५ दो तौई, घर खोई।
१४६ मकडा घासा पूरा जाला। बीज चने का भर-भर डाला॥
१४७ छीछा सालिम सालटा, छिछी भली कपास।
जिनकी छीछी ऊख है, उनकी छोड़ो आस॥
१४८ सन घना बन बेगरा, मेढक फन्दे ज्वार।
पैर-पैर पर बाजरा, करै दरिद्रै पार॥
१४९ जौ गेहू बौवै पाच पसेर। मटर की बीघा तीन सेर॥
बौवै चना पसेरी तीन। सेर तीन की जुधरी कीन्ह॥
दो सेर मोथी अरहर मास। डेढ सेर बीघा बीज कपास॥
पाच पसेरी बीघा धान। तीन पसेरी जडहन मान॥
डेढ सेर बजरा बजरी सवा। कोदो काकुन सवैया बवा॥
सवासेर बीघा सावा जान। तिल्ली सरसो अजुरी मान॥
बिर्रे कोदो सेर बोआव। डेढ सेर बीघा तीसी नाव॥
यहि विधि से जब बवै किसान, दूना लाभ खेत मे जान॥
१५० गोहू भवा काहे। असाढ के दो बाहे॥
१५१ तेरह कातिक, तीन असाढ।
१५२ नौ नसी एक कसी। नौ आहन, एक बाहन॥
१५३ बाली मोटी भई काहे। असाढ के दो बाहे॥
१५४ बीज पडे फल अच्छा देत। जितना गहरा जोते खेत॥
१५५ जोधरी जोते तोड मरोर। तो वह डारे कोठला फोर॥
१५६ बाहे क्यो न असाढ एकबार। अब क्यो बाहे बारम्बार॥
१५७ दस बाहो का माडा। बीस बाहो का गाडा॥

१५९ जो ढेले दे तोर मरोर । ताको कोठिला दूगी फोर ॥
१६० मेंड बाध दस जोतन दे । दस मन बीघा मोसे ले ॥
१६१ सावन न मारे लीटक बेटा । अब देखे क्या खाओ बेटा ॥
१६२ असाढ जोते लडके बारे , सावन भादो हरवाहे ।
क्वार जोते घर का बेटा , तब ऊंचे उनहारे ॥
१६३ भैंसा बरद की खेती करे , करजा काढि बिरानो खाय ।
बधिया ऍंचत है येहरी को , भैसा ओहरी को ले जाय ॥
१६४ थोडा जोतै बहुतै गावै , ऊंची बाधे आड ।
ऊंचे पर खेती करै , पैदा होवै भाड ॥
१६५ खाद पडे तो खेत । नही तो कूडा रेत ॥
१६६ खाद देय तो होवै खेती । नही तो रहे नदी की रेती ॥
१६७ असाढ में खाद खेत में जावे । तब भर मूठी दाना पावे ॥
१६८ गोबर मैला नीब की खली । यह से खेती दूना फली ॥
१६९ गोबर राखी पानी सडे । तब खेती मे दाना पडे ॥
१७० जेह कर उखडे लगी लवाह । तेह पर आवे बडी तवाह ॥
१७१ करमहीन खेती करै । बधिया मरै कि सूखा परै ॥
करमहीन खेती करें । पाला पडे कि ओला गिरे ॥
चना मे सर्दी अधिक समाई । ताको जान गदहिला खाई ॥
धान गिरे सौभागे का । गेहू गिरे अभागे का ॥
१७२ माघैं पूस बहै पुरवाई । तब सरसो को माहू खाई ॥
१७३ बैल बगोदा निरघिन जोय । वह घर उरहन कबहु न होय ॥
बैल मरखना चमकुल जोय । वा घर उरहन नित उठि होय ॥
१७४ बरद मुसहरा जो कोई ले । राज भङ्ग पल मे कर दे ॥
तिरिया बाल सबकुछ छूटिजाय । भीख माग के घर-घर खाय ॥
१७५ मतकोई लीजै मसुरिहा बाहन । खसम मार के डाले पावन ॥
१७६ बडसिंगा जनि लीजो मोल । कुए मे डालो रुपया खोल ॥

१७७ ताका भैंसा निठरा बैल । नार कुलक्षण बालक छैल ॥
इनसे बाचे चतुरा लोग । राज छोड के साधे जोग ॥

१७८ ना मोहिं नाधो उलिया कुलिया, ना मोहिं नाधो दाये ।
बीस बरस तक करौ बरदई, जो ना मिलिहै गाये ॥

१७९ सन्थर जोते पूत चरावे । लगते जेठ भुसौला छावे ॥
भादों मास उठे जो गरदा । बीस बरस तक जोतो बरदा ॥

१८० है उत्तम खेती वाकी । होय मेवाती गोई जाकी ॥

१८१ पतली पिण्डुरी मोटी रान । पूछ होय भुईं मे तरियान ॥
जाके होवै ऐसो गोई । वाको तकै और सब कोई ॥

१८२ करिया काछी धारा बान । इन्हें छाडि जनि बेसहो आन ॥
कार कछौंली सुनरे बान । इन्हें छोडि जनि बिसह्यो आन ॥

१८३ जोते का पुरबी , लादे क दमोय ।
हेंगा को काम दे , जो देवहा होय ॥

१८४ सीग मुडे माथा उठा , मुह का होवे गोल ।
रोम नरम चचल करण , तेज बैल अनमोल ॥

१८५ एक हल हत्या , दो हल काज ।
तीन हल खेती , चार हल राज ॥

१८६ मुह का मोट माथ का महुआ । इनही का कुछ कहिये रहुआ ॥
धरती नही हराई जोतै । बैठ मेड पर पागुर करै ॥

१८७ मुह का मोट मायका महुआ । इन्हें देखि जनि भूल्यो रहुआ ॥
चरक भरौती माथे मे महुआ ।
दाम परे तो आधे तरे । नही रुपया पानी में परे ॥

१८८ जहा परे फुलवा की लार । झाडू लेके बुहारो सार ॥

१८९ कान कछाटा झबरे कान । इन्हे छाडि जनि लीजो आन ॥

१९० निटिया बरद छोकरा हारी । दूब कहै मोर काहि उखारी ॥

१९१ बैल लीजे कजरा । दाम दीजै अगरा ॥

१९२ बैल बिसाहन जाओ कन्ता । भूरे का मत देखो दन्ता ॥

१९३ लम्बे-लम्बे कान, औ ढीला मुतान।
छोडो-छोडो किसान, न तो जात है प्रान॥

१९४ विन बैलन खेती करै, विन भैयन के रार।
विन मेहरारू घर करै, चौदह साख लबार॥

१९५ सात दात उदन्ता को, रङ्ग जो कालो होय।
इन्हे कबहु न लीजिये, दाम चहे जो होय॥

१९६ हिरन मुतान और पतली पूछ, बैल बेसाही कन्त वे पूछ।

१९७ बाधा बछडा जाय मठाय, बैठा ज्वान जाय तुदियाय॥

१९८ फेट बघीला देह गठीला, आखो का चमकीला।
भाषै नानकचन्द मर्द है, बर्व कन्ध का नीला॥

१९९ बरद बिसाहन जाओ कन्ता। कुबरा का मत देखो दन्ता॥

२०० घोची देखे वहि पार। थैली खोले यहि पार॥

२०१ छद्दर कहै मै आऊ जाऊ। सद्दर कहै गुसैयें खाऊ॥
नौदर कहै नौ दिशि धाऊ। हित कुटुम्ब उपरोहित खाऊ॥

२०२ स्वेत रङ्ग और पीठ बरारी। ताहि देखि जनि भूल्यो लारी॥

२०३ सीख कहे देख मोर कला। वे मेहरी का करू घरा॥

२०४ छोट सीग और छोटी पूछ। ऐसे को ले लो वे पूछ॥

२०५ उदन्त बरदे उदन्त ब्याये। आप जाय न खसमे खाये॥

२०६ दात गिरे और खुर घिसे, पीठ बोझ नहिं लेय।
ऐसे बूढे बैल को, कौन बाध भुस देय॥

२०७ भैंस कन्देलिया पिय लाये। मागे दूध कहा से आये॥

२०८ बासड और मुह धौरा। उन्हे देख चरवाहा रौरा॥

२०९ बूढा बैल बिसाहे, झिन्ना कपडा लेय।
आपुन करै नसौनी, दैवै दूषण देय॥

२१० नीले कन्धा बैगन खुरा। कबहु न निकले कन्था बुरा॥

२११ छोटा मुह ऐंठा कान। यही बैल की है पहिचान॥

२१२ मियनी बैल बडो बलवान। तनिक मे करे ठाढे कान॥

२१३ सीग गिरेला वरद के, औ मनई का कोढ।
यह नीके न होयगे, चाहे वद लो होड ॥
२१४ बैल तरकना टूटी नाव, ये काहू दिन दैहैं दाव ॥
२१५ बैल चौकना जोत मे, औ चमकीली नार।
ये वैरी है जान के, लाज रखे करतार ॥
२१६ पूछ छिया छोटे कान। ऐसे वरद मिहनती जान ॥
२१७ उजर वरौनी मुह का महुआ। वाका देख हरवाह रोवा ॥
२१८ जब देखो पिय सम्पति थोडी। बिसहो गाय विआउर घोडी ॥
२१९ वह किसान है पातर। जो वरदा राखै गादर ॥
२२० वरद बगौदा मरकहा होय। वह घर उरहन नित-नित होय ॥
२२१ वरद विसाहन जाओ कन्ता। खीरे का जनि देखो दन्ता ॥
जहा परे खीरे की खुरी। तो कर डारे चपरा पुरी ॥
जहा परे खीरे को लार। वढनी लेके बुहारो सार ॥
जहा देखो पटवा की डोर। तहा दीजो थैली छोर ॥
२२२ दो हर खेती एक हर वारी। एक बैल से भलो कुदारी ॥
२२३ दस हल राव आठ हल राना। चार हलो का बडा किसाना ॥
२२४ पाच शनीचर पाय रवि, पाच मगल जो होय।
छत्तर टूट धरनी पडे, की अन्न महगो होय।
२२५ या तो बोयें कपास अरु ईख। नाही माग के खाये भीख ॥
२२६ जो हल जोते खेती वाकी। और नही तो जाकी ताकी ॥
२२७ जो तू भूखा माल का। तो ईख कर लो नाल का ॥
२२८ बहु बोना बहु कटियान, और बहुतै वोया चना।
कहै मनोहर जगली, जावेगे ये तीनो जना ॥
२२९ चना, चैत घना।
२३० गेहू बाहा, धान गाहा। ईख गुडाई से है आहा ॥
२३१ मगल बारी पडे दिवारी। रहै किसान रोये व्योपारी ॥
२३२ साठी पके साठवे दिन। जो पानी पावे आठवें दिन ॥

२३३ सबी किसानी हेठी । अगहनिया पानी जेठी ॥

२३४ अगहन मे सरवा भर । फिर करवा भर ॥

२३५ कदम-कदम पीपल मुकदम , गेहू ठाकुर जौ दीवान ।
अरहर चेरी चना गुलाम , सरसो ठाढे करे सलाम ॥

२३६ अहिर मिताई चादर की छाई । होवे-होवे नाही नाई ॥

२३७ गेहू बाहे से, चना दलाये से । धान गाहे से, मक्की निराये से—
ईख कमाये से ॥

२३८ दो पत्ती क्यो न निराये । अब बीनत क्यो पछितावे ॥

२३९ नित्तै खेती दुसरे गाय । नहि देखै ते कर जाय ॥

२४० मीन शनीचर कर्क गुरु , जो अव्वल मगल होय ।
गेहू गोरस गुडारी , बिरलै बिलसे कोय ॥

२४१ ठाढी खेती गाभिन गाय । तब जानो जब मुंह मे जाय ॥

२४२ बबूल का पाटा सिरस का हल , हरयानी का बैल ।
छूछे हाथे लेय के , बैठे चौसर खेल ॥

२४३ ईख करै सब कोई । जो बीच मे जेठ न होई ॥

२४४ प्रीति तो कीजै ईख सी , जामे रस की खानि ।
जहा गाठ तह रस नही , यही प्रीति की बानि ॥

२४५ ईख तक खेती , हाथो तक बनिज ।

२४६ आसपास रबी , बीच मे खरीफ ।
नोन मिरच डाल के , खा गया हरीफ ॥

२४७ परहथ बनिज सन्देसे खेती । बे बर देखे ब्याहे बेटी ॥
द्वार पराये गाडे खाती । ये चारो मिल पीटे छाती ॥

२४८ अगहन मे न दी थी कोर । तेरे बैल क्या ले गये चोर ॥

२४९ तीन कियारी तेरह गोड़ । तब बाढे ऊख की पोर ॥

२५० उठ के बजरा यो हस बोले । खाये बूढ युवा हो जावे ॥

२५१ इतवार करे धनवन्तर होय । सोम करे सेवा फल होय ॥
बुध बीफ शुक्रै भरै बखार । शनि मगल बीज न आवे द्वार ॥

२५२ ऊचे चढ के बोला मडुवा । सब नाजो का मै हू भडुआ ॥
आठ दिना मुझको जो खाय । भले मर्द से उठा न जाय ॥
२५३ माढी मे साढी बोवे, बाढी में बाडी ।
ईख म जो धान बोवे, फूँको वाकी डाढी ॥
२५४ कमती फरे गाजा बाजा । जौनै लागे तौनै राजा ॥
२५५ भली जाति कुरमिन की, खुरपी हाथ ।
अपना खेत निराये, पिय के साथ ॥
२५६ जिसका ऊचा बैठना, जिसका खेत निचान ।
उनका बैरी का करे, जिनके मीत दिवान ॥
२५७ बाढे पुत्र पिता के धर्मा । खेती उपजे अपने कर्मा ॥
२५८ घर की खुन्स ज्वर की भूख, छोट दमाद बराहे ऊख ।
पातर खेती भकुआ भाई, घाघ कहे दुख कहा समाई ॥
२५९ धान पान उखेरा । ये पानी का चेरा ॥
२६० रूध बाधके फाग दिखाये । सो किसान मेरे मन भाये ॥
२६१ खेती करै ऊख कपास । घर करै व्योहरिया पास ॥
२६२ उर्द मोथी की खेती करियो । कुरिया तोड ऊसरमेथरियो ॥
२६३ खेती करे अधिया । न बैल मरै न बधिया ॥
२६४ अगसर खेती अगसर मार । घाघ कहे ये कबहू न हार ॥
२६५ ऊख सरौती दिवला धान । इन्हे छाड़ जनि बोओ आन ॥
२६६ असाढ मास जो घूमा कीन । ताकी खेती होवै हीन ॥
२६७ एक वायु जो वह है ऊता । मेढे बाध पियाओ पोता ॥
२६८ एक मास ऋतु आगे धावै । आधा जेठ असाढ कहावै ॥
२६९ साठी होवे साठ दिना । जब पानी बरसे रात दिना ॥
२७० ईख तो कर ले राड । और पेरे उसे साड ॥
२७१ काटा बुरा करील का, औ बदरी का घाम ।
सौत बुरी है चून की, औ साझे का काम ।

२७२ रई है गेहूं कुस है धान । गड़रा की जड़ जड़हन जान ॥
फूली घास रो देय किसान । उसमें होय आन का तान ॥
२७३ गेहू गिरे अभागे का । धान गिरे सौभागे का ॥
२७४ जब सैल खटाखट बाजे । तब चना खूब ही गाजे ॥
२७५ सरसे अरसी, निरसे चना ।
२७६ चार छावें छ निरावे । तीन खाट दो बाट ॥
२७७ बाह न जाने मसुरी चना । हित न जाने हरामी जना ॥
२७८ बिररै जोत पुराने बिया । ताकी खेती कुछ न हुआ ॥
२७९ छाडै खाद जोत गहराई । तब खेती का मजा दिखाई ॥
२८० खूब जोतै औ नावै खाद । तब देखे गेहू का स्वाद ॥
२८१ माघ मास की बादरी , और क्वार को घाम ।
यह दोनो जो कोउ सहे , करे पराया काम ॥
२८२ मर्द निकौनी बरदै दाय । दुवरी चलने मे दुख पाय ॥
२८३ ऊख गोड के तुरतै गावै । तो फिर ऊख बहुत सुख पावै ॥
२८४ सावन भादो खेत निरावे । तब गृहस्थ बहुतै सुख पावै ॥
२८५ पानी बरसे बहन न पावे । तब खेती को मजा दिखावे ॥
२८६ जब बरसे तब्र बाधो क्यारी । पूरा किसान जो हाथ कुदारी ॥
२८७ खेती करे साझ घर सोवै । काटे चोर हाथ धर रोवै ॥
२८८ खेत बे पनिया जोतो तब । ऊपर कुआ खुदाओ जब ॥
२८९ खेत बे पानी बुड्ढा बैल । सो गृहस्थ साझै गहै गैल ॥
२९० बाघ कुदारी खुरपी हाथ । लाठी हसिया राखै साथ ॥
काटै घास निरावै खेत । पूरा किसान वही कहि देत ॥
२९१ चना सीच पर जब हो आवै । ताको पहिले तुरत खुटावै ॥
२९२ कुडहल भदई बोओ यार । तब चिउरा की होय बहार ॥
२९३ पहिले छाओ तीन घरा । सार भुसौला औ बडहरा ॥
२९४ अति ऊचे भुइ धरन पै , भुजगन के अस्थान ।
तुलसी अति नीचे सुखद , ऊख अन्न अरु पान ॥

२९५ कामिन गरभ औ खेती पकी । ये दोनो है दुर्बल बर्दी ।।
२९६ जो तुम देव नील का जूठी । सब खादो में रही अनूठी ।।
२९७ सन के डण्ठल खेत छिटावे । तिनते लाख चौगुनो पावे ।।
२९८ जो कपास न गोडी । उसके हाथ न लागै कौड़ी ।।
२९९ कपास चुनै, खेत खनै ।
३०० हल लगा पताल । तो टूट गया काल ।।
३०१ वाहन कीन्हो मोटा । बीज बनावे खोटा ।।
३०२ गेहू आये वाल । खेत बनाओ ताल ।।
३०३ बोओ गेहू काट कपास । फिर होवे ना ढेला घास ।।
३०४ काले फूल न आया पानी । धान मरा अधबीच जवानी ।।
३०५ दक्खिन घेरे पुरबा बरसै । पछुवा चलते किसान तरसै ।।
३०६ तरकारी है तरकारी । यामे पानी की अधिकारी ।।
३०७ छोटी नसी , धरती हसी ।
३०८ तोड़ दीन क्यारी । खेत गा उजारी ।।

## लोकोक्तियां

१ अपनी करनी पार उतरनी ।
२ औसर चूकी डोमनी गावे ताल बेताल ।
३ अरहर की टट्टी गुजराती ताला ।
४ अपनी नींद सोना अपनी नीद उठना ।
५ अति का भला न बरसना , अति की भली न धुप्प ।
अति का भला न बोलना , अति की भली न चुप्प ।।
६ अपनी-अपनी ढापुली अपना-अपना राग ।
७ अनमाँगे मोती मिले माँगे मिले न भीख ।
८ अमानत मे खयानत ।
९ अयाना जाने हीया सयाना जाने किया ।
१० अस्सी की आमद चौरासी का खर्च । अधजल गगरी छलकत जाय । आप काज महा काज ।

११ आगे नाथ न पीछे पगा।

१२ आधी छोड़ पूरी को धावे। ऐसा डूबे थाह न पावे।

१३ आग फूंस मे बैर।

१४ आप मरे जग परलय।

१५ आखो के अन्धे नाम नैनसुख।

१६ आप डूबा तो जग डूबा।

१७ आदमी का आदमी ही शैतान है।

१८ आती बहू जनमता पूत सब को अच्छा लगता है।

१९ आग लगते झोपडा जो निकले सो लाभ।

२० आम के आम गुठलियो के दाम।

२१ इस हाथ दे उस हाथ ले।

२२ उल्लू की दुम फाख्ता।

२३ उधार का खाना, फूस का तापना।

२४ उत्तम खेती मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी भीख निदान॥

२५ उलटा चोर कोतवाल को डांडे।

२६ उघरे अन्त न होय निबाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू॥

२७ ऊट के मुह मे जीरा।

२८ ऊधो का लैन माधो का देन।

२९ ऊची दुकान फीका पकवान।

३० ऊट की चोरी निहुरे-निहुरे।

३१ ऊट के गले बिल्ली।

३२ ऊट बिलाई ले गई तब हाजी-हाजी करना।

३३ एक नारी, सदा ब्रह्मचारी।

३४ एक पथ दो काज।

३५ एक तो गिलोय कडुवी दूसरे नीम चढी।

३६ एक तवे की रोटी, क्या मोटी क्या छोटी।

३७ एक अनार सौ बीमार।

३८ ओछे की प्रीति बालू की भीति ।

३९ ओखली मे सिर दिया तो मूसलो का क्या डर ।

४० अन्धेर नगरी अनबूझ राजा ।

४१ अन्धी पीसे कुत्ते खाय ।

४२ अन्धा क्या चाहे दो आख ।

४३ अन्धे के हाथ बटेर ।

४४ अन्धा बाटे रेवडी अपनो ही को दे ।

४५ अन्ते मता सो गता ।

४६ कतहु सुधाइहु ते बड दोषू ।

४७ करले सो काम और भजले सो राम ।

४८ कभी नाव लढे पर कभी लढा नाव पर ।

४९ करघा छोड तमासे जाय, नाहक चोट जुलाहा खाय ।

५० करे तो डर न करे तो भी डर ।

५१ कहा राजा भोज कहा गगा तेली ।

५२ कारज धीरे होत है काहे होत अधीर ।

५३ काला अक्षर भैस बराबर ।

५४ काम परे ही जानिये जो नर जैसो होय ।

५५ काल करै सो आज कर आज करै सो अब्ब ।
पल मे परलै होयगी फेर करोगे कब्ब ॥

५६ कागा चलै हस की चाल ।

५७ काल के हाथ कमान, बूढा बचे न ज्वान ।

५८ काजर की कोठरी मे धब्बे का डर ।

५९ काम जो आवै कामरी का लै करे कमाच ।

६० काबुल गये मुगल बनि आये बोलन लागे बानी । आब-आब
करि मरि गये सिरहाने धरचो रहो पानी ॥

६१ काजी जी क्यो लटे, शहर के अदेशे ।

६२ किस बिर्ते पर तत्ता पानी ।

६३ किसी को बेगन पथ बराबर, किसी को बिष बराबर।
६४ कानी के ब्याह मे सौ जोखो।
६५ कै हसा मोती चुगे, कै लघन मर जाय।
६६ कोयले की दलाली मे हाथ काले।
६७ पैसा नही हो पास, तो मेला लगे उदास।
६८ कौन किसी के आवे जावे दाना पानी लावे।
६९ गरीबी मे आटा गीला।
७० का वर्षा जब कृषी सुखाने, समय चूकि पुनि का पछताने।
७१ खरी मजूरी चोखा काम।
७२ खाना शराकत रहना फराकत।
७३ खुशामद से आमद होती है।
७४ खेती खसम सेती।
७५ खौरई कुतिया मखमली झूल।
७६ खोदा पहाड और निकली चुहिया।
७७ खूटे के सिर बछडा नाचे।
७८ गधे को गुलकन्द गवार को पापड।
७९ गाय न बाछी नीद आवे आछी।
८० गाव का जोगी जोगना आन गाव का सिद्ध।
८१ गुरू तो गुड ही रहे चेला चीनी हो गये।
८२ गुड खाय गुलगुलो से परहेज।
८३ गुरु कीजै जान और पानी पीजै छान।
८४ घर की खाड किरकिरी बाहर का गुड मीठा।
८५ घर की मुरगी साग बराबर।
८६ घर का भेदी लका ढावे।
८७ घर ब्याह, बहू कडो को डोले।
८८ घोडो को घर कितनी दूर।
८९ घोडा घास से यारी करे तो खाय क्या ?

९० घर आये नाग न पूजिये बामी पूजन जाय ।
९१ घुसिया हाकिम रुसिया चाकर ।
९२ घोडे का गिरा सम्हल सकता है नजर का गिरा नही ।
९३ चतुर को चौगुनी मूरख को सौगुनी ।।
९४ चमडी जाय पर दमडी नही जाय ।
९५ चना और चुगल मुह लगे अच्छे नही ।
९६ चमार को अरस पर भी बेगार ।
९७ चार दिन की चादनी फेर अधेरी रात ।
९८ चाकरी मे ना करी क्या ।
९९ चिराग तले अधेरा ।
१०० चोज न राखे आपनी चोरे गाली देय ।
१०१ चोरी और मुह जोरी ।
१०२ चोर की मा कोठी मे मूड देकर रोती है ।
१०३ चोर की डाढी मे तिनका ।
१०४ चोर से कह तू चोरी कर और शाह से कह तू घर पै रह ।
१०५ चोर-चोर मौसाइते भैया ।
१०६ जूआ मीठी हार ।
१०७ चौबे छब्बे होने गये दुबे रह गये ।
१०८ छछून्दर के सिर मे चमेली का तेल ।
१०९ छीकते ही नाक कटी ।
११० छोटे मुह वडी वात ।
१११ छोडे गाव से नाता क्या ।
११२ चन्दन की चुटकी भली गाडी भरो न काठ ।
११३ झगडे की जड, जमीन, जन, जर ।
११४ जबतक स्वास तब तक आस ।
११५ जहा जाय भूखा तहा पडे सूखा ।
११६ जहा रूख नही, वहा अरड ही रूख ।

११७ जर है तो नर है नही तो पूरा खर है।
११८ जन्म के दुखी नाम चैनसुख।
११९ जान है तो जहान।
१२० जाकर जिहि पर सत्य सनेहू। सो तिहि मिलत न कछ सदेह
१२१ जामन होय मलीन सो पर सपदा सहै न।
१२२ जाको राखै साइया मारि न सकिहै कोय।
१२३ जाके पाय न फटी बिवाई। सो क्या जाने पीर पराई॥
१२४ जिसकी लाठी उसकी भैंस।
१२५ जिसकी जूती उसका सिर।
१२६ जिसको पिया चाहे वही सुहागन।
१२७ जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ।
१२८ जिसका खाइये उसका गाइये।
१२९ जिसके हाथ लोई, उसका सब कोई।
१३० जिय बिनु देह नदी बिनु वारी। तैसे हि नाथ पुरुष बिनु नारी।
१३१ जैसे कथा घर रहे तैसे गये विदेश।
जैसी तेरी तोमरी तैसे मेरे गीत।
१३२ जैसे गगा न्हाये तैसे फल पाये।
१३३ जैसे नागनाथ तैसे सापनाथ।
१३४ जैसे बहे बयारि पीठ तब तैसी दीजै।
१३५ जैसा देश वैसा भेष।
१३६ जो विंध गया सो मोती।
१३७ जो धन दीखे जात, आधा दीजै बाट।
१३८ जो गरजता है सो बरसता नही।
१३९ जो चोरी करता है वह मोरी रखता है।
१४० जोरू चिकनी मिया मजूर।
१४१ जो तोकू काटा बुवै ताहि बोय तू फूल।
१४२ जो बोले सो घी को जाय।

१४३ जोड-जोड़ मर जायगे। माल जमाई खायगे ॥
१४४ जोगी था सो उठ गया आसन रही भभूत।
१४५ जब ओढ लीना लोई। तो क्या करेगा कोई ॥
१४६ जन्म न देखा बोरिया सपने आई खाट।
१४७ टके की बुढिया नौ टका मूड मुडाई।
१४८ डूबा वश कबीर का उपजे पूत कमाल।
१४९ तमाम रात पीसा और पारी मे सकेला।
१५० तन पर नहिं लत्ता पान खाय अलबत्ता।
१५१ ताजी मारे तुरकी कापे।
१५२ तिरिया तेल, हमीरहठ, चढे न दूजी बार।
१५३ ताकी न रक्खे बाकी।
१५४ तीन बलायें तेरह आये।
१५५ तीन पाव आटा पुल पर रसोई।
१५६ तीरथ गये मुडाये सिद्ध।
१५७ तीन लोक से मथुरा न्यारी।
१५८ तेली का तेल जले मसालची का सिर दूखे।
१५९ तुझको पराई क्या पडी अपनी निवेड तू।
१६० तुरत दान महा कल्याण।
१६१ तुम डार-डार हम पात।
१६२ दया बिनु सन्त कसाई।
१६३ दान वित्त समान।
१६४ दिल को करार तब सूझे त्योहार।
१६५ दुबले मारे शाहमदार।
१६६ दूर के ढोल सुहावन।
१६७ दूध का जला छाछ को फूक फूक पीता।
१६८ न्यारा पूत परोसी दाखिल।
१६९ नई नाइन बास का नहन्ना।

१७०- नया नौ दिन पुराना सौ दिन ।
१७१ नक्कारखाने मे तूती की आवाज ।
१७२ न नाम लेवा न पानी देवा ।
१७१ नजर चूकी माल दोस्तो का ।
१७४ नाई बाल कितने ? जिजमान आगे आ जायगे ।
१७५ नाच न जाने आगन टेढा ।
१७६ नाम बडे दर्शन थोडे ।
१७७ नाना के आगे ननिहार की बाते ।
१७८ नाम भानमती औ झोली मे सिर ।
१७९ नानी तो क्वारी मर गई नन्ना के नौ-नौ ब्याह ।
१८० नौ नगद न तेरह उधार ।
१८१ नौ दिन चले अढाई कोस ।
१८२ नीम हकीम खतरे जान । नीम मुल्ला खतरे ईमान ।
१८३ नौ सौ चूहे खाय बिलाई हज को चली ।
१८४ पढ न लिखे और नाम विद्यासागर ।
१८५ पराधीन सपनेहु सुख नाही ।
१८६ पढे तो है पर गुने नही ।
१८७ परदेशी की प्रीति फूस का तापना ।
१८८ पाचो घी मे ।
१८९ पौबारह है ।
१९० पानी पी घर पूछना नाही भलो विचार ।
१९१ प्रीति का निबाहना खाडे की धार है ।
१९२ पासा पडे सो दाव, राजा करे सो न्याव ।
१९३ पाच पञ्च तहा परमेश्वर ।
१९४ पैसे की हाडी गई तो कुत्ते की जाति तो जानो
१९५ पञ्च कहे बिल्ली सो बिल्ली ।
१९६ बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद ।

१९७ वन्दर के गले मे मोतियो की माला ।
१९८ धनी के सब साथी ।
१९९ बगल मे तोशा किसका भरोसा ।
२०० वार-बार चोर की तो एक बार साहू की ।
२०१ बद अच्छा बदनाम बुरा ।
२०२ बाहर वाले खा गये घर के गावे गीत ।
२०३ बाप ने मारी पोदनी बेटा तीरन्दाज ।
२०४ बावन तोले पाव रत्ती ।
२०५ बारह वर्ष दिल्ली मे रहे क्या भाड झोका ?
२०६ बारे की मा न मरे और बूढे की जोरू ।
२०७ बावरे गाव मे ऊट आया ।
२०८ बाजार किसका ? जो लेकर दे उसका ।
२०९ बाहू गहे की लाज ।
२१० बिच्छू का काटा रोवे, साप का काटा सोवे ।
२११ बाझ क्या जाने प्रसूत की पीडा ?
२१२ बूर का लड्डू खायगा सो पछतायगा न खायगा वह भी पछतायगा ।
२१३ वे ही मिया दरबार को, वे ही चूल्हा फूकने को ।
२१४ बैठे से बेगार भली ।
२१५ बैल दीजे जायफल क्या बोले क्या खाय ?
२१६ बैलन कूदा कूदी गौन ।
२१७ भरी जवानी मझा ढीला ।
२१८ भरभूजे की लडकी केसर का तिलक ।
२१९ भीख के टुकडे बाजार मे डकार ।
२२० भूले बनिया भेड खाई । अब खाऊ तो राम दोहाई ॥
२२१ भूख मे किवाड ही पापड ।
२२२ भूख में गूलर ही पकवान ।
२२३ भूखा बगाली भात-भात ।

२२४ भूलि गई राव रङ्ग भूलि गई जिकडी, तीन चीज याद रही नून तेल लकडी।

२२५ भेंड की लात घोटू तक।

२२६ मन मे राम बगल मे ईंटे।

२२७ मरना बिचारा तो डरना कैसा ?

२२८ मरता क्या न करता।

२२९ मन चङ्गा तो कठौती मे गङ्गा।

२३० मन के हारे हार है मन के जीते जीत।

२३१ मन उमराव करम दरिद्री।

२३२ मक्खी बैठी शहद पर रही पङ्ख लपटाय।
हाथ मलै और शिर धुनै लालच बुरी बलाय॥

२३३ माह नगे बैसाख भूखे।

२३४ मार मार तो किये जा नामर्दी तो ईश्वर ने दी।

२३५ मान का बीडा हीरा के समान।

२३६ मान न मान मैं तेरा महमान।

२३७ मानो तो देव नही तो पत्थर।

२३८ मान का पान बहुत है।

२३९ मीठा और भर कठौता।

२४० मीठा-मीठा लप-लप, कडुवा-कडुवा थू-थू।

२४१ मुल्ला की दौड मस्जिद तक।

२४२ मूडा जोगी पिसी दवा।

२४३ मूरख की सारी रैन, छैल की एक घडी।

२४४ मूल से ब्याज प्यारा होता है।

२४५ मेडकी को जुकाम।

२४६ यथा राजा तथा प्रजा।

२४७ यथा नाम तथा गुण।

२४८ रसोई का विप्र कसाई का कूकर।

२४९ रख पत रखा पत।

२५० राजा किसके पाहुने, जोगी किसके मीत ।
२५१ राम-राम जपना । पराया माल अपना ।।
२५२ राम भरोसे जे रहे परवत पर हरियाय ।
२५३ राई से पर्वत करैं पर्वत राई माहि ।
२५४ राग का घर खाँसी । लडाई का घर हासी ।।
२५५ राड साड सीढी सन्यासी । इनसे बचे जो सेवै काशी ।
२५६ लकीर के फकीर ।
२५७ कमजोर की जोरू सब की सरहज ।
२५८ लडका बगल मे, ढढोरा नगर मे ।
२५९ लातो के देव बातो से नही मानते ।
२६० लीक-लीक गाडी चलै , लीक हि चले कपूत ।
लीक छाडि तीनो चले , सायर, सिह, सपूत ।।
२६१ देश चोरी परदेश भीख ।
२६२ देह धरे का दण्ड है सब काहू को होय ।
२६३ देखी तेरी कालपी बामनपुरा उजार ।
२६४ दोनो दीन से गये पाडे , हलुवा मिला न माडे ।
२६५ दाल भात मे मूसरचन्द ।
२६६ दुबिधा मे दोऊ गये माया मिली न राम ।
२६७ देखा देखी साधे जोग । छीजी काया बाढचो रोग ।
२६८ धोबी का कुत्ता घर का न घाट का ।
२६९ नये चिकनिया अडी का फुलेल ।
२७० नदी में रहकर मगर से वैर ।
२७१ लिखें मूसा पढे ईसा ।
२७२ लूट के मूसर भी भले है ।
२७३ लोहू लगाकर शहीदो मे दाखिल ।
२७४ शाम के मरे को कब तक रोवे ।
२७५ शिकार के समय कुतिया हगासी ।
२७६ सब के दाता राम ।

२७७ सत मति छोडे सूरमा सत छोडे पति जाय ।
२७८ सेत-सेत सब एक से कर्र कपूर कपास ।
२७९ सखी से सूम भला जो तुरत देय जवाब ।
२८० सखी के माल पर पडे सूम की जान पर ।
२८१ सब दिन जात न एक समान ।
२८२ सभी वात खोटी मुख्य दाल रोटी ।
२८३ सदा दिवाली साधु की जो घर गेहू होय ।
२८४ साप मरै न लाठी टूटै ।
२८५ साच को आच नही ।
२८६ सावन सूखे न भादो हरे ।
२८७ सावन के अन्धे को हरा ही हरा दीखता है ।
२८८ सिर पर पडी बजाये सिद्धि ।
२८९ सूरदास कारी कामरि पै चढै न दूजौ रङ्ग ।
२९० सुन खगेश अस को जग माही । प्रभुता पाय जाहि मद नाही ॥
२९१ सौकीन बुढिया चटाई का लहगा ।
२९२ सो घर सत्यानाश जहा है अति बल नारी ।
२९३ हर्रा लगै न फिटकरी रग चोखा ही आवै ।
२९४ हम तुम राजी, तो क्या करैगा काजी ।
२९५ हानि लाभ जीवन मरन, यश अपयश विधि हाथ ।
२९६ हाथ पाव की काहिली मुह में मूछे जाय ।
२९७ हाथकगन को आरसी क्या ।
२९८ हाथी के दात दिखाने के और होते है और खाने के और ।
२९९ हिमायत की गधी ऐराकी के लात मारती है ।
३०० हिसाब जौ-जौ का दान सौ-सौ का ।
३०१ हुक्के की मारी आग बाकी का मारा गाव ।
३०२ हाथी के पैर मे सब का पैर ।
३०३ होनहार बिरवान के होत चीकने पात ।
३०४ अति भक्ति चोर के लक्षण ।

३०५ अटका बनिया दे उधार।
३०६ अपना वही जो आवै काम।
३०७ अपनी फूटी न देखे दूसरे की फूली निहारे।
३०८ अन्नदान महादान।
३०९ आदमी मे नउआ, जानवर मे कउआ।
३१० आदमी जानिये बसे, सोना जानिये कसे।
३११ आशा का मरे निराशा का जिये।
३१२ आत भारी तो माथ भारी।
३१३ आमो की कमाई, नीबुओ मे गमाई।
३१४ आख का अन्धा गाठ का पूरा।
३१५ आख हुई चार, तो दिल मे आया प्यार।
३१६ आख हुई ओट, तो दिल मे हुआ खोट।
३१७ आसमान से गिरा खजूर मे अटका।
३१८ इक लख पूत सवालख नाती। ता रावण घर दिया न बाती॥
३१९ उतावला सो बावला, धीरा सो गम्भीरा।
३२० उखली मे सिर दिया तो मूसलो का क्या डर।
३२१ ऊजड खेडा, नाम निबेडा।
३२२ ऊट बहै गदहा थाह ले।
३२३ ऊची दुकान का फीका पकवान।
३२४ एकान्त वासा, झगडा न हासा।
३२५ टाट का लगोटा नवाब से यारी।
३२६ तिल गुड़ भोजन नीच मिताई। आगे मीठ पाछे कडुआई।
३२७ तेली जोरे परी-परी महमान लुटावे कुप्पा।
३२८ दमडी की बुलबुल टका हलाली।
३२९ दिया तले अधेरा।
३३० दुविधा मे दोनो गये माया मिली न राम।
३३१ नामी बनियाँ कमाया खाय। नामी चोर मारा जाय॥
३३२ नाक कटी पर हठ न हटी।

३३३ नौकरो की पत्थर पर जड है ।
३३४ नौ की लकडी, नब्बे खर्च ।
३३५ पर उपदेस कुसल बहुतेरे ।
३३६ पराये पीर को मलीदा, घर के देव को धतूरा ।
३३७ पराये धन पर लक्ष्मीनरायन ।
३३८ पढे फारसी वेचे तेल । ये देखो कर्ता के खेल ।
३३९ पर धन राखे मूरखचद ।
३४० सतोषी सदा सुखी ।
३४१ पराई हसी गुड से मीठी ।
३४२ पैसा करे काम बीबी करे सलाम ।
३४३ फिर पछताये क्या हुआ जब चिडिया चुग गई खेत ।
३४४ बहती गङ्गा हाथ पखार लो ।
३४५ बडे मिया सो बडे मिया छोटे मिया सुभान अल्ला ।
३४६ बात गये कुछ हाथ नही ।
३४७ बाप मरा घर बटा हुआ, इसका टोटा उसमे गया ।
३४८ बिच्छू का मन्तर न जाने साप के बिल मे हाथ डाले ।
३४९ बीती ताहि बिसारदे आगे की सुधि लेहु ।
३५० मरी बछिया ब्राह्मण के नाम ।
३५१ मच्छड मार के ऐंठा सिंह ।
३५२ मन मे बसे सो सुपना देखे ।
३५३ मरद की बात और गाडी का पहिया आग को चलता है ।
३५४ मागे आवे न भीख, तो सुर्ती खाना सीख ।
३५५ मारे सिपाही, नाम सरदार का ।
३५६ मिजाज क्या है तमाशा, घडी मे तोला घडी मे माशा ।
३५७ मिस्सो से पेट भरता है किस्सो से नही ।
३५८ मिया रोते क्यो हो ! सूरत ही ऐसी ।
३५९ मिया के मिया गये, बुरे-बुरे सुपने आये ।
३६० रहै न बास न बजे बासुरी ।

३६१ राड साड और नकटा भैसा । ये बिगडे तो होवे कैसा ॥
३६२ लडना दे पर बिछुडना न दे ।
३६३ लेना देना कुछ नही लडने को मौजूद ।
३६४ वक्त पडे बाका, लोग गधे को कहे काका ।
३६५ वेश्या बरस घटावही, योगी बरस बढाव ।
३६६ सुख कहना जन से, दुख कहना मन से ।
३६७ हाथ कगन को आरसी क्या ।
३६८ आधा तजे पडित सरबस तजे गवार ।
३६९ आधे गाव दिवाली आधे गाव फाग ।
३७० अधेला न दे अधेली दे ।
३७१ आधे माघे कमरी काधे ।
३७२ आदमी-आदमी अतर, कोई हीरा कोई ककर ।
३७३ इधर न उधर, ये बला किधर ।
३७४ उधार देना, झगडा लेना ।
३७५ उधार दीजै दुश्मन कीजै । उधार दिया गाहक खोया ।
३७६ एक दिन का पाहुना दूसरे दिन का अनखावना ।
३७७ करनी खाक की, बात लाख की ।
३७८ करनी न करतूत, चलियो मेरे पूत ।
३७९ करनी न करतूत, लडने को मौजूद ।
३८० कडुआ स्वभाव, डूबती नाव ।
३८१ कलाल की बेटी डूबने चली, लोगो ने कहा मतवाली है ।
३८२ काली घटा डरावनी और धौली बरसनहार ।
३८३ खाय तो घी से, नही जाय जी से ।
३८४ खाली बनिया क्या करे, इस कोठी के धान उस कोठी मे धरे ।
३८५ खरबूजे को देख कर खरबूजा रग पकडता है ।
३८६ खावै बकरी की तरह और सूखे लकडी की तरह ।
३८७ गधा गिरा पहाड से और मुर्गी के टूटे कान ।
३८८ गाल वाला जीतै, और माल वाला हारे ।
३८९ ऐसा काम हमेशा कर, जिसमे कभी न होवे डर ।

३९० ऐसी कहो न बात, कि सबका हिले हाथ।
३९१ अन्धे के आगे रोये, अपने दीदा खोये।
३९२ काम प्यारा कि चाम ?
३९३ काम रहे तक काजी, न रहे तो पाजी।
३९४ किसी का मुह चले किसी का हाथ।
३९५ कफन सिर से बाधे फिरता है।
३९६ खर गुड एक ही भाव बिकाय।
३९७ खाली चना, बाजे घना।
३९८ गया वक्त फिर हाथ आता नही।
३९९ गगरी दाना, सूत उताना।
४०० गाडर राखी ऊन को बैठी चरे कपास।
४०१ गो निकली, आख बदली।
४०२ घर मे मडुआ की रोटी, बाहर लम्बी धोती।
४०३ घडी भर की बेसरमी सब दिन का आराम।
४०४ घी खाना शक्कर से, दुनिया ठगिये मक्कर से।
४०५ घर बैठे गगा आई।
४०६ जहा न पहुचे रवि, तहा पहुचे कवि।
४०७ जबान शीरी, मुल्क गीरी।
४०८ जगन्नाथ के भात, जगत पसारे हाथ।
४०९ जाका कोडा ताका घोडा।
४१० जागे सो पावे, सोवे सो खोवे।
४११ जाके घर मे नौसे गाय, सो क्या छाछ पराई खाय।
४१२ जाके घर मे माई, ताकी राम बनाई।
४१३ जोगी काके मीत, कलदर किसके भाई।
४१४ जब आया देही का अन्त, जैसा गधा वैसा सन्त।
४१५ जब भये सौ, तब भाग गया भौ।
४१६ झरबेरी के जगल मे बिल्ली शेर।
४१७ टके की मुर्गी छै टके महसूल।